श्रीमत्परमहंस योगीराज

श्री स्वामी सियारामजी महाराज

की

पुण्य स्मृति में

महाराज के जीवन चरित्रों और उपदेशपूर्ण पत्रों

का

यह संग्रह

मोक्ष के साधकों

के

चरण-कमलों

में

मेरा लक्ष्य

मेरा यह लक्ष्य था कि मैं पुरुषों तथा स्त्रियों में इस बात की जागृति करा दूँ कि यदि व्यवहार को शुद्ध कर, आहार सात्विक कर और शरीर को ठीक रक्खें और विषयों से मन को हटाकर अन्तर्मुख करें, तो उनको अपने भीतर के ख़ज़ाने का पता लग सकता है।"

सियाराम

श्री स्वामी सियाराम पब्लिकेशन ट्रस्ट,
मुलतान (पंजाब)

ट्रस्ट-फंड—२०६०) रु० कुल

५६०) रु० एक शिष्य

२५०) रु० एक भक्त

२५०) रु० एक सेवक

१०००) रु० चौधरानी कृष्णकुमारी, चाँदपुर, बिजनौर (यू० पी०)

उद्देश्य

योगीराज श्रीस्वामी सियारामजी महाराज के जीवन-चरित्र और उपदेशों को उत्तम रूप में प्रकाशित करना और कम से कम लागत पर जनता को देना।

मोक्ष-साधन माला पहला पुष्प .. } महाराज के जीवन चरित्र और पत्र (भेंट हैं)

दूसरा पुष्प आनन्द कहाँ है? (तय्यार हो रहा है)

निवेदन

—:o:—

श्रीमत्परमहंस योगीराज श्री स्वामी सियारामजी महाराज के अनेक शिष्यों की इच्छा के अनुसार महाराजजी के जीवन-चरित्र और उपदेश-पूर्ण पत्रों के छपवाने का विचार हुआ। सत्संगियों का यह दृढ़ निश्चय है कि महाराज का जीवन और उपदेश मोक्ष के साधकों के लिये अत्यन्त हितकर है। मोक्ष की चाह सनातन वा पुरातन है, इस चाह को मादापरस्ती का दौरा, काल का फेर और मौजूदा ज़माने का राजसिक भाव तथा राजनैतिक प्रवाह मिटा नहीं सकता। मोक्ष के साधक, शान्ति के पुजारी, आनन्द के मुतलाशी, परम निर्वाण के इच्छुक सब काल और सब देश में रहते हैं। ऐसे सज्जनों की सेवा में यह संग्रह भेंट किया जा रहा है। आशा है कि जिज्ञासु और मोक्षार्थी साधक उसी श्रद्धा और आदर से इस पुस्तक का स्वागत करेंगे कि जिस नम्रता से यह उनकी भेंट की जा रही है।

जिन सत्संगियों का इस पुस्तक में नाम आया है, प्रायः सबसे थोड़ी बहुत सहायता मिली है। पर कुछ मित्रों ने विशेष सहायता पहुँचाई है। निम्न लिखित सज्जनों ने अपने-अपने हालात लिखकर भेजे हैं, (जिनको प्रायः थोड़ा परिवर्तन करके ज्यों का त्यों दे दिया गया है) अथवा अन्य कई प्रकार से सहायता की है। श्री स्वामी सोमतीर्थजी, श्री स्वामी तारकानन्दजी, श्रीयुत रामरखाजी, श्रीयुत बाबू अयोध्याप्रसादजी फाटक वाला, वानप्रस्थी काशीनाथजी फ़िदा, धर्मचन्दजी, श्रीयुत प्रोफ़ेसर

सदानन्दजी और श्री स्वामी नारायणहरीजी आदि सज्जनों की सहायता के विना यह कार्य्य पूरा होना असम्भव था। यदि आप सब मित्र सहयोग न करते, तो यह कार्य्य इससे भी अधिक अधूरा रह जाता। पाठकों से अनुरोध है कि वे जो कुछ भी लाभ उठावें, उसके लिये उन्हें प्रभु का अथवा इन सब सज्जनों का ही कृतज्ञ होना चाहिये। पुस्तक और पत्रों के लिखने के काम में अनेक युवक कुमारों ने बड़ा परिश्रम किया है। जिनमें राधाकृष्णजी विशेष धन्यवाद के योग्य हैं। दयानन्द ऐंग्लो वैदिक, कालिज (कानपुर) के हिन्दी उपाध्याय पण्डित मुन्शीरामजी ने भाषा शोधने और प्रूफ़ देखने में बड़ा परिश्रम किया है। महाशय सुदर्शनजी ने भी पहिले काण्ड के तीन प्रकरणों को पढ़ भाषा को अधिक सरल अथवा रोचक बनाने में सहायता दी है।

छपवाई के कार्य्य में श्री स्वामी रामतीर्थजी महाराज के पट्ट शिष्य श्री नारायण स्वामीजी ने सहर्ष विशेष कष्ट उठाया है। आपकी सहायता विना यह ग्रन्थ इतनी शीघ्र पाठकों के हाथ में न पहुँचता। आपकी कृपा के लिये हम बहुत आभारी हैं। शुक्ला प्रेस के मैनेजर पं० मन्नालाल तिवारी ने भी बड़ा परिश्रम किया है। इतनी दूर से जितना शीघ्र और अच्छा काम वह करा सके हैं, उसके लिये वे धन्यवाद के योग्य हैं।

हम अपनी कमज़ोरियों का क्या वर्णन करें। मन और शरीर दोनों रोगी हैं। मित्रों की कृपा और दैव ने ही इस कार्य को हमारे हाथों में सौंपा है। हम भली-भांति जानते हैं कि हम इसके सर्वथा अयोग्य हैं। महाराज के जीवन-चरित्र और उपदेशों को अधिक गहराई से अध्ययन करने के लोभ ने ही हमें अपनी कमज़ोरियों के बावजूद इधर प्रेरित किया है। अपने आत्मिक जन्म-दाता के जीवन और उपदेशों को गहराई से जान

लेने पर अपनी नीचता और अयोग्यता और भी स्पष्ट हो रही है। अब जो हो गया, सो अटल है। जो दोष और त्रुटियां पाठकों को नज़र आयें वे सब हमारे आंत्रिक विकारों का आभास हैं। यदि हमारे वश में होता, तो ये सब हटा दी जातीं। यदि पाठकों के आशीर्वाद से लेखक कुछ सुधर जाय, तो सम्भव है कि वह इस सबको अधिक सुन्दर बना सके। अभी तो यही याचना है कि पाठक हमारे दोषों को सहन करते हुए, अपने आत्म-लाभ के साधनों को खोजने का यत्न करें। गुण-ग्राहक वृत्ति मोक्ष साधन में परम हितकारी है, उसीसे ही काम लेना श्रेयस्कर है।

आर्य्य समाज भवन, कानपुर
३, शुक्ल पक्ष, चैत्र, १६८८ } कृष्णकुमार

नोट—सतसंगियों से प्रार्थना है कि पुस्तक पढ़ते समय जो बातें महाराज के चरित्र और उपदेशों के सम्बन्ध में याद आवें, वह शीघ्र लिखकर मुझे भेज दें।

विषय सूची

पूर्वार्द्ध

१ शिक्षा-काण्ड

२ साधना-काण्ड

३ संन्यास-काण्ड

४ जाग्रति-काण्ड

५ निर्वाण-काण्ड

विषय सूची

उत्तरार्द्ध

मोक्ष-साधन

विना तिथि के पत्र

प्रस्तावना

जीवन-मुक्ति

जीवन-मुक्ति का सार क्या है, ज्ञानी भक्त कौन है, आत्म-प्रसाद किसने प्राप्त किया है, स्थितप्रज्ञ के लक्षण क्या हैं। कौन महात्मा ब्रह्म-स्थित है? यह सब प्रश्न गीताकार ने स्पष्ट कर दिए हैं। माया का बन्धन मोह है। मोह आसक्ति का कारण है। अज्ञान मोह की जड़ है। मोह से काम, क्रोध और लोभ उत्पन्न होते हैं। अहंकार सब का मूल है। कवीश्वर तुलसी-दासजी ने इस सत्य को बड़े भाव-पूर्ण शब्दों में इस प्रकार प्रकट किया है।

मोह सकल व्याधिन अति मूला। जां से उपजत हैं बहु शूला॥
काम, वात, कफ़, लोभ अपारा। क्रोध, पित्त नित छाती जारा॥
प्रेम करें जो तीनों भाई। उपजत सन्निपात महाँ दुखदाई॥

आत्मज्ञानी वही है, जिसने अपने आपको काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार से छुड़ा लिया है। यही बन्धन है, इससे छूटना मोक्ष है। असार संसार में हमारा कल्याण है, यही बड़ी भूल है। शरीर, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को अपने से भिन्न न देखना ही अज्ञान है। इसीसे मोह पैदा होता है। आत्मा एक रस है, प्रभु आनन्दपूर्ण है, शांत है, शिव है, मंगलमुद सुखकारी है, अमर है; शरीर और अन्तःकरण संसार के समान असार, अस्थिर, दुःखदाई और आनन्द को हरण करनेवाली वस्तु है। अज्ञान में बन्धन है, दुःख है, व्याकुलता है। योग द्वारा ही मनुष्य इस ज्ञान-दृष्टि को दृढ़ कर पाता

है। योग में आन्तरिक अथवा बाहिरी साधन सम्मिलित हैं। शरीर अथवा मन दोनों को शुद्ध करना जरूरी है। शारीरिक साधन, आत्मिक साधन के सहायक हैं। तब मनुष्य उस ब्रह्म-स्थिति को प्राप्त कर पाता है। कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग सब एक दूसरे के सहयोगी हैं। महान पुरुषों ने अपने-अपने संस्कारों और अवस्थाओं के अनुसार इन योगों को विभिन्न रूप से अपने जीवन में चरितार्थ किया है। परम अवस्था का वर्णन भगवद्गीता में ऐसा किया गया है।

जीवन-मुक्त के लक्षण

"जो किसी का द्वेष नहीं करता, जो करुणा का भण्डार है, ममता-रहित है, जो निरहङ्कार है, जिसे सुख-दुःख, शीत-उष्ण समान है, जो क्षमा-शील है, जो सदा सन्तोषी है, जिसका निश्चय कभी बदलता नहीं, जिसने मन और बुद्धि ईश्वर को अर्पण कर दिये हैं, जिससे लोग नहीं घबराते, जो लोगों का भय नहीं रखता, जो हर्ष-शोक भयादि से मुक्त है, जो पवित्र है, जो कार्य-दक्ष होने पर भी तटस्थ है, जो शुभाशुभ का त्याग करने वाला है, जो शत्रु-मित्र पर समभाव रखनेवाला है, जिसे मान-अपमान समान है, जिसे स्तुति से ख़ुशी और निन्दा से ग्लानि नहीं होती, जो मौनधारी है, जिसे एकान्त प्रिय है, जो स्थिर-बुद्धि है," वही आत्म-ज्ञानी है, वही ज्ञानीभक्त है, वही जीवन-मुक्त है उसीने मोक्ष प्राप्त कर पाया है, वही स्थितप्रज्ञ है, और वही ब्रह्म-ज्ञानी है, उसीकी स्थिति ब्राह्मस्थिति है, उसीने निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया है, वह परम शान्ति का धाम है, परमानन्द का स्वरूप है।

स्वामी सियारामजी उन महान पुरुषों में से एक थे जिन्होंने

इस परमपद को हस्तगत किया हुआ था। आप आत्मदर्शी थे, विरक्त थे, स्थितप्रज्ञ थे, ज्ञानी भक्त थे, ब्रह्मस्थित थे और योगी-राज थे।

शरीर सुधा, स्वभाव सरल, हृदय शान्त तथा करुणा-रस से भरपूर, मस्तिष्क उज्ज्वल, विचार गहरा तथा गम्भीर, चित्त सूक्ष्म और बुद्धि बड़ी मार्जित थी। आपकी मूर्त्ति शान्ति, सरलता और सूक्ष्म विचार की अवतार थी। वृत्ति सूक्ष्म होने के कारण शरीर भी सूक्ष्म हो चुका था, थोड़ी सी गड़बड़ी को झट प्रगट कर देता। चित्त इतना उपराम कि शरीर की तरफ़ बहुत कम ध्यान जाता। चित्त इतना निर्मल था कि बिना अनुमान तथा कल्पना के जैसी चित्त में फुरना होती, उसी भीतरी अनुभव अथवा ऋतम्भरा बोध के आधार से सारे व्यवहार करते कि जिसके अनेक उदाहरण पाठकों को इस संग्रह में मिलेंगे।

शरीर

जब तक साधना में रहे, तो शरीर को ऐसी देख-भाल से रक्खा कि किसी प्रकार का शारीरिक दोष पास नहीं फटका, पर जब आत्म-प्रसाद प्राप्त कर लिया और भूमिका दृढ़ हो गई, फिर शरीर से बेपरवाह हो गये। भोग पर निर्भर रहते; जैसे-तैसे उसको चलाते रहे। यथा अवसर उसकी चिन्ता भी करते पर अधिकतर तो उसकी गड़बड़ी से बेपरवाह रहा करते थे। सब कुछ होते हुए भी साधकों को सहायता देने में कभी कमी नहीं की। आपकी शारीरिक अवस्था कैसी ही रही, अधिकारी सर्वदा उचित उपदेश और सहायता लेते रहे। शरीर कमजोर रहता; पर नरवस (Nervous) शक्ति अपार थी। जरूरत पड़ने पर कठिन कार्य्य करने में आप कमी नहीं करते थे, चलने में तो अपने युवक और

बलिष्ठ सेवकों को भी पीछे छोड़ जाते। तप और नज़ाक़त का अलौकिक मेल था। तपीश्वर होने से बड़े परिश्रमी और नाड़ी नस शुद्ध और सूक्ष्म होने से बड़े योगेश्वर थे।

क्षमता

जहाँ शारीरिक तप अपार था वहाँ मन की सहन-शक्ति बहुत बढ़ी थी। सर्दी, गरमी सहन करने में युवक साधकों को शरमा देते। कठिन यात्रा करना, बरफ़ानी स्थान में रहना, शरीर को कड़े नियम में रखना, केवल मानसिक सहनशीलता और संयम के कारण ही, इतने सूक्ष्म शरीर के बावजूद भी, आपका मोद प्रमोद था।

साथ ही आपका हृदय भी वज्र के समान था। महान पुरुषों में अनेक विरोधी गुण एकत्र होते हैं। जहाँ करुणा स परिपूर्ण थे वहाँ निन्दा, विरोध, अथवा अपमान करनेवाले से ज़रा नहीं घबराते थे। निन्दक के चरण छूने में, उसकी हित-कामना में तो आपको बड़ा हर्ष होता था। ऐसी क्षमता से आप सत्याग्रह का बल दरशाते रहे कि जिससे विरोधी विरोध छोड़ भक्त बन जाते हैं।

आहार-स्वाद-ब्रह्मचर्य

स्वाद पर आपने बड़ा क़ाबू पाया था। महीनों मूंग की दाल और रोटी खाते जी नहीं ऊबता था, स्वाद बदलने की भी इच्छा न होती। चित्त की समता के कारण भोजन भी बड़ा सात्विक अथवा एक रस रहता। नमक से चित्त उचाट हुआ, तो बहुत समय तक बिना नमक ही भोजन होता रहता। मीठे से चित्त घबराया तो बिना मीठे के महीनों निर्वाह होता रहता। त्रिदोष नाशक और रेचक पदार्थ ही आपको प्रिय थे। षटरस पहुँचाने

के लिये त्रिफला और हड़ को प्रयोग में लाते रहते थे। साधकों को भी स्वाद जय करने के लिये अनेक कठिन साधन कराते थे। आपकी वृत्ति बड़ी सूक्ष्म थी, तेज़ गन्ध बुरी लगती थी, फिर चाहे वह फलों की हो व फूलों की।

परन्तु जिह्वा और नासिका इतनी क़ाबू में थी कि ज़रूरत अनुसार अथवा तजुरुबे के तौर पर गौमूत्र को दूध की तरह पान कर सकते थे। मट्टी का तेल पी लेना कठिन नहीं था, कस्ट्राईल से रोटी चुपड़ कर भी खा लेते। आप तो पदार्थों को इलाज और दवाई के तौर पर प्रयोग में लाते थे। शरीर और चित्त की उत्तम, सात्विक और सूक्ष्म अवस्था के कारण आपको अत्यन्त सात्विक पदार्थ ही रुचते थे। गाय का घी, दूध, बादाम रौग़न, अन्नों में गेहूँ का दल्या और चक्की का मोटा आटा, दालों में मूँग की दाल, फलों में अनार का रस और मुनक्के, सागों में बथुवा, चौलाई का साग, यह सब आपको पसन्द थे। परन्तु शरीर की ज़रूरत के अनुसार भिन्न पदार्थ भी प्रयोग में लाते थे। भारी, कफ़कारक पदार्थों को आप कभी नहीं चाहते थे, कहीं भोग वश खाने पड़ गये तो शरीर का भोग जानकर निर्वाह कर लेते थे।

जैसे स्वाद को आपने विचित्र रूप से वश किया हुआ था, वैसे ही ब्रह्मचर्य को भी आपने अलौकिक रीति से साधा हुआ था। बालक समान आप नर-नारियों के बीच में विचरते थे। शरीर की दुर्गन्ध आपको सदैव भासती रहती थी। स्त्री भाव ही मिट चुका था। शरीर को जैसे का तैसा बोध करते हुए आपका चित्त सर्व विकारों से मुक्त हो चुका था। इससे भ्रम भी पैदा हो जाता, भ्रम में अपमान भी होता, पर फिर भी आपकी वृत्ति अटल रूप से स्थिर रहती थी।

शुद्ध अन्न

पदार्थों के गुण-दोषों पर तो दृष्टि रहा ही करती थी, परन्तु शुद्ध कमाई का अन्न ही आपको पसन्द था। गड़बड़ कमाई के अन्न से आपका चित्त बिना जाने ही बड़ा घबराता था और सुस्त पड़ जाता था। इसी कारण शुद्ध व्यवहार का उपदेश सदा देते रहते थे। ऐसे भक्त से सेवा लेने में आप प्रसन्न होते जो शुद्ध भाव से दे, मोक्ष-साधन में कटिबद्ध हो, उत्साही हो और निष्काम भाव से सेवा करता हो।

रमते राम

संन्यास का भाव आप में पूर्ण रूप से भरा था। रमते राम की तरह बने बनाये मकान में ठहरने की इच्छा रहती थी। कहीं कुटी को ठीक भी किया तो Temporary (चलाऊ तौर से) काम के लिये ही। प्रायः जब उसकी अवस्था सुधरने लगती, तो आपका उधर आना ही बन्द हो जाता। इस प्रकार आप पूर्ण स्वतन्त्रता से विचरते रहे, किसी उलझन में अपने मनको अटकाना आपके लिये असम्भव था।

सरलता

आपके रहन-सहन में किसी प्रकार का आडम्बर नहीं रहता था। संन्यास के रिवाजों से भी आपका चित्त मुक्त था। कपड़े का रँगना तो दूर रहा, उसे बहुत सफ़ा रखना भी एक व्यसन समझते थे। आपने बनावट पर कभी ध्यान नहीं दिया। इससे बनावट के पुजारियों को बड़ा भ्रम हो जाता था। सर्दी होती तो बाल बढ़ने ही देते, गरमी अथवा खुजली होने लगती तो कटवा देते। खाने में कष्ट होता तो केवल मूछों के बाल कैंची से काट

लेते। सरलता की तो आप मूर्त्ती थे। बनावट और आडम्बर से आपको बड़ी घृणा थी, दूसरे को प्रभावित करने का विचार तो आपको आ ही नहीं सकता था। कपड़े फटने लगते, तो चीथड़े होने पर भी निर्वाह होता रहता, यही हाल जूते का रहता था। जरूरत पड़ने पर पाजामा पहन लेते। निर्वाह पर दृष्टि रहती, शरीर की जरूरत को देखते, दूसरे क्या कहेंगे, क्या समझेंगे, इसका विचार नहीं आता था।

तप

अपनी जरूरत के मुताबिक़ शरीर को दुबला, पतला तथा मोटा करते रहते, कभी सर्दी सहारने का यत्न करते, कभी गरमी का, कभी निराहार रखते, कभी खिलाते, तप में रखना ही आपको भाता था। शरीर को एक भाड़े के टट्टू की तरह काम में लाते थे।

तपो भूमि में रहना आपको पसन्द था। जाने में मोटर व रेल का आराम हो, रहने को बढ़िया मकान हो, खाने को सब प्रकार के फल और तरकारियाँ मिलें, ऐसी बातों की आपको कभी चिन्ता नहीं थी। शरीर के आराम और स्वाद की चिन्ता से मुक्त थे। चित्त की निर्मलता बनाये रखने में ही आनन्द मानते थे। कशमीर, शिमला, मसूरी, मरी, जैसे रजोगुणी स्थानों से आपका चित्त घबराता था। शहरों में रहना भी आपको कदापि पसन्द नहीं था, पर करुणावश अपने चित्त के स्वाभाव के प्रतिकूल ही आपको आना पड़ता था।

उत्तराखण्ड की भूमि, चित्रकूट की पहाड़ियाँ आपको विशेष पसन्द थीं। यहीं शुद्ध धारणा ही आपको कैलाश-यात्रा में ले गई कि जहाँ आपने अपने पंचभौतिक शरीर को सर्वदा के लिये शान्त कर दिया।

शारीरिक कष्ट में आप डाक्टरों, वैद्यों से बहुत कम सहारा लेते थे। हठयोग की क्रियाओं और पथ्य भोजन और साधारण औषधियों से ही काम चलाया करते थे। ऐसी ही स्वतन्त्रता का उपदेश सब सेवकों को दिया करते थे।

नित्य नियम

प्रातःकाल का समय तो ध्यान-पूजा में निवाहते थे, फिर अधिकारियों से मिलते; ३ बजे शाम सतसंग लगता। मैदान में रहते तो नित्य प्रति हवन करते। घूमने का आपको बड़ा अभ्यास था। चित्त न होता, तो महीनों तक मकान के अन्दर ही निर्वाह कर लेते, कभी चित्त न घबराता। सब प्रकार के बन्धनों और व्यसनों से सर्वदा मुक्त रहते थे।

मित्र-भाव

आप सर्वदा मित्र-भाव से ही सबसे वर्ताव करते, शिष्यों को कभी महसूस ही नहीं होता कि आप उनसे किसी प्रकार की सेवा अथवा नम्रता की चाह रखते हैं। नये जिज्ञासु और पुराने परिचित के मिलने पर आपके हाथ जुड़े रहते थे तथा मस्तक झुका रहता था। संन्यासी भक्तों के चरण छूने में आपको आनन्द आता था।

करुणा

हृदय आपका कोमल था। दूसरे के कष्ट को देखकर अधीर हो उठते थे। दुखी प्राणी को उपदेश देकर, समझा-बुझा कर, साधन सम्पन्न कराकर, हाथ पकड़ कर, घसीट कर, और उठाकर भी जैसे सूझता उसे परले पार पहुँचाने का यत्न करते। सेवक की त्रुटियों को भूल कर उसके उत्साह को बढ़ाने का उद्योग करते। यह जानते हुए भी कि सेवक अधिकारी नहीं है, उसे

कृपावश सहायता देते रहते थे। आप सचमुच करुणा के सागर दया के भण्डार और कृपा के स्रोत थे।

उत्साही भक्त आपको पसन्द थे। आलसी पुरुष पर तरस खाते; पर डट जाने वाले को देखकर बड़े प्रसन्न होते थे। आप प्रायः कहा करते थेः—"माया को मर्दन करना वीरों का काम है, कायर कुछ नहीं कर सकते।"

सूक्ष्म वृत्ति

सत्य के प्रेमी, छल-कपट, और कूट नीती से बड़ी घृणा थी। चित्त इतना सूक्ष्म कि मनुष्यों को देख, उनका वर्णन सुन, स्थानों का नाम जान कर ही आपको उनके वास्तविक गुणों के अनुकूल ही फुरना होती थी। चित्त में उत्साह, सुस्ती, घृणा, और प्रसन्नता जैसा भाव उठता वैसा ही वर्ताव करते थे। आपका astral body (सूक्ष्म शरीर) अत्यन्त नर्मल और मार्जित था। आपकी बुद्धि बड़ी सूक्ष्म थी। शब्द-जाल में फँसना, लच्छेदार वाक्यों में उलझना आपके लिये असम्भव था। स्पष्ट बात कहना प्रिय था। स्पष्ट वक्ता आपको हर्षित करता था। बात की तह तक पहुँचने की इच्छा और प्रयत्न करते थे।

ग्रहस्थ होते हुये लोभ पर पूरा जय था, पीछे भी अधिकारियों को भक्तों से सहायता दिलाते रहे और यथा अवसर अपने को कष्ट में डाल दूसरे की सहायता करने में अपनी भिक्षा को दे देते।

संस्कारों को लौट-पौट करना आपको अच्छा लगता था, किसी प्रकार के रीति-रिवाज का विचार नहीं करते थे, धर्मानुकूल जैसा चित्त में फुरता वैसा करते।

परमहंस

सब प्रकार से आप परमहंस वृत्ति से विचरते रहे। जैसे व्यवहार और आचार में पूर्ण स्वतन्त्र थे, वैसे ही विचारों में भी थे। सनातन धर्मानुसार तीर्थ-यात्रा और साधु-सेवा में अग्रसर, संन्यासी होते हुए भी नित्य प्रति हवन करते थे। कर्म-अकर्म के सम्बन्ध में मीमांसकों की तरह वेद-शास्त्र के अन्धे पुजारी, भक्तों की तरह ईश्वर-परायण, सन्तों समान सब वर्णों से सम व्यवहार करते थे। अँग्रेजी विद्वान होते हुए सब बातों में छान-बीन कर सत्यासत्य की जाँच करने का यत्न सदैव करते रहते थे। नर-नारियों के समान हितैषी थे। ध्यान की विधि बताने और योग-साधन कराने में पूरे दक्ष। किसीको जाप कराया, तो किसी को मूर्त्ति पूजा से साधन में लगाया। किसी को व्रत कराते, तो किसी को हठयोग की शारीरिक क्रियायें कराते थे। एक को प्राणायाम की विधि बताई, तो दूसरे को नाम का सहारा दिया। यदि एक को ध्यान बताया, तो दूसरे को विचार मार्ग से चलाते थे। सब प्रकार के साधनों को बताते थे। अधिकार के अनुसार किसीको एक रास्ता से चलाते और किसी को दूसरे से। किसी विषेश पन्थ या मत का प्रचार नहीं करते थे; परन्तु विचार यही रहता था कि प्राणी को उसकी अवस्थानुसार कल्याण के मार्ग पर डाल देना चाहिये। इसी से आप कर्मिष्ठ, विचार-शीलों और भक्ति-भाव से पूर्ण सबको समान हितेच्छु प्रतीत होते थे। योग के साधन और ज्ञान के पिपासु दोनों को आपसे पूर्ण सहायता मिलती थी।

आपकी कार्य्य कुशलता, योग-विषयक दक्षता, पुरुषार्थ-प्रियता, स्त्री-जाति के उद्धार की इच्छा और सब योगों के अनुष्ठान

को देखकर आनन्द-कन्द योगीराज भगवान कृष्ण की याद आती है। आपका वृन्द्रावन में रहना, जमुना-तट पर विचरना, आपका सखा-भाव और मित्रवत दृष्टी बाल-गोपाल नन्दलाल की मोहनी मूर्त्ती को आँखों के सामने ला खड़ी कर देती है।

आपकी वेद-शास्त्र में अगाध श्रद्धा, जैमिनी मुनी की याद ताजह करती है। तीर्थ-यात्रा में रुचि, साधु-सेवा में प्रसन्नता, राम और कृष्ण में अनुराग, प्रभु में अनन्य भक्ति को देख सन्त कबीर, सूरदास, तुकाराम, तुलसीदास, नानक और महाप्रभु चैतन्य ही सामने आ जाते हैं।

आपके मुख से अहिंसा का निरूपण सुन, आपकी मित्रवत दृष्टि को देख, दुःख निवृत्ति का उपदेश सुन, जिज्ञासुओं को बनों अथवा पहाड़ों में साथ ले निर्वाण उपदेश देना माहात्मा बुद्ध और भिक्षुओं का चित्र सामने खड़ा कर देता है।

आपका चित्रकूट में घूमना और साधुओं के दर्शनों को जाना मर्यादा पुरुषोत्तम राम की स्मृति को जगाता है। आप के तर्क और विवेचना को ध्यान में लाते ही सुक्रात और महामुनी गौतम ही सूझते हैं। संसार की असारता और क्षणभंगुरता का निरूपण आपको आदि मुनी कपिल के साथ जा ठहरता है। कल्पना-जाल को तोड़ने का उपदेश देते समय आप शंकराचार्य्य समान गूढ़ विचारों और तर्क की अलौकिक रचना करते थे।

तप और तितिक्षा में पुरातन ऋषियों के समान थे, वेद-शास्त्र दर्शन, इतिहास और पुराणों की साक्षी देते हुए आप वेद-व्यास ही भासते थे। योग के ऊँच-नीच समझाने में और समाधि के गूढ़ रहस्य और साधन सुझाने में भगवान पातंजल ही जँचते थे। सरलता में श्री रामकृष्ण परमहंस ही प्रतीत होते थे।

आप सरलता की मूर्त्ती, नम्रता के अवतार, बात के धनी,

स्वतंत्रता के अनन्य भक्त, प्रभु-परायण, दृढ़ प्रतिज्ञ, तपस्वियों में तपीश्वर, योग में प्रवीण, कार्य्य में कुशल, ज्ञान के भण्डार, समझाने और शिक्षा देने में दक्ष, परिणाम में तटस्थ, सब प्रकार से गुणों की खान थे।

सन्तों की महिमा अपार है, जब वेद भी सन्त की महिमा नहीं जान सकते तो फिर क्या? नानकदेव ने ऐसे मुक्त पुरुष का अपने पदों में इस प्रकार वर्णन किया है :—

जो नर दुःख में दुःख नहीं माने।
सुख स्नेह अरु भय नहीं जाके, कञ्चन माटी माने ॥ १ ॥
नहिं निन्दा नहिं अस्तुति जाके लोभ मोह अभिमाना।
हर्ष शोक से रहे न्यारा, नाँहि मान अपमाना ॥ २ ॥
आशा, मनशा, सकल त्यागे, जग से रहे निराशा।
काम क्रोध जेहि परसे नाहीं, तें घट ब्रह्म निवासा ॥ ३ ॥

ऐसे महापुरुषों में ही ब्रह्म का निवास है। यही चिन्ह जीवन मुक्त में पाये जाते हैं।

लोभ मोह माया ममता पुनि, अरु विषयन की सेवा।
हर्ष शोक परसे जेहि नाहीं, सो मूरत है देवा ॥ १ ॥
स्वर्ग नरक अमृत विष, ये सब, त्यों कञ्चन अरु पैसा।
अस्तुति निन्दा यह सम जाके, लोभ मोह पुनि तैसा ॥ २ ॥
दुःख सुख यह बाँधे जाहि नाहीं, तैं तुम जानो ज्ञानी।
नानक मुक्त ताहि तुम मानो, यह विधि को जो प्राणी ॥ ३ ॥

जागृति

योगीराज सन्त सियारामजी महाराज ने पैंतीस वर्ष की अल्प आयु में उस परम अवस्था को प्राप्त किया था कि जिसका वर्णन हम श्रीमद्भगवद्गीता अथवा उपनिषदों में पाते हैं।

तत्पश्चात आप पूरे २० वर्ष तक उस आत्मप्रसाद को बड़े परिश्रम और मान-रहित भाव से बाँटने का कार्य्य करते रहे। बिना भेद-भाव के अनेक नर और नारी, युवा और वृद्ध आपकी निगरानी में रह कर मोक्ष-साधन में लगे। अपने-अपने संस्कारों के अनुसार थोड़ी-बहुत उन्नति कर पाये। योग्य साधकों ने आत्मज्ञान के तत्व को समझा, उत्तम और श्रेष्ठ अथवा श्रद्धा सम्पन्न भक्तों के हृदयों में आत्म ज्योति जग गई, परम पद के प्रकाश की झलक ने मनको सर्वदा के लिये माया-मोह से हटा कर आत्मा में अर्पण कर दिया। भगवान की अनन्य भक्ति ने सरल और स्वच्छ हृदयों को पूर्ण शान्ति से भर दिया। निष्काम कर्म के रहस्य को सेवक सेवा में रहकर समझने लगे।

बीस वर्ष तक प्रभु प्रेरणा के अनुसार आप जिज्ञासुओं के सन्देह चूर्ण करते रहे, मुमुक्षुओं को मार्ग दिखाया, भक्तों को भगवान की भक्ति का रहस्य समझाया, कर्मचारियों को मोक्ष-दायक कर्म सिखाया और संसार-दुःख से पीड़ित प्राणियों को परम आनन्द का अनुभव कराया। अन्त में परम निर्वाण का अद्भुत दृश्य दिखाकर शरीर को सर्वदा के लिये शान्त कर दिया।

निर्वाण

ऐसे परम कृपालु सद्गुरु के वियोग को भक्तों ने बड़े वेदना से सुना। 'अनाथ हो गये, अवसर हाथ से निकल गया, अब क्या होगा, कौन सहारा देगा' ऐसे ही विचार सबके हृदय में उठते थे। सन्तोष यही था कि महाराज ने बड़ी उदारता से बिना मुट्ठी बन्द किये सब रहस्य समझा दिया था, मार्ग भली-भाँति दिखा दिया था, सब ऊँच-नीच सुझा दिया था, अनेकों साधनों का अनुष्ठान सिखा दिया था, अन्त में, भगवान कृष्ण

का ऊधव को आदेश 'पुरुपार्थ करो' और महात्मा बुद्ध का आनन्द को आदेश 'अपना सहारा आप बनो' की याद दिलाते हुए आपने भी यही कहा था कि 'जिसको करना होगा, वह अब जान भिड़ा कर पुरुपार्थ करेगा।' इस अन्तिम नाद की गूँज सबके कानों में समा गई और महान त्यागी योगीराज ने जिस शान्ति से काया को सर्वदा के लिये शांत कर दिया था, उसीकी स्मृति ही रास्ता दिखाने का कार्य्य कर रही है। परमात्मा की कृपा हो, यह नाद सब मुमुक्षुओं को सुनाई दे, यही आदर्श उनके हृदयों में घर कर जाये।

शांति ! शांति !! शांति !!!

पद्य

यह ग़जलियात और अशआर श्रीयुत काशीनाथजी फ़िदा ने जीवन-चरित्र के लिये लिखे है। गुरुदेव की आज्ञा के अनुसार आप वहुत दिनों से शेर लिखना तर्क कर चुके हैं; परन्तु महाराज के शरीर-शान्ती की सूचना सुनने पर और इस संग्रह के छपने की सूचना पाकर आपका हृदय चुप नहीं रह सका।

धन्यवाद

ऐ गुरुदेव महाराज हमारे ऊपर।
आपका वारे-कर्म वह है झुका जाता है सर॥
दामे-लज्ज़ात में बेतरह गिरफ़्तार थे हम।
दस्तगीर आता नज़र था नहीं, नाचार थे हम॥
किरमें-नापाक थे हम शफ़ीताये वोलो वराज़।
इस ग़लाज़त में अफ़ूनत में कटी उमरे-दराज़॥
ज़न ज़मीं और ज़र ऐसे थे दरिन्दे खूंख़ार।
खाये जाते थे नहीं जीने के थे कुछ आसार॥
आपके चरणों को रज से हुए अब हज़ूर।
त्याग, वैराग्य का कुछ आने लगा अक्लो शऊर॥
सच है यह बात कि माँ, वाप तो देते हैं जन्म।
गर्भ की तङ्गी के होते हैं जहाँ ज़ोरो सितम॥
तीरा-ऐ-तारीक जगह जिसमें है रहना नौ माह।
और ग़िज़ा खून की इस जेल में है शामो सुबह॥
पीरे कामिल में है ताक़त कि छुड़ा देता है।
खदशा आइन्दा तनासख़ का मिटा देता है॥

✿ ✿ ✿ ✿

ऐ पतित पावन अधम उद्धारक, ऐ कल्याण रूप।
ऐ महायोगेश्वर, ऐ तेज और तप में अनूप॥
दीनबन्धु, कृपासिन्धु और रक्षक दीनों के।
निर्बलों के शक्ति-दाता, ऐ सहायक दीनों के॥
वासना के साँप ने जिनको डसा उनके लिये।
तू ही वह तिरयाक था जिससे मनुष्य मर कर जिये॥
अजोशोहरत के समन्दर में जो थे डूबे हुए।
जब उन्होंने ऐ महा त्यागी, क़दम तेरे छुए॥
आज हैं गुम नाम, बेड़ा पार उनका हो गया।
दाग़ था लोकेष्णा का मन पै बिलकुल धो गया॥
याने वह चुप चाप बैठे कुञ्ज तिन्हाई में हैं।
लुत्फ़ कुछ उनको नहीं तौकीरे-अफ़ज़ाई में हैं॥
कुछ दिनों में साहिले-उम्मीद आयेगा नजर।
उनकी किश्ती का रहा तू नाखुदा यूँ ही अगर॥

शोक

चूँकि था उद्धार जीवों का तुझे मद्दे-नजर।
इसलिये इन्सानी चोला में हुआ तू जलवागर॥
योग-विद्या करती थी तेरी परिस्तश हर घड़ी।
और समाधि चरणों में श्रद्धा से रहती थी पड़ी॥
चाह थी हर वक़्त तेरे दर्शनों की त्याग को।
आरज़ूए फ़ख़रे-शागिर्दी रही वैराग्य को॥
अब फ़कीरी किस को दिखलायेगी अपना रंग रूप।
हाँ सदा को लेके छुप जायेगी अपना रंग रूप॥
किस पे दर्वेशी करेगी नाज़ अब बतलाइये।
कर सकेगी किसको यह हम राज़ अब फ़रमाइये

शान्ति, सन्तोष करते थे क़दमबोसी तेरी।
नाज़ बरदारे-ख़िरदमन्दी थी मदहोशी तेरी॥
तेरे ग़म में यम-नियम हैं अश्क बारो बेकरार।
कुछ तसल्ली दे उन्हें जिनका रहा तू जाँ निसार॥
हम ग़रीबों को ख़बर अब लेने वाला कौन है।
यास के लमहूँ में ढारस देने वाला कौन है॥
अब तसव्वुफ़ किसको जतलायेगा रंजे-मुख़तफ़ी।
क्यों किसीको अपनी समझायेगा रंजे-मुख़तफ़ी॥
अपने नुक़ते किस तरह ज़ाहिर करेगी मारफ़त।
बस जुदाई में तेरी आहें भरेगी मारफ़त॥
मोक्ष थी तेरे लिये हर वक़्त महवे जुस्तजू।
ताकि तेरा ख़ैरे-मकदम करके होवे सुर्ख़रू॥
काग़ज़ी जो ज्ञान है जड़ है किताबी है सनद।
तू हमारे वास्ते था एक चेतन्य उपनिषद॥
यूँ तो अब भी ज़ाहिदो आबिद हैं मशहूरे-जहाँ।
पर तेरे दीदार को तरसेगी चश्मे-आसमाँ॥
वह तेरा निस्वार्थ क्रियायें कराना याद है।
वह तआब्जुब खेज़ तदबीरें बताना याद है॥
वह तेरा परहेज़गारी का अनोखा क़ायदा।
जिसमें रुहानी मरीज़ों का था बेहद फ़ायदा॥
किससे हम हासिल करेंगे ऐ तबीबे-लाजवाब।
चाहिये हमको पै सेहत दवाये इजलनाब॥
ख़ुद पसन्दी, ख़ुद परस्ती से रहा बिलकुल बरी।
छू सकी तुझको न हरगिज़ शोहरतो नामोवरी॥
आफ़ताबे करके लज़्ज़ाते-जहाने-चन्द रोज़।
क्यों छुपाया तूने है ऐ आसमाने-चन्द रोज़॥

योगीराज श्री सियाराम स्वामी

तू ने हमसे छीन ली ऋषियों की थी जो यादगार।
दूसरे लोकों का है मंजूर क्या तुझको सुधार॥

तारीख

उजड़ा है आज गुलशने-उम्मीदे-मारफ़त।
माली कहाँ वह जिन्दाए-जावेदे-मारफ़त॥
समझेंगे किससे मानिए-तकलीदे-मारफ़त।
बस कौन करने आयेगा ताक़ीदे-मारफ़त॥
तरज़े-अमल हमारा हो ताईदे-मारफ़त।
टपके न कौल ओ फ़ेल से तरदीदे-मारफ़त॥
अपनी किताबे-ज़ीस्त का अंजाम हो निजात।
आग़ाज़ हर तरह से हो तमहीदे-मारफ़त॥
ईदे-फ़क़ीर तूने मनाई है ऐ फ़क़ीरी।
अब तो नसीब हमको भी हो ईदे-मारफ़त॥
तू ने किये थे उकदा तसव्वफ़ के हल सभी।
ऐ साहिबे-लियाक़ते-तनकीदे-मारफ़त॥
वासदे अलम यह रो के हकीकत है कह रही।
अब हाय-हाय छुप गया ख़ुरशैदे-मारफ़त॥

❀ ❀ ❀ ❀

शम दम के नौ निहाल न कट जायें किस तरह।
इनके सिरों पे आह चली है ख़िज़ाँ की सैफ़॥
हम तिष्णालब भटकते हैं भक्ति के जाम को।
वह बज़्म है न साक़ी, न सोहबा में है वह कैफ़॥
तारीख़ सिर को काट के अज्ञान के लिखो।
उपरामता का बाग़ गया सूख हैफ़ हैफ़॥

योगीराज श्री स्वामी सियारामजी महाराज

की

जन्म कुण्डली
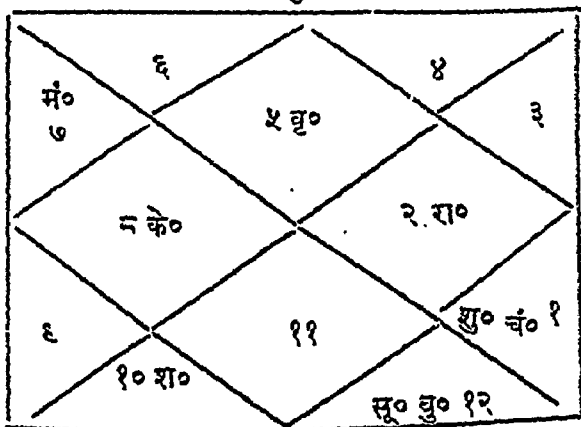
तृतीया, चन्द्रवार, शुक्ल पक्ष, चैत्रमास, १९३० सम्वत
समय २८ घड़ी, ३६ पल
३१ मार्च, १८७३, ४ बजकर, २६ मिनट, सायंकाल

निर्वाण कुण्डली
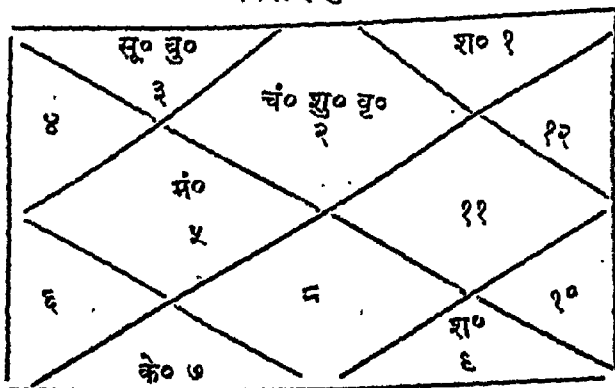
द्वादशी, कृष्ण पक्ष, आसाढ़ मास १८८६
४, जुलाई, बृहस्पत, ३॥ बजे, प्रातःकाल
सन् १६२६ ई०

नोटः—ज्योतिश शास्त्र के पण्डितों के अध्ययन के लिये यह दोनों कुण्डली तथा ग्रहों का प्रभाव संक्षेप से दिया जाता है। वे जीवन-चरित्र को पढ़कर शास्त्र के तत्व को अधिक समझने का यत्न करेंगे।

जन्म-कुण्डली

सारः—ग्रहों की स्थिति देखकर साधारण रूप से ऐसा दिखलाई देता है कि ग्रह-बल सांसारिक विषय में साधारण परंतु मानसिक और आध्यात्मिक विषय में बहुत ही अनुकूल हैं।

ग्रहों के विशेष योगः—धर्म-स्थान में चन्द्र, शुक्र योग है। बृहस्पति की दृष्टि पंचम पर और नवम पर पूर्ण है। चन्द्र, शुक्र, बृहस्पति का त्रिकोण योग होता है। नवम का स्वामी मंगल अपने स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है। राहु, केतु, शनि स्वस्थान में बलवान हैं। सिंह लग्न में बृहस्पति है, और उनके स्थान (अष्टम) में सूर्य्य हैं। व्ययेश भाग्य स्थान में हैं।

प्रभावः—मानसिक उन्नति, उच्च आदर्श, आनन्द प्राप्ति स्वतन्त्र विचार, उदारता, योग-अभ्यास में रुचि, प्राक्रम, धृति, वैराग्य और दूसरों को प्रभावित करने वाला चरित्र आदि गुणों की ओर निर्देश करते हैं।

निर्वाण-कुण्डली

विशेषताः—लग्न में उच्च का चन्द्र व स्वग्रह का शुक्र बृहस्पति के साथ संयोग करते हैं। राहु, केतु, शनि बलहीन द्वादश, षष्ट और अष्टम में हैं। मंगल, शत्रु ग्रह में चतुर्थ में होकर लग्न को देखता है। सूर्य्य की पूर्ण दृष्टि अष्टम स्थान में शनि पर है।

प्रभावः—पित्त के आधिक्य से दस्त, कै आदि उदर-रोग और वायु का कुपित होना दिखलाई देता है। मन की स्थिति शान्त, आनन्दमय और चित्त का ध्येय में मग्न होना और मोक्ष-दायक गति मालूम पड़ती है। बृहस्पति, चन्द्र, शुक्र का योग ही विशेष है और पुण्य सूचक है।

स्वामी जी की हस्त-लिपि

ॐ

मेरे में तो कोई शक्ति नहीं है - प्रभु से प्रार्थना करना चाहिये
वे जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं - अपने मन को ऐसा बनाना
चाहिये कि जिस तरह जिस हालत में प्रभु रक्खें उसमें
संतोष करो तभी वे भी प्रसन्न होते हैं।

सियाराम

पूर्वार्द्ध

श्री मत्परमहंस योगीराज श्रीस्वामी सियारामजी महाराज

का

जीवन-चरित्र
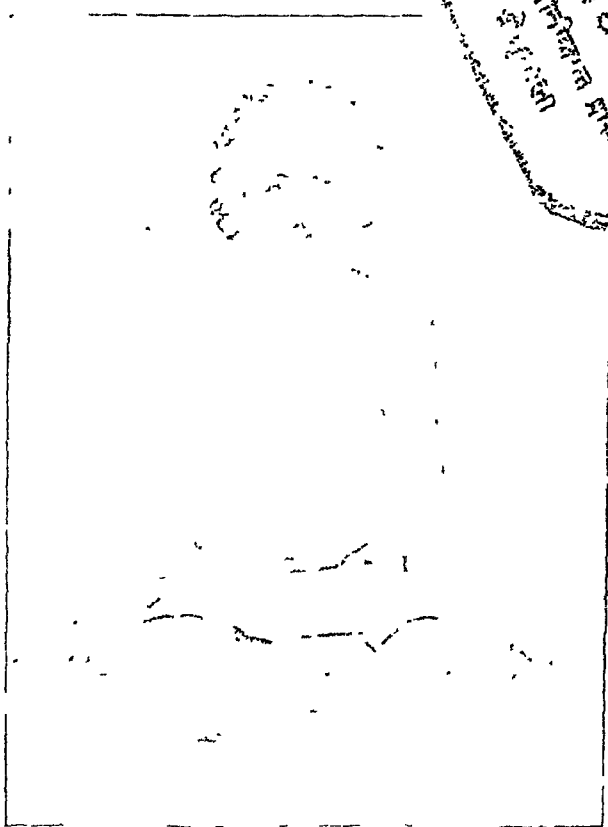
योगीराज श्री स्वामी सियाराम जी महाराज.

शुक्ला प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ.

१

शिक्षा-काण्ड

पहला प्रकरण (जन्म)

बुन्देलखण्ड की भूमि बड़ी पवित्र है। यहाँ के लोग बड़े परिश्रमी हैं। इसी देश की पहाड़ियों में श्रीरामचन्द्रजी ने सीता तथा लक्ष्मणजी के साथ बनवास के कुछ दिन बिताए थे। यहाँ पर अनुसूयाजी ने अपना तपोमय जीवन व्यतीत किया था। इसी जगह वाल्मीकि मुनि डाकू से ऋषि बने थे। चित्रकूट का नाम कौन हिन्दू नहीं जानता? जैसे आदि कवि वाल्मीकि ने संस्कृतज्ञ पण्डितों के बोधार्थ इस भूमि के यश को गाया है, वैसे ही श्री गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरित मानस रूपी अमृत द्वारा इस भूमि को सर्व साधारण के लिये विख्यात तथा अमर कर दिया है। बुन्देलखण्ड के मामूली पढ़े लिखे लोग भी रामायण की चौपाइयों और दोहों को हर समय गाते रहते हैं। स्त्रियाँ प्रत्येक मङ्गल कार्य्य में सीता और राम के चरित्र गाना आवश्यक समझती हैं। जैसे पंच नद के उत्तरीय प्रदेश में ग्रन्थ साहिब के पदों का पाठ अनेक हिन्दू तथा सिक्खों के

घरानों में होता है, वैसे ही इस तरफ़ रामायण भी छोटे, बड़े, कुलीन ब्राह्मण तथा साधारण परिश्रमी शूद्र, सब के हृदय में गूँजती है। पश्चिमी सभ्यता के दिल-दादा जिन लोगों को असभ्य और मूर्ख समझते हैं और उच्चवर्गीय अभिमानी लोग जिनको घृणा की दृष्टि से देखते हैं, उन्हीं लोगों को जब हम रामायण का पवित्र पाठ करते और स्वर और भक्ति सहित सियाराम के पावन चरित्र को गाते देखते हैं, तो कुछ समय के लिये हमारा हृदय केवल श्रद्धा से जगमगा उठता है, और हम किसी दूसरी दुनिया में पहुँच जाते हैं। राम तथा कृष्ण हमारे जीवन-मार्ग के चाँद और सूरज हैं। जन-साधारण के लिए शास्त्रों की बारीकियों और उपनिषदों के गूढ़ रहस्यों को समझना आसान नहीं। वेद-पाठ उनके लिये ऐसा मार्ग है, जिसमें वह एक क़दम भी नहीं चल सकते। इतिहास और पुराण हिन्दू धर्म के प्राण हैं। रामायण, महाभारत और श्रीमद् भगवद्गीता के सरल सीधे श्लोक पण्डितों और ज्ञानियों को भी मुग्ध कर लेते हैं। वैसे तो राम, कृष्ण आदि महापुरुषों का यश सारे भारतवर्ष में फैला हुआ है, पर संयुक्त प्रान्त तथा बुन्देलखण्ड में तो प्रत्येक हिन्दू के हृदय में इन्हीं का राज्य है। जिस प्रकार वृन्दावन, मथुरा और सारे ब्रज देश में कृष्ण के पावन चरित्र पर सब नर-नारियाँ मुग्ध हैं, उसी प्रकार अवध, चित्रकूट और सारे बुन्देलखण्ड के निवासी राम तथा सीता के अमृतमय जीवन पर लट्टू हैं। रामायण सुनकर उनकी आँखें सजल हो जाती हैं। प्रेम और बलिदान के जितने प्रकाश-पूर्ण दृष्टान्त इस पुस्तक में पाये जाते हैं उतने अन्य स्थान में मिलना असम्भव है। पारिवारिक जीवन को मधुर तथा रसमय बनाने के लिये रामायण से बढ़कर उपयोगी ग्रन्थ हमारे साहित्य में नहीं मिलता। जैसे गीता

और महाभारत राजनीतिज्ञों के लिये नीति धर्म का और मुमुक्षुओं के लिये मोक्ष पद का निरूपण करते हैं तथा प्रभु के भक्तों को पराभक्ति का अमृत पान कराते हैं, वैसे ही परस्पर साधारण जीवन में प्रेम की धारा बहाने के लिये, मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की कथा कितनी मोहिनी और उपयोगी है यह कहना आसान नहीं। राम जैसा पुत्र कौन नहीं चाहता। स्त्रियाँ राम जैसे वीर पति की कामना करती हैं, राम और भरत के भ्रातृ-प्रेम की कहानी सुनकर मनुष्य मुग्ध हो जाते हैं, प्रेम और त्याग का ऐसा अनुपम मेल आपको दूसरी जगह कम मिलेगा। लक्ष्मण के तप तथा सेवा की प्रशंसा कौन नहीं करता। सीता तो भारतवर्ष की स्त्रियों की आदर्श देवी है। कौन माता है, जो यह न चाहती हो कि उसकी बेटी सीता जैसी सती-साध्वी बने ? कौन पुरुष है जो यह न चाहता हो कि उसे सीता जैसी पतिव्रता नारी मिले। ऐसे सौभाग्य के लिये तो लोग शायद सारे जीवन का वनवास लेने को भी तैयार हो जाएँ। कैकेयी इस पुष्प-वाटिका का काँटा है, मगर वह भी अपने सुत के प्रेम में ही अन्धी होकर कुल का अनिष्ट कराती है। कुलक्षणी मन्थरा का भी अपनी रानी पर अगाध प्रेम है। हनुमान जैसा सेवक होना बड़ी बात है। हमारे सेवक-दल हनुमानजी की छत्र-छाया के नीचे खड़े होने में अपना अहो भाग्य समझते हैं। सुग्रीव की मित्रता, अङ्गद की स्वामि-भक्ति और विभीषण की धर्म-परायणता सबके हृदय को मुग्ध करने वाली है। ऐसे रामजी के शुद्ध तथा पावन चरित्र की गाथा जिस भूमि में गाई जाती है, उसी बुन्देलखण्ड के एक छोटे से ग्राम में महापुरुष सियारामजी का जन्म हुआ।

बाँदा बुन्देलखण्ड का एक विख्यात जिला है। बाँदे से पच्चीस मील पर 'बबेरू' नाम की तहसील है ' इससे पाँच मील दक्षिण की ओर 'साथी' एक छोटा सा गाँव है। एक दो मकानों

के सिवाय यहाँ सब मकान कच्चे हैं। इस ग्राम में प्रायः कुर्मी राजपूत रहते हैं। यहीं के एक क्षत्रिय कूर्मि राजपूत कुल में महात्मा सियाराम जी का जन्म हुआ। आपके पिता का नाम अन्शुप्रसाद था और माता का मोहिनी। पिता अन्शु बात के पक्के तथा स्वभाव के हठीले थे, परन्तु मोहिनी स्वभाव की भोली तथा हृदय की सरल थी। मोहिनी का चित्त उदार था, जब कभी कोई पड़ोसिन उससे सहायता माँगती तो मोहिनी कभी इन्कार न करती। परन्तु इतनी अमीर न थी कि दान ही करती चली जाती। प्रायः लौटा देने का वचन देकर भी ले जाने वाली जब उस अन्न आदि को वापिस न करती, तो मोहिनी का हृदय दुखी हो जाता; फिर भी दुखिया पड़ोसिनों को कोरा जवाब देने का उसमें साहस न था, कोई कठोर हृदय ही ऐसा कर सकता है। ऐसी करुणा तथा दयालुता की मूर्ति माता मोहिनी की पवित्र गोद में संवत् १९३०, चैत्र मास, शुक्ल पक्ष तृतीया, चंद्रवार के दिन दोपहर के पश्चात् तीन बजे हमारे चरित्र-नायक सियारामजी ने जन्म लिया।

वसन्त ऋतु उत्साह तथा स्फूर्ति का ऋतु है। प्रेमी और कवि तो इस सुहावने समय पर मुग्ध होते ही हैं, पर परिश्रमी और उत्साही साधक तथा ज्ञानी भी इस शुभ अवसर से पूरा लाभ उठाते हैं। वसन्त का उत्साह महात्माजी के प्रत्येक कार्य्य में दिखलाई देता था। पिता अंशु की तरह सियारामजी जैसे हठीले तथा दृढ़व्रती थे, वैसे ही माता की सरलता तथा मृदुता से परिपूर्ण, करुणा तो उनके रोम-रोम में बस गई थी। उनके चरित्र को पढ़ने से यह सब भली भाँति प्रगट हो जाता है।

सियारामजी से पहले उनके बड़े भाई जानकीदास का जन्म हो चुका था। जानकीदास के दो पुत्र हुए। छोटे का नाम राम-

धनी है जिन पर चाचा की बड़ी कृपा थी और जो उनमें बड़ी भक्ति रखते हैं। भाई भी अभी तक उनसे बड़ा स्नेह तथा आदर करते थे। उनकी पुण्य स्मृति सब सम्बन्धियों के हृदयों को गद्-गद् कर देती है। घर का काम जिमींदारी है। खेती से साधारण गृहस्थ का कार्य्य बड़ी सरलता से चला जाता है। अंशुजी भी इसी प्रकार अपने गाँव के दूसरे कुर्मि लोगों की तरह खेती ही से अपना जीवन निर्वाह किया करते थे।

प्रभु की लीला विचित्र है। जो धनी साहूकार हैं तथा धन-वैभव से सम्पन्न जीवन व्यतीत करते हैं, वे अपने आपको ईश्वर की कृपा का विशेष पात्र समझते हैं। दूसरे भी प्रायः उनको इसी दृष्टि से देखते हैं। परन्तु अनेक वीर तथा सन्त लोग उन माताओं की गोदों को पवित्र करते हैं जिनको लोग ईश्वर की कृपा से वञ्चित समझते हैं। जहाँ जानकीदास तथा सियाराम का जन्म हो वहाँ प्रभु की भक्ति की कैसे कमी हो सकती है। यह नाम ही दर्शाते हैं कि इस खण्ड के लोगों के हृदयों में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी तथा सती साध्वी सीता माता की भक्ति समाई हुई है।

अन्शुजी से लोग डरते थे। निस्सन्देह उनकी जिमींदारी बड़ी न थी, पर लोग उनका दबदबा मानते थे। सच्चे राजपूत की तरह वे अपने वचन के पक्के थे; परन्तु उनकी माता का स्वभाव ब्राह्मणों का सा था। उनके पिता क्रोधी तथा दृढ़ प्रतिज्ञ थे; परन्तु मोहिनी सरल तथा सहृदय थी। सियाराम जी ने अपने चरित्र में दोनों से गुण ग्रहण कर लिये। गुणग्राहक वृत्ति का उपदेश वे सदैव दिया करते थे। जन्म से ही यह वृत्ति उनमें स्वाभाविक थी। माता की सरलता तथा पिता की दृढ़ता, दोनों को उन्होंने अपनाया हुआ था। उनकी उदारता, उनका करुणा-

मय हृदय, उनका सरल स्वभाव इन सब का निमित्त उनकी माता थी। यदि पिता से उनको दृढ़ प्रतिज्ञता न प्राप्त होती तो यह सब गुण सार्थक न हो सकते, और सरलता विद्या से मिल कर विवेक का रूप न धारण कर सकती। दृढ़ता के सहारे ही आप ने सत्य और असत्य, सार और असार की विवेचनात्मक शक्ति प्राप्त कर पाई थी। हृदय की पवित्र तथा अतिप्रिय भावनायें माता ही प्रदान करती हैं। पिता अपनी इच्छा-शक्ति का बल देता है कि जिसके बिना कार्य में सफलता होना असम्भव है।

दूसरा प्रकरण (बाल्य काल)

चित्रकूट प्रसिद्ध तीर्थ है। आस पास के लोग प्रायः एकादशी, अमावस्या तथा पूर्णमासी पर चित्रकूट की आकर्षक पहाड़ियों के दर्शन और श्री सीता और रामचन्द्रजी महाराज के पावन चरित्रों की पुण्य स्मृति से हृदयों को पवित्र करने के लिये आया करते हैं। वैसे तो भारतवर्ष की सभी हिन्दू जनता यहाँ तीर्थ यात्रा को आती है, पर आस-पास के रहने वाले तो यहाँ अनेक बार आते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अंशुजी भी इस यात्रा पर कई बार आये। पिता तथा भाई के कन्धे पर सवार होकर सियारामजी ने भी इस पवित्र भूमि की अनेक बार परिक्रमा की। इसीसे ही उनके हृदय में साधु-संगति तथा तीर्थ-यात्रा और प्रभु-भक्ति के सुसंस्कार जग पड़े तथा दृढ़ होते गये। उनकी जीवन-लीला पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट पता चलता है कि यदि कोई

कार्य्य है जिसको वे बालकपन से आरम्भ करके शरीर के अन्त होने तक करते रहे तो वह था साधु-सङ्गति और तीर्थ-यात्रा। प्रभु में उनका अटल विश्वास था, शास्त्रों में पर्वत समान अचल श्रद्धा। सन्त सेवी तो वे प्रसिद्ध थे। तीर्थ-यात्रा करने से तथा पुण्य भूमियों के दर्शन करने से उनका हृदय-कमल खिल उठता था। उच्च शिक्षा और विचारमय जीवन के कारण वह पण्डों तथा पुजारियों के फन्दे में कभी नहीं फँसे; परन्तु निगम आगम के मर्म को वे भली भाँति जानते थे। तीर्थ-यात्रा का महत्व भी वे खूब समझते थे। इन सब सद्गुणों के लिये उनके माता पिता को ही श्रेय है जिन्होंने बाल्य-काल से ही चित्रकूट की अनेक यात्राओं में, साधु-सन्तों और राम के पावन चरित्र से सम्बन्धित स्थानों के दर्शनों से, उनके कोमल हृदय में सन्त-सेवा, ईश्वर-विश्वास तथा तीर्थ-यात्रा के अंकुर डाल दिये, जो पुण्य संस्कारों की उपजाऊ भूमि पाकर उनके जीवन की तीन बड़ी तथा विशेष कलायें बने रहे।

यह सब बातें धीरे धीरे पाठक स्वयं भी अनुभव करने लगेंगे। अपने देवता के बाल्य-काल की कुछ घटनाओं का उल्लेख करना हमारे लिये पर्याप्त है। अधिक हम नहीं जानते, पर जितना कुछ पता चला है उतने से ही स्पष्ट है कि "होनहार बिरवान के होत चीकने पात"।

पिता से कुछ समय आप हिन्दी भाषा सीखते रहे। देहातों में समय को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। सब कार्य सहजता से होता है, लोग घड़ियों की चाल से बँधकर काम नहीं करते। जब सात-आठ वर्ष के हुए, तो अक्षर पहँचानने लगे। सियाराम जी को पढ़ने में आरम्भ से रुचि थी। जब आप घर पर ही पढ़ते थे, तो एक दिन अन्शु जी अपने

तहसीलदार साहब के पास लगान देने गये, और छोटे पुत्र को भी साथ ले गये। तहसीलदार ने बात-चीत करके इस बात पर आग्रह किया कि बालक को पढ़ने के लिये बबेरू भेज दिया जाये। अन्शु जी ने माता के मोह तथा स्नेह का वर्णन किया जिससे उनकी पढ़ाई रुकी हुई थी। घर लौटकर जब माता की ममता के कारण वे फिर ढीले होगये तो छोटे प्रतिभाशाली बालक ने खुद बबेरू भेजे जाने के लिये आग्रह शुरू कर दिया। जब सुनवाई न हुई तो कहने लगे, अगर हमको बबेरू न भेजोगे तो हम तहसीलदार साहब से शिकायत कर देंगे। बालक की यह प्रबल धारणा देखकर माता को मोह की पाश ढीली करनी पड़ी, और उसने कलेजे पर पत्थर रखकर बालक को बबेरू भेज दिया। इस एक ही घटना से पता चलता है कि छोटेपन से ही आप कितने विद्या-प्रेमी और दृढ़-संकल्प थे।

'साथी' में ही आप कई बार आस-पास जहाँ-तहाँ साधुओं के दर्शनों को चले जाया करते, चुपचाप उनकी बातों को सुना करते और जो कोई काम वह बताते उसको बड़े चाव से किया करते थे। बबेरू में रहते हुए भी एक महात्मा का उनको सङ्ग मिल गया। अनेक बार उनकी सेवा में गये। इतनी छोटी आयु में जो कुछ भी उनकी समझ में आया हो, पर इतना तो अवश्य हुआ कि उनके हृदय में त्याग के भाव तीव्रता से जाग उठे। बिना घर पता दिये वे महात्माजी के सङ्ग हो लिये। उन्होंने बहुतेरा मना किया पर हठीला बालक कब मानता था। उनके साथ चले गए, और पूरा साल भर उनके साथ घूमते रहे।

जब आपके माता-पिता को पता लगा कि उनको पढ़ने की अपेक्षा सन्त-सेवा अधिक प्यारी है और बबेरू से मदरसा छोड़कर ला-पता हैं, तो वे उनकी खोज करने लगे। पता चला कि सात

मील की दूरी पर मरोल ग्राम में एक साधु के पास ठहरे हुए हैं। वहाँ उनके पिता आये, बहुत समझाया कि 'शिक्षा तो पूर्ण करनी चाहिये'; पर आप यही कहते थे कि "मुझे नौकरी तो करनी ही नहीं, तो इस पढ़ाई से क्या लाभ, साधु ही होना है तो व्यर्थ समय तथा शक्ति का ह्रास क्यों किया जाए।" धमकाया भी गया, पर धमकाने से तो बालक और भी हठी हो जाते हैं। लाचार अंशुजी ने महात्माजी से निवेदन किया तो उनके समझाने से बालक फिर पढ़ने को राजी हो गया।

तीसरा प्रकरण (प्रारम्भिक शिक्षा)

अब की बार आपको पढ़ने के लिये बसींढा में, जो पहले बाँदा की तहसील थी, भेजा गया। यहाँ आपने दत्त-चित्त होकर पढ़ना शुरू कर दिया। इस समय आपकी आयु लगभग बारह वर्ष की होगी।

कई कारणों से हमारे अभागे देश में बाल-विवाह की कुप्रथा प्रचलित है। आप भी बहुत छोटी ही अवस्था में विवाह-पाश में जकड़ दिये गये; परन्तु अपनी शिक्षा के समाप्त होने तक उन्होंने अपनी स्त्री की ओर कोई विशेष ध्यान न दिया। उसके युवा होने पर जब आप हाई स्कूल बाँदा में और पीछे आगरा के कालिजों में पढ़ते रहे, तब भी छुट्टियों में बहुत कम घर आया करते थे। एक बार उनकी स्त्री ने यह आशंका प्रकट की, कि यदि तुम मेरी ओर से इसी प्रकार बेपरवाह रहे, तो संभव है, मेरे पाँव सत्य-मार्ग से इधर-उधर हो जाएँ। बात मामूली न थी, मगर आपने इसे ज़रा महत्ता न दी, बोलेः—

"यदि तुम्हारी रुचि पाप की ओर है तो मैं तुम को खुली छुट्टी देता हूँ। तुम्हारा जो जी चाहे करो; परन्तु इतना सोच लो, कि पाप का भय और दुःख-रूपी फल तुम्हीं को सतायेगा"। वेपरवाही और उदासीनता उनके स्वभाव में कूट-कूट कर भरी थी, इसी का परिचय इस घटना से भली भाँति मिलता है।

वसींढा में शिक्षा प्राप्त करके आप वाँदा चले गये। वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल की अन्तिम परीक्षा में सरकारी वज़ीफ़ा मिल गया। फिर सरकारी हाई स्कूल में पढ़ने लगे। इसी समय अन्शुजी का शरीर छूट गया। आप उस समय घर न पहुँच सके। कुछ दिनों के वाद घर गये और जल्दी लौट आये। कोई विशेष चिंता और शोक नहीं किया। फिर उसी प्रकार पढ़ने-लिखने में लीन हो गये। साइन्स के पढ़ने का आप को बहुत शौक़ था, मगर गणित आपका उससे भी प्यारा विषय था। वाँदा में पढ़ते हुये आपको आर्य समाज के प्रसिद्ध सेवक चौधरी प्राणसिंह जी से बहुत सहायता मिलती रही जिनके आप अन्त तक कृतज्ञ रहे। जब कभी वे चित्रकूट जाते इनके यहाँ ज़रूर ठहरते और उनको अपने सत्संग से वैसे ही कृतार्थ किया करते जैसे कि वे स्वयं उनके ऋणी थे। निजी तौर पर भी वे लड़कों को पढ़ा कर अपना खर्च पूरा किया करते थे। वाँदा में पढ़ते समय उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं रहता था, प्रायः कान में दर्द की शिकायत रहती थी। यह शिकायत वाद में भी जारी रही। शरीर तो आपका कमज़ोर था ही; परन्तु फिर भी आपने पढ़ने-लिखने में कोई कसर न उठा रक्खी। मैट्रिक की परीक्षा में आप छठे नम्बर पर पास हुए और सरकारी छात्र-वृत्ति प्राप्त की। कुर्मि-क्षत्रिय वालकों में आप सब से प्रथम थे, इसलिये अखिल भारतीय कुर्मि-क्षत्रिय महासम्मेलन लखनऊ

ने आपको पुरस्कार दिया। १८६५ ई० तथा सम्वत् १६५३ में जब आपने मैट्रिक पास कर लिया, तो आपके भाई आपको बाबू गयाप्रसाद डिप्टी कलेक्टर के पास ले गये और कहा, "साहब इन्हें कहीं सरकारी नौकरी दिला दें, तो बड़ी कृपा हो; आप हमारी बिरादरी के हैं, इसलिये आप से बहुत आशा है।" पर जब उन्होंने आपके पढ़ने का शौक़ देखा, तो और पढ़ने की राय दी, और कहा कि यदि ज़रूरत पड़े, तो मैं सहायता देने को तैयार हूँ।

चौथा प्रकरण (किशोर-अवस्था)

साइन्स तथा ज्ञान के प्राप्त करने के शौक़ से सियाराम जी १८६५ ई० के जुलाई मास में सेंट जान्स कालिज आगरा में (Free scholar) फ़ीस माफ़ विद्यार्थी के तौर पर भरती होगये। और चार साल एफ़० ए० तथा बी० ए० की पढ़ाई इसी कालिज में करते रहे। इस समय प्रोफ़ेसर बेनीमाधव सरकार यहाँ गणित पढ़ाया करते थे। वे सियारामजी पर बहुत खुश थे। आप भी प्रोफ़ेसर साहब के बड़े कृतज्ञ थे। प्रायः उनके सच्चरित्र, साफ़गोई और कार्य कुशलता की प्रशंसा किया करते थे। गणित में आप की विशेष रुचि थी। आपकी विवेचना-शक्ति को इस विषय के जटिल प्रश्न सुलझाने में विशेष उत्साह तथा आनंद प्राप्त होता था। इससे गुरु शिष्य में और भी समीपता होगई। प्रो० सरकार आपको पैत्रिक स्नेह से पढ़ाया करते और अन्य व्यवहार तथा धर्म की बातों में भी अनुभव से भरी और खरी-खरी राय दिया

करते थे। हृदय के भी वे उदार थे। सियाराम जी पर उनका स्नेह इतना बढ़ गया कि उन्होंने आपको अपने घर में आने जाने की भी पूरी आज़ादी दे दी। धन आदि से भी वे इनकी सहायता किया करते। इस सबके लिये आप उनके बड़े ऋणी थे, जिसको चुकाने का आपने बाद में प्रयत्न भी किया।

एक घटना का उल्लेख करना यहाँ अति आवश्यक प्रतीत होता है। उस समय भी आपके सहपाठी आपकी सरलता से मोहित होकर आपको "महात्मा" कहकर बुलाया करते थे। एक दिन आपको रोने का दौरा हुआ। किसी गंभीर तथा हृदय दारुण दुःख से आप विह्वल हो उठे, और फूट-फूट कर रोने लगे। सारा दिन यही हाल रहा। जब कालिज क्लास में भी गये, तो भी रोना बंद न हुआ। लाजिक के प्रोफ़ेसर दत्त ने इस रोने का कारण पूछा, पर यहाँ रोने के अतिरिक्त कोई उत्तर नहीं था। इस चुप्पी से खिन्न होकर उन्होंने आपको कमरे से बाहिर निकल जाने को कहा। आप बाहर चले गये, मगर रोना फिर भी बंद न हुआ। दूसरे प्रोफ़ेसर भी इसका कारण पूछते रहे; पर रोने से छुटकारा मिलता, तो कारण भी बताते। होस्टल में गये, तब भी रोते ही रहे।

अयोध्याप्रसाद फाटकवाला जी की आपसे विशेष मित्रता थी। इनका मकान आगरा ही में था। सायंकाल को आपके एक सहपाठी मेवारामजी ने फाटकवाला जी के घर पर जाकर सूचना दी कि "महात्माजी आज सारा दिन रोते रहे हैं, कुछ कारण नहीं बताते। आपने आज भोजन भी नहीं किया"। यह सुनकर अयोध्याप्रसाद जी बोर्डिङ्ग-हौस गए, तो देखते क्या हैं, कि आप पैरेलल बार्स (Parallel bars) पर चुप-चाप बैठे हैं, और आँखें दिन भरके रुदन से लाल हो रहीं हैं, और

सूज गई हैं। उनको देखते ही आप नीचे कूद पड़े। जब उन्होंने पूछा कि क्या बात है तो आपने कहा कि 'कुछ नहीं'। उनके कहने पर आप वैसे ही नंगे सिर-पैर उनके साथ हो लिये। वे आपके वास्ते कुछ खाने को भी जेब में डाल लाये थे, पर सारा दिन भूखा रहने पर भी खाने में आपकी कुछ रुचि न थी। डेढ़ मील चलने के बाद हरि पर्वत की चार दीवारी पर दोनों मित्र बैठ गये। इधर उधर की बातों के बाद, अयोध्याप्रसाद जी ने फिर बड़ी सहानुभूति से पूछा "अरे भाई! तुम्हारे रोने का कारण क्या था?" आपने कहा "संसार की समस्या का हल नहीं सूझता। ईश्वर ने क्यों हमको इस सृष्टि में भेज दिया है। इतने कष्ट सहते हुये भी हम इसका मर्म नहीं जान सकते। यह भी पता नहीं चलता कि हमारा क्या कर्तव्य है। और हमारे जीवन का क्या लक्ष्य है?" यह सुनकर वे कुछ देर चुप रहे, इसके बाद बोलेः—

ज़िन्दगी क्या है तमन्ना-ओ-वफ़ा में जीना।
दीन क्या है किसी कामिल की परस्तिश करना॥

इस पर आपने पूछा "तमन्ना और वफ़ा क्या है और 'कामिल' कहाँ मिल सकता है"। संसार की दुःख रूपता का आप प्रायः उपदेश दिया करते थे। यही चिन्ता उनको उस समय भी सताया करती। प्रायः साधु-महात्माओं का सत्संग भी किया करते थे। अयोध्याप्रसाद जी ने धीरज दिलाया कि घबराना व्यर्थ है, कोई न कोई पथ-प्रदर्शक मिल ही जायेगा। योगियों की तलाश तो आपको लगी ही रहती थी। एक दिन आप राय सालिगराम बहादुर, जिन्होंने राधा स्वामी-मत की स्थापना की है, के पास गये और देर तक बात-चीत करते रहे। उनकी बातों से आपको संतोष तो न हुआ; पर उन्होंने इतना अवश्य कहा

"आप जन्म से योगी हैं, और समय आने पर आपको पूरी सहायता और संतोष मिल जावेंगे"।

एफ़० ए० में आप साईन्स पढ़ा करते थे। आप का ध्यान अध्यात्म सम्बन्धी बातों में बहुत लगा करता था। साधु-महात्माओं का संग बहुत प्रिय था। पुस्तकें तक ख़रीदने की फ़िक्र नहीं होती थी। आपके एक सहपाठी ला० दीनानाथ जो आपकी पुस्तक आदि से बहुत सहायता किया करते थे। १८९७ ई० में एफ़० ए० की परीक्षा पास कर ली। बी० ए० में गणित तथा साईन्स पढ़ने लगे। परन्तु ध्यान फिर भी अपने लक्ष्य की ओर ही रहता था। पढ़ने के दिनों में आप को क्रिकिट के खेल का अच्छा अभ्यास था, बड़ा अच्छा बाल फेंकते थे। परन्तु इस खेल की ओर अधिक ध्यान न दे सके। Indoor games (घरेलू खेलों) का आपको ज़रा भी शौक़ न था। अकेले घूम कर बहुत ख़ुश होते थे।

पढ़ाई का ख़र्च अपनी ट्यूशन से ही पूरा किया करते थे। हाँ घर जाकर कभी-कभी मा से थोड़ा बहुत आटा, दाल, चावल ले आया करते। आप प्रायः कहा करते थे "कि जितना ख़र्च कम हो उतना ही अच्छा है। इससे बाद में रुपये कमाने की फ़िक्र नहीं रहेगी। थोड़े में ही निर्वाह हो जायेगा।" १८९९ ई० में आपने बी० ए० की परीक्षा दी। तत्पश्चात् इलाहाबाद कटरा में अयोध्याप्रसाद जी के साथ दो सप्ताह तक रहे। चार पाँच सहपाठी भी आपके साथ थे। परीक्षा के समाप्त होने पर तीर्थ-यात्रा का निश्चय हुआ। सोलह तथा सत्तरह जनवरी को त्रिवेणी जी का स्नान किया। अक्षयवट और प्रयागराज के दूसरे पुण्य स्थानों का दर्शन करते रहे। अठारह जनवरी को गंगाजी के उस पार झूँसी में अनेक साधुओं के दर्शन किये।

कई एक पुराने मन्दिर भी देखे। बारह मील तक घूमते घामते आपके साथी तो थक गये थे, परन्तु आप वैसे ही प्रसन्न थे, और अपनी हँसी ठठोल और मनोरंजक कहानियों से साथियों को उत्साहित करते रहे। जहाँ भी जाते आपकी श्रद्धा के कारण साधु भी आपसे बड़े प्रेम से बात-चीत करते। उन्नीस को यह सब मित्र शहर के विख्यात लोगों से मिलने गये। परन्तु इसमें सियाराम जी को कुछ रुचि न थी। केवल साथ ही देते रहे। एक दो स्थानों पर तो वे बाहर ही फाटक पर खड़े रहे। दूसरे दिन सोमवती अमावस्या थी। आप साथियों समेत नाव में बैठकर त्रिवेणी के संगम की ओर गये। वहाँ अनेक स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं। आपके युवा मित्र सौन्दर्य के पुजारी थे। परन्तु आपको यह अच्छा न लगा। अकेले ही वहाँ से दूर चले गये। स्त्रियों से आप उदासीन ही रहा करते थे। गर्मी की छुट्टियों में घर जाकर स्त्रियों में रहना पसंद न करते थे। इक्कीस को आप विन्ध्याचल को गये और विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर का भी दर्शन किया। वहाँ छोटी लड़कियों ने इनको पकड़ लिया और भिक्षा माँगने लगीं, पर आप पर इसका कुछ प्रभाव न पड़ा। वहाँ से यह सब अयोध्याप्रसाद जी के चचा के वसीले से, एक नाव आठ आना दिन पर किराया करके, पानी के रास्ते बनारस की ओर चले। जब आप मिर्ज़ापुर पहुँचे तो नाववाला गिड़गिड़ा कर जाने की छुट्टी माँगने लगा। आपने झट उसको छोड़ दिया और गाड़ी से बनारस पहुँचे। बाईस-तेईस को वे विश्वनाथ जी का मन्दिर, गोस्वामी तुलसीदास जी का घाट, क्वीन्ज़ कालिज, रामनगर का किला और महाराजा बनारस का महल आदि अनेक स्थान देखते रहे। चौबीस जनवरी को सब लोग अपने-अपने घर चले गये।

पाँचवाँ प्रकरण (युवा काल)

गरमी की छुट्टियों के बाद सियाराम जी बी० ए० की परीक्षा पास कर चुकने पर आगरा आये। आपका विचार था कि कोई नौकरी मिल जाये। परन्तु प्रो० सरकार के समझाने पर आपने एम० ए० में भरती होना स्वीकार कर लिया। आशा यह थी कि एम० ए० पास कर लेने के बाद किसी कालिज में काम मिल जायेगा, जहाँ ज्ञान-ध्यान के लिये अधिक समय मिल सकेगा।

प्रो० बेनीमाधव सरकार अब सेंट जांस कालिज आगरा को छोड़कर आगरा कालिज में चले गए थे। आप भी उनके साथ वहीं डी० एस० सी० की परीक्षा के लिये पढ़ने लगे। वहाँ ही कालिज में कुछ थोड़ा पढ़ाने का काम भी आपको मिल गया। इम्तिहान देने की इच्छा तो तीव्र थी ही नहीं, इसलिये ढीले हो गये। सन् १६०० ई० के फ़रवरी मास में आप फिर अयोध्या-प्रसाद जी के साथ तीर्थ-यात्रा को गये। इलाहाबाद से झूँसी और नैनी होते हुए चित्रकूट पहुँचे। वहाँ आप अपने पंडा बाबूलाल के घर एक सप्ताह ठहरे। प्रातःकाल घूमने निकलते और सायंकाल को लौट आते। कोट तीर्थ, देवांगना, हनुमान धारा, सीताजी की रसोई, फटकशिला, अनुसूइयाजी, गुप्त गोदावरी, सीता कुंड, लक्ष्मण कुंड, भरत कूप आदि अनेक स्थानों के दर्शन किये। उधर ही एक स्थान में एक साधु बाबा रामशरणदास जी के आपको दर्शन हुये। सायंकाल को खाना खाने के पश्चात् आप सब हठयोगी लक्ष्मणदास की सेवा में जाया करते थे। उनकी आयु सौ वर्ष की कही जाती थी, पर देखने में वह तीस वर्ष

के युवक प्रतीत होते थे। इस प्रकार १२ फरवरी को आप लौट कर घर चले गये।

१९०१ में अपने मित्र अयोध्याप्रसाद जी के अनुरोध पर आपने फ़र्स्ट डी० एस० सी० की परीक्षा दी। मूअर कालिज के प्रो० काक्स के पर्चे में आप एक प्रश्न की अशुद्धि निकालते रहे। जब इस बेपरवाही पर अयोध्याप्रसाद जी ने आपको बुरा-भला कहा, तो आपने दूसरे पर्चे में कमी पूरा करने का निश्चय कर लिया। दूसरे दिन जब प्रो० काक्स आपकी प्रतिभा पर प्रसन्न होकर आपसे मिलने आये, तो परीक्षा के समय आपने उनको टाल दिया "कि मेरा समय व्यर्थ नष्ट न किया जाये।" इसके पश्चात् आप उनसे मिले। काक्स महोदय ने आपकी गणित विषय में गति की मुक्त कंठ से सराहना की। आपको विलायत जाकर सीनियर रेंगलर बनने के लिये कहा। इस पर आपने धन का अभाव बताया। प्रो० काक्स बड़े साधु पुरुष थे, उन्होंने सहायता देने की आशा दिलाई। पर आपने बड़ी उपेक्षा से उत्तर दियाः—"Literary fame" (साहित्यिक प्रसिद्धि) की मुझे इच्छा नहीं है और ना ही मैं इस में अधिक परिश्रम करना चाहता हूँ। ख़ैर प्रो० काक्स की साधुता के कारण आप First D .Sc. में तो उत्तीर्ण हो गये। फिर १९०३ में आपने Second D. Sc. की परीक्षा दी। फिर भी आपने वैसेही क्राइस्ट चर्च कालिज कानपुर के प्रो० मैकाली के प्रश्न-पत्र में अशुद्धि निकालने में समय व्यतीत कर दिया। अब की बार परीक्षक आप से रुष्ट हो गये, इसी कारण आप को Second D. Sc. की अर्थात् एम० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण न होने दिया।

इसी बीच में आप दो एक महीने के लिये प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन में भी साइन्स और गणित के पढ़ाने का कार्य कर

आये थे। गणित पढ़ने में आपको एकाग्रता का बड़ा अभ्यास हो गया था। यथार्थ बोध पर आपकी दृष्टि सर्वदा रहा करती। लच्छेदार शब्दों में आप कभी न उलझते। बात की तह तक पहुँचने का यत्न किया करते थे। कुछ काल पहले स्वामी राम भी यहाँ आये थे। उनके पास आप कई एक फ़िलासफ़ी के विद्यार्थियों के साथ अद्वैत विषय पर बात चीत करने के लिये गये। आपको अपने गहरे प्रश्नों का कोई संतोषजनक उत्तर न मिला। स्वामीजी ने फिर आकर मिलने के लिये कहा; परंतु इस टाल-मटोल से आपकी श्रद्धा कुछ हट सी गई। वैसे तो आप स्वामी राम के ज्ञान तथा सच्चरित्र की बड़ी प्रशंसा करते थे। उधर आप आर्य-समाज के प्रसिद्ध संन्यासी श्री स्वामी दर्शनानंद जी और काशी के विख्यात पं० केशवदेव जी शास्त्री से भी मिले थे। उनसे बात-चीत करने पर आपको पता चला कि जो कुछ वे आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध में कहते हैं, वह केवल ग्रन्थों के आधार पर है। उनको उस विषय में कुछ अनुभव नहीं। इससे आपकी रुचि ग्रन्थों के पढ़ने तथा व्याख्यानों के सुनने से और भी हट गई। किसी अनुभवी योगी की तलाश में आप सदा साधुओं के पास जाया करते थे। "जिन ढूँढ़ा तिन पाया" के अनुसार आपकी यह आशा शीघ्र पूर्ण हो गई। त्याग, लग्न, संसार की दुःख रूपता और दृढ़ प्रतिज्ञता यह सब बातें आपके विद्यार्थी जीवन में स्पष्ट दिखलाई देती हैं।

प्रो० सरकार की तो आप पर बड़ी कृपा रहा करती थी। यह भी कृतज्ञता रूप में उनके बच्चों को पढ़ाया करते थे। प्रो० जी ने आपको इस बात का उपदेश दिया था कि "यकायक किसी की बढ़ी-चढ़ी बातों में फँस नहीं जाना चाहिये। हर एक बात को अपने अनुभव की कसौटी पर कसना चाहिये।" इसी से

इतनी श्रद्धा होते हुए भी आप हमेशा सचेत रहते थे। उनके दो वाक्यों को आप प्रायः सुनाया करते थे First marriage is a mistake पहिला विवाह भूल है, Second marriage is a crime दूसरा विवाह जुर्म है। वे स्वयं विवाहित थे; परन्तु विवाह को बड़ा बखेड़ा समझते थे। अपने शिष्यों तथा पुत्रों को यही राय देते कि यदि इससे बच सको तो अच्छा है।

इन्हीं प्रो० सरकार की सहायता से सितम्बर १६०३ ई० में आप रन्धीर कालिज कपूरथला में साइन्स और गणित पढ़ाने के लिये प्रोफ़ेसर नियुक्त हो गये।

२

साधना-कांड

पहिला प्रकरण (साधन की तैयारी)

प्रो० सियारामजी ने ४ भादों सं० १९६० तदनुसार १९ अगस्त १९०३ ई० को कपूरथले कालिज में काम करना आरम्भ किया। अपने पढ़ाने के कार्य में वे बड़े परिश्रम से यत्न किया करते थे। विद्यार्थी और प्रिन्सीपल साहब आपके कार्य से बड़े संतुष्ट रहा करते थे। थोड़े ही दिनों बाद आपने अपनी सचाई और कार्य-कुशलता के कारण पाँच मास के लिये अर्थात् ४ भादों संवत् १९६३ से ३ माघ सं० १९६३ तक प्रिन्सीपल के पद पर कार्य करने का अवसर पाया। इसी बीच में पंजाब यूनीवर्सिटी की ओर से कालिज के निरीक्षण करने के लिये एक कमीशन आया जो आपके प्रबन्ध को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। साईन्स की लेबोरेटरी के सम्बन्ध में जब पूछा गया कि "कैसी अवस्था में है?" तो आपने उत्तर दिया "जैसी है, आप देखकर निर्णय कर सकते हैं।" ऐसे सीधे, सरल उत्तर से वे बड़े हैरान हुए और कहने लगे "आप तो बड़े विचित्र

पुरुष मालूम होते हैं।" साथ ही उन लोगों ने आपके सुप्रबन्ध से प्रसन्न होकर आप से कहा "आप स्थायी रूप से प्रिन्सीपल होने का यत्न क्यों नहीं करते।" आपने बड़ी उपेक्षा से उत्तर दिया "मैं तो केवल पढ़ाने के कार्य को भी विघ्न रूप समझता हूँ। फिर भला एक नये बखेड़े को कैसे ग्रहण कर सकता हूँ।" इस प्रकार त्याग की भावना तो सदैव आपके हृदय में विराजमान रहती थी।

आप बड़ी सादगी से अपना जीवन व्यतीत करते थे। एक साधारण पाजामा वा क़मीज़ पहनते, उसके ऊपर चादर ओढ़ लिया करते। आपके रहन-सहन से किसी को यह विचार न होता कि आप कालिज में पढ़ाने का कार्य करते हैं।

ईमानदारी तो आप में कूट-कूट कर भरी थी। रियासत के एक बड़े कर्मचारी चाहते थे कि प्रो० सियाराम जी उनके लड़कों को गणित पढ़ाया करें; पर आपसे कहने की हिम्मत न पड़ती। प्रिन्सीपल साहब को भी यह साहस न होता कि वे आपसे कहें। निश्चय यह हुआ कि किसी अवसर पर जब प्रोफ़ेसर जी प्रिन्सीपल साहब के कमरे में आयें, तो वे कर्मचारी उनसे ऐसा प्रबन्ध करा देने के लिये कहें। फिर वे आपही प्रोफ़ेसर जी से कह देंगे। ऐसा ही किया गया। पर आपने इन्कार कर दिया और कहा "ऐसा करने से मेरी मानसिक शक्ति व्यर्थ व्यय होगी। उतना ही कालिज के काम में कमी आ जायेगी। पर कालिज से तो वेतन मिलता है। यह पाप होगा यदि मैं अपनी शक्ति का व्यय बाहिर कर दूं। इससे विद्यार्थियों को भी हानि पहुँचने की सम्भावना है।" ऐसा सच्चा उत्तर सुनकर वे अवाक् रह गये; पर कर्मचारी जी को संतुष्ट करना आवश्यक था। प्रिन्सीपल साहब ने कहा "मैं आपको इस काम के लिये आज्ञा देता हूँ। मैं ही सब काम का

ज़िम्मेदार हूँ। इससे आप पर किसी प्रकार का दोष नहीं लग सकता।" यहाँ काम से जी चुराने का विचार तो था ही नहीं कि कोई नई आपत्ति उपस्थित करते। आपने झट स्वीकार कर लिया। पर फिर भी कह दिया "आपकी आज्ञानुसार मैं इनके लड़कों को घर पर पढ़ा दिया करूँगा; पर इससे यदि दूसरे विद्यार्थियों को कुछ हानि हुई, तो उसकी जवाबदेही मुझ पर नहीं होगी।"

जब यह लड़के आपके घर पर गये तो वहां बड़ी सादगी से निर्वाह होता था। मेज-कुर्सी के अभ्यासी लड़के इस पर संतुष्ट कैसे हो सकते थे। उन्होंने अपने पिता से इस बारे में जाकर कहा। प्रो० जी को संदेश मिला कि यदि वे चाहें तो कुछ मेज-कुर्सी भिजवा दी जायें। आपने कहला भेजा "मुझे तो आवश्यकता नहीं है, आप अपने लड़कों का सुभीता सोच लें।" लोभ तो था ही नहीं और सादगी स्वाभाविक हो गई थी फिर भला और क्या उत्तर देते।

जब आप पीछे गुरुकुल कांगड़ी में गये, तो वहां वेद के आचार्य्य के अतिरिक्त शेष सब उपाध्याय मेज-कुर्सी का सहारा लेते थे। आपने मुख्याधिष्ठाता जी से आग्रह किया कि आपको बैठने के लिये तखत दिया जाये, क्योंकि बैठकर काम करने में बड़ा सुभीता रहता है। जब आप अपनी माँग पर अड़े रहे, तो लाचार उनको भी स्वीकार करना पड़ा।

कालिज में पढ़ते हुए भी आपने अपने लक्ष्य को सामने रक्खा। इसी कारण पढ़ाई में बड़ी ढील से काम होता रहा। अब जबकि आप खाने-कमाने की फ़िक्र से मुक्त हो गये, तो आपका सारा ध्यान साधन की ओर लग गया। साधु संगति से तो आप पहले से ही लाभ उठाया करते थे, परन्तु इस समय से

अपने उद्देश्य की सिद्धि में आप बड़ी गम्भीरता से दत्तचित्त होकर जुट गये। आपको किसी प्रकार के धन-वैभव की तो इच्छा थी ही नहीं, कालिज का काम तो एक साधन था कि जिसकी सहायता से आप अपने लक्ष्य को सिद्ध करना चाहते थे। हम १९०३ से १९०९ तक के काल को साधना काल कह सकते हैं। छै-सात साल के थोड़े समय में आपने वह साधन किये कि जिससे आपकी भूमिका दृढ़ होगई, वैराग्य पक्का हो गया, विषय-वासना निवृत्त हो चुकी; मोह के दोष, काम की चंचलता, और क्रोध का रोष सब शान्त होगये। योग के परम ध्येय को प्राप्त कर लिया। ज्ञान का सागर उमड़ पड़ा। भव-भय नितान्त उठ गया। इस थोड़े काल में इतनी उच्च अवस्था प्राप्त कर लेना स्पष्ट प्रकट करता है कि जन्म-जन्मान्तरों के उद्यम से आप बड़े पुण्य संस्कार लेकर आये थे कि जिससे शीघ्र ही आपने कर्मों को पूरा कर लिया। परमहंस रामकृष्णजी काली मंदिर में पूजा के आधार से जैसे तुरंत परम सिद्धि को पा गये, वैसे ही आपने भी थोड़े ही काल में जहाँ-तहाँ से गुण ग्रहण करके, सबसे उपदेश ले अपने आपको परम सिद्धि तक पहुँचा दिया। यह साधन कुछ तो कपूरथले में रहकर किया, शेष गुरुकुल कांगड़ी में पूरा कर लिया। अब हम यथाशक्ति इस साधन का कुछ निरूपण करेंगे।

दूसरा प्रकरण (काम जय)

सब से कठिन रुकावट जो एक युवा साधक के सम्मुख

उपस्थित होती है वह है काम का विकार। युवावस्था प्राप्त होने पर शरीर में कुछ ऐसे परिवर्तन होते हैं कि जिनका प्रभाव अन्तःकरण में काम-भावना के जगा देता है। चित्त में स्त्री का मोहक रूप खलवली पैदा करने लगता है। यह तो रही साधारण पुरुषों की बात। पूर्व जन्म से सुसंस्कृत पुरुष भी इस विकार से थोड़ा-बहुत दुःखित जरूर होते हैं। हाँ वह शीघ्रही इस व्याधि पर विजय पाकर सर्वदा के लिये निर्भय हो जाते हैं। प्रो० सियाराम जी ने भी इस दुर्जेय शत्रु पर विजय पाने के लिये अनेक कठिन तथा विचित्र साधन किये।

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है आपका विवाह बड़ी छोटी अवस्था में होगया था। पर सारे शिक्षा-काल में, युवा होने पर भी, आप बहुत कम घर जाया करते। छुट्टियां तो साधु-संतों के दर्शनों और तीर्थयात्रा में ही व्यतीत हो जाती थीं। आपकी ...ी का नाम यशोदा था, उसका पैतृक गृह 'मलाथू' ग्राम में था, जो 'साथी' से दो मील पश्चिम की ओर है। उस थोड़ी चंचलता को छोड़कर जो सब स्त्रियों में स्वाभाविक होती है, इस देवी का स्वभाव अच्छा था। सास की बड़ी सेवा करती थी। यदि उसके अन्दर कोई बुरे संस्कार थे भी, तो उनको फलीभूत होने का अवसर नहीं मिला। इसका कारण था उसके पति की उदासीनता, इन्द्रियनिग्रह, दृढ़ प्रतिज्ञता और मातृ-भक्ति।

कपूरथला में काम आरम्भ करने के थोड़े काल बाद दशहरा की छुट्टी में आप घर गये। वहाँ से माता, धर्म-पत्नी और एक भृत्य को साथ ले आये।

देहात में चक्की चलाने की प्रथा अभी तक चली आती है। वृद्धा स्त्रियां युवती पुत्र-वधुओं से ऐसा काम कम कराती हैं; पर स ...याराम जी ने इस बात पर आग्रह किया कि उनकी माता

अपनी पुत्र-वधू से घर के सारे काम पूरी तरह से लिया करे। चक्की चलाना भी इन्हीं कार्यों में सम्मिलित था। माता मोहिनी तो मोह वश चाहती थी कि यशोदा देवी अपने कुछ युवा काल को शृंगार तथा ऐश्वर्य से गुजारे; परन्तु ऐसे मातृ-भक्त, दृढ़-प्रतिज्ञ, वैराग्य-सम्पन्न पुत्र से वास्ता पड़ा था कि यह आशा पूरी न हो सकी। लाचार यह कार्य भी यशोदा देवी को करना पड़ा। ऐसा कराने में माता जी ने कितना कड़ा दिल किया होगा इसे ममता-पूर्ण हृदय ही जान सकता है। पहले पहल परिश्रम करने से कुछ कष्ट जरूर होता है। इससे यशोदा देवी की बाहों तथा छाती में कुछ दिनों दर्द रहा, जिसकी शिकायत रात्रि को दबे शब्दों में उसने अपने पति से की। पर यहाँ तो रंग ही दूसरा था। बड़े गम्भीर भाव से, दृढ़तापूर्ण उत्तर मिला "क्या तुम यह चाहती हो कि हमारी बूढ़ी माँ तो ऐसे कठिन कार्य को करती रहे और तुम बीवी बनकर रहो, तुम्हारी पूजा की जाय। क्या तुम्हें इस में शरम नहीं लगेगी? ऐसी आशा मुझसे तुमको नहीं करनी चाहिये। स्त्री का धर्म है कि पति की आज्ञा का पालन करती हुई सास की सेवा में तत्पर रहे। यदि तुम्हें हमारे पास रहना है तो सेवा धर्म के बिना कोई दूसरा चारा ही नहीं।" ऐसा कड़ा उत्तर पाकर फिर उस देवी ने कभी किसी प्रकार की शिकायत न की, अपितु पति के अनुकूल रहकर वह सब प्रकार से सास की सेवा में जुट गई।

कामी पुरुष युवाकाल में स्त्री को अधिक अपने पास रखने की चाह रखता है। उसके संग से आमोद-प्रमोद प्राप्त करता है। स्त्रियाँ भी ऐसा अवसर पाकर अपना अधिकार जमा लेती हैं। फिर काम के संस्कार दृढ़ होने पर उनसे छुटकारा मिलना बड़ा कठिन हो जाता है। पर यहाँ तो दृष्टि ही दूसरी थी। धर्म-

परायणता मुमुक्षु के लिये अति आवश्यक है। जिसको स्त्री तथा संसार के अनेक पदार्थों से सुख की बड़ी लालसा है, उसका हृदय प्रभु-प्राप्ति के लिये अभी जगा ही नहीं, प्राप्त करना तो दूर रहा। यह भी सुना था कि काम-काज न करने से शहर की स्त्रियों में कोई-कोई दुराचार में पड़ जाती हैं। वहीं आपने एक पड़ोसी युवक से आप बीती गाथा भी सुनी थी कि जब वह लाहौर में शास्त्री परीक्षा देने गए, तो किस प्रकार गली में से गुजरते हुए एक गृहिणी ने पत्र पढ़ाने के बहाने से अपने घर बुला लिया और जब तक वे परीक्षा न दे चुके उस बेचारे का पीछा न छोड़ा। गाड़ी में उसको परीक्षा स्थान पर पहुँचा आती और परीक्षा समाप्ति के समय ले आती। ऐसी और भी अनेक बातें सुनी थी। इस वास्ते भी आप चाहते थे कि यशोदा देवी स्वाभाविक परिश्रम का जीवन बसर करे। स्त्री को संयम के पथ पर डालना आवश्यक था। आपने आरम्भ से ही उस देवी के प्रति ऐसा व्यवहार रक्खा कि जिससे उसके विचार भी शुद्ध होते गये, और काम-मोह के संस्कार बहुत कुछ क्षीण हो चले।

युवाकाल में मनुष्य अच्छा खाना तथा अच्छा पहिनना चाहते हैं। स्त्री तो रूप में फँसी हुई है, चमकीले कपड़े और भूषण उसको भले लगते हैं, इससे देह-अभिमान ज़रा बढ़ जाता है। ऐसी स्वाभाविक वृत्ति का उदय होना कोई बड़ी बात नहीं। एक दिन वह देवी अपनी पड़ोसिन के घर गई। वहाँ देखा कि पड़ोसिन सोने के नये कंगन पहने हुए है। उसका भोला चित्त भी चलायमान हो गया। खाना खाते समय इस बात की सूचना पतिदेव को दे दी। "पंडितजी की स्त्री ने सोने के नये कंगन बनवाये हैं, बहुत भले प्रतीत होते हैं।" प्रोफेसर साहब बात तो

ताड़ गये, पर अनसुना करके चले गये। दूसरे दिन फिर इस सूचना को दुहराया गया। पर यहाँ तो उसकी इच्छा को स्पष्ट जान लेने का विचार था। अतः कुछ उत्तर न दिया। स्त्री चपलता से भी काम लेती है। जैसे केकैयी ने रुद्र-रूप धारण करके बूढ़े दशरथ से वचन ले लिया, उसको दारुण दुःख दिया, विचारे के प्राण भी चले गये, नगर-वासी भी वहुत दुःखित रहे। ऐसे ही यशोदा माई ने भी रुद्र-रूप धारण कर लिया। मुँह फुलाये खाना वनाती रही। क्रोध से हृदय भी जल रहा था। प्रोफ़ेसर जी ने वहुतेरा यत्न किया, अनेक वातें चलाईं कि वह अपने क्रोध के कारण को स्पष्ट प्रकट कर दे। पर जब क्रोध की अग्नि प्रचंड हो जाती है, तो विवेक नष्ट हो जाता है। वह अपनी इच्छा प्रकट करने का सीधा मार्ग ग्रहण न कर सकी। अवसर को हाथ से जाने दिया। प्रोफेसर सियाराम जी भला ऐसी चपलता को कैसे सहार सकते थे। उसका हाथ पकड़ कर दूसरे कमरे में ले गये। वड़ी कड़ी ताड़ना की। रोने-चिल्लाने से उसने पड़ोसियों को सूचना देने का यत्न किया। पर यहाँ किसी से दबने वाले तो थे नहीं कि भय खा जाते। लाचार चुपचाप सब कुछ सहना पड़ा। कुछ दिन विचारी बीमार रही, फिर उसकी सेवा-शुश्रूषा और दवा-दारू वड़ी सावधानी से करते रहे। कभी कभी पूछ भी लिया करते कि कंगन अच्छे तो थे। आपका यह सदैव दृढ़ विचार रहा कि मुमुक्षु को स्त्री की चपलता के वश नहीं होना चाहिये। यदि समझाने-बुझाने से काम न निकले तो कभी ऐसी ताड़ना भी कर देनी चाहिये कि जिससे वह समझ ले कि कैसे दृढ़ पुरुष से वास्ता पड़ा है। फिर कभी ऐसा हठ या दुराग्रह करने का साहस नहीं करेगी। जो पुरुष स्त्री के दास वने रहते हैं, वे इस मार्ग में नहीं चल सकते। यह वात भी आप जानते थे कि "बिन

भय होय न प्रीति" अवसर अनुसार भय दिखाना ज़रूरी होता है। पर ऐसा करने से वही पुरुष विजय पा सकता है जो संयमी हो। कामी चाहे जितना क्रोध करे, ताड़ना करे, उसका उलटा ही प्रभाव पड़ता है। आप तो इतने संयमी थे कि केवल क्रोध वश ताड़ना कभी नहीं करते थे, पर विचार पर आरूढ़ हो लक्ष्य को ध्यान में रख कर दूसरे के कल्याण पर भी उतनी ही दृष्टि रखते थे जितनी अपने हित पर। धीरे-धीरे यशोदा माई पर भी यह भली भाँति प्रकट हो गया कि यहाँ चपलता की दाल नहीं गलेगी। उसके स्वभाव में सरलता और साधुता बढ़ने लगी। थोड़े ही दिन में देवी बनकर रहने लगी। आप कई बार उसके साधु स्वभाव की प्रशंसा करते थे। पड़ोसियों का प्रभाव पड़ता ही है; पर यदि किसी के हृदय में कुछ अच्छे संस्कार हैं, तो अनुकूल स्थिति में वह बढ़ने लगते हैं। ऐसी कड़ाई के नियमित व्यवहार से थोड़े ही दिन में यशोदा देवी साध्वी बन गई।

श्रीमद्भगवद्गीता में महाबली अर्जुन ने शिकायत की थी कि काम और क्रोध को जीतना महा दुष्कर है। कोई विरला शूर-वीर ही काम को जीत सकता है। जिन्होंने इस शत्रु से कभी लड़ाई की है वे जानते हैं कि इसके बाण कितने तीक्ष्ण हैं। पर महापुरुष इन बाणों की नोकों को शीघ्र ही कुन्द कर देते हैं। उनके लिये इस स्थूल शत्रु पर काबू पाना तो साधारण सी बात है। सियाराम जी शिक्षा काल में स्त्री से उदासीन रहा करते थे; परन्तु अब जब स्त्री उनके पास रहने लगी, तो समर-भूमि में शत्रु को सन्मुख देखकर मुक़ाबले में डट गये। इस लड़ाई में स्त्री को भी कष्ट सहना पड़ा। पर जब तक स्त्री काम के वश में है, और काम का अस्त्र बनकर पुरुष पर चोट करती रहती है, तब तक उसको भी लड़ाई के ज़ख़्म खाने पड़ते हैं। यशोदा देवी भी

जब तक काम के हाथ में नाचती रही, काम से मुक़ाबला करने वाले के प्रहार के कष्ट से न बच सकी।

अच्छे भड़कीले कपड़े तो काम-उत्तेजना के साधन हैं। यह उसको कहाँ मिल सकते थे। सुगंधित तेल आदि का प्रयोग भी काम का शस्त्र है। ऐसी वस्तु से उसको बचाना ही आवश्यक था। इस कारण उस देवी को ऐसा कोई साधन प्राप्त नहीं हुआ जिससे काम को सहायता मिल सके। शरीर की दुर्गन्ध पर आपकी बड़ी दृष्टि रहा करती थी। जब स्त्री आपके पास आती तो आप उसको भी प्रत्यक्ष बोध कराते कि देख किस प्रकार से तेरे प्रत्येक अंग से दुर्गन्ध आती है। नहाने-धोने से भी यह दुर्गन्ध नहीं जाती। उसके दांतों में अंगुली मलकर खुद भी सूंघते, उसको भी सुंघाते कि देख यह शरीर कितना दुर्गन्ध छोड़ता है। इस पर आसक्त होना महा मूर्खता है। पशु भी सूंघ करके काम-पूर्त्ति करता है। मनुष्य रूप में अंधा होकर अपनी सूक्ष्म घ्राण-इन्द्रिय को काम में नहीं लाता। मल-मूत्र से भरे हाड़-मांस के पुतले पर आसक्त रहकर काम के वश होता रहता है। यदि स्त्री-पुरुष भी इन्द्रियों का पूरा उपयोग करके शरीर की बनावट पर हर समय ध्यान रक्खें और प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा इस यथार्थ बोध को बार-बार दृढ़ करें, तो शीघ्र ही शरीर से उनको घृणा हो जाये, और काम पर वे आसानी से विजय पा सकें। जैसे साइन्स का विद्यार्थी प्रत्येक वस्तु के मूल-तत्त्व को खोजने का प्रयत्न करता है और फिर उसके गुण-दोष जान करके उसको काम में लाता है, ऐसेही गृहस्थ की लेबोरेटरी में यदि स्त्री-पुरुष वैज्ञानिक रीति से तजुर्बा करते हुए शरीर के यथार्थ बोध पर दृष्टि रक्खें, तो काम पर उनका पूरा अधिकार हो जाता है। गंदगी के पुतले को चिमट जाने तथा आलिंगन-चुम्बन करने का भाव

जल्दी ही ढीला हो जाता है, और फिर ऐसे कार्य से घृणा आने लग जाती है। ऐसे ही कई वार आपने भी अपनी स्त्री से व्यवहार किया। उस देवी को जो दारुण दुःख सहना पड़ा वह काम से व्यथित स्त्री ही जान सकती है; पर ठीक बात तो ऐसे ही है। सत्य तो कडुवा लगने पर भी अपना प्रभाव धीरे-धीरे डालता ही है। इस प्रकार जहाँ आपने इस शरीर के यथार्थ बोध से अपना काम पूरा कर लिया और काम पर पूर्ण अधिकार जमा लिया, वहाँ आपकी स्त्री भी इस तत्व को समझने लगी और पीछे से साधन में लग गई। अपने मित्रों से स्त्री के दुर्गन्धित शरीर का प्रायः ज़िक्र किया करते थे। सच्चे साधक और योगी की तरह आपको "शौच" के सिद्ध करने का पूरा फल प्राप्त होगया। जैसा कि पातंजल योग दर्शन में वर्णित है "शौचात् स्वाङ्ग जुगुप्सा परैरसंसर्गः" अर्थात् शौच के सिद्ध होने से अपने शरीर में घृणा होती है और दूसरे शरीर के साथ संसर्ग की इच्छा नहीं रहती। आप अपनी स्त्री की वहुत सराहना करते थे और उस देवी को पूजा भाव से देखा करते थे। क्योंकि उसने वहुत कष्ट और मानसिक व्यथा सहन करके आपको काम के वन्धन से सर्वदा के लिये मुक्त कर दिया था। इसी से आपकी इच्छा थी कि वह वैराग्य को दृढ़ करके भजन-साधन में लग जावे। कुछ लगी भी, पर फिर उसका शरीर शीघ्र ही छूट गया।

रामकृष्ण परमहंसजी ने अपनी स्त्री में मातृ-बुद्धि दृढ़ करने का साधन किया था। उनका हृदय वड़ा भावुक था। काली की पूजा करते हुये आपने मातृ-दृष्टि को परिपक्व किया था। वहाँ ही रहते हुये बाज़ार से वेश्याओं को वुलाते, उनको धन देकर नंगा कर दिया करते। अपने गले में रस्सी बाँधकर बैठ जाते। जब उनके दर्शन-स्पर्श से काम का भाव स्फुरित होता, तो आप ज़ोर

से गले का रस्सा कस देते और "मां" से यह याचना करते हुये रुदन करने लग जाते, कि "मां ! मेरी रक्षा करो"। इस प्रकार से शीघ्र ही उनकी अवस्था दृढ़ होगई थी। फिर जब उनकी स्त्री उनके पास आकर रहने लगी, तो साल भर तक वह उनके साथ एक पलंग पर लेटी रही। जब उनके अन्तरात्मा ने साक्षी दे दी और इस कठिन परीक्षा में पास हो गये, तो उन्होंने उसका देवी के रूप में पूजन किया। माता के सामान उससे वर्ताव करने लगे। इसी प्रकार संत सियाराम जी ने भी यथार्थ बोध पर खड़े होकर अपनी स्त्री के प्रति ऐसी धारणा दृढ़ कर रखी थी। स्वभाव से ही आप शांत थे। गणित तथा साईंस पढ़ते-पढ़ाते आपकी भावुकता, जो कुछ भी शेष थी, मिट गई। सर्वदा यथार्थ बोध पर दृष्टि रहा करती। 'जैसे को तैसा जान कर वैसे ही उससे वर्ताव करना' यही वैज्ञानिक अन्वेषण में होता है। जब तक एक पुरुष एक वर्तन को सोने का समझता है, उसमें खट्टा पदार्थ भी रख छोड़ता है, उसको सोने के दाम में ही खरीदने बेचने का भाव उसके हृदय में रहता है। पर जब उसे यह बोध हो जाये कि यह पीतल का है, तो न उसमें दही आदि खट्टा पदार्थ रख सकता है और न उसका मूल्य ही उतना अधिक रहता है। ऐसे ही आपने शरीर की बनावट तथा हाड़-मांस, रुधिर-कफ आदि पदार्थों से भरे और बने शरीर का यथार्थ बोध, अपनी स्त्री से बारबार वैसा वर्ताव करके, इतना दृढ़ कर लिया था कि किसी प्रकार का रूप-यौवन और चर्बी की चमक आपको इस यथार्थ ज्ञान से नहीं हटा सकती थी। इसी कारण पीछे से अवसर आने पर, आप स्त्रियों के बीच में बालकों के समान निर्भय होकर विचरते रहे और उनसे आपका व्यवहार इतना सरल तथा स्पष्ट होता था कि साधारण पुरुष उसको समझने में असमर्थ ही रहता,

और इसीलिये प्रायः आप ग़लतफ़हमी का शिकार होते रहे। परन्तु इस निन्दा को सहारना भी आपका स्वभाव बन गया। जहाँ स्त्रियों के शरीर की दुर्गन्ध को सहारते, वहाँ उस निन्दा अपमान को भी सह लेते। करुणा भरे हृदय से दूसरे के कष्ट को निवारण करने के लिये और उसको कल्याण मार्ग पर आरूढ़ कर देने के लिये आप प्रत्येक साधन का प्रयोग करते। साधारण लोग जो निन्दा करते थे, उनका भी दोष नहीं था। वह बिचारे उस उच्च भूमिका को भला क्या समझते कि जिस पर आप ऐसे कठिन साधन से दृढ़ हो चुके थे। इस सब के वास्ते आप सदैव अपनी स्त्री को स्मरण करके उसके प्रति बड़ी कृतज्ञता का भाव प्रकट करते। और कहते कि "उस देवी को धन्यवाद है कि जिसने हमारा इतना कल्याण किया। काम के भय से हमें हमेशा के लिये छुड़ा लिया।"

ऐसे ही साधन की शिक्षा आप अपने शिष्यों को सदैव दिया करते थे और कहते कि "गृहस्थ एक लेबोरेटरी है। शास्त्र का उद्देश्य भी यही है, कि मुमुक्षु अपने कल्याण के लिये भ्रांति का निवारण कर ले।" पर ऐसा साधक कोई विरला होता है जो सब बात का विचार छोड़ कर अपने लक्ष्य पर डट जावे और सब साधनों का उपयोग करके काम जैसे महाबली शत्रु पर अपना पैर रख दे। ऐसे माता-पिता धन्य हैं कि जो रामकृष्ण और सियाराम जैसे दृढ़ प्रतिज्ञ और पवित्र पुत्रों के जन्मदाता हैं।

स्त्री के होते ही आपने निश्चय कर लिया था कि स्त्री को मैके छोड़कर आप स्वच्छन्द होकर रहेंगे। उसके निर्वाह के लिये थोड़ा रुपया भी जमा कर लिया था। वह अब बिलकुल उनके अनुकूल होकर रहने लगी थी। इस वास्ते वह प्रार्थना

करती थी कि "जैसे आप रहें और जैसे मुझे रक्खें—मैं उसीमें सन्तुष्ट हूँ। केवल इतना निवेदन है कि अपने चरणों से अलग न करें।"

तीसरा प्रकरण (मोह-मर्दन)

काम से मोह कम बलवान नहीं है। यदि काम के बाण तीक्ष्ण हैं तो मोह की पाश कोमल होती हुई भी बड़ी कड़ी है, जिसको तोड़ना बड़ी कठिनाई का काम है। स्त्री के संग में आपकी रुचि तो नहीं थी; परन्तु उसके कष्ट को देखकर और उसको निराश्रित जानकर कभी संग हो ही जाया करता था। वह चाहती थी कि उसके एक पुत्र हो। बहुत समझाने पर भी जब उसकी यह इच्छा दूर न हो सकी तो आपने कहा—"पुत्र तो तुम्हारे हो जायेगा; परन्तु उसके पालन-पोषण और रक्षण का भार तुम्हीं पर रहेगा। जहाँ चाहो तुम उसको अपने साथ रख सकती हो। मुझे तो उसकी ज़रूरत नहीं। जब तुम अकेली मेरे लिये बंधन हो, तो एक और नया बंधन मैं कैसे सहार सकता हूँ।" इस प्रकार से आप पुत्रेषणा से मुक्त हो चुके थे; पर जिस देवी ने आपका इतना कल्याण किया था उसकी कामना भी पूरी करनी थी। ऐसा ही हुआ। यशोदा देवी के एक पुत्र हुआ। परन्तु थोड़े ही काल के पश्चात् वह बालक तथा वह स्वयं इस लोक से चल बसे। जब उसका शरीर भस्म हो गया, तो उसकी चिता की राख को अपने मस्तक में लगा कर आपने प्रण किया—"जैसे तू सती हो गई है, वैसे ही मैं भी अ-साधु हो जाऊँगा।" करुणामय हृदय से उसके दुःख की चिंता

आपको सदैव रहा करती थी; पर फिर भी उसे साथ रखने में आप बड़ा बन्धन मानते थे। उसके शरीरान्त पर और भी उसका धन्यवाद किया कि उसने इस चिन्ता से भी आपको मुक्त कर दिया। महापुरुष जहाँ स्त्री को काम का अस्त्र समझ कर उससे कड़ाई तथा ला-परवाही का वर्ताव करते हैं, वहाँ मनुष्य के नाते उसके दुःख को देखकर वैसे ही व्यथित भी हो जाते हैं, परन्तु कर्म-फल का भोग जान कर सब सहार लेते हैं। एक बार स्वामी रामतीर्थजी को हरिद्वार में उनकी स्त्री मिलने गई। उन्होंने उसके बड़े निवेदन करने पर भी उसे तुरन्त वापिस लौटा दिया और बड़ा रूखा सा जवाब दिया। इस रुखाई को देखकर उनका एक शिष्य बिगड़ पड़ा और कहने लगा, "महाराज, आप तो बड़े निष्ठुर तथा दयाहीन हैं।" पर जब उनकी स्त्री चली गई, तो उन्होंने शिष्य से कहा—"प्रिय, तुम समझते हो कि मेरे हृदय नहीं है।" ऐसी करुणा महापुरुषों के हृदयों में सदा रहती है; पर लाचारी के कारण इससे भिन्न कोई उपाय ही नहीं होता। यह सब देखते हुए भी डटे रहना उन्हीं का काम है। साधारण पुरुष में इतनी सहनशीलता ही नहीं कि दूसरे के दुःख को सह सके। यही असहनशीलता उसको गिरा देती है जिससे वह अपने पुरुपार्थ को ढीला कर देता है और प्रायः घबराकर छोड़ भी बैठता है।

जब आपकी स्त्री का शरीर छूट गया, तो उसी दिन सायं-काल यथा नियम आप पं० रामनाथ के पास सत्संग करने चले गये। पंडितजी वृद्ध पुरुप थे। उनके पास आप प्रायः शास्त्रों की चर्चा करने जाया करते थे। जब कालिज और स्कूल के अध्यापक सायंकाल में आपके घर पर शोक प्रकट करने आये, तो आपको घर पर न पाया। घर में कोई शोक के विशेप चिह्न

भी न थे। जब तलाश कराने से आप घर बुलवाये गये और आकर बैठे, तो सब लोगों ने शोक प्रकट किया; पर आपने सब कुछ सुनकर बड़े धैर्य से यही कहा, "जो हो चुका और जिसको हम टाल नहीं सकते, जिसका कोई इलाज भी न हो, उस पर शोक प्रकट करना वृथा है। आप तो सब बुद्धिमान हैं, वृथा काम में समय और शक्ति को लगाना बेसमझी ही मालूम होती है।" जब सब लोगों ने यह बात कही कि आपको रोज़ सायंकाल घर पर रहना पड़ेगा और जो लोग शोक प्रकट करने आया करेंगे उनसे बात-चीत करनी होगी, तब तो आप बहुत घबराये और विचारने लगे कि एक तो हमारी स्त्री गई, दूसरे हमारा समय भी व्यर्थ नष्ट होगा। इस प्रकार दोनों ओर से घाटे में रहेंगे। तत्काल आपने कालिज से पंद्रह दिन की छुट्टी ले ली। स्त्री की चिता पर अभी अग्नि गरम थी; आपने पानी डलवा सब राख आदि बोरियों में भरवा ली और हरिद्वार को चल दिये। वहाँ, वह सब सामग्री कहीं गंगा जी में डाल दी, माता और भृत्य को किसी सुरक्षित स्थान में ठहरा दिया और खुद महात्माओं का सत्संग करने लगे। ऋषिकेश में स्वामी मंगलनाथजी का भी कुछ दिन सत्संग करते रहे।

आपको माता से प्रेम था। उसके सुख-दुःख की चिन्ता रहा करती थी। माता से कहते—"जो जो इच्छा तुमको हो वह सब हमसे कह डालो और मुझसे पूरी करा लो ताकि शरीर छोड़ते समय किसी प्रकार की चिंता न रहे।" माता मोहिनी की कामना थी कि उनको चारों धाम कराये जायें। आपने गरमी की छुट्टियों में स्त्री और माता को संग लेकर जगन्नाथ, द्वारिका आदि की यात्रा की। मातृ-भक्ति तो आप में कूट-कूटकर भरी थी। इसी कारण माता की प्रत्येक इच्छा को, जो विशेष

बन्धन का कारण न होती, ज़रूर पूरी करते ; परन्तु स्वयं तीर्थों में श्रद्धा रखते हुए भी आपने अपनी बुद्धि का प्रयोग कभी नहीं छोड़ा।

जगन्नाथजी की यात्रा में चित्रकूट के वैरागी साधु, रामावतारजी भी आपके साथ थे। रास्ते में एक स्टेशन पर सरकार की ओर से यात्रियों की देख-भाल होती थी कि कोई छूत के रोग से बीमार तो नहीं है। वहाँ एक थानेदार थे जो अपनी शक्ति का बेजा प्रयोग करके यात्रियों को दिक़ करते और उनसे घूस लेकर किसीको कम किसीको अधिक देर तक रोक रखते थे। पहले तो आप इस लीला को चुपचाप देखते रहे, फिर बड़ी गम्भीरता से उससे बात-चीत चलाई कि वह क्यों ऐसा अनुचित कार्य्य कर रहे हैं। आपके कपड़े तो सीधे-सादे थे ; पर आपने यह न जताया कि आप कौन हैं । उससे बात-चीत करके उसको उस घृणित कार्य्य पर शरमिन्दा किया और उसे यात्रियों से अधिक सभ्यता का बर्ताव करने पर बाधित किया।

जब आप जगन्नाथ जी पहुँचे तब रथ की लीला देखी। कभी तो रथ बहुत लोगों के खींचने पर भी नहीं हिलता था, पर कभी सहसा ही चल पड़ता था। पुजारी इसको जगन्नाथ की लीला कह कर भोले-भाले यात्रियों को ठगते थे। यहाँ तो साइन्स पढ़ते-पढ़ाते अन्वेषण की बुद्धि प्राप्त की थी। विचार ऐसी लीला को कब मानता था। आपने रात के समय मोम-बत्ती और दियासिलाई उठाई और स्वामी रामावतारजी को बुलाकर जहाँ रथ खड़ा था वहाँ जाने का विचार किया। स्वामी रामावतारजी ने मना किया कि कहीं मन्दिर के पुजारी बिगड़ न जायें और मारना-पीटना न शुरू कर दें ; पर आप तो दृढ़ थे कि "हम

कोई चोरी थोड़ी करने जा रहे हैं।" वहाँ जाकर देखा कि रथ के पहिये में एक ब्रेक लगा है। ऊपर लोहे का एक डण्डा था जिसको नीचे गिराने से ब्रेक से रथ अटक जाता था।

ऐसी एक दूसरी घटना आपको रामेश्वर-यात्रा में पेश आई। वहाँ यह गाथा प्रसिद्ध है कि गङ्गोत्री का जल डालने से शिव-लिंग डेढ़ हाथ बढ़ जाता है; पर आप ऐसी कल्पना पर कैसे विश्वास कर सकते थे। पुजारी से अन्दर जाकर जल चढ़ाने की आज्ञा माँगी; पर वहाँ तो लीला ही और थी। पुजारी ने कहा—"राजा से आज्ञा लेनी पड़ेगी।" फिर आपने लालच देकर पूछा कि "एक पुरुप को अन्दर जाकर जल चढ़ाने की बड़ी इच्छा है। यदि जरूरत हो तो वह रुपया भी खर्च करने को तैयार है।" पुजारी ने हजार रुपया माँगा। लोभ का भाँडा फूट पड़ा। विचारे भोले-भाले यात्री दस रूपये की, गङ्गोत्री जल की ढाई तोला की शीशी देवता पर चढ़ाते थे। कोई-कोई अधिक धन देकर ज्यादा जल चढ़ाया करते। आपने इस भूल से तो रुपया न दिया क्योंकि पहले इसी में संदेह था कि जल गङ्गोत्री का है कि नहीं। एक दूसरी खिड़की से समीप जाकर देखने लगे। लिंग फूलों से ढका रहता था। सब जल इकट्ठा करके घड़े में डाल लिया जाता। फूलों से ढके हुए लिंग को तो दूर खड़े यात्री स्पष्ट नहीं देख सकते थे; पर जब ऊँचे से जल की धारा उस पर पड़ती तो फूल हट जाते और लिंग दीखने लगता। भोले-भाले यात्री यही समझते थे कि लिङ्ग बढ़ रहा है। ऐसा भ्रम पैदा करना कोई बड़ी बात नहीं। आप पुजारियों की ऐसी-ऐसी लीला को देखकर विचारते रहे कि मनुष्य लोभ-वश तीर्थ-स्थान में भी पाप करने से नहीं चूकते। श्रद्धालु यात्री तो ठगे जाने पर भी अपनी तपस्या का लाभ अवश्य प्राप्त करता है और

पण्डे और पुजारी भी अपने कुकर्म का फल अवश्य पाते हैं। सच है, 'ठगा जाना ठगने से बहुत अच्छा है।'

'कबीर' आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठग्यां सुख ऊपजे, और ठग्यां दुख होय॥

शास्त्रों में आपकी बड़ी श्रद्धा थी; पर पुजारियों के लोभ-जाल को आप सदैव बुरा कहते थे और उससे बचने का विचार रखते थे। इस प्रकार माता को संतुष्ट करने के लिये उसको चारों धाम करा दिये; पर जब बद्रीनारायण की यात्रा पर गये, तब स्त्री का शरीर तो छूट चुका था, केवल माता और भाई को साथ ले गये थे। बद्रीनारायण की सेवा में प्रार्थना और प्रण कर आये थे कि 'प्रभु! आपका आशीर्वाद रहा, तो एक बार साधु-वेष में आपके दर्शन करूँगा।'

इतना होते हुए भी आपने विवेक और विचार को कभी हाथ से न जाने दिया। जब आपकी स्त्री का शरीर छूट गया और माता और भाई ने बहुत आग्रह किया कि विवाह ज़रूर करना होगा और यह भी धमकी दी कि हम बिना पूछे ही सगाई कर लेंगे, तब शर्म के मारे तुम्हें विवाह करना ही पड़ेगा; तो यहाँ पर आप कड़े हो गये और कहने लगेः—"यदि कोई षड़-यन्त्र हमारे विरुद्ध रचा गया तो हम शीघ्र साधु हो जायेंगे और यदि माता ने कहीं सम्बन्ध कर भी दिया, तो हम स्पष्ट उनको इन्कार लिख भेजेंगे। जो भी बदनामी होगी वह तुम्हीं लोगों की होगी और जो कुछ इससे लड़कीवालों को कष्ट होगा उसका पाप भी तुम्हीं को होगा।" इस दृढ़ता को देखकर वह सब चुप हो गये। स्त्री के शरीरान्त के उपरान्त आपने उसके जेवर इत्यादि सब दान कर दिये थे। इससे भी आपकी दृढ़ता प्रतीत होती है। फिर माता मोहिनी ने यही कहा, "बेटा, जब तक मेरा

शरीर है, तब तक तो निर्वाह कर, पीछे जैसी तुम्हारी इच्छा हो करते रहना।" माता की सेवा का भी विचार था; पर इस सम्बन्ध में आपने उससे कहा:—"मैं एक रुपया रोज़ पर भी नौकरानी रखकर तुम्हारी सेवा कराऊँगा। वैसे तो मैं ख़ुद भी हर समय तैयार हूँ; पर विवाह नहीं कर सकता।"

लोकेषणा की भी कोई इच्छा नहीं थी। जब आप कपूरथला के राज्य-कर्मचारी के लड़कों को पढ़ाया करते, तो उनका यह विचार था कि और नहीं तो बदनामी के भयसे ही हम विद्यार्थी फ़र्स्ट इयर में तो पास हो जायेंगे, क्योंकि आपही उनके परीक्षक थे। जो लड़के एक ही अध्यापक के पास कालिज में भी पढ़ते हों, घर में भी वह उनको पढ़ाता हो; फिर यदि वही उनका परीक्षक हो और वह लड़के फ़ेल हो जायें, तो यह पढ़ानेवाले की बदनामी है। पर यह विद्यार्थी फ़र्स्ट इयर के इम्तिहान में फ़ेल हो गये; और जब ऐसे विचार प्रोफ़ेसरजी ने सुने, तो आप कहने लगे कि "ऐसी आशा हम से करना फ़ज़ूल है। जब विद्यार्थी कम समझ हैं तो उसे फ़ेल ही होना है। बदनामी के भय से पास कर देना पाप है। यह मुझसे कैसे हो सकता है।"

गुरु-कुल में रहते हुए आप माता मोहिनी से बालकों का सा बर्ताव करते। कभी उसकी गोद में लेट जाते, कभी उसको गोद में उठा लेते, कभी उसकी छाती से चिमट जाते और बालकों की तरह माता के स्तनों को मुंह में डाल लेते। बूढ़ी माता इससे ज़रा घबराती भी तो आप झट कहते "जब बचपन में मुझे दूध पिलाया है, तो अब इस वृद्ध अवस्था में किस बात का संकोच है। शरीर के अंग तो वैसेही हैं, जैसे पहले थे।" रुग्ण अवस्था में आप सब प्रकार से माता की सेवा करते, नहलाते और भोजन भी कराते थे।

यदि कोई शेष स्त्री रूपी संस्कार था भी, तो ऐसी बालक-वृत्ति के रहन-सहन से नष्ट हो गया। हाड़-मांस-चाम के पुतले के संस्कार इतने गड़ गये कि युवा-वृद्ध सब स्त्रियों को देखकर उनकी शरीर-रचना का ही सदैव विचार रहता और सबको माता रूप जानकर नमस्कार कर लेते। यदि वेश्या भी सामने आ जाती तो उसके चरणों में माथा झुक जाता। आप कहा करते थे, "ज्ञानी की दृष्टि में सब स्त्री एक समान हैं। काम के वश जैसी वेश्या है वैसे गृहिणी भी।"

आपकी वृत्ति अब बहुत ऊपर उठ चुकी थी। माता के साथ रहना भी बंधन प्रतीत होता था। कपूरथला से चलते समय जो ७००) रुपये पुरस्कार में मिले थे वह इस विचार से रख छोड़े थे कि यदि माता का शरीर न छूटा और चित्त पहले ही उपराम हो गया, तो इस धन से माता का निर्वाह होता रहेगा। परन्तु इसकी आवश्यकता न पड़ी। एक दिन माता नियमानुसार गंगा-स्नान करने गई; फिर लौट कर न आई। आपने जान लिया कि माँ ने शरीर दाह करने का कष्ट भी पुत्र को नहीं देना चाहा। जब आचार्य्य जी ने कहा कि जाल डलवाये जायें और वृद्धा का शरीर तलाश किया जाये, तो आपने बड़ी उदासीनता से उत्तर दिया—"इससे क्या लाभ है? फिर भी तो गंगाजी में डालना है। यह उसकी कृपा है कि उसने इतना कष्ट भी नहीं दिया।" मोह पर आपने पूरी जय प्राप्त कर ली थी। माताजी की इच्छानुसार अपने भाई को रुपये देकर गया में पिंड भराने के लिये भेज दिया। मातृ-भक्ति और विवेक का कैसा अनुपम मेल है।

चौथा-प्रकरण (लोभ-त्याग)

लोभ पर भी क़ाबू पाना अब कोई बड़ी बात न थी। कपूरथला में रहते हुए भी बहुत सा रुपया पुण्य कार्य में ख़र्च किया करते थे। अपना तो निर्वाह मात्र ही करते थे। बड़ी सादगी से जैसे लोग ग्राम में रहते हैं वैसे ही रहा करते थे। तीर्थ-यात्रा तथा साधु-सेवा में ही धन अधिक व्यय होता था। भाई को भी यथा अवसर सहायता देते रहते थे; पर उससे कभी पैतृक सम्पत्ति में से कोई आशा न करते। जब स्त्री का शरीर छूट गया, तो आपकी ज़रूरतें और भी कम हो गईं। तब ऐसा विचार हुआ कि किसी ऐसी जगह पर जायें जहाँ जीवन अधिक सरलता तथा सुगमता से कट सके। गुरु-कुल कांगड़ी से आचार्य मुन्शीरामजी ने कई बार वहाँ आने को कहा था। सं० १९६४ की ३० वैसाख को आपने इस्तीफ़ा दे दिया और गुरु-कुल में जाकर गणित तथा साईन्स पढ़ाने का कार्य करने लगे। वहाँ पर पहले ५२) रुपया मासिक लेते थे। पीछे जब देखा कि यह ज़रूरत से अधिक है, तो केवल पैंतीस रुपया मासिक लिया करते।

यहाँ पर आप गुरु-कुल की हद के पार गंगा के समीप कुटी बनाकर रहा करते थे। बन्धन कम होने से अवसर अनुसार खरी-खरी बात कहने से कभी न चूके। एक बार आचार्य जी ने सब अध्यापकों को बुलाकर पूछा कि यदि कोई दोष उनके प्रबन्ध में हो तो उनको बताया जाये। बाक़ी तो सब लोग दबे रहे; पर आपने बड़ी सरलता से जैसी-जैसी त्रुटि आप ख़ुद अनुभव करते थे या आपके दूसरे मित्र कहा करते थे, वैसेही

कह दिया। यह बातें एक दूसरे भक्त को बुरी लगीं। वह कहने लगे कि यह कहाँ का तरीक़ा है कि मुख्याधिष्ठाता को बुलाकर उसके काम में दोष लगाये जायें। आपने उत्तर दिया "जब आचार्य जी ने हमें इसी लिये बुलाया है, तो हमारा भी कर्तव्य है कि जो कुछ हम समझते हैं उनसे स्पष्ट कह दें। यदि उनको यह सब बातें सुनने की इच्छा न होती, तो हमें बुलाया ही क्यों। वैसे अपने आप हम लोग क्यों कहने आते थे।" पीछे से यह सब बातें आचार्य्यजी को भी बुरी लगने लगीं। कुछ लिखा-पढ़ी भी होती रही। आपको धमकी भी दी गई कि यदि यह सब बातें आपकी सरविस-बुक में लिखी जायें, तो उसका प्रभाव आपके लिये भविष्य में दुःखदायी होगा। पर यहाँ तो लोभ पहले ही छोड़ चुके थे। इस धमकी से आप कैसे डर सकते। खैर, आचार्य्यजी की इच्छा पर वह सब पत्र फाड़ डाले गये। यदि आपको धन की चिंता होती तो कपूरथला छोड़कर ही क्यों आते। आप तो गुरु-कुल-भूमि से पहले ही बाहर रहते थे और फिर शीघ्र ही इसको छोड़कर स्वतन्त्र वृत्ति से विचरने लगे।

पाँचवाँ प्रकरण (शारीरिक साधन)

आपने जितने साधन किये उनमें से अभी तक हमने उनका ही वर्णन किया है जिनका सम्बन्ध वैराग्य से है। वैराग्य तो व्यवहार में ही परिपक्व होता है। अपने दिन-रात के कार्य को शुद्ध करने के लिये कैसे-कैसे यत्न आपने किये, यह स्पष्ट हो चुका है। उपरामता-उदासीनता से सब कार्य्य करते रहे। अपने लक्ष्य

पर आपकी दृष्टि सदैव बनी रही। किसी दूसरी चिन्ता को अपने रास्ते में बाधक नहीं होने दिया—चित्त को किसी नई उलझन में न फँसाया और सादगी से जीवन का निर्वाह करते रहे। प्रयत्न इसी बात का रहता था कि जो कुछ लगाव-लपेट है उसका सर्वनाश करके पर-वैराग्य सिद्ध कर लिया जावे। अपनी जीवन-यात्रा को बड़ी सरलता, उदासीनता, तप, विवेक और दृढ़ता से गुज़ारते हुए उन्होंने अपने आपको एक निष्पाप, निर्द्वन्द्व, निर्मोह, स्वच्छन्द संन्यासी के जीवन के लिये तैयार किया।

अभी तक हमने योग-सम्बन्धी साधनों की ओर निर्देश भी नहीं किया। अब हम ऐसी साधना की ओर ध्यान देते हैं। आगरा रहते हुए भी आपको अनेक साधु-सन्तों के दर्शन होते रहते थे। बड़े-बड़े संन्यासियों और विद्वानों के साथ वार्त्तालाप करने से आपको यह निश्चय हो चुका था कि बिना अनुभव के तत्व का ज्ञान नहीं हो सकता। केवल वाक्युद्ध से संसार पर विजय पाना मृग-तृष्णा का जल पीना है। आपका अनथक प्रयत्न था कि किसी ऐसे सिद्ध योगी की भेंट हो, जो आपको उच्च साधन में लगाकर परले पार पहुँचा दे। कई ऐसे लोगों से आगरा में भेंट हुई, पर उनकी बढ़ी-चढ़ी बातों से आपको सन्तोष न मिला।

पहला साधन आपने कपूरथला में किया। वहाँ हरिहर नामी हठ-योग में निपुण एक ब्रह्मचारी रहते थे। वे लोगों को हठ-योग सीखने की प्रेरणा किया करते; पर बहुत कम लोगों की रुचि इस ओर होती। हरिहरजी का शरीर बड़ा बली था। आप लम्बे तेजस्वी पुरुष थे। भूतपूर्व कश्मीर महाराज के राज-गुरु ब्रह्मचारी नित्यानन्दजी भी आपके ही शिष्य थे। कनखल के विख्यात वैद्य योगेश्वरजी जोशी ने भी आपसे ही हठ-योग की दीक्षा ली थी। सियारामजी ने भी इन्हीं से हठ-योग सीखा। फिर गरमी को

छुट्टियों में आप हरिहरजी के साथ वैष्णव देवी तथा कश्मीर गये और हठ-योग की अनेक क्रियाओं का पूर्ण अभ्यास करते रहे। यह ब्रह्मचारी हठ-योग के पूरे मास्टर थे। प्रोफ़ैसर कहें तो बेजा न होगा। पर इससे आपको कुछ शरीर-शुद्धि और चित्त की निर्मलता तो प्राप्त हुई; पर असली वस्तु कुछ न मिली। यह खेल तो वैसे तजुर्बे के तौर पर किया था; पर जो लाभ इससे होना था वह आपको पूर्णतया प्राप्त हो गया।

छठा प्रकरण (गुरु-परिचय)

परन्तु राज-योगी की जुस्तजू भी आपको लगी रहती थी। ईश्वर बड़े दयालु हैं। जो प्रभु का दरवाज़ा खटखटाता रहता है उसको वह निराश नहीं करते। शीघ्र ही परम देव ने आपकी यह शुभ कामना पूर्ण रूप से पूरी करदी। कपूरथला में रहते हुए आपको पता चला कि फ़ीरोज़पुर में एक महात्मा रहते हैं, जो बड़े विरक्त हैं और राज-योग में बड़े कुशल और प्रवीण हैं। उनकी प्रशंसा सुनकर श्रद्धा पैदा हुई, और शीघ्र ही आप उनके पास पहुँच गये।

महात्माजी के गृहस्थ तथा संन्यास के नाम का पता नहीं; पर कई सज्जन उनको अद्‌भुदानन्द के नाम से निर्देश करते हैं। उन्होंने स्वयं किसी ऐसी उपाधि का पता नहीं दिया। इनका जन्म-स्थान राहों जिला जलन्धर था। क्षत्री खोसले कुल में उत्पन्न आप तीन भाई थे। एक आपसे बड़े थे और एक छोटे। व्यापार आपका गृहस्थी धन्धा था। पटियाला में भाइयों समेत

जीवन व्यतीत करते थे। जब आपकी आयु तीस वर्ष की थी तो स्त्री का शरीरान्त हो गया। आप भी योग के इच्छुक थे। संतान थी ही नहीं। भाइयों के आग्रह करने पर भी आपने दोबारा इस फाँसी को अपने गले में डालना स्वीकार न किया। उनसे केवल ५००) रुपये लेकर बाक़ी सम्पत्ति उनको दे दी। वहाँ से आप अपने पथ-प्रदर्शक की खोज में निकले। सुन रक्खा था कि नर्मदा के तट पर कोई ऐसे महात्मा हैं। उधर को ही चल पड़े और मध्य प्रांत-खँडवा देश के जब्बलपुर नगर में पहुँचे।

यहाँ पर आपने हाथी-दाँत अथवा जवाहरात और अन्य ऐसी वस्तुओं का कारोबार शुरू कर दिया। आप जवाहरात के परखने में बड़े दक्ष थे। थोड़े ही काल में काम भली-भाँति चल पड़ा। इधर ख़र्च तो था ही नहीं। अन्न, वस्त्र, कम्बल आदि का सदाव्रत चला दिया। जो साधु ब्राह्मण किसी याचना को लेकर आता, वह तुरन्त पूरी कर दी जाती। किसी प्रकार की पूछ-ताँछ नहीं की जाती थी। जैसे आप सत्य पर आरूढ़ थे, वैसे ही आप को मुनीम भी सद्गृहस्थ मिल गये, जो बड़ी सचाई से सब कार्य्य आज्ञानुसार और नियमपूर्वक करते थे। इधर शास्त्रों का विचार और चर्चा भी चलती रहती थी। रमते साधुओं से योगियों के सम्बन्ध में पूछते रहते थे। आपको पता चला कि तिब्बत में लामा लोग योग में बड़े निपुण हैं।

इसी भावना से सौदागर के रूप में ख़च्चरों पर माल लदाकर घोड़ों पर आरूढ़ हो कश्मीर पहुँचे। मध्य प्रांत का कार्य्य अपने विश्वासपात्र मुनीमों को सौंप आये थे। दो साल तक व्यापार की आड़ से गुरु की खोज में लगे रहे। तिब्बत का माल हिन्दुस्तान भेजते रहे और यहाँ का उधर मँगाते रहे।

प्रभु ने आशा पूरी करदी। पता चला कि एक मेला होने

वाला है जिसमें वड़े-वड़े महात्मा लामा योगी भी आते हैं। इसी विचार से उस मेले में तिव्वत पहुँचे। वहाँ एक वयोवृद्ध विरक्त महात्मा मिले। दोभाषिये की सहायता से गुरु-शिष्य में वार्त्तालाप हुआ। आज्ञा हुई कि "एक साल ठहरो, अपने भोजन आदि के वास्ते कुछ धन रख लो। शेष सव आदमियों को वापस कर दो।" उचित आज्ञा देकर सवको देश लौट जाने को कह दिया। साल भर गुरु-सेवा में साधन करते रहे। जव अवस्था अच्छी हो गई, तो गुरुजी के आदेश के अनुसार आप वापिस देश में लौट आये। आज्ञा हुई थी कि दो-तीन साल चुपचाप साधन करते रहना, जव तक अवस्था परिपक्व न हो जावे। तत्पश्चात् जैसी रुचि हो, स्वच्छन्द वृत्ति से विचरना।

वापिस आकर आप अभ्यास में लग गये। अभ्यास वहुत पक्का होना चाहिये था। "दीर्घ काल निरन्तर सेवित होने से दृढ़ भूमि होती है।" निर्विकल्प अवस्था में ठहरना वहुत कठिन है, अतीव कठिन है। जव तक तमाम पाशों को तोड़ न दिया जाय, तव तक वह अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती। निरन्तर दीर्घ काल इसलिये आवश्यक है कि शरीर की अवस्था चलने-फिरने से वा खान-पान के नियमित न रहने से विलकुल प्रतिकूल हो जाती है; और जब भी जोर दिया जाता है, केवल पुराना पाठ ही चलता है। अन्य परा अवस्था नहीं आ सकती। इसलिये नियम सहित चिरकाल तक नाशा से रहित अभ्यास का सेवन होना चाहिये।

ऐसी ही धारणा को लेकर आप लगातार पूरे चौदह वर्ष वरावर अभ्यास करते रहे। तव आप पूर्ण अवस्था को प्राप्त कर पाये। पाँच वर्ष के क़रीव एक ही आँगन में रहे; वहीं थोड़ा टहल लेते; फिर पड़े रहते। वाहर जाने को उनका चित्त नहीं चाहता था; वैसे तो पूरी स्वतन्त्रता थी ही। इसका अभ्यास वढ़ते-वढ़ते

इतना हो गया था कि बिना परिश्रम वा प्रयत्न के वृत्ति आत्माकार रहती थी। चलना-फिरना, आना-जाना अथवा व्यवहार का जारी रखना यही सब शरीर को कितने बिगाड़ने वा मन को क्षोभित करने वाले विघ्न हैं; जब तक वैसी अवस्था न आ जावे, तब तक परम कल्याण नहीं हो सकता। इसका एक मात्र उपाय राग-द्वेष के तमाम पाशों को विचार और व्यवहार द्वारा काटना है। कोई विरला अभ्यासी ही इस अवस्था को पहुँचता है। हर एक प्रकार के बन्धन से अपने चित्त को निर्विघ्न करके अभ्यास करता जावे, तो सम्भावना है कि उस अवस्था में स्थिति हो; नहीं तो नीचे तो केवल दिल्लगी है, अभ्यास नहीं। इस प्रकार चौदह वर्ष तक आप बड़े बन्धन से अभ्यास करते रहे।

कारोबार मुनीम लोग करते थे। दान-प्रणाली भी ख़ूब चलती रही। कभी-कभी वेदान्त शास्त्रों का पाठ भी सुना करते। बहुत समय तो अन्दर ही रहकर साधन करते थे। आपके धन-वैभव, दान, ध्यान और ज्ञान की चर्चा आपके भाइयों के कानों तक भी पहुँची। वह लोग यहाँ आकर कहने लगे कि "आपकी सम्पत्ति का प्रबन्ध हम करेंगे। यहाँ तो धन ऐसे ही लुटाया जा रहा है।" पर आपने इसको स्वीकार न किया और कहा, "इस सम्पत्ति से आपका कुछ वास्ता नहीं, यह धन तो है ही लुटाने के लिये। मैं तो केवल आपसे ५००) रुपये लाया था; वह आप वापस ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त आप किसी प्रकार की आशा न रक्खें।" ऐसी दृढ़ता देखकर वे बिचारे अपना सा मुँह लेकर वापस चले गये। आपने मोह और लोभ पर तो पूरा आधिपत्य प्राप्त कर लिया था।

इधर आपका भोजन बहुत ही सात्विक और सूक्ष्म हुआ करता था। इस प्रकार जब आपकी भूमिका दृढ़ हो गई और

स्वाभाविक तौर पर ही ब्रह्म-स्थिति होने लगी; तो आपने घोषणा की कि 'आत्मा' का 'बुद्धि' से विवाह होगा।" बड़ा समारोह हुआ। बाजे बजाये गये। सब इष्ट मित्रों तथा अभ्यागतों का नाना व्यंजनों से आतिथ्य सत्कार किया गया। कई दिन तक ख़ूब आमोद-प्रमोद होता रहा। दान भी ख़ूब दिया; मानो धन लुटाते ही रहे; पर लोग बड़े चकित थे कि विवाह तो किसी का न हुआ, शेष तो सब कुछ हो गया। आपने कहा "क्योंकि अब 'मति' का 'आत्मा' से सम्बन्ध हो चुका है, अतः यदि यह संसार के कार्य्य में विचरेगी, तो व्यभिचारिणी हो जायगी। अब तो आठों याम आत्म-चिंतन ही रहा करेगा। अव्यभिचारिणी भक्ति का अनुष्ठान करने के लिये अब हम इस सब चिन्ता से मुक्त होते हैं।" जब मुनीमों ने पूछा कि शेष सम्पत्ति को क्या किया जाय, तो आपने कहा, "जो जिसके पास है वह उसको रक्खे।" इसके बाद आप वित्तैषणा को छोड़, संसार-चिन्ता से मुक्त हो, लोभ पर लात मार, ईश्वर-आधार पर विरक्त वृत्ति से विचरने लगे।

आप बहुत साल तक बड़े कड़े नियम से रहते रहे। स्त्रियों का तो दर्शन ही नहीं किया करते थे। उनका विचार था कि "यह वृथा ही समय गँवाती हैं, कुछ करती-धरती नहीं हैं। उनके पास आने से निन्दा के सिवा क्या मिलना है। काजल की कोठरी में जाने से मुँह काला ही होता है।" रुपये का भी दर्शन नहीं किया करते थे। आटा-वस्त्र जितना कुछ आवश्यक होता, उतना ही रक्खा करते।

शेष जीवन के सम्बन्ध में हम बहुत कम जानते हैं। अनेक स्थानों पर आप विरक्त वृत्ति से विचरते रहे। पटियाला भी गये; तो आप के भतीजों ने एक कम्बल भेंट किया; पर आप बिना

आवश्यकता ग्रहण नहीं करते थे। जब उन्होंने कहा, "किसी को दे दीजिये," तो उत्तर मिला "ऐसी धारणा को लेकर मैं अपनी सम्पत्ति छोड़ कर नहीं चला था, अब दान देने की इच्छा नहीं है।" फिर पीछे कई सालों से फीरोज़पुर में आकर रहने लगे थे। एक ही कुटी में कई वर्षों रहे। बाहर बहुत कम आते-जाते थे। भक्त लोग थोड़ा आटा-दाल भेज दिया करते, उसीमें निर्वाह हो जाता। पीछे उसी कुटी में आपका शरीर शांत हो गया। स्वामी बलदेवानन्दजी बहुत काल से आपकी सेवा करते रहे थे। शरीरान्त के पश्चात उसी स्थान में आपकी समाधि भी बना दी गई।

सातवाँ प्रकरण (योग-साधना)

१६०६ ई० में (सं० १६६३) बड़े दिन की छुट्टियों में सियारामजी ने फ़ीरोज़पुर जाकर साधन आरम्भ किया। थोड़े दिन पश्चात् जब प्लेग के कारण कालिज में दस दिन की छुट्टी हो गई थी, तो भी आप श्री गुरुदेव के चरणों में रहकर साधन करते रहे। कपूरथला में आकर साधन में एक चित्त होकर लग गये। वैराग्य तो पहले ही बढ़ा-चढ़ा था, मोह आदि के संस्कार क्षीण हो चुके थे, विचार के आधार पर संसार निरर्थक भासने लगा था, वृत्ति शीघ्र अन्तर्मुख हो गई। कालिज के पढ़ाने के समय से अतिरिक्त शेष सारे समय में अन्दर ही रहते। नौकर को कह दिया था कि कोई भी मिलने आये, उनसे कह दो कि आराम करते हैं, कालिज में मिलेंगे। दो-तीन मास के अन्दर

आपकी शक्ति जग पड़ी। शठ-चक्रों की लीला को भी बड़ी उत्सुकता से देखते रहे। प्रकाशसमाधि के विचित्र अनुभव किये। इस प्रकाश में सब हड्डी-पसली दीखने लगी, कुण्डलिनी के भी दर्शन हुए। माया की स्त्रियों का आक्रमण भी हुआ; पर जब काम-संस्कार ही न था तो क्या होता, उदासीन वृत्ति से सब कुछ देखते रहे। तत्पश्चात् तपस्वी साधु-संतों और सिद्धों के दर्शन भी होने लगे। कोई अत्यंत शीत काल में निर्वस्त्र विचर रहे हैं और कोई समाधि में मस्त दीखते थे। यह सब खेल आप उदासीन वृत्ति से देखते रहे। आत्म-शक्ति के जगने पर निर्मल-स्वच्छ प्रकाश में आपका चित्त मस्त रहने लगा। प्राण की तेज़ गति के कारण बहुत-कुछ शारीरिक कष्ट भी सहारना पड़ा; पर सब बातों का विचार छोड़कर गुरु-आज्ञा अनुसार आप प्राण-उपासना में लगे रहे। तीन-चार महीने में आपने वह अवस्था प्राप्त करली जिसे कोई विरला ही तीन साल में प्राप्त कर सकता है। इधर प्राण की तेज़ी का यह हाल था कि पढ़ाते-पढ़ाते समाधिस्थ होने लग जाते। बड़ी मुशकिल से सँभल कर रुक-रुक कर बोलते। स्त्री का तो पहले ही शरीर छूट चुका था, अब यह काम आपके लिये बन्धन प्रतीत होने लगा। शीघ्र ही वैशाख १९६४ में काँगड़ी चले गये। वहाँ आपने अपनी कुटी के नीचे एक गुफ़ा खुदवा ली थी। सारा समय उसीमें रहकर साधन करते रहते। बारह बजे के बाद ही पढ़ाई का काम किया करते। गुरु-कुल में काम बहुत हलका था, समय भी बहुत मिलता था; जैसा निर्जन स्थान आप चाहते थे और जिसके अभाव के कारण कपूरथला को छोड़ा था, वैसा आपको यहाँ सुप्राप्य था। कपूरथले में तो आपको भजन का रस बहुत न आया; पर यहाँ रहकर आपने खूब

कमाई की। आपको यह चिन्ता रहा करती थी कि गुरुजी का शरीर वृद्ध और कमजोर होने के कारण कहीं जल्दी न छूट जाये। इस वास्ते शीघ्र ही काम कर लेना चाहिये। कार्तिक में आप फिर गुरुजी से मिलने आये। इधर मार्गशीर्ष सं० १९६४ में गुरुजी का शरीर छूट गया; परन्तु आप बड़े उत्साह और गंभीरता से अपने साधन में लगे रहे। गुरु-कुल पहुँचने के थोड़े काल ही बाद आपकी अवस्था बहुत उच्च हो गई। अनेक सिद्धियाँ प्रकट होने लगीं। मित्रों के पत्रों के आने की सूचना उनको पहले ही दे दिया करते थे। आत्मा के सत्य काम सत् संकल्प होने का आपको पूरा-पूरा अनुभव हो गया। जैसा चाहते वैसा विषय उपस्थित हो जाता; पर इस सब लीला को आपने विघ्नरूप समझकर शीघ्र ही छोड़ दिया। ब्रह्माकार वृत्ति का अभ्यास दृढ़ करने लगे। संकल्प पर तो जय प्राप्त कर ही ली थी; अब वैराग्य के आश्रय से निराधार-निरवलम्ब अमृतरूपी पीयूष-धारा का आनंद लेने लगे। मन-बुद्धि चित्त के संसर्ग को त्यागकर आत्मानंद में मग्न होकर परम पद का अनुभव करने लगे।

आपको गुरुजी से तो थोड़ी ही सहायता लेने का अवसर मिला क्योंकि उनका शरीर शीघ्र ही छूट गया; पर जो व्यवहार-शुद्धि और वैराग्य सम्बन्धी साधन आप पहले कर चुके थे उससे आपको बहुत सहायता मिली। विचारशील तो आप थे ही, और फिर अभ्यास भी इतनी लग्न से किया कि मानो बहुत देर से प्यासे पुरुष को अमृत-पान करने का अवसर मिल गया। जब संसार वृथा भासने लग गया, तो फिर चित्त ने आत्मा की ओर शीघ्रता से जाना ही था। १९०७ ई० में जब गरमी की छुट्टी हुई, तो आप देहरादून नाला पानी में जाकर रहने

लगे। मास्टर गौरीशंकर ने सब सुप्रबन्ध कर दिया। सब काम नौकर के सुपुर्द था। आप खुद आठों याम भजन में रहते। कुछ समय बाद नौकर भाग गया; पर पास के देहात से आपको सहायता देने वाले मिल गये। पानी तथा आहार वह पहुँचा दिया करते थे। केवल दूध और मक्खन के सूक्ष्म आहार पर बड़ी तेजी से छुट्टी भर साधन करते रहे। जब गुरु-कुल में पहुँचे, तो कई बार तो पढ़ाते-पढ़ाते आँखें उलटने लगती थीं और ध्यान खिंचता था। वृत्ति इतनी चढ़ गई थी कि यह (पढ़ाने का) बहुत थोड़ा सा काम भी विघ्न सा प्रतीत होने लगा। शीघ्र ही आपने इस स्थान को छोड़ने का निश्चय कर लिया।

आठवाँ प्रकरण (सत्संग)

स्वतंत्रता से विचरने के लिये कई अनेक साधन आपने किये, जिनका उल्लेख करना भी अति आवश्यक है।

आपकी गुण-ग्राहक वृत्ति सदैव बनी रही। अन्तरीय साधन तो जिस प्रकार से चल रहा था उसमें संतुष्ट होकर लगे रहे। गुरुजी का शरीर तो शीघ्र शांत होगया था; परन्तु उस थोड़े काल में स्वयं इतने अनुभव प्राप्त कर चुके थे कि फिर भटकने की भावना पैदा नहीं होती थी। फिर भी जहाँ-तहाँ पता लगता कि कोई विरक्त महात्मा रहते हैं, तो उनके दर्शनों को अवश्य पहुँचते और उनसे बात-चीत करके जीवन-मुक्ति की अवस्था के तत्व को समझने का यत्न करते। इनमें से कुछ संतों का वर्णन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

स्यालकोट में एक संत रहा करते थे, उनका नाम फूलासिंह था। उनके दर्शनों को सियारामजी कई बार गये। यह महात्मा गृहस्थ में ही रहते-रहते इतनी उच्च अवस्था को प्राप्त हुए थे। यह स्वयं सत्य बोलने के लिये प्रसिद्ध थे, और इनका सारा कुटुम्ब भी सत्य पर आरूढ़ था। सारे इलाक़े में यह मशहूर था कि यह कुटुम्ब सत्य का बड़ा अवलम्बन करनेवाला है। उस वक़्त उनकी अवस्था वृद्ध थी, घर से बाहर एक कुटी बनाकर रहते थे। गायें, भैंसें उधर चरने आया करतीं, तो आप उनकी तरफ़ थोड़ा ध्यान दे देते; परन्तु स्वयं तो भजन में ही लगे रहा करते थे, पशु अपने आप चरा करते। वह किसीके खेत में नहीं जाते थे। यदि कोई दूसरा पुरुष निगरानी में होता, तो पशु किसी न किसी खेत में जा ही पड़ते। उनके लड़के रोटी वहीं पहुँचा दिया करते थे। वहाँ ही वह दिन-रात ईश्वर-ध्यान में मग्न रहते। रात को शायद दो घंटे सोते थे। इन महात्माजी का कथन था कि "संसार को भोगना भुस का खाना है।"

अमृतसर में एक दूसरे विरक्त संत रहा करते थे। वे "कंघी वाले बाबा" के नाम से प्रसिद्ध थे। कंघी बेचकर जो कुछ उनको बचता उससे अपना निर्वाह किया करते। जीवन-मुक्ति का आनंद, बिना किसी पर निर्भर रहे, इस स्वतंत्र वृत्ति से लेते रहते थे। आपने उनसे आज्ञा मांग रक्खी थी कि जब चाहें उनकी कुटी पर पहुँच जावें। एक दिन कपूरथला से किसी रात को गाड़ी में अमृतसर पहुँचे। मकान पर देर से गये। वे सो रहे थे। आप भी चुप-चाप जाकर सो गये। जब वे जगे तो दूसरे को सोया देखकर बुलाने लगे; पर आप देखने के लिये कि क्या करते हैं चुप रहे। फिर बुलाया तो आप चुप रहे। तीसरी बार डंडे से इशारा करके कहा, "कौन है ?" इस पर भी आप चुप

ही रहे। तत्पश्चात् वे उठे और डंडा उठाकर कुछ कहने को ही थे कि आप यह सोचकर कि कहीं मार ही न दें, बोल पड़ेः "मैं सियाराम हूँ"। बावाजी कहने लगे कि "बोलते न तो मैं मारने ही लगा था"। आपने पूछा—"महाराज, आपके पास धन तो नहीं है, यदि चोर भी आता तो मारने की क्या जरूरत है"। बावाजी हँसकर कहने लगे "भाई, हमारी गुदड़ी भी कोई ले जाये, तो दूसरी कहाँ माँगते फिरेंगे"।

एक बार बावाजी को चोट आ गई। उनके भक्त लोग उनके लिये खाना ले आया करते थे। कंघी का वेचना तो बंद था; ऐसी अवस्था में थे कि सियारामजी वहाँ पहुँचे। भोजन के समय एक दम्पति भोजन ले आये। भोजन पा चुकने के बाद महात्मा जी उनसे कहने लगे, "अब कुछ आराम है, कल से भोजन न लावें, यथा पूर्व निर्वाह होता ही रहेगा"; पर वे आग्रह करते थे कि आप क्यों कष्ट करते हैं, हमें दो टिक्कड़ लाने में कोई दिक्क़त नहीं है। सियारामजी ने भी इस बात का अनुमोदन किया कि अभी आपके पैर में दर्द है, कहीं बिगड़ ही न जाये। क्या हर्ज है, यदि आप इनकी सेवा ग्रहण कर लें। बावाजी कहने लगे, "बेटा, तुम नहीं जानते; यह भोजन में 'बच' डाल लाते हैं, जिसके कारण पीछे से क़ै हो जाती है"। वे बिचारे बड़े हैरान थे। बहुत हाथ जोड़कर कहने लगे, "महाराज जी, हमने तो ऐसा कभी नहीं किया, कोई दूसरे ऐसा करते होंगे"। जब वे चले गये तो फिर आपने पूछा, "यह 'बच' की बात मेरी समझ में नहीं आई"। बावाजी ने उत्तर दिया, "बच्चा, यह दो पैसे की रोटी खिलाते हैं और दो हजार रुपये के पुत्र की भावना इसमें डाल लाते हैं। अब हमारे पास पुत्र कहाँ धरा है, इस वास्ते कष्ट सहारना ही भला है"। आप

बाबा जी की वृत्ति की बड़ी सराहना किया करते थे और कहा करते कि जीवन-मुक्त पुरुष अनेक प्रकार से अपना निर्वाह करते हैं।

जब आप गुरु-कुल काँगड़ी में रहते थे, तो काठियावाड़ के एक महात्मा के सम्बन्ध में आपने सुना। छुट्टियों में गुजरात पहुँचे, और उनके सत्संग से लाभ उठाया। वह कुम्हार का काम किया करते थे, बर्तन बना देने पर बेचने के लिये लड़कों को दे दिया करते और ख़ुद प्रायः भजन में रत रहते थे।

ऐसी गुण-ग्राहक वृत्ति से आपने अनेक महात्माओं, साधुओं और सज्जनों के दर्शन किये। उनके गुण तो ग्रहण करते ही थे; पर उनके दोष से भी अपने लिये चेतावनी ले लिया करते थे। दूसरों के दोष भी आपके लिये उपदेश रूप थे। कपूरथला में एक वेदान्ती ब्रह्मचारी रहते थे। उनसे बातें करने से पता चला कि वे कभी-कभी कामवश हो जाते हैं और इस प्रकार कई स्त्रियों को पुत्र भी दान देते रहे हैं। ऐसा सत्य वचन सुनकर आपकी श्रद्धा उनके प्रति बढ़ गई कि उन्होंने मान अपमान का विचार छोड़कर सत्य-सत्य कह दिया; पर कोई स्त्री उनके सामने किसी प्रकार की याचना के लिये आई थी और चाहती थी कि वे उस पर कृपा करें। इस बात का रहस्य आप पर तब खुला, जब आपने ब्रह्मचारीजी से कहा, "अब तो आप बहुत सिद्ध हो गये होंगे। क्या हर्ज है यदि उस बेचारी का काम भी हो जाये।" ब्रह्मचारीजी ने उत्तर दिया, "यह तो पहली बात की आशा करती है; क्योंकि इनको स्वभाव ही वैसा पड़ा है; पर मेरा शरीर अब बूढ़ा हो गया है। इस कष्ट को नहीं सहार सकता"। अब आपको पता चला कि बूढ़े होते हुए भी अभी तक इन्होंने काम को नहीं जीता। ऐसा जानकर उनके सत्यकथन पर तो *श्रद्धा रही*; पर यह

निश्चय हो गया कि "कोरा वाचक ज्ञान कुछ काम का नहीं, साधन के विना सब मानसिक विलास है, कथनी का वितण्डा-वाद है, निरर्थक ही नहीं, अपितु हानिकारक है।"

श्रद्धा तो आपकी पहले-पहल अन्धी हुआ करती थी; पर पीछे विचार के बढ़ने से, प्रोफ़ेसर वेनीमाधो सरकार और परिडत योगेश्वरजी की सङ्गति से, आपको छान-बीन करने की आदत हो गई। छिद्र-बीनो का स्वभाव तो आप में आ ही नहीं सकता था; पर जहाँ पहले दोष दीखता ही न था, वहाँ अब गुण-दोष दोनों दीखने लगे। गुण से तो आपको लाभ होता ही; पर दोष को जानकर भी यही विचार रहता कि प्रभु ही रक्षा कर सकते हैं, और यत्न करते कि 'यह दोष अपने में न आने पावें'। इस प्रकार से आप अपने आपको संन्यास के जीवन के लिये तैयार करते रहे।

नवाँ प्रकरण (यम-सिद्धि)

योग-साधन करने के बहुत पहले से ही यम-नियम का अनुष्ठान होता रहता था। आप जन्म से ही पुण्य संस्कार लेकर आये थे। जब आप कालिज में पढ़ते थे तब भी अपनी सत्य-प्रियता के लिये प्रसिद्ध थे। जिस बात को कह देते, उससे मुँह न मोड़ते। बात के बड़े धनी थे। सरल स्वभाव और कोमल हृदय के कारण ही आप सबको भाते थे। कांगड़ी में रहते हुए आपकी योगेश्वर जी से बड़ी मित्रता हो गई थी। योगेश्वर जी भी गुरु-कुल में वैद्य का काम करते थे, अथवा वैद्यक पढ़ाया

करते थे। वे कनखल में बाल-बच्चों समेत रहा करते थे। एक बार जोशी जी बहुत बीमार हो गये। दिमाग़ की कमज़ोरी के कारण कुछ पागल से होने लगे। आपकी मित्रता तो थी ही, अतः ऐसे कष्ट के समय उनकी सेवा में कनखल ही रहने लगे। उनका सभी कारोबार और पत्र-व्यवहार आपही किया करते थे। जब योगेश्वरजी को बहुत-कुछ आराम हो चला, तो उन्होंने एक पत्र अपने छोटे भाई को लिखवायाः—'मेरा शरीर बहुत अस्वस्थ है, आराम होने की सम्भावना कम है, तुम्हारी तरफ़ कुछ हिसाब है, यदि भेज दो तो भविष्यत के प्रबंध में मदद् मिलेगी।' आपने ऐसा लिखा, 'शरीर बहुत अस्वस्थ रहा, अब आराम होने की आशा है, हिसाब भेज दो तो भविष्य के प्रबन्ध में मदद् मिलेगी', और यहीं उनको सुना दिया। योगेश्वरजी ने पूछा कि 'आपने यह क्या लिख दिया, जैसा मैंने कहा था ऐसा लिखने से शायद् हिसाब जल्दी मिल जाता।' उत्तर दिया, "मरना तो तुमको है नहीं, आराम तो हो ही चला है, झूठ क्यों लिखते।' इस प्रकार से 'सत्य' आपको स्वाभाविक सिद्ध हो गया था। तभी तो आत्मा के सत्संकल्प का अनुभव फुरने लगा था।

'अस्तेय' के पालन में कैसे कमी हो सकती थी। जब लोभ और मोह की फाँस कट चुकी हो, तब किसी प्रकार से भी चोरी या बेईमानी कैसे प्रवेश कर सकती है? कपूरथला में पढ़ाते हुए किसी दूसरे को पढ़ाकर वेतन लेना तो आप बददियानती ही समझते थे। फिर काँगड़ी आकर अत्यन्त थोड़े वेतन पर आप काम कर रहे थे। आपका विचार था कि धर्मार्थ संस्थाओं में बड़े कष्ट से रुपया आता है, दान देने वाले भी अनेक भावनाओं को लेकर दान देते हैं, हृदय की शुद्धि के लिये आवश्यक है

कि जितना थोड़ा धन यहाँ से लिया जाये उतना अच्छा है। आपका विचार ऐसा था कि 'किसी चीज़ को वेफ़ायदा सर्फ़ करना वदद़ियानती है। वक़्त का ज़ाया करना, किसी काम को वेतवज्जो करना वदद़ियानती है। जो काम करना हो, उसको ख़ास तवज्जोह से करना चाहिये या जिस क़दर वक़्त हो, उस क़दर काम में लगना चाहिये।'

'अहिंसा' का पालन वहुत होता था। आपका हृदय दूसरे के दुःख को सह नहीं सकता था। विद्यार्थी जव काम करके न लाते, तो उनको ताड़ना करने में भी कष्ट प्रतीत होता था। वड़ी सावधानी से पढ़ाने और पूरी तरह समझाने के पश्चात् भी यदि कोई विद्यार्थी उस कार्य को न करता, तो आपको वड़ा दुःख होता। वहुत दिन तक कर्तव्य जानकर ताड़ना करते रहे; पर पीछे से इस कष्ट को नहीं सह सकते थे; छोड़ने की ही सूझी। करुणा के भाव जव जाग्रत हो जायें, तो फिर हिंसा होनी असम्भव हो जाती है। फिर भी कहा करते थे, "संसार इतना गड़वड़ है, कि विना इच्छा भी दूसरों को कुछ न कुछ कष्ट दिये विना काम चल ही नहीं सकता"। पर जव शरीर-यात्रा ही वोझ रूप हो रही है, तो दूसरों को दुःख देना और भी असह्य हो जाता है।" काँगड़ी में जिस गुफ़ा में आप रहा करते थे वहाँ साफ़ रखने पर भी विच्छू पैदा ही हो जाते। आपका आसन ज़मीन पर रहा करता था। जव कभी गुफ़ा को सफ़ा करते, तो चटाई के नीचे अनेक विच्छू चिपके हुए मिलते। इसी प्रकार आपकी माता की चारपाई पर भी विच्छू पाये जाते; पर आपने नौकर को आज्ञा दे रक्खी थी कि विच्छू को मारना नहीं; परन्तु चिमटे से पकड़ कर दूर फेंक देना। दो वर्ष तक काँगड़ी में रहते हुए आपको

बिच्छुओं से कभी कोई कष्ट नहीं मिला। आप उनकी रक्षा करते, वैसे वह भी आपके के लिये दुःखदायक नहीं बने। आप कहा करते थे, 'यदि तुम हिंसक जन्तुओं को न छेड़ो, तो जब तक तुम्हारा प्रबल भोग न होगा वे तुमको कष्ट नहीं देंगे।' ऐसी वृत्ति को आप सदैव धारण करते रहे। आपकी सहन-शीलता, क्षमता और वैर-अभाव के कारण ही निन्दक और विरोधी अपने अपराधों पर पश्चात्ताप करने को वाधित हो जाया करते थे।

'ब्रह्मचर्य्य' के कठिन साधन को तो आप करते ही चले आये थे; फलतः काम जैसे महाबली पर भी आप ने विजय प्राप्त कर ली थी। जिस काम के वश में होकर विश्वामित्र और शृङ्गी जैसे तपस्वी अपने तप को भूल गये, ब्रह्मा आदि देवता भी जिसके तीक्ष्ण बाणों को सहन न कर सके, जिसके बन्धन में अनेक जीव-जन्तु पड़े हुए असह्य दुख भोग रहे हैं, उस पर लात रख देना किसी सूरमा का ही काम है।

'अपरिग्रह' का साधन सुगम हो जाता है जब काम और मोह की ओर से चित्त का प्रवाह रुक गया हो। जिस विवेकी के हृदय में संसार की असारता जड़ पकड़ गई है, जो बहुत विचार करने पर भी संसार के पदार्थों में सुख का भान नहीं करता, जो दुःख को प्रति क्षण अनुभव करता हुआ केवल उसके निवारणार्थ ही पदार्थों का उपभोग करता है, जिसको संसार निरर्थक ही भासता रहता है, उसका चित्त भला विषयों की ओर कैसे जा सकता है? इन्हीं कारणों से 'प्रत्याहार' तो आपको स्वाभाविक ही सिद्ध था। इतनी शीघ्रता से वृत्ति का अन्तर्मुख होकर तदाकार हो जाना ही आपकी विषयों से उपरामता को प्रकट करता है।

दसवाँ प्रकरण (समर्पण)

यमों का पालन जब इतना सुलभ था, तो नियमों के अनुष्ठान में कैसे कसर रह सकती थी। 'शौच' को सिद्ध करने से ही आप काम रूपी महाबली को जीत सके थे। चित्त की निर्मलता के कारण जब अपने ही शरीर से घृणा हो चुकी है (उसके नव द्वारों से दुर्गन्ध ही सरता रहता है, रोम-रोम से सदैव मल निकलता रहता है), तब दूसरे के शरीर में कैसे आसक्ति हो सकती है।

'संतोष' के बिना कपूरथला को छोड़ कर चले जाना कैसे संभव था। वहाँ से चलते समय आपने अपने प्रमाण-पत्र आदि को अग्नि में भस्म कर दिया था, आपका लक्ष्य तो संसार की प्रत्येक वासना का त्याग करना था। फिर भला थोड़े से रुपये आपको कब विचलित कर सकते थे। प्रमाण-पत्रों को जला देने से आप अपनी संसार तथा धन सम्बन्धी वासनाओं का मानों नाश ही कर रहे थे। काँगड़ी पहुँचकर भी निर्वाह मात्र धन लेने लगे। अपने पास धन जमा करने का विचार तो आप में आता ही नहीं था, निर्वाह के लिये कोई दूसरी सूरत नहीं थी।

'तपोमय जीवन' आप आरम्भ से ही व्यतीत कर रहे थे। सुख-दुःख, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान आदि द्वन्द्वों को सहन करने का अभ्यास किया ही करते थे। जब नौकरी छोड़ने का विचार तेज़ था, तब भूख, प्यास, सरदी, गरमी को सहने का यत्न भी होने लगा। एक मास तक शहद और पानी पर निर्वाह करते रहे। कभी कभी निराहार केवल जल के आश्रय ही रहते। कई दिन भूसा खाकर ही क्षुधा को तृप्त किया। तेल से आप

का चित्त घबराता था, तो योगेश्वरीजी ने एक दिन आपसे कहा, यदि भिक्षा में तेल में बनी तरकारी मिल गई, तो कैसे गुज़र होगा। उनके यहां तेल में तली पकौड़ियां खाने का अभ्यास करने लगे। धीरे-धीरे स्वभाव पड़ गया, बुरा भी नहीं लगता था। एक दिन आपने विचारा कि देखें मट्टी का तेल भी ऐसे सहन किया जा सकता है। जोशीजी को पता चला तो दो-तीन दिन के बाद छोड़ दिया। फिर जंगल की अनेक वनस्पति ढूँढ-ढूँढ कर खाने लगे। इससे आपको बोध हुआ कि ऐसा पशुओं का आहार रहने से मल आदि भी दुर्गन्धित नहीं होते। तपती हुई ज्येष्ट-आषाढ़ की गरमी में नङ्गे पैर अनेक बार योगेश्वरजी के यहाँ कनखल गये। सर्दी में भी बहुत थोड़े कपड़े से निर्वाह किया करते थे।

'स्वाध्याय' तो कई प्रकार से चलता ही रहता था। शास्त्रों की चर्चा तो आपको प्रिय थी ही; पर अपने गहरे विचार से, अपने मन के अनुसन्धान से, अपनी गुण-ग्राहक वृत्ति से, अपने हृदय में प्रभु का ध्यान करने से आप ज्ञान के गूढ़ तत्वों को भली प्रकार समझ चुके थे। इस प्रकार तन मन को अनेक साधनों से कुन्दन कर लिया था। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार, मद-मत्सर पर जय प्राप्त कर चुके थे।

कपूरथला में रहते हुये यह विचार था कि "भिक्षा में शुद्ध अन्न का मिलना सुगम नहीं है। यदि अपनी नेक कमाई का कुछ रुपया रख छोड़ें, तो कुछ दिन तो निश्चिन्त होकर प्रभु-भजन में लगे रहेंगे, दूसरे के गड़बड़ अन्न खाने से मन में विकार पैदा नहीं होंगे।" ऐसे विचारों को लेकर आपने अपने वयोवृद्ध मित्र पं० रामनाथजी शास्त्री से परामर्श लिया। शास्त्रीजी ने कहा, "शुद्ध अन्न की बात तो ठीक है, पर ऐसा करने से कुछ

अहंकार और राग रह जाता है। जब आप सब कुछ ईश्वर पर छोड़ रहे हैं, तो फिर वे स्वयं इस बात की चिन्ता करेंगे"। यह बात आपको जच गई, और जो रुपया स्त्री के निमित्त रक्खा था उसको ख़र्च कर डाला, क्योंकि स्त्री का तो शरीर छूट ही चुका था। तब से आप 'ईश्वर-परायण' होकर ही रहा करते। इसी वृत्ति को हृदय में रखते हुये आपने १६०६ ई० (सम्वत १६६६) वैशाख मास में गुरु-कुल काँगड़ी को प्रणाम किया, और ईश्वर-आश्रय होकर रहने लगे। पिछले छः साल में अनेक बार नित्य प्रति हवन करते हुए 'इदन्नमम' का पाठ किया था; परन्तु वह पाठ शब्द मात्र तो था नहीं, हृदय की त्याग की भावना ही उसको प्रेरित करती रही थी। आज उस आहुति का पूर्ण फल ईश्वर-समर्पण रूप से प्राप्त किया। उस समय आपने ईश्वर से कहा—

سپردم بہ تو مایۂ خویش را تو دانی حساب کم و بیش را

'सपुर्दम ब-तो मायाऐ-ख़ेश रा,
तू दानी हिसाबे-कमो-बेश रा।

'मैंने अपना योग-क्षेम तो तेरे अर्पण कर दिया है। अब हानि-लाभ तथा घटी-बढ़ी का तू ही ज़िम्मेदार है'। ऐसे पूर्ण समर्पण के बाद ही मनुष्य संन्यासी हो सकता है। 'सर्व संकल्प संन्यासी'। जिसने लोक-परलोक को वासना तज दी है, जिसको अब कुछ करना नहीं, किसी वस्तु की प्राप्ति की चाह नहीं रही, किसी प्राप्य की रक्षा की चिंता भी नहीं, उसका चित्त प्रभु का क्रीड़ा-स्थल बन जाता है। जब अहंकार सर्व प्रकार से नष्ट हो चुका, तब शरीर-यात्रार्थ प्रभु जैसा नाच नचावें, वैसा खेल करना होगा। जीवन-मुक्ति का आनन्द इसी में है कि जैसा रास प्रभु रचाना चाहें, उसका साक्षी बनकर तन-मन की सारी

सामग्री उस खिलाड़ी-राज के अर्पण करदें। ऐसे भावों से प्रेरित सियारामजी 'स्वामी' बनकर रहने लगे। जब दिल का चोला रँगा गया, तो बाहर का चोला रँगाने की चिंता किसको होती है। पहली सब उपाधियों का तो त्याग हो रहा था, फिर नये नाम की उपाधि कौन लेता। जब आनन्द का सागर हृदय के सरोवर से उमड़ रहा हो, तो फिर नाममात्र के 'आनन्द' से क्या लाभ। अब तो यही विचार था कि जिस काम में प्रभु लगाना चाहेंगे, उधर ही मन को जोड़ देंगे। उनकी प्रेरणा से जो भोग रोग मिलना है, जो किसी का हित और भलाई होनी है, जैसी नौकरी और सेवा प्रभु ने करानी है, वैसा ही करना पड़ेगा। इस परम सिद्धि का प्रकाश धीरे धीरे पाठकों पर हो जावेगा। ज्ञानी, बालक तो भगवान की लीला में आनन्द मानकर नाचते रहते हैं। जो स्तुति-निंदा, मान-अपमान, सुख-दुःख और भलाई-बुराई यह करते कराते हैं, उस सब से बेपरवाह रहते हुये प्रभु की शरण ही उनका एक मात्र आश्रय है। उनके लिये तो 'संतोषे परम लाभः' यही महा वाक्य है। मज़ा इसी में है 'राज़ी हैं तेरी रज़ा में'।

"मालिक तेरी रज़ा रहे, और तू ही तू रहे।
बाक़ी न मैं रहूँ, न मेरी आरज़ू रहे॥"

सन्त कबीर ने सत्य कहा है,

आपा मेट, जीवत मरे, तो पावें करतार,

अब आप तो 'आपा' खो चुके थे, ईश्वराधार विचरने लगे।

३

संन्यास-काण्ड

पहला प्रकरण (मोह-परीक्षा)

यह सब जानते हैं कि जो लोग गृह त्यागकर साधु का बाना पहिन लेते हैं, वे अपना नाम-रूप बदलकर ऐसे स्थानों में विचरते हैं, जहाँ उनको कोई सम्बन्धी तथा मित्र न मिल सके। वैराग्य के भावों को दृढ़ करने के लिये, अपने चित्त के प्रवाह को परमार्थ की ओर पूर्णतया बहाने के विचार से, मोह और राग-द्वेष की पाशों को ढीला करने के लिये, शास्त्र में भी ऐसा ही नियम बतलाया है। पुराने सम्बन्धी और मित्रों के मिलते रहने से मोह के संस्कारों के क्षीण होने में देर लगती है, कुछ बाधा पड़ने का भी भय रहता है। यह सब नियम साधक के लिये तो हितकारी हैं। अथवा जो संसार के प्रलोभनों के आक्रमण से विह्वल होकर भाग खड़ा हुआ है, उस रण-छोड़ के लिये तो यही भला है, कि जिनको वह अपना शत्रु अथवा विरोधी समझता है, उनसे दूर ही रहे। प्रायः लोग इतनी छोटी

या कच्ची अवस्था में घर को छोड़ते हैं कि उनके कल्याण के निमित्त ऐसे ही नियम उपयोगी हो सकते हैं ; पर यह भीरुता है।

जो वीर रण-क्षेत्र में डटा रहकर शत्रु पर जय लाभ कर चुका हो, उसको तो दंगल में रहने का ही आनंद आता है। वह तो, अपने आपको ऐसी स्थिति में ही डाल देने में अपना श्रेय समझता है, कि जिसमें रहने से यदि कोई सूक्ष्म राग-द्वेष के संस्कार रह गये हों, तो उनको जाँचने का अवसर मिल जाये, और जिनका मोह अपने बन्धन का कारण हो सकता है उनको निराश कर देने से फिर निर्भय होकर विचरने का आनन्द प्राप्त हो। अमृतसर के ऋषि पालाराम की कथा आप जानते ही थे। पंडित पालाराम शास्त्री थे। युवाकाल में ही घर छोड़ शास्त्र-वाक्य की परीक्षा पर निकलने का विचार हुआ। कुछ दिन सम्बन्धियों के यहां शरीर के भोग को ईश्वर-आश्रय पर छोड़ बिना काम के रहने लगे। थोड़े ही काल में वे सब उनको निकम्मा समझकर उनसे निराश हो गये। ऐसे ही विचारों को लेकर स्वामी जी शीघ्र अपने ग्राम 'साथी' को जाना चाहते थे ; पर गरमी के कारण रुके रहे। कुछ देर योगेश्वरजी के पास कनखल में ठहरे रहे। हरिद्वार, ऋषीकेश के अनेक साधुओं और महात्माओं के सत्संग से लाभ उठाते रहे। अवधूत मथुरादास जी से भी बातें किया करते थे। उधर ऋषीकेश के स्वामी मंगलनाथ के विचारों से भी आपको बड़ी सहायता मिलती थी। उनका अद्वैतवाद तो आपको कभी जचा ही नहीं ; पर फिर भी उनके गहरे विचार से बड़ा संतोष मिलता था। कुछ काल देहरादून के आस-पास ठंडे स्थानों में विचरते रहे, तत्पश्चात् वर्षा ऋतु के आरम्भ होने पर 'साथी' पहुँचे।

वहाँ आप ग्राम के बाहर नाले के किनारे छतरा डालकर रहने लगे। दिन को कभी-कभी धूप भी तेज़ पड़ती थी, पीछे बरसात बहुत होने के कारण मच्छरों ने भी सताया, फिर सर्दी से भी कष्ट होने लगा ; पर इस सबको सहारना तो ऐसा कठिन नहीं था। आप तो मोह का खेल देखने के लिये आये थे। भाई-बन्धुओं ने बहुत चाहा कि घर पर रहें अथवा उन्हींके यहाँ भोजन किया करें ; पर उनका रोना-धोना कुछ काम न आया। आप तो ईश्वर-आश्रय भिक्षा-वृत्ति से रहना चाहते थे। जिधर चाहते, अथवा जिस ओर चित्त गवाही देता, वहीं का अन्न ग्रहण करते। जन्म से क्षत्री होने के कारण आपके भाई की यह इच्छा थी कि नीच वर्ण के घर का भोजन न किया जाये ; पर इस प्रकार का अभिमान तो शेष था ही नहीं। जैसे, जब गौतम मुनि पहले-पहल बौद्ध धर्म का उपदेश करने के लिये कपिलवस्तु गये, तो दोपहर को, भोजन के समय भिक्षुओं-समेत नगर में भिक्षा माँगने निकल पड़े। उनके पिता, राजा को यह बुरा लगा। वे आकर कहने लगे, "आप राज-पुत्र होकर यह क्या कर रहे हैं ? ऐसा करने से कुल में कलङ्क लगता है। यदि और नहीं, तो हमारा आतिथ्य ही स्वीकार करना चाहिये। हमारे पास रहते हुए आपको ऐसा करना उचित नहीं।" परन्तु उन्होंने उत्तर दिया, "हमारे कुल की तो ऐसी ही मर्यादा है।" ज्ञानी-संन्यासी तो किसी प्रकार का बन्धन स्वीकार नहीं कर सकते, उनके लिये सब मनुष्य एक समान हैं। जहाँ-तहाँ से भोग-अनुसार अन्न ग्रहण करते हैं। ऐसे ही विचारों से प्रेरित होकर स्वामी सियाराम जी महात्माओं की पद्धति के अनुसार अपनी भिक्षा जहाँ-तहाँ से स्वीकार करने लगे।

जब कुछ काल पश्चात् भाई-बन्धुओं का मोह कम हो गया,

और वे भी उसी भाव से उनके पास आने-जाने लगे जैसे कि अन्य ग्राम के लोग आते थे, तो आप उनका भी अन्न ग्रहण करने लगे। इस प्रकार उनके बीच में रहते हुए, शूरवीर क्षत्री की तरह, रण में डटकर मोह की सारी सेना को निराश कर दिया। आपके व्यवहार से सब लोग भली-भाँति समझ गये कि अब आपसे किसी प्रकार की ऐसी आशा करना निरर्थक है, जैसी कि भाई से की जाती है। हाँ, यदि आपके ज्ञान और पवित्र जीवन से कुछ लाभ उठाना है तो अधिकारी बनकर ही लाभ उठा सकते हैं।

एक दिन वहाँ एक काला साँप आपकी कमर में लिपट गया। जब ग्रामवालों को पता चला तो उन्होंने निवेदन किया कि "महाराज, आप ग्राम में चलकर रहें, बरसात में यह स्थान रहने के योग्य नहीं है।" स्वामीजी ने उत्तर दिया, "दो-एक दिन देख लें, क्या होता है।" दो-तीन दिन तो साँप आता रहा; पर महात्माजी के अविचल भाव से प्रभावित होकर फिर वह नज़र न आया। अहिंसा को धारण करके ही मुनिजन निर्भय पद को प्राप्त कर लेते हैं।

इन्हीं दिनों में, कनखल में योगेश्वर जी के पास एक पंजाबी ब्रह्मचारी पहुँचा। वह कहीं पहले महाराजजी के दर्शन कर चुका था, और अब उनसे मिलने के लिये बड़ा व्याकुल था। कभी-कभी वह इतना उदास हो जाता कि रोने भी लग जाता। वहाँ से पता पाकर स्वामीजी के पास उनके ग्राम में पहुँचा। कुछ दिन उनके साथ रहा। उसे खाने पीने की बहुत लालसा रहती थी, इस दोष के कारण महाराजजी उसको बहुत समझाते और कभी-कभी बड़े कड़े वचन भी कहा करते।

स्वामी रामावतारजी भी आपके सत्संग में आया करते और

उपदेशामृत पान किया करते थे। उनके सामने ही दो नांगा बाबा, शंकरदास और कल्लूदास स्वामीजी से मिलने आये। कुछ वार्त्तालाप करके चले गये। उनके जाने के पीछे स्वामी रामावतारजी ने पूछा, "महाराजजी, इनकी वृत्ति कैसी है?" आपने कहा, "अच्छी है, परन्तु इतनी अच्छी नहीं।"

इन दिनों आप दर्शनों और उपनिषदों को फिर से आद्योपान्त देख रहे थे। एक बार सबको विचारपूर्वक देख डाला। देखने से जो कुछ सत्संग में सुना था, और अपने आत्मा के भीतर अनुभव किया था, उसकी साक्षी मिल गई। फिर पीछे आप कभी इस झंझट में नहीं पड़े। पुस्तकें देखने का अभ्यास न रहते हुये भी आप अपने उपदेशों में शास्त्रों की पर्याप्त गवाही पेश किया करते थे। इससे पता चलता है कि आपने कितने ध्यान से शास्त्रों का मनन किया था। आपका उपदेश अधिकतर अनुभव पर निर्भर रहा करता था। केवल सुनी-सुनाई और पढ़ी हुई बातों पर बिना अनुभव किए आप बहुत कम विश्वास करते थे। यही कारण था, कि आप अपने सब काम अपनी अन्तरात्मा की साक्षी के अनुसार किया करते थे। आपकी गति आत्मा में ही रहा करती थी। केवल दिल बहलाने के लिये आपको पुस्तकों के पढ़ने का व्यसन कभी नहीं रहा। आपकी अवस्था उस ज्ञानी की थी जिसने निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया है, और जो सर्वदा अपने आत्मा से ही संतुष्ट रहता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा है:—

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथाऽन्तर्ज्योतिरेवयः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतो अधि गच्छति ॥ ५-२४.

'जो अन्दर ही सुख वाला, अन्दर ही क्रीड़ा वाला, अन्दर ही दृष्टिवाला है, वह योगी ब्रह्म हुआ ब्रह्म में निर्वाण को प्राप्त होता है।

ऐसे महात्मा को किसी शास्त्र तथा शब्द के आधार की जरूरत नहीं, वह तो आत्मा के ही आश्रित प्रभु की आज्ञानुसार विचरता है।

यहां पर ही आपने पहले-पहल एक वृद्ध ग्रामीण को भजन का उपदेश दिया। जब स्वामीजी ने उसको कहा, "अभ्यास में खुशकी होती है, कुछ घी आदि चिकने पदार्थ अधिक खाने चाहियें।" उसने कहा, "महाराज, हम देहाती लोग हैं, हमको खुशकी नहीं होती"। थोड़े दिनों में जब सुषुम्णा खुली, तब तो उसका सिर फटने लगा, फिर तो वह ख़ूब घी-मलाई खाने लगा। तब उसे पता लगा, कि संतों के वचनों में कैसा सत्य होता है। इस ग्रामीण का हृदय सरल था, बड़ी बेपरवाही से रहता था, बहुत लाग-लपेट नहीं रखता था। अन्तःकरण शुद्ध होने के कारण उसको शीघ्र अच्छी अवस्था प्राप्त होने लगी। जहां उसने वृत्तिको अन्तर्मुख करके मन-बुद्धि का खेल बंद किया, वैसेही आत्मा एक रस होकर रह जाता। महाराजजी उसकी उन्नति पर चकित थे। आपका पहले भी यह विचार था कि आत्म-साधन में पवित्र हृदय विद्या की अपेक्षा अधिक आवश्यक है। इस अनुभव से आपके विचारों को पुष्टि मिली कि कोरे वाचक ज्ञान से कुछ बहुत लाभ नहीं।

इस प्रकार नौ मास तक, 'साथी' रहकर, आपने मोह की सेना को सर्वदा के लिये निराश कर दिया। वहाँ से चलकर गरमी के शुरू में आप आगरा पहुँचे।

दूसरा प्रकरण (आचार्य्य-दक्षिणा)

इस बात का पहले भी वर्णन किया जा चुका है, कि आप

प्रो० बेनीमाधव सरकार के बड़े कृतज्ञ थे। वे आपको बड़े प्रेम और उत्साह से गणित पढ़ाया करते थे। अन्यथा भी आवश्यकता अनुसार धन आदि से आपकी सहायता भी करते थे। धर्म के सम्बन्ध में भी उनका यही उपदेश रहा करता कि किसी के शब्द-जाल में यकायक फँसना नहीं चाहिये, और अपने विचार और अनुभव पर प्रत्येक बात को कसना चाहिये। स्त्री के सम्बन्ध में, आपका यही उपदेश रहा करता था कि वह बन्धन का ही कारण है। ऐसे अनेक कारणों से आपके चित्त में उनके प्रति कृतज्ञता का भाव प्रायः प्रकट हुआ करता था। इस भाव से मुक्त होने की प्रेरणा को लेकर आप यहाँ आये थे।

जो रुपया आपको कपूरथला कालिज छोड़ते समय पुरस्कार रूप में मिला था, वह माता के निमित्त रख छोड़ा था। उसको व्यय करने का अवसर ही प्राप्त न हुआ था। जब आप काँगड़ी छोड़कर देहरादून गये थे, तो पहली बात जो आपको सूझी, वह उस रुपये के खर्च के सम्बन्ध में थी। देहरादून में चावल बहुत अच्छे मिलते हैं, आपने कुछ चावल रेल द्वारा प्रो० सरकार के पास भेज दिये थे।

परन्तु इतने से ही आपका हृदय चुप न रहा। कुछ और करने की जरूरत थी। उन दिनों प्रो० सरकार के बड़े पुत्र चारुचन्द्र सरकार एम्० ए० की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। इस अवसर को पाकर आपने वहीं रहकर गुरु-दक्षिणा के संस्कारों से मुक्त होने की ठान ली। जब आपने कपूरथला छोड़ा था, तब अपनी कुछ पुस्तकें भी इन्हींको भेज दी थीं। गणित के ऐसे विषय भी जिनको आपने एम्० ए० में भी छोड़ दिया था, जिनको प्रो० सरकार भी क्लिष्ट समझते थे, जिनकी ओर कभी ध्यान भी नहीं दिया था, अब आप छोटे सरकार को बड़ी साव-

धानी से पढ़ाने लगे। इस सबको देखकर, प्रो० सरकार बड़े चकित थे, और इस बात को आपने स्वीकार किया कि योग-साधन में और चाहे जो फल होता हो परन्तु इतना अवश्य होता है, कि बुद्धि बड़ी सूक्ष्म हो जाया करती है।

स्वामीजी यहाँ पर पर्याप्त समय रहे। आप प्रायः प्रातःकाल तीन-चार बजे उठकर ध्यान में बैठ जाया करते थे। तत्पश्चात् गणित की पुस्तकों पर थोड़ा विचार करते। कभी-कभी प्रो० सरकार के साथ घूमने भी जाया करते थे और अनेक दार्शनिक विषयों पर विचार चला करता था। कई बार उनकी धर्म-पत्नी से भी अनेक व्यवहार और परमार्थ सम्बन्धी बातें हुआ करती थीं। आप गुरु-पत्नी को बड़ी श्रद्धा से अनेक अच्छी-अच्छी बातें बताते जिससे कुटुम्ब का सारा काम करते हुये ही थोड़ा-बहुत ईश्वर का भजन भी साथ-साथ होता रहे।

प्रो० साहिब को कुछ मधुमेह का रोग था। स्वामीजी आपके लिये जंगल से कई जड़ी-बूटियाँ ले आया करते। इस प्रकार कई मास आगरा में रहते हुये चारुचन्द्रजी को गणित पढ़ाते रहे। इनके छोटे भाई-बहिन को कुछ अँगरेजी भी पढ़ाते थे। अँगरेजी व्याकरण को ऐसी सरल रीति से समझाते कि जिस विषय को वह बालक क्लिष्ट समझते थे, वह उन्हें अत्यन्त स्पष्ट अथवा सरल जचने लगा।

यह सब खेल इस लिये करते रहे कि चित्त में जो कृतज्ञता के भाव प्रकट हो रहे थे उनसे सर्वदा के लिये छुटकारा मिल जाये। यह तो था नहीं, कि यह कार्य्य अच्छा है और दूसरा काम अप्रिय है। जो काम आ जाता उसी में मन लगा दिया करते। मन पर इतना अधिकार था कि सब काम को भोग्य समझकर बड़ी सावधानी से करने लग जाते थे।

छोटे सरकार के टाँग और पाँव में कुछ दोष था । इस कारण भी और वैसे भी उनके पिता और स्वामीजी दोनों ने उन्हें यही सलाह दी कि विवाह-पाश में फँसने से अधिक कष्ट होगा । इस उपदेश को छोटे सरकार ने ग्रहण कर लिया । आज-कल प्रो० चारुचन्द्र सरकार शिया कालिज लखनऊ में गणित पढ़ाते हैं और वाईस प्रिन्सीपल का भी काम करते हैं । वे अभी तक अविवाहित हैं । श्री स्वामीजी महाराज के प्रति आपके हृदय में बड़ी कृतज्ञता और श्रद्धा के भाव हैं और श्री स्वामीजी की गणित विषयक निपुणता और पढ़ाने में दक्षता की बड़ी सराहना करते हैं । स्वामीजी के शरीर-शान्त होने की सूचना आपने बड़ी वेदना से सुनी । आपके प्रति सरकार महाशय बड़ी गुरु-भक्ति दरशाते हैं और उनका विचार है कि स्वामीजी महाराज एक बहुत ही बड़े पुरुष थे ।

इन्हीं दिनों में बाबू अयोध्याप्रसाद फाटकवाला जो रियासत बलरामपुर में फ़ारेस्ट-आफिसर का काम करते थे, छे महीने की छुट्टी लेकर आगरे आये । १९१० के अक्तूबर मास में वे स्वामीजी से मिले । कई बार वह दोनों राधा स्वामी के सत्संग में जाया करते थे । स्वामीजी राधा स्वामी सम्प्रदाय की संगत की नम्रता और गुरु-भक्ति पर बड़े प्रसन्न थे । इसी मास में ही आप उनके साथ मथुरा, वृन्दावन गये । प्रेम महा-विद्यालय जहाँ कि आप पहले काम कर आये थे, आपको बहुत अच्छी संस्था प्रतीत होती थी । स्वामीजी ने फाटकवालाजी को यह सम्मति दी कि यदि हो सके, तो वह यहाँ ही काम करें ।

फिर नवम्बर मास की तीसरी तारीख को आप उनके साथ बलरामपुर गये । वहाँ पर रियासत के अफ़सरों की कूट नीति से आप बड़ी घृणा करते थे, और आप ही की

सम्मति के अनुसार बलरामपुर को उन्होंने छोड़ दिया। अयोध्याप्रसादजी फिर आपके साथ लखनऊ होते हुये १८ नवम्बर को हरिद्वार पहुँचे, और पंडित यागेश्वरजी के पास कनखल में ठहरे। अयोध्याप्रसादजी को स्वामीजी ने यह राय दी थी कि किसी जातीय-संस्था में काम करें। इसी विचार से यागेश्वरजी उनको गुरु-कुल काँगड़ी, तथा महाविद्यालय ज्वालापुर दिखलाने को ले गये, पर यह स्थान उनके अनुकूल न था। फिर वे स्वामीजी के साथ २० नवम्बर को देहरादून पहुँचे और यह विचार था कि वहाँ डी० ए० वी० हाई स्कूल में सैंकड मास्टर का कार्य्य करने लग जायें; पर यहाँ का कट्टर और संकुचित वायु-मण्डल अयोध्याप्रसादजी के सिद्धान्तों के प्रतिकूल था। यहां से आप दोनों दिल्ली से होते हुए २३ नवम्बर को आगरा पहुँचे। जाड़ा भर यहीं रहकर आप छोटे सरकार को गणित पढ़ाते रहे।

तीसरा प्रकरण (त्रिलोकनाथ की यात्रा)

१६११ ई० में गरमी के आने पर स्वामीजी पहाड़-यात्रा को चल पड़े। आपका चित्त चाहता था किसी तपोभूमि में रहें, और वहाँ जंगली कंद के आश्रित शरीर का निर्वाह स्वतन्त्रता से करते रहें; भिक्षा के निमित्त दूसरों के गड़बड़ अन्न पर निर्भर न रहना पड़े। सकाम दान और अशुद्ध अन्न से आपका निर्मल चित्त बहुत घबराता था, चित्त का प्रसाद पाये विना हम इस घबराहट को समझने में असमर्थ हैं।

इसी धारणा से महाराजजी कुछ काल देहरादून रहकर

शिमला की ओर चले आये। उन दिनों, आपके साथ एक नाथ और एक कोई दूसरा साधु था। उस नाथ ने अपने गुरु की आज्ञानुसार कुछ ऐसा साधन किया था कि जिसके कारण उसकी भूख बहुत बढ़ गई थी। स्वामीजी के पास कुछ रुपया भी पड़ा था, आपने उसे इस आशय से साथ ले लिया कि जहां तक होगा कुछ दिन तक तो अपने शुद्ध अन्न पर निर्वाह करेंगे। नाथ को यह लालच था कि आपके रुपये के आधार से खाने-पीने में सुभीता रहेगा।

घूमते-घामते स्वामीजी महाराज जुब्बल रियासत में पहुँचे। वहाँ ठाकुर-द्वारा में ठहर गये। वहां ही एक कमरे में योगेश्वरजी के भाई पं० रामदत्त जोशी भी ठहरे हुये थे। जब पंडित जी ने स्वामीजीको देखा, तो दंडवत प्रणाम के पश्चात् वे आपको अपने डेरे पर ले गये। उन दिनों वहाँ वर्त्तमान राजा साहिब का विवाह था। खूब चहल-पहल हो रही थी। प्रायः दो सप्ताह तक महाराजजी वहाँ ठहरे रहे। प्रातःकाल उठकर नदी किनारे चले जाते। दोपहर को भोजन करने के लिये आते और दो घंटे ठहरकर फिर बाहर चले जाते थे। सायंकाल को साढ़े सात बजे के पश्चात् लौटते। आप बहुत कम बोला करते थे; यदि कोई प्रश्न किया जाता, तो थोड़ा सा उत्तर देकर फिर चुप हो जाते। सिर में जटायें रहती थीं; शरीर कुछ बलवान था और कुछ विशेष शारीरिक क्रिया नहीं किया करते थे।

एक दिन राज्य के प्रधान मंत्री श्रीयुत् शेरसिंहजी आपसे मिलने आये। वे वेदान्त के बड़े प्रेमी थे। गीता के कर्म-योग के विषय में बातें करते रहे। वे गीता-रहस्य के प्रतिपादित कर्म-योग का समर्थन करते थे; परन्तु महाराजजी ने बड़ी सरलता से संन्यास-मार्ग को ही अनुभव अनुसार ठीक बताया।

भोजन इत्यादि के विषय में दरबार की ओर से प्रार्थना की गई। स्वामीजी ने यह कहकर इन्कार कर दिया, "जहाँ ठहरा हूँ, वहाँ का भोजन पर्याप्त है।" फिर आपने कहा, "एक दिन, पहले पड़ाव पर, कोट खाई में हमने यह संकल्प किया कि भोजन माँगने नहीं जावेंगे, न किसी को सूचना देंगे। देखें, भोग कैसा है। हमारे साथी तो भिक्षा करने ग्राम में चले गये; परन्तु हम एक स्थान पर बैठ गये। कुछ समय बाद एक स्त्री वहाँ आई और उसने प्रश्न किया, 'बाबा, भोजन किया है या नहीं?' हमने कहा कि 'नहीं।' वह एक बरतन में खिचड़ी लाई, आग सुलगाकर पास ही चढ़ा गई। यह तो हमने देखा कि आग शीघ्र बुझ गई; पर हमारा विचार कुछ करने को नहीं था। खिचड़ी कच्ची ही रह गई। थोड़ी देर पश्चात् एक पुरुष आया। उसने देखा खिचड़ी वैसे की वैसे पड़ी है और आग भी बुझ चुकी है। वह अपने घर से खिचड़ी बनाकर ले आया। पीछे से उस गाँव के रईस को खबर मिल गई, तो भोजन पहुँच जाया करता था।"

जोशीजी और उनके साथी कपड़े खोलकर धुली हुई धोती पहनकर भोजन बनाते और खाते थे। इस पवित्रता को देखकर एक दिन महाराजजी कहने लगे "शरीर मल-मूत्रमय है। यह शुद्ध तो हो नहीं सकता। साबुन से स्नान कर साफ़ कपड़े पहनो, दो घण्टे के बाद, अन्दरवाले कपड़े को देखो कुछ मैला और कुछ दुर्गन्ध अवश्य मालूम होगी। यदि शरीर शुद्ध होता तो बदबू अथवा यह मैल कहाँ से आ गये। नाक साफ़ करो थोड़ी देर बाद फिर वही हो जाता है। इसके प्रत्येक छिद्र से मैल ही सरता रहता है। जब इस प्रकार सफ़ाई करते-करते यह शरीर फिर भी मैला ही दीखता है, तब मनुष्य का चित्त अपने

शरीर से उपराम होता है। देह-आसक्ति ही अज्ञान की जड़ है। मनुष्य मिथ्याभास में फँसकर पीतल को सोने के भाव खरीदता रहता है। वास्तविक सुख से कोसों दूर रहता है।"

एक दिन श्रीस्वामीजी के किसी अंग में कुछ चोट आ गई। पूछने पर आपने कहा, 'कुछ दर्द मालूम होता है।' जोशीजी ने एक संशय उपस्थित किया, 'महाराज, जब सुख-दुःख आपके लिये सम है, फिर दर्द कैसे प्रतीत होता है। ऋषीकेश में स्वामी पूर्णाश्रमजी तो ठंढ में बाहर ही पड़े रहा करते थे। एक दिन किसी दुष्ट ने आपका कंधा शस्त्र से काट सा डाला; परन्तु उन्होंने कुछ न कहा और चुपचाप चले गये। इससे प्रतीत होता है उनको कष्ट ही नहीं भासता होगा।' महाराजजी ने उत्तर दिया, "दर्द सबको होता है। हाँ, सहन-शक्ति अवश्य कही जाती है। उस चोट से ज्ञानी के नित्य नियम-भजन आदि में कोई बाधा न पड़ेगी। एक दिन एक पठान ने किसी बातपर अड़कर यह कहा, 'हमारी अंगुली काट लो, हम जरा भी नहीं घबरायेंगे, उसने अंगुली सीधी कर दी और दूसरे आदमी ने सचमुच काट ही डाली, पर वह जरा भी न डिगा। यह आत्म-ज्ञान नहीं है सहन-शक्ति है।"

श्री स्वामीजी अपने साथियों समेत जुब्बल से रामपुर बुशहर, कुल्लू और चम्बा में होते हुये त्रिलोकनाथ को चले गये। रास्ते में एक स्थान में बड़ी बस्ती मिली। आपके साथी तो आलस्य के कारण भिक्षा करने चले गये; परन्तु आपने दुकान से बर्तन आदि लेकर अपनी ही रोटी बनाई। एक दूसरे यात्री के पास मँडुवा (पहाड़ी अन्न) की रोटी देखकर आपके चित्त में आया कि तजुर्बा से देखना चाहिये कि मँडुवे का आहार कैसा होता है। अपनी गेहूँ की रोटी उससे तबदील कर ली। मँडुवे के सेवन से पता

चेला कि वह बड़ा रोचक होता है । यात्रा चम्बा से चलती है, रियासत की ओर से सब प्रबन्ध होता है, थोड़े दिन आप भी यात्रा के साथ त्रिलोकनाथ पहुँचे ।

त्रिलोकनाथजी के मन्दिर के पुजारी लामा लोग हैं, जो तिब्बत से आते हैं । कई तो मांस पकाकर अथवा मांस की रोटियाँ बनवाकर साथ लाये थे । जब उनसे पूछा गया कि "बुद्ध भगवान् तो अहिंसा का उपदेश करते थे, पर आप मांस-भक्षण करते हैं और देवता पर भी मांस ही चढ़ाते हैं ; यह कैसी बात है ?" तो उनमें से एक ने उत्तर दिया, "तुम हिन्दू लोग भी मांस खाते हो, तुम्हारे शास्त्र में भी तो निषेध है । कोई लोग मांस की बलि भी चढ़ाते हैं । ऐसे ही हमारे यहाँ भी सब प्रकार के आदमी हैं, बुद्ध भगवान् ने पहाड़ी ठण्डे स्थानों के लिये मरे हुये पशु का मांस खाने की आज्ञा दी थी, पर पीछे से लोग गड़बड़ी करने लगे । सब तो हममें भी नहीं खाते, पर जो खाते हैं वह चढ़ावा भी इसी का चढ़ा देते हैं ।"

जब यात्री लौटने लगे, आपका रुपया चुक गया था। आपके साथियों ने साथ रहने में कुछ लाभ न देखकर अपना-अपना रास्ता लिया । इधर लौटते समय आप थक भी गये थे, कुछ भूख भी तेज लग रही थी । बर्फ के पहाड़ को पार करके एक टीले पर बैठ गये । दोपहर तक देखते रहे, इतने में एक माई आई और कहने लगी, 'भोजन करोगे' ? आपने कहा, 'हाँ, यदि मिल गया तो ।' पर जब उसने घर चलने को कहा तो आपने जाने से इनकार कर दिया । फिर वह यह कहकर चली गई कि जब मेरा पति खेत से आ जायगा तब भिजवा दूँगी । इधर शाम होने लगी, तो एक दूसरी माई आई । उससे भी ऐसे ही प्रश्नोत्तर हुये । साथ ही उसने यह भी कहा, 'मैं नीच

जाति की हूँ, मेरा भोजन खाने में कोई शंका तो नहीं।' महाराजजी को तो ऐसी नीच-ऊंच की भावना थी ही नहीं, उन्होंने स्वीकार कर लिया। पर वह भी भोजन न भिजवा सकी। इधर रात हो गई, आप वैसे ही वहाँ सो गये। दूसरे दिन इसी प्रकार से प्रातःकाल एक तीसरी माई आई और पूछ-ताछ करके चली गई। दोपहर हो गया, शाम भी होने लगी, पर आप भोग की प्रतीक्षा करते रहे। फिर सायंकाल के समय एक माई भोजन ले आई। भोजन कर चुकने के बाद, बारी-बारी दूसरी और तीसरी भी भोजन ले आईं। पर आप तो अब खा ही चुके थे, उनको लौट ही जाना पड़ा। फिर दो-तीन दिन तक वहीं भोजन आता रहा। चौथे दिन एक ग्रामीण आपको अपने घर लिवा ले गया। वहां तीन चार रोज़ ठहरे रहे। जब तक शरीर भी कुछ बलवान हो गया। वह पुरुष बड़ा सरल और वैराग्यवान था। उसने महाराजजी से कहा, 'मेरा चित्त घर छोड़कर भाग जाने को करता है।' स्वामीजी ने उसे समझाया कि 'घर में रहना ही अच्छा है। बाहर मारे-मारे भटकने से क्या लाभ है। भिक्षा में बड़ी दीनता करनी पड़ती है। फिर किसी कुसंग में पड़ गये, तो मारे जाओगे। आज-कल बहुत से भेष-धारी साधु बहुत चरित्र-हीन होते हैं। कोई विरला ही अच्छा होता है।' फिर आपने कुछ भजन आदि का उपदेश देकर, उसको वहीं रहने में संतुष्ट कर दिया।

वहाँ का देश बहुत ठंडा है। छः मास तो बर्फ़ ही पड़ी रहती है। वे लोग आग जलाकर अन्दर ही रहते हैं। सब स्त्री-पुरुष सर्दी के मारे इकट्ठे ही सोते हैं। दिन-रात अग्नि जलती रहती है। शीत के कारण नहाना तो कहाँ मुँह तक नहीं धो सकते। खाने-पीने की सामग्री अन्दर रख लेते हैं। बर्फ़ पिघला-

पिघलाकर पानी काम में लाते हैं। उनके मकान दो-मन्ज़िले होते हैं। नीचे पशु बाँधे जाते हैं, ऊपर ख़ुद रहते हैं। वहीं किसी सुराख़ से शौच आदि से निवृत्त होते रहते हैं। छः महीने तक मल वहीं जमा होता रहता है, पर सर्दी के कारण सड़ता नहीं। कभी-कभी कोई जंगली गाय सर्दी से बचने के लिये उनके मकान के पास आ जाती है, तो वह उसको भी मार-काट कर खाने के काम में ले आते हैं। चाय, सत्तू, मक्खन, रोटी और माठा उनके खाने में बहुत आते हैं। थोड़ा-थोड़ा दूध मटके में इकट्ठा करते रहते हैं। जब वह बहुत दिन में भर जाता है, तो उसमें से मक्खन निकाल लेते हैं। माठा कई दिन तक चलता रहता है। मटका तो कभी साफ़ भी नहीं किया जाता। एक घर में इस प्रकार से सात पुश्त का माठा चला आता था। ऐसे पुराने माठे को वे लोग बुख़ार आदि के लिये औषध के रूप में प्रयोग करते हैं। जब सर्दी समाप्त हो जाती है, तो सब लोग बाहर निकलते हैं। मुँह-हाथ धोते ही धुँआ से काले चेहरे फिर चमकने लगते हैं। जौ की खेती होती है। जौ का साग, जौ की दाल और जौ की ही रोटी उनके खाने में आती है। इस प्रकार से छः महीने तक खेती करते रहते हैं। सर्दी आने पर फिर वैसे ही अन्दर बन्द रहना पड़ता है। ऐसे कठिन स्थान में निर्वाह करते हुए भी उनका चित्त संसार से नहीं ऊबता।

चौथा प्रकरण (शिष्य-मिलाप)

यह सब लीला देखते हुये, कुछ दिन पश्चात् महाराजजी

चम्बे पहुँचे । यहाँ पर ला० सन्तराम तार-बाबू के यहाँ ठहरने का संयोग हुआ। उधर उन्हीं दिनों, भक्त रेमलजी के सुयोग्य पुत्र रामचंद्रजी भी छुट्टियों के कारण यहाँ आये हुये थे । वहाँ पर वे अपने मित्र देवदत्तजी के पास ठहरे हुये थे । देवदत्तजी का घर अमृतसर में था । आपके माता-पिता ने बड़े परिश्रम से आपको पढ़ाया था, और जब वे बी० ए० उत्तीर्ण न हो सके, तो पिता की आज्ञानुसार चम्बा स्टेट में नौकरी कर ली । यह भी विचार था कि स्कूल में पढ़ाते हुये परीक्षा देने का भी सुअवसर मिलेगा। आपको संध्या अथवा भजन का छोटेपन से ही शौक़ था। अमृतसर के स्वामी लक्ष्मणानन्दजी की विधि-अनुसार कुछ अभ्यास भी किया करते थे । डी० ए० वी० कालिज में पढ़ते हुए भी आप होस्टल की सामूहिक संध्या से आज्ञा लेकर एकान्त में अपना नित्य-नियम पालन किया करते थे। कालिज में पढ़ते हुये आपको कई बार धार्मिक जीवन के लिये कालिज की ओर से पुरस्कार भी मिल चुका था । यहाँ जब स्वामी सियारामजी महाराज का आगमन सुना, तो बड़े उत्साह से अपने मित्र के साथ उनके दर्शनों को गये । कोई तीन-चार दिन ही सत्संग हुआ होगा । उसके बाद रामचंद्रजी तो छुट्टी समाप्त होने के कारण वापिस आ गये, इधर देवदत्तजी भी कुछ छुट्टी लेकर अमृतसर चले आये । विचार यह था कि स्वामीजी महाराज जब देश में नीचे आ जायेंगे, तो फिर उनके सत्संग से लाभ उठावेंगे, परन्तु ऐसा नहीं हुआ । महाराजजी को कुछ भगन्दर की शिकायत हो गई थी, उसी की दवाई कराते रहे । हस्पताल में आपरेशन भी कराया, उसको तो कुछ आराम आ गया; परन्तु इस बीच दूसरा फोड़ा निकल पड़ा। इस कष्ट के कारण फरवरी के अन्त तक महाराजजी वहीं ठहरे रहे॥

इधर देवदत्तजी भी लौट आये और महाराजजी के चरणों में उपस्थित होकर सत्संग का लाभ उठाने लगे। गुरूजी ने भी आपके विचार, वैराग्य और उत्साह को देखकर इन्हें कुछ नये ढंग पर ध्यान में लगाया। वे बड़ी दृढ़ता से अभ्यास करने लगे और कुछ विचित्र अनुभव भी प्राप्त किये। महाराजजी के सर्वोत्तम उपदेशों को वे जन्म-जन्मांतरों के प्यासे प्राणी की तरह अमृत तुल्य मानकर पान करने लगे, और उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा कि अबतक जीवन व्यर्थ ही व्यतीत हो रहा था।

उन्हीं दिनों आपने इसी आशय का एक पत्र अपने मित्र सदानन्दजी को लिखाः—'हम अभी तक भटकते ही रहे। अब पता चला कि जीवन का लक्ष्य क्या है और प्राणी किस प्रकार भव-भय से मुक्त हो सकता है। कल्याण और आनन्द का मार्ग श्री महाराजजी की कृपा से मालूम पड़ने लगा है।' यह पहली वार थी जब श्री सदानन्दजी को पूज्य स्वामीजी महाराज के सद्‌गुणों का कुछ बोध हुआ। तबसे ही आपने निश्चय कर लिया कि ज्योंही एम० एस-सी० की परीक्षा से छुट्टी मिलेगी, वैसेही महापुरुष के दर्शनों से अपने जीवन को कृतार्थ करेंगे।

जब स्वामीजी को बहुत कष्ट रहने लगा, तो आपने योगेश्वरजी को सूचना दी। वही पंजाबी ब्रह्मचारी जो पहले आपका साथी रह चुका था, आपको लेने के लिये आया। महाराजजी फ़रवरी मास के समाप्त होने से पहले ही चम्बा से चल पड़े। डलहौजी तक देवदत्तजी भी साथ आये। उनका विचार था कि देश में चलकर रहने से महाराजजी के सत्संग का अवसर मिलता रहेगा। इस कारण जब छुट्टी न मिली तो नौकरी छोड़कर ही साथ चल दिये थे। क्योंकि अभी

सर्दी थी, भजन के लिये समय अच्छा था, महाराजजी की आज्ञानुसार वे डलहोजी ही में रह गये।

स्वामीजी कनखल में रहकर यागेश्वरजी का इलाज कराते रहे। पर जब कुछ आराम न हुआ, तो आप जोशीजी के साथ आपरेशन के लिये देहरादून गये। वहाँ के डाक्टर छुट्टी पर गये हुये थे। आपरेशन का सुप्रबंध न देखकर वहां ही एक होम्योपैथ का इलाज करने लगे। उसने आशा दिलाई थी कि बिना चीरा-फाड़ी के यह फोड़ा ठीक हो सकता है। यहां पर आप अपने पुराने मित्र मास्टर गौरीशंकरजी के यहाँ रहने लगे। थोड़े दिन के बाद फिर कनखल चले आये और उसी दवाई का प्रयोग करते रहे। इन्हीं दिनों में पहले-पहल १९१२ के मई मास में ला० सदानंदजी इम्तिहान से मुक्त होकर श्री-दर्शनों को आये। दो-तीन दिन सत्संग करके वापिस चले गये। इन्हीं की सूचना अथवा प्रेरणा से, सरदार जैसासिंहजी और मास्टर गोपालजी भी महाराजजी के दर्शनों के लिये मुल्तान से यहाँ पहुँचे। आप भी कुछ दिन सत्संग करते रहे, फिर भजन-उपदेश लेकर वापस चले गये।

इधर जब बहुत दिन तक कुछ आराम न हुआ, तो महाराजजी फिर देहरादून पहुँचे। इन्हीं दिनों में आपके पुराने सहपाठी डाक्टर रामचन्द्रजी छे मास की छुट्टी लेकर वहाँ आये हुये थे। अगस्त में वे स्वामीजी से मिले। डाक्टरजी ने आपको हस्पताल में दाखिल कराकर अपने हाथ से फोड़े का आपरेशन भी किया। यहाँ कुछ दिन बाद डाक्टरजी की स्त्री का देहान्त हो गया। इधर छुट्टी समाप्त होने के कारण उनकी तबदीली प्रतापगढ़ को हो गई। वे जाते समय महाराजजी से कह गये, 'आप यहाँ से छुटकारा पाकर कुछ दिनके लिये मेरे यहाँ आकर ठहरिये। आपकी औषधि भी करता रहूँगा और आपके सत्संग से अपने

हृदय की उदासी को भी दूर कर पाऊँगा।' स्वामीजी महाराज कुछ दिन तक बाबू गौरीशंकरजी के घर में ठहरे रहे। बहुत दिन के पश्चात् गृहस्थ में ठहरने का अवसर मिला था। स्त्रियों से चित्त बहुत घबराता था। पर यहाँ दूसरा उपाय न देख अपने कष्ट के कारण ठहरना ही पड़ा। मास्टरजी की स्त्री और उनके बच्चे आपकी अनेक प्रकार से सेवा करते रहे। यहाँ पर रहते हुये आपको अपने मनको जाँचने का अवसर मिल गया। पता चला कि घबराना वृथा था, चित्त में स्त्री-पुरुष एक समान ही जँचते हैं। इस बीमारी में आप बहुत कष्ट सहते रहे; परन्तु आपका चित्त दुःख को अनुभव करते हुये भी कभी विचलित नहीं हुआ। इस कष्ट से भी आपको यही शिक्षा मिलती रही कि संसार दुःख-रूप अथवा निरर्थक है।

थोड़े दिन पश्चात्, आप बिलकुल अच्छे हो गये, और देहरा-दून से रवाना होकर नवम्बर मास के अन्त में प्रतापगढ़ पहुँच गये। आप प्रतापगढ़ में २० जनवरी १९१३ ई० तक रहते रहे और डाक्टर साहिब को बहुत प्रकार से समझाते रहे। डाक्टर साहिब का ख़याल था कि स्वामीजी कोई ग्रन्थ तो जानते नहीं, संस्कृत का अभ्यास नहीं किया, फिर इन्होंने शास्त्र कैसे पढ़े होंगे और मुझे क्या समझायेंगे। पर जब स्वामीजी समझाने बैठें, तो ऐसा मालूम हुआ कि वे कोई बड़े अनुभवी पुरुष हैं। हर प्रश्न का उत्तर बड़ी शीघ्रता से दैनिक जीवन के दृष्टान्तों सहित समझाते थे। आपकी समझाने की शैली बड़ी सरस, सरल और मधुर होती थी। विचित्रता यह थी कि बड़ी गूढ़ बात भी शीघ्रता से समझ में आने लगतीं। डाक्टर साहिब के छोटे बालक आप से कभी-कभी जामेटरी के प्रश्न पूछा करते, तो उनको भी आप ऐसे तरीक़े से समझाते कि झट समझ में आ जाते। महाराजजी

की बुद्धि की विलक्षणता और मन की एकाग्रता इसी में थी कि सूक्ष्म से सूक्ष्म परमार्थ विषय और मोक्ष मार्ग के सम्बन्ध में भी वैसी ही सुगमता और सरलता से उपदेश दिया करते थे जैसी कि अन्य विषयों के समझाने में। पूछनेवाला चाहे युवा, वृद्ध अथवा बालक हो, उसकी बुद्धि के अनुसार ही विषय को स्पष्ट करने में सफल हो जाया करते थे।

पाँचवाँ प्रकरण (वृन्दावन)

देवदत्तजी की भी तीव्र इच्छा थी कि नीचे चलकर स्वामीजी के सत्संग से लाभ उठायें। डलहोज़ी से उतरकर, कुछ दिन तो अमृतसर में रहकर बीमा कम्पनी की एजेन्सी का काम करते रहे। फिर लाहौर में ट्रेनिंग कालिज की एस० ए० वी० क्लास में दाख़िल हो गये; पर वहाँ का बनावटी जीवन आपको असह्य हो गया। साथ ही जब यह पता चला कि उनके पिता सहपाठियों को यह कह गये हैं, 'मेरे पुत्र को संध्या बहुत न करने दिया करो, उसमें विघ्न डाला करो कि जिससे वह ऐसी बातें छोड़कर पूरा संसारी बन जाये,' तो वह बड़े घबराये। विवाह करने का विचार तो पहले ही नहीं था। इच्छा यही थी कि माता-पिता की सेवा करते हुये अपने कल्याण में भी लगे रहेंगे। इसी कारण स्वतंत्र जीविका की खोज में सब-कुछ कर रहे थे; पर ऐसी अवस्था को देखकर वे कालिज छोड़ने में ही अपना इष्ट समझने लगे। कालिज छोड़ने के पश्चात् कुछ समय इधर-उधर रहकर भजन में लगे रहे। फिर जब १९१३ के आरम्भ में

श्रीस्वामीजी महाराज भूँसी पहुँचे, तो आप भी झट से अपने दयालु गुरुदेव के चरणों में उपस्थित हो गये। महाराजजी भी इतनी छोटी आयु में ऐसी लगन देखकर बड़े प्रसन्न थे।

भूँसो में रहते हुये सर्दी सहारने का तजुर्बा करते रहे। शरीर को कष्ट में डालने और तप से पीड़ित करने में तो आपको विशेष आनन्द आता था। रात को बिना वस्त्र ही रेत में सो जाते और जब सर्दी तेज प्रतीत होती, तो कुछ रेत खोदकर अपने शरीर को उसमें दबा दिया करते। इस प्रकार वहाँ कई दिन तप अर्थात् साधु-संगति में रहते रहे। फिर यहाँ से आप दोनों वृन्दावन पहुँचे। स्वामीजी तो अपने मित्र अयोध्याप्रसादजी के यहाँ ठहरा करते थे, पर देवदत्तजी को लाडली-कुंज में ठहरा दिया। आप बड़े प्रेम और उदार भाव से ऐसे सुयोग्य और सुपात्र जिज्ञासु के लिये भरसक यत्न करने लगे। रात को यमुना की रेती में जाकर सोया करते। देवदत्तजी को भय प्रतीत होता था, पर आपने उनको दिया-सलाई का सहारा दे दिया और कह दिया कि जब कोई भय का कारण प्रतीत हो, तो रोशनी करके देख लिया करो। इस तरह आप उनको निर्भय प्राप्ति के उपाय कराने लगे। भजन में तो अवस्था कुछ अच्छी थी, पर वैराग्य को दृढ़ करना था। इस कारण अनेक उपदेशों से आप उनकी सहायता करते रहे।

शरीर कमजोर होने के कारण अथवा भूंसी में सर्दी को सहारने के तप से आपको यहाँ पर बड़े जोर का दमा होने लगा। उधर कुछ काल से क्रियाएँ भी सब छोड़ रक्खीं थीं। कोई दूसरा उपाय न देख कर 'धोती' का सहारा लिया। तत्काल ही कुछ आराम प्रतीत हुआ। तबसे आपने यह निश्चय कर लिया कि जब तक शरीर का झगड़ा है, जहाँ इसके कारण और अनेक बन्धन सहारने पड़ते

हैं वहाँ इसको शुद्ध भी करते रहना चाहिये, और भीतरी और बाहरी शौच से जो कुछ चित्त की निर्मलता अथवा अभ्यास का आनन्द मिलता है, लेते रहना चाहिये। इस नियम को आप फिर जीवन पर्यंत पालते रहे।

इस बीच में देवदत्तजी के पिता भी उनको ढूँढ़ते हुये वहाँ पहुँच गये और उनको घर लौट चलने के लिये आग्रह करने लगे। स्वामीजी महाराज जहाँ वैराग्य का उपदेश देते थे वहाँ मुमुक्षु की कठिन परिक्षा भी करते कराते थे। गुरूजी की भी यही आज्ञा हुई कि माता-पिता की सेवा करना आवश्यक है। उनकी आज्ञा-पालन करने से ही मनुष्य का कल्याण होता है। 'घर में ही रहकर अपना भजन-साधन करते रहो'। देवदत्तजी भी अपने पिता से यह वचन लेकर घर जाने को राजी हुये कि मुझे खाने-पीने में अथवा रहन-सहन में पूरी स्वतंत्रता होगी। जैसा काम मैं करना पसन्द करूँगा वैसा ही किया करूँगा।

घर जाकर उनको पता चला कि उनके पिता एक बड़े धनाढ्य की लड़की के साथ उनकी सगाई करने वाले हैं, जिसके यहाँ उनको घर-जामाता बनाया जायेगा और सम्पत्ति भी मिल जायेगी ; पर वे तो किसी दूसरी ओर अपना जीवन अर्पण कर चुके थे। माता-पिता की यह लोभ-लीला उनको कब पसंद आती। थोड़े दिन पश्चात फिर घर से भाग खड़े हुये। इधर आपने यह विचार किया कि यदि संन्यास ग्रहण कर लिया जाये, तो शायद माता-पिता निराश होकर पीछा छोड़ देंगे। गुरूजी तो कपड़ा रंगवा देने वाले नहीं थे, अपने आपही गोरख-नाथजी को गुरु मानकर कपड़ा पहिन लिया, और नाम भी 'सत्यानन्द' रख लिया। इस बात की सूचना महाराजजी को दे दी। महाराजजी भी पत्र देखकर ताड़ गये कि वैराग्य की तीव्रता

अथवा पिता के मोह से छुटकारा पाने के कारण इतनी भी प्रतीक्षा नहीं कर सके कि किसी महात्मा से विधि अनुसार संन्यास धारण करें।

छठा प्रकरण (आबू)

श्रीस्वामीजी महाराज कनखल से होते हुए आबू पहुँचे हुए थे। सत्यानन्दजी भी शीघ्र यहाँ आ गये।

यहाँ पर पहले तो महाराजजी के साथ डलवाड़ा ग्राम में, एक जैन-मन्दिर के पास कुँवारी कन्या के मंदिर में रहते रहे। बाद में स्वामीजी महाराज वस्ती से दूर, जंगल में, एक मौनी नाम की गुफा में जाकर रहने लगे, पास ही स्वामी सत्यानन्दजी भी ठहराये गये। स्वामी परमानन्दजी भारतीभिक्षुक भी, यहाँ रहा करते थे। इन्हीं से पं० किशनचंदजी को, जो उस समय हस्पताल में कम्पोन्डर का काम करते थे, यह पता चला था कि कोई दो 'एम० ए०' अथवा 'बी० ए०' साधु वहाँ रहते हैं।

पं० किशनचंदजी को साधुओं से मिलने का बड़ा शौक़ था। आप महाराजजी के दर्शनों को आने-जाने लगे। पंडितजी का चित्त बहुत सरल, हृदय शुद्ध और स्वभाव बड़ा मीठा था। श्री स्वामीजी के सत्संग से लाभ उठाने के लिये यही गुण पर्याप्त थे। उन दिनों महाराजजी का भोजन भी गुफ़ा पर पहुँचाया जाता था। महाराजजी की सेवा का कार्य पं० किशनचंदजी और रामचरणजी वैश्य पूरा किया करते थे। यदि कुछ धन और अन्न आदि कोई राजे अथवा धनी लोग भेजते, तो यह सब इन्हींके पास भेज दिया जाता कि जिससे वह धन किसी दूसरे साधु की

सहायता में व्यय कर दिया जाये। पंडितजी अनेक बार महाराजजी के दर्शनों को जाया करते थे। यद्यपि गुफ़ा बस्ती से डेढ़ मील की दूरी पर थी, फिर भी ज्ञान के पिपासु पहुँच ही जाते। अनेक वकील और बाबू महाराजजी के पास आने जाने लगे।

थोड़े दिन बाद स्वामी सत्यानंदजी के पैर में कोई फोड़ा हो गया। फोड़ा पक गया, तब स्वामीजी उनको शफ़ाख़ाना में ले आये। अब तो पंडितजी को महाराजजी के संग में रहने का अधिक अवसर मिला करता। बहुत वार्त्तालाप होता था। पंडितजी के शान्त-स्वभाव और शुद्ध विचारों को देखकर स्वामीजी महाराज आप पर बड़ी कृपा करते थे।

स्वामी सत्यानंदजी ने आबू से अपने एक मित्र को चिट्ठी लिखी थी। वह चिट्ठी उसने उनके पिता को दिखा दी। उनके पिता इन्हें तलाश करते हुए यहाँ पहुँचे। पहले तो आप गुफ़ा पर गये, और फिर वहाँ से पता पाकर हस्पताल में पहुँचे। यहाँ पर उनको घर चलने के लिये बहुत आग्रह करने लगे। पर सत्यानंदजी तो घर का मोह छोड़ चुके थे। पिता की लोभ की लीला भी देख चुके थे। माता की सरलता और उसके क्लेश को समझते हुए भी उन्होंने यह विचार न किया कि इस रोग की अवस्था में तो घर चले जायें। दुःख के समय में मनुष्य का हृदय कोमल हो जाता है। यदि मोह का कोई संस्कार हो भी, तो ऐसे समय में उसे अपनी मर्मभेदी चोट लगाने का अपूर्व अवसर प्राप्त होता है; पर सत्यानंदजी का मन विचलित न हुआ। जब वह पिताजी के आग्रह से बहुत दिक़ आगये, तो मौन साध लिया। चौबीस घंटे तक बोले ही नहीं। तब वह गुरुजी के पास जाकर निवेदन करने लगे, और सत्यानंदजी को माता के हृदय

की दुःखित गाथा सुनाई, कि वह बिचारी दिन-रात रोती रहती है। स्वामीजी महाराजको जहाँ ज्ञान और वैराग्य के सूने वन में रहने का स्वभाव था, वहाँ किसी की आर्त्त अवस्था को सुनकर उनके हृदय में करुणा का सागर उमड़ पड़ता था। दुःखित देवी को सान्त्वना देनेके लिये शिष्य को आज्ञा हुई, कि वह घर चले जायें। आराम होने पर एक माह पश्चात् वे अमृतसर को चले गये। जाते समय महाराजजी ने यह चेतावनी दे दी "केवल कपड़ा रंग लेने से ही वैराग्य सिद्ध नहीं होता, परन्तु मोह की चोटें खाकर भी धैर्य्य रखना एक मात्र उपाय है।"

स्वामीजी महाराज फिर गुफा पर जाकर रहने लगे। इस प्रकार जब बहुत दिन तक पं० किशनचन्दजी आपकी शरण में आते रहे, और सत्संग से लाभ उठाते हुए उनका चित्त और भी अधिक पवित्र होने लगा, तो एक दिन अक्तूबर के महीने में गुरु-वर ने बड़ी उदारता से पंडितजी को प्रभु-भजन का उपदेश दिया। वे प्रति दिन सायंकाल गुफ़ा पर आते और फिर रात को अकेले ही जंगल में से होकर वापिस जाया करते थे।

उन्हीं दिनों में एक महाशय ज्वालापुर से आये। वह भी महाराजजी के पास ही स्वामी परमानंदजी की गुफ़ा में ठहराये गये। उनको केवल दूध और घी का आहार मिला करता था। थोड़ा समय वे महाराजजी के पास रहते थे, शेष समय गुफ़ा में ही बंद रहकर भजन करते रहते थे। जब उनका चित्त इस आहार से बहुत घबराने लगा, तो उनको कुछ दाल-चावल का भोजन मिलने लगा। उसके हित को लक्ष्य में रखते हुए स्वामीजी महाराज स्वयं भोजन बनाते और उसको भी खिलाते। उसकी अवस्था के कारण, उसको अग्नि तक न छूने दिया करते। जब सर्दी आने लगी, तब पंडितजी के अनुरोध पर स्वामीजी ने

अपना स्थान और नजदीक कर लिया। आबू में ही, खेतरी दरबार की कोठी में रहने लगे। छे महीने तक पंडितजी को सत्संग का सुअवसर प्राप्त हो गया, जिससे उनको भजन-ध्यान में अच्छी अवस्था प्राप्त होने लगी। पंडितजी उस कृपा और दया के लिये महाराजजी के बड़े कृतज्ञ हैं, और अपने जीवन को कृतार्थ समझते हैं।

यहाँ रहते हुए श्री स्वामीजी महाराज ने एक-दो महीना शहद, घी और जल पर निर्वाह किया। शरीर को तो आप भाड़े का टट्टू माना करते थे। आपका यह विचार रहता था, कि वैसे तो शरीर की देख-भाल करनी एक बेगार ही है, पर जब तक प्रभु इससे पीछा नहीं छुड़ाते, तब तक जितना कुछ इसकी सेवा करते हैं अथवा इसके कारण जितनी दीनता और कष्ट सहारना पड़ता है, उतना ही मोक्ष साधन में इससे काम ले लेना चाहिए। यह विचार तो आता ही न था, कि इसको मोटा व हृष्ट-पुष्ट रखने से कुछ लाभ है। देह-अध्यास तो मिट ही चुका था। यही दृष्टि रहती कि कभी तप से क्षीण करके, कभी कुछ खिला-पिला करके, जैसे हो इससे काम लेते रहना चाहिए और इससे काम लेने में आप सर्वदा बड़ी कठोरता दरसाते रहे।

सातवाँ प्रकरण (शिष्य-शासन)

इसके बाद श्री स्वामीजी महाराज १९१४ के आरम्भ में अजमेर आये। यहाँ दो मास के लगभग होली तक पं० वंशीधरजी वकील, प्रधान आर्य्य समाज, के पास ठहरे रहे। अपने सत्संग

से उनको और अन्य अनेक सज्जनों को अनुगृहीत करते रहे। सरदार जैसासिंहजी, जो पहले १६१२ में महाराजजी के दर्शन कनखल में कर चुके थे, अब फिर मुलतान से आपके सत्संग के लिये आये। आपके साथ ला० नारायणदासजी ने भी पहली बार श्रीचरणों में बैठकर सत्संग से अपने आपको कृतार्थ किया। यह लोग एक महीना भर यहाँ ठहरे रहे, पर स्वामीजी के आबू से देर करके आने के कारण थोड़े दिन ही सत्संग से वे लाभ उठा सके।

स्वामी सत्यानंदजी कुछ काल अमृतसर रह आये। वहाँ जाने से पहले आपने अपने पिता से यह प्रण ले लिया था कि मेरे रहन-सहन और नित्य-नियम में कोई बाधा नहीं डाली जायगी। कुछ काल तो वहाँ अच्छी तरह बीत गया। पर पीछे से विघ्न खड़े होने लगे। स्वामी सत्यानंदजी, बाजार में, एक चौबारे में ठहराये गये थे। एक सच्चे साधु की तरह, आपने आस-पास के घरों से भिक्षा माँगकर खाना आरम्भ किया। उनके पिता तो अभी तक उनको फाँसने की इच्छा लगाये हुए थे। वे इस पर आपत्ति करने लगे। पिता को संतुष्ट करने के लिये आप एक मित्र के यहाँ से भोजन मँगाकर खाने लगे। इधर उनकी माता भी उनसे मिलने आया करती थीं। यह उसको समझाते कि देखो "जब कोई दूसरा साधु तुम्हारे घर पर आता है, तो तुम बड़ी श्रद्धा-भक्ति से उसको भिक्षा देती हो। यदि साधु बनना बुरा काम हो, तो फिर दूसरे साधुओं के प्रति ऐसा आदर क्यों प्रकट करती हो। इसलिये तुमको मेरे साधु होने पर बुरा नहीं लगना चाहिये।" माता भी, इन सब बातों को भली-भाँति समझती थी। वह कहती, 'मैं यह सब जानती हूँ कि मोह छोड़कर ईश्वर-भजन में लगे रहना बड़ी अच्छी बात है।

मैं अपने आपको धन्य समझती हूँ कि तेरे जैसा साधु पुत्र मुझे मिला है; परन्तु मोह के कारण चित्त कभी-कभी दुःखित हो जाता है। मैं तो यही चाहती हूँ कि तुम जहाँ रहो, प्रसन्न रहो, प्रभु का आशीर्वाद तुम्हें मिला ही है, और मैं तुमको क्या दे सकती हूँ; पर यही इच्छा रहती है कि कभी कभी मुझे दर्शन दे जाया करो।'

उनके पिता इतने में भी संतुष्ट न हुये। वे अभी आशा लगाये बैठे थे। कुछ पठान, वहीं उनकी जानकारी में काम किया करते थे। उनको, उन्होंने, इस बात पर तैयार किया, कि वह उनके पुत्र को मार-पीटकर ठीक कर दें। सत्यानन्दजी को उनकी मार पीट सहनी पड़ी, पर वे घबराए नहीं। जो कुछ कष्ट हुआ, उन्होंने हँसते-हँसते सह लिया। पश्चात् जब उन पठानों को पता चला कि यह विचारे तो अल्लाह की बंदगी में लगे हुए हैं जिस नेक राह से उनके पिता उनको हटाना चाहते हैं, तो वे बड़े शरमिन्दा हुये और तोबह करने लगे। उनके पिता से भी बहुत बिगड़े। आपकी माता बेचारी तो इससे बड़ी दुःखित हुईं। उसका प्रेम तो अधिक निष्काम और उज्ज्वल था। वह तो यह चाहती थीं कि पुत्र के कभी-कभी दर्शन होते रहें, और उसका मंगल समाचार भी मिलता रहे। सत्यानंदजी भी जीवन पर्यन्त माता के व्यवहार से बड़े प्रसन्न रहे, और कभी-कभी अवसर-अनुकूल माता से मिलते रहे। अमृतसर से चले जाने के बाद आप मुलतान पधारे। ज्ञान-स्थल में एक सप्ताह ठहरे रहे। सन्त मोतीराम के भी दर्शन किये। कुछ काल ढांडी में ला० नारायणदासजी के पास चले गये। उनको कुछ भजन का उपदेश भी दिया। फिर वहां से जनवरी में मुलतान आये। इन्हीं से पता चला था कि स्वामीजी महाराज आबू से शीघ्र अजमेर

पहुँच जावेंगे। आपकी प्रेरणा से ही सरदार जैसासिंहजी और ला० नारायणदासजी महाराजजी के दर्शनों के निमित्त अजमेर गये थे। स्वामी सत्यानंदजी ला० सदानन्दजी की सहायता से, इनके एक मित्र के यहाँ रिवाड़ी में जा ठहरे। वे होली के पश्चात् रिवाड़ी से गुरूजी के साथ वृन्दावन पहुँच गये।

स्वामीजी अपने शिष्य समेत १५ मार्च को मथुरा जंकशन पर अयोध्याप्रसाद फाटकवाला जी से मिले, जब कि वे आगरा से लौट रहे थे। दो मास के लगभग आप उनके यहाँ ठहरे रहे। महाराजजी ने यहाँ रहते हुये रथ का मेला भी देखा। अयोध्याप्रसादजी को श्री मौनी बाबा और लाडलीदासजी के पास दर्शनों को ले गये। संन्यासी होते हुये भी, आपकी गुण-ग्राहक वृत्ति और साधुओं के प्रति श्रद्धा सदैव बनी रही। अपने गुणों को तो आप हमेशा छिपाते ही थे; पर जहाँ जाते वहाँ सब महात्माओं के दर्शनों के अर्थ जरूर जाते; और अपने शिष्यों को भी साथ ले जाते। आपका यह उपदेश रहा करता था कि "सब संतों के दर्शन करने चाहियें। पता नहीं, किसके प्रसाद से संसार के दुःखों का निपटारा हो जाये, अथवा किस महात्माकी बात से हमारे हृदय की ग्रन्थि कट जाये।" इन्हीं दिनों आप अयोध्याप्रसादजी के पुत्र को गणित और साईन्स पढ़ाते रहे। उसका विचार था कि अमेरिका जाकर इन्जीनीरिंग के विषय में शिक्षा प्राप्त करे। महाराजजी ने उसको एक सालकी पढ़ाई छे सप्ताह में ऐसी रीति से समझा दी कि वह अपनी परीक्षा में मान सहित उत्तीर्ण हो गया। और पीछे इस पढ़ाई के आधार से ही उसने शिकागो की लुईस इन्स्टीचूट की एम० ई० और बी० एस० सी० डिगरी सवा दो साल में प्राप्त करली, जो कि अभी तक किसी हिन्दुस्तानी विद्यार्थी ने ऐसी सुगमता से नहीं प्राप्त की थी।

रात्रि को स्वामीजी महाराज यथापूर्व यमुना की रेती में रहा करते थे। प्रातःकाल का समय भी उधर ही व्यतीत होता था। फिर रोटी खाने के बाद शीघ्रही यमुना के किनारे चले जाया करते। एक बार एक साँप आपकी गरदन के इरद-गिरद लिपट गया। जब आप ध्यान से उठे और शरीर को हिलाया जुलाया, तो वह चुपके से चला गया।

महाराजजी सत्यानंदजी के भोजन की विशेष चिन्ता किया करते थे। उनका भोजन बड़ा सादा कर रक्खा था। दलिया, मूंग की दाल और कुछ घी-दूध के सिवाय और कुछ नहीं दिया जाता था। नमक भी बंद था। अप्रैल और मई के गरम दिनों में एक महीने से अधिक उनको पानी भी न दिया गया; परन्तु फिर भी वह बड़े शान्त और प्रसन्न रहा करते थे। अविवाहित होने के कारण उनका चित्त स्त्रियों से बहुत घबराता था; परन्तु महाराजजी की यह इच्छा थी कि उनके हृदय में शरीर-रचना का यथार्थ ज्ञान इतना गड़ जावे कि महात्मा शुकदेव की तरह उनको स्त्री-पुरुष में कोई मन को विचलित करनेवाला भेद न प्रतीत हो। इसी धारणा से आप दोनों, माईयों के घाट के पास ही स्नान करने जाया करते थे। हाड़-मांस के शरीर पर तो दृष्टि रहती ही थी, इस कारण धीरे-धीरे सत्यानंदजी की भी सहन-शक्ति बढ़ने लगी। और वह भी अपने व्यवहार में इस बात को अनुभव करने लगे कि स्त्री-पुरुष का शरीर तो एक जैसा है; फिर चित्त को चलायमान होने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता। कभी-कभी स्त्रियों के बीच में ही स्नान करने को चले जाया करते, वे भी साधु समझकर कुछ संकोच न करती थीं। इस प्रकार उन्हें अपने चित्त को सावधान अथवा पवित्र करने का अपूर्व अवसर मिला, जिससे उन्हों ने पूरा लाभ प्राप्त किया।

यहाँ से, १६ मई को, स्वामीजी सत्यानन्दजी के साथ चुपचाप चले गये। अयोध्याप्रसादजी को जाने की कोई सूचना न दी गई। जब उनको यमुना के तट पर महाराजजी का कमंडल और आसन न मिला, तो उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे चले गये होंगे। सच है—

"योगी किसके पाहुने, राजा किसके मीत।"

एक सच्चे निस्पृही संन्यासी की तरह महाराजजी सदैव आने-जाने के समय और तिथि का बड़ी स्वतंत्रता से निश्चय किया करते थे। जब किसी के यहाँ रहते अथवा किसी से वार्त्तालाप करते, उसके कल्याणार्थ उसको उपदेश देते, तो यही प्रतीत होता था कि आप उसके बड़े स्नेही हैं। कभी-कभी तो उसकी हित-साधना में लगे हुये इतना कष्ट और निन्दा भी सहारते कि जिससे यह जान पड़े कि आप उसके मोह में फँसे हुये हैं। परन्तु यह सब होते हुये भी आपके चित्त पटल में किसी के मोह की तनिक भी रेखा नहीं जम सकी। अपने मित्रों और सत्संगियों पर सब प्रकार से दया करते हुये, अथवा उनकी छोटी-छोटी व्यवहार सम्बन्धी बातों में छान-बीन करते हुये भी, उनके कल्याण निमित्त उनको सब प्रकार से आहार-व्यवहार शुद्ध करने का उपदेश देते अथवा उसकी जाँच रखते हुये भी, आप जल में कमलवत् हमेशा बेलाग रहे। ऐसी ही अनेक बातों को देखकर विचार-शील सेवकों के हृदय में यही भाव पैदा होता रहा कि आप कितनी उच्च स्थिति में विचर रहे हैं।

यहाँ से महाराजजी फिर आबू पधारे। गरमी के दिन वहीं गुफा में रहते रहे। पं० किशनचन्दजी बराबर सेवा करते रहे। सायंकाल के समय प्रति-दिन दर्शनों को आते और रात्रि के समय केवल लेम्प के सहारे हिंसक जानवरों से भरे जंगल को पार

करके वापिस जाया करते। यहाँ रहते-रहते सत्यानन्दजी भी निर्भय अवस्था के आनन्द का अनुभव करने लगे थे। महाराजजी का भोजन वहाँ ही गुफा में सत्यानन्दजो बनाया करते थे। कुछ दिनों के लिये फाटकवालाजो भी यहाँ आकर रहते रहे। एक दिन जब वह और सत्यानन्दजो जंगल से लकड़ो और कंडे लेकर आये, तो रास्ते में गाय की एक बछड़ी थोड़ी देर की मरी हुई देखी। गुफा भी पास ही थी। फाटकवालाजी को जंगलों का कुछ ज्ञान था। शेर के पंजे भी लगे हुये देखे। इस बात को उन्होंने सत्यानन्दजो पर प्रकट किया कि शेर अभी इस गाय को मार कर गया है। और आस-पास ही कहीं छिपा होगा। हमारे आजाने के कारण ही वह यहाँ से हट गया है। इस बात को सुनकर वह तनिक भी न घबराये। बल्कि सावधानी से कहने लगे, "मैंने कई बार चाँदनी रात में अपनी गुफा के सामने से रीछ, चीते और शेर जाते देखे हैं, पर सतगुरुदेव के असीम अनुग्रह से ऐसे हिंसक जन्तुओं को देखकर मेरे हृदय में कोई भय के विशेप संस्कार उदय नहीं होते।' दो साल के थोड़े से समय में सत्यानन्दजी बहुत ही अच्छी अवस्था प्राप्त कर गये थे। उनका ओजस्वी मस्तक और शांत मूर्ति मन को मोह लेती थी। उनका स्वभाव बड़ा कोमल और दिन प्रति दिन विनीत होता चला जाता था। मधुर भाषी तो वे थे ही, मंद मंद हंसी उनके चेहरे पर सदैव रहा करती थी। यह सब लक्षण उस परिवर्तन को दरशा रहे थे जो एक महापुरुप की संगति और उपदेश से उनके भीतर बड़ी तेजी से होता चला जा रहा था। भक्ति की तो वे मूर्ति ही बन गये थे।

आठवाँ प्रकरण (बरसोड़ा-राज्य)

गिरनार जाते हुए काठियावाड़ की बरसोड़ा रियासत के राजा, महाराजजी से मिले थे। उनके अच्छे स्वभाव और शुभ वासनाओं से प्रेरित होकर दयालु स्वामीजी महाराज ने बरसोड़ा में रहकर उनको पढ़ाना अथवा उपदेश करना स्वीकार कर लिया था। इसी प्रेरणा को लेकर आप अक्तूबर में बरसोड़ा राज्य पहुँच गये।

इधर पं० वंशीधरजी, जो पिछले साल भी आपके दर्शन और सत्संग से लाभ उठा चुके थे, इस बात के बड़े इच्छुक थे कि किसी सुअवसर को प्राप्त करके श्रीसद्गुरुदेवजी के चरणों में रहकर भजन करें, और श्री महाराजजी की पवित्र सत्संगति से अपने मन की मलीनता को धोवें। इसीलिये वे श्रीमहाराजजी से पत्र-द्वारा आज्ञा तथा सुअवसर प्राप्त करने का यत्न कर रहे थे।

अजमेर में ही एक दूसरे जिज्ञासु पथ-प्रदर्शक की खोज में भटकते फिरते थे। ब्रह्मचारी सत्यव्रतजी अजमेर अनाथालय में काम करते थे। सन्मार्ग में चलने के लिये आपकी ऐसी तीव्र इच्छा थी, कि जिसकी अवहेलना भगवान् भी नहीं कर सके। १९१३ के अन्त ही में उनके परम हितैषी पं० नाथूमलजी तिवारी ने सूचना दी कि "श्री ब्रह्मचारी पं० केशवदासजी अजमेर में पधारे हैं, उनकी सत् संगत से जैसा कुछ हो लाभ उठा लो।" ब्रह्मचारी सत्यव्रतजी उनके समीप पहुँचे। कुछ परीक्षाओं के उपरान्त उक्त ब्रह्मचारीजी से सत्यव्रतजी को भजन उपदेश मिला; परन्तु वे उनसे ऐसे अन्य नियम-उपनियम नहीं जान सके कि जिनका पालन करना भजनानंदी के लिये अति आव-

श्यक है। इनसे ही सत्यव्रतजी को श्रीस्वामीजी महाराज के सम्बन्ध में कुछ समाचार ज्ञात हुआ था। यह तो क्षुधा-आर्त्त की तरह अभ्यास में जुट गये। कुछ दिन पश्चात्, ब्रह्मचारी केशवदासजी तो चले गये, पर यह अपनी धुन में लगे रहे। गरमी का मौसम आने के कारण कष्ट होने लगा। लाचार वे अपने परम हितेच्छु पं० वंशीधरजी के पास पहुँचे और अपना सब हाल कह सुनाया। उनके दुःख को सुनकर पण्डितजी ने धीरज दिया और कहा, "मैं भी इसी मार्ग का अनुगामी हूँ। मेरे गुरु श्रीस्वामी सियारामजी हैं और उन्हीं की कृपा का मैं पात्र हूँ। मैंने उनको पत्र लिखा है, जब आज्ञा मिल जायगी तो मैं उनके पास रहकर कुछ दिन तप्त हृदय को शान्त करूँगा। आप भी उनको पत्र लिख दें। फिर जैसी आज्ञा मिलेगी वैसा करेंगे। आशा है कि महाराजजी अवश्य ही कृपा करेंगे; पर इस बीच में भजन का अधिक अभ्यास बन्द कर देना चाहिये। गरमी में भय है, कि कोई भयंकर रोग न हो जाय।"

सत्यव्रतजी ने, पंडितजी के कथनानुसार, पत्र श्री सेवा में भेज दिया। उत्तर मिला, "अभी उचित स्थान और समय नहीं है। जब मौक़ा होगा हम पंडित वंशीधरजी को सूचना देंगे; आप भी उनके साथ चले आना।" ब्रह्मचारीजी उस दिन की उत्कंठा-पूर्वक प्रतीक्षा करते रहे। पंडित वंशीधरजी को यथा समय सूचना मिली। वह सत्यव्रतजी को पता देकर चले गये। इधर यह तो पहले ही बेचैन हो रहे थे, शीघ्र ही १ नवम्बर १९१४ ई० को अजमेर से रवाना हो पड़े और दूसरी को बरसोड़ा रियासत काठियावाड़ गुजरात में पहुँचे। यह स्थान रेलवे स्टेशन से काफ़ी दूरी पर है। बरसोड़ा के समीप एक फ़ौजी पड़ाव था। उसमें बरसोड़ा नरेश की ओर से डेरों का प्रबन्ध था। महाराजजी एक

डेरे में थे, और दूसरे में स्वामी सत्यानंदजी ठहराये गये थे। तीसरे में पं० वंशीधर जी ठहरे। सत्यव्रतजी को भी एक छोलदारी मिल गई।

स्वामी सोमतीर्थजी (सत्यव्रतजी) लिखते हैं, 'यह दिन मेरे जीवन के सुधार का ऐतिहासिक दिन है। वर्षों के भटकने के पीछे चित्त को सहारा मिला। ऐसी दशा में चित्त में क्या-क्या भाव, कौन-कौन मौजें उठीं, कैसा आनंद प्राप्त हुआ, लेखनी लिख नहीं सकती।'

रसोई का प्रबंध, नौकर, रसोइया आदि सब स्टेट की ओर से थे।

स्वामीजी महाराज की दिनचर्य्या बड़ी क्रमबद्ध थी। प्रातःकाल उठकर शौच आदि से निवृत्त होकर ध्यान में रहते थे। ग्यारह बजे के लगभग भोजन करते। भोजन बड़ा सादा रहता, मूंग की दाल, शाक, चावल, रोटी। थोड़ा विश्राम लेकर पास ठहरे हुए सत्संगियों से, अथवा यदि कोई दूसरा आ जाता, तो उससे वार्त्तालाप करते, उपदेश देते अथवा संशय निवारण करते। बरसोड़ा-नरेश के स्थान पर ढाई बजे के क़रीब जाते। वहाँ उनको मनुस्मृति पढ़ाया करते थे। पाँच बजे वहाँ से वापिस आकर शौच आदि से निवृत्त होकर भजन में बैठ जाते। नौ बजे, भजन के पश्चात्, थोड़ा टहलते। उसी समय ब्रह्मचारी सत्यव्रतजी और पं० वंशीधरजी के अभ्यास संबंधी हालात पूछते और उचित उपदेश देते। साढ़े नौ बजे थोड़ा दूध पीते और फिर दस बजे सो जाया करते। यह तीनों सज्जन तो प्रातः चार बजे उठते थे, परन्तु महाराजजी प्रायः इनसे पहले ही उठ बैठते थे। रोशनी होने पर शौच आदि से निवृत्त होकर, फिर वैसे ही यथापूर्वक कार्य्य होता रहता था।

बस्ती के लोगों में से, बरसोड़ा-नरेश के छोटे भाई, जिनको बालू भाई कहते थे, राज-पुरोहित पं० प्रह्लादजी तथा अन्य मान्य और गण्य लोग भी आते थे। आस-पास के अनेक लोग दर्शनों को आते जिनमें महन्त सुखलालजी पुरी भी थे, जो वहाँ से तीन कोस पर गुनवा स्थान में रहा करते थे।

इन दिनों के उपदेशों में श्री स्वामीजी अपने तीन सहवासी अभ्यासियों को तो अमली जीवन का ही उपदेश देते थे। यम-नियम का पालन, आहार-व्यवहार की शुद्धि, और नित्य प्रति अपने मन की चालों की जाँच करने को कहा करते थे। संसार के त्याग की बात भी कहा करते; परन्तु ऐसा कहते थे कि "जब तक मन से संसार न त्यागा जाये, तब तक छोड़ना नहीं चाहिये। छोड़ना तब चाहिये जब ऐसा अनुभव हो जावे कि पुनः उधर जाने को चित्त न होगा।"

आप शुद्ध कमाई का अन्न अभ्यासी के लिये अति आवश्यक समझते थे। इसलिये यह भी उपदेश करते थे, "छोड़ने से पहले नेक कमाई का कुछ रुपया जमा कर लो, ताकि भजन में कुछ विघ्न न पड़े। कुछ दिन निश्चिन्त होकर भजन कर सको।"

अन्य गृहस्थी लोगों को शास्त्र अनुसार जीवन व्यतीत करने को कहा करते थे। जब कोई, 'ईश्वर है वा नहीं' ऐसा प्रसंग उपस्थित करता, तो कहा करते, "तुमको ईश्वर से क्या लेना है। पहले अपने-आपको अधिकारी बना लो, अपने व्यवहार को शुद्ध करो, शास्त्र की मर्यादा पर चलो, तब पाप से मुक्त होकर ही पवित्र हृदय में भगवान् का ज्ञान प्राप्त कर सकोगे। पाप को छोड़े बिना इस चिंता में लगे रहना निरर्थक है।"

साधन करनेवालों में दो अन्य अधिकारियों की वृद्धि हुई,

जिनमें एक राज-पुरोहित पं० प्रह्लादजी थे, दूसरे कोई अन्य ब्राह्मण व्यक्ति थे।

इन्हीं दिनों में एक पंडित चंदूलालजी कुछ अन्य भद्र पुरुषों सहित आये। इनका स्थान पालनपुर था। शीर्षासन से खड़े होकर अभ्यास किया करते थे; पर अभी कृतकार्य्यता नहीं हुई थी। महाराजजी के परामर्श से और उनसे उपदेश लेने पर सफलता प्राप्त हुई। इसके पीछे भी वे कई दिनों तक पत्र-व्यवहार द्वारा श्री गुरुजी से उपदेश ग्रहण करते रहे।

यद्यपि महाराजजी की दया सब पर रहा करती थी; परन्तु उच्च अधिकारी होने के कारण स्वामी सत्यानंदजी आपके विशेष कृपा-पात्र थे। स्वामी सत्यानंदजी अत्यंत सरल और बड़े साधु-स्वभाव थे। एक दिन उनके हृदय में ऐसा भाव उठा कि "योग का आनंद तो कुछ प्राप्त ही है; पर योग की सिद्धियों के सम्बन्ध में बहुत सुनते आते हैं, उनका कुछ विशेष पता न चला।" उन्होंने ऐसे विचार श्री गुरुजी महाराज के सम्मुख उपस्थित किये। महाराजजी हँसने लगे और कहा, "सिद्धियों में कुछ नहीं रक्खा, विघ्नरूप होने से वे लक्ष्य के रास्ते में बड़ी रुकावट हैं। यदि तुम्हें तमाशा देखना ही है तो चार-पाँच दिन अन्दर बंद रहो। जैसे मैं बताता हूँ, वैसे करते रहो। जो-कुछ तुम्हारे दिल में आये उसको लिखते रहना।" फिर स्वामी सत्यानंदजी आज्ञानुसार नियम से रहने लगे। चार-पाँच दिन पश्चात् जब वे बाहर निकले और उन पत्रों को खोला जो उनके नाम आये हुए थे, तो उनमें वही कुछ लिखा था जो वह पहले जान चुके थे। महाराजजी ने पूछा कि "इसी बात को थोड़े दिन पहले जान लेने से तुम्हें क्या लाभ हुआ। इस झगड़े में मत पड़ो, योग के परम लक्ष्य को सिद्ध करने में पुरु-

षार्थ करते रहो।" स्वामी सत्यानंदजी कुछ समय अपने दो सह-वासियों को समझाने में व्यतीत करते थे। वह दूसरों के बड़े हितेच्छु और स्वयं बहुत परिश्रमशील थे। सत्यव्रतजी पर तो उनकी विशेष कृपा रहा करती थी, जिसके लिये वे उनके बड़े कृतज्ञ हैं।

कुछ दिन पीछे वहाँ पर रेजिडेण्ट या किसी बड़े अंगरेज़ के आने की ख़बर थी। युद्ध का समय था, रियासत वालों को फूंक फूंक कर पैर रखना पड़ता था। पूछ-ताछ से कहीं स्वामीजी को व्यर्थ कष्ट न हो अतः महाराजजी का डेरा वहाँ से गुणवां गाँव में, महंत सुखलाल पुरीजी के अपने बाग़ में जो साबरमती नदी के किनारे विकट जंगल में था, भेजा गया। स्थानादि का प्रबंध पूर्ववत् रहा। महाराजजी के नित्य नियम में थोड़ी तबदीली हुई। पढ़ाने के समय भ्रमण को जाने लगे।

इस समय की तीन बातें श्री स्वामीजी के व्यवहार के सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय हैं।

(१) तितिक्षाः—एक राज के अतिथि होकर भी शीत-काल को एक फटी चादर और फटे कम्बल में व्यतीत करते थे। शीत लगने के कारण कुछ नज़ला भी होने लगा। सह-वासियों के आग्रह करने पर पीछे से कुछ दवाई लेने लगे। कई दिनों की औषधि थोड़े ही दिनों में समाप्त कर दी। महाराजजी शरीर से बहुत बेपरवाह रहा करते थे। तप में तो उनको आनंद प्रतीत होता था, शरीर के थोड़े-बहुत कष्ट की तो उपेक्षा ही कर लिया करते। इसी कारण कुछ न कुछ शरीर की गड़बड़ी लगी रहती थी। रोज़ाना की देख-भाल भी आपको बेगार रूप मालूम होती थी। जब तक शरीर की अवस्था इतनी न विगड़ जाती कि उससे विशेष कष्ट

होने लगता अथवा ध्यान आदि में विशेष बाधा पड़ने लगती तब तक उसका विशेष ध्यान न करते। फिर उसकी ओर दृष्टि देकर शीघ्र ठीक कर लिया करते। आप कहा करते थे, "इसके अस्वस्थ रहने में भी संसार की दुःख रूपता प्रति क्षण भासती रहती है।" जब सब लोगों ने बहुत प्रार्थना की कि एक और कम्बल डाल लिया करें, तो भी आपने स्वीकार न किया।

एक दिन ब्रह्मचारी सत्यव्रतजी और पं० वंशीधरजी ने सम्मति की कि महाराजजी के पास दूसरा कम्बल रख दें, शायद रात को शीत लगने पर ओढ़ लेंगे। ऐसा ही किया गया, सत्यव्रतजी एक कम्बल लेकर उनके बिस्तरे पर पाँव की ओर रख आये और प्रार्थना कर आये, "यदि शीत अधिक प्रतीत हो तो इसको ऊपर ले लेना।" उत्तर मिला, "अच्छा, न रह सका, तो ओढ़ लूंगा।" प्रातःकाल सत्यव्रतजी देखने गये कि शायद ओढ़ा होगा; परन्तु बात ऐसी न निकली। वे जिस प्रकार कम्बल रख आये थे वैसा ही पड़ा था। उन्होंने पूछा, "आपने ओढ़ा नहीं?" महाराजजी ने कहा:—"नहीं, यही देखता रहा कि और दिन अभाव में अर्थात् कम्बल न होते हुये शीत सहन करता था, आज देखूं, सहा जाता है कि नहीं।" यह सुनकर सब लोग चुप हो गये।

भोजन में भी कभी-कभी विचित्रता होती थी। एक रोज़ कीकर की फली ही उबाली गई। सबको थोड़ी-थोड़ी खाने को मिली।

सहनं सर्वदुःखानामप्रतीकार पूर्वकम्।
चिन्ता विलाप रहितं तितिक्षा सा निगद्यते॥

इस शास्त्र-वचन का अनुष्ठान पूज्य स्वामीजी के जीवन में प्रत्यक्ष घटते हुए देखने का सौभाग्य अनेक बार उनके सह-वासियों को प्राप्त हुआ।

(२) मनोनिग्रहः—सन् १९१४ में युद्ध हो रहा था। कैले पर मोर्चा लगा हुआ था। हार-जीत की खबर सुनने को लोग लालायित रहते थे। वहाँ कोई समाचार-पत्र तो आता नहीं था, कभी-कभी कोई शहरी खबर सुना जाया करता था। महाराजजी के पास अँगरेज़ी भाषा का एक पुराना अख़बार पड़ा था। भोजन के बाद, कई दिन उस ही की आवृत्ति रोज़ कर लेते। एक दिन सत्यव्रतजी ने पूछा, "भगवन्, आप इसी पुराने पर्चे को बार-बार रोज़ पढ़ते हैं, इससे क्या फ़ायदा है।" उत्तर मिला, "मन समाचार-पत्र पढ़ने को माँगता है, मैं इसीको पेश कर देता हूँ कि पढ़ ले, यह भी तो समाचार-पत्र ही है।" महाराजजी का चित्त तो सर्वदा प्रभु के चिन्तन में ही लगा रहता था। किसी संसारी वासना को चाहे वह कितनी ही महान् अथवा रोचक हो, अपने भीतर नहीं घुसने देते थे। इसलिये जब कभी संस्कार वश मन बहुत बिगड़ता, तो इस प्रकार बहला दिया करते। आज-कल के युग में तो अख़बार का पढ़ना और देश-देशांतरों के समाचार जानना प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति के लिये विशेपतः अँगरेज़ी जाननेवालों के लिये तो दैनिक स्वाध्याय ही हो चला है। महाराजजी अपने चित्त को प्रभु की शरण में अर्पण कर चुके थे। अब चाहे वह मन कितना ही मचलता, उसको संसारी वासना में कब फँसने देते। ऐसे कड़े मालिक के सामने थोड़ी देर का बहलावा हो जाये यही मन के लिये पर्याप्त था। इसी प्रकार जब तक युद्ध जारी रहा, अथवा जब कभी भी देश में कोई हलचल रहा करती, तो आप शहरों में रहते हुये भी अपने मन को सर्वदा उदासीन रखते। स्वामी 'राम' भी कहा करते थे, "वही ईश्वर को जान सकता है जो अख़बार नहीं पढ़ता।" महाराजजी भी संसारी झमेलों को दूर ही रखते थे।

(३) बेपरवाही :—बरसोड़ा नरेश ठाकुर सूरजमलजी महाराजजी के बड़े भक्त थे। वे ही आपको आबू से बरसोड़ा ले गये थे। उनका विचार स्वयं भी भजन करने का था। इसी कारण महाराजजी अपना इतना समय लगाते थे और उनके स्थान पर जाकर पढ़ाते। स्वामीजी का विचार था कि राजा के सुधार से प्रजा का बहुत भला होगा। ऐसा हुआ भी, राज-काज के सम्बन्ध में उनके विचारों में बड़ा परिवर्तन जान पड़ता था; परन्तु भजन-उपदेश के लिये महाराज अखण्ड ब्रह्मचर्य्य की बड़ी कड़ी शर्त लगाते थे। इस कठिन व्रत के सम्बन्ध में बहुत दिन तक विचार चलता रहा। ठाकुर साहब इस व्रत को पूरा न कर सके; पर महाराजजी भी एक सम्मानित व्यक्ति की खातिर अपने नियम को ढीला करने के लिये तैयार न थे। जब ठाकुर साहब ने इसके पालन में अपनी असमर्थता की सूचना, संकोचवश, अहमदाबाद से लिखकर भेजी, तो आपने वहाँ से चल देने का विचार प्रकट किया। यह भी विचार था कि लौटते समय मार्ग-व्यय भी राजा साहब से नहीं लेंगे, शायद ऐसा ही किया हो। पण्डितजी और ब्रह्मचारीजी तो ११ जनवरी को वहाँ से रवाना कर दिये गये, पीछे स्वामीजी महाराज और सत्यानन्दजी भी वहाँ से चले आये।

ऐसी अनेक घटनायें, अनेक बार आपके जीवन में दृष्टि-गोचर होती हैं। चाहे कैसा ही सम्पत्तिशाली, सम्मानित अथवा अनेक गुण-सम्पन्न जिज्ञासु क्यों न हो; पर यदि उसमें कोई ऐसा दोष है कि जिसका छोड़ना शास्त्र अनुसार अति आवश्यक है, तो उसके छोड़े बिना महाराजजी कभी उसको भजन का अधिकारी नहीं समझते थे। ऐसी उपेक्षा स्वामीजी के त्याग को बड़े उज्ज्वल रूप से प्रकट करती है। प्रायः देखा जाता

है कि साधु लोग भी अपने-आपको राज्य-गुरु कहलाने में अपना गौरव समझते हैं। जिनका राजों से सम्बन्ध नहीं है, वे प्रतिष्ठित शक्तिशाली गृहस्थियों का आश्रय लेते हैं। कोई धार्मिक अथवा जातीय संस्था से अपना सम्बन्ध जोड़े रखने में भला मानते हैं। कई एक तो मठों के महन्त बनने में ही अपना हित समझते हैं। इस प्रकार से मान बड़ाई की सूक्ष्म जंजीर किसी न किसी रूप से अपनी कड़ी पकड़ महात्माओं के दिल पर भी डाले रखती है। प्रभु की माया बड़ी प्रबल है। किसी न किसी भाव से अपना जाल फैला, सबको उसमें फाँस, नचाती रहती है। कनखल के एक प्रसिद्ध त्यागी साधु के विषय में कहा जाता है कि अनेक बार सेठ-साहूकारों और राजों ने उनको भेंट अर्पण किया; परन्तु उन्होंने कभी ग्रहण नहीं किया। उनके वैराग्य की बड़ी प्रशंसा थी। हमेशा विरक्त भाव से विचरते रहे। शरीर छूटने से पहले कुछ बीमार हो गये। वैद्य बुलाया गया। उसने परीक्षार्थ उनके शिष्यों से कहा कि वे बाबाजी से कहें, "आपको अखाड़े का शिरोमणि महन्त बनाया गया है।" ऐसा ही किया गया। बाबाजी इस समाचार को सुनकर प्रसन्नता से खिल-खिला पड़े। इस सूक्ष्म परीक्षा में आप पास न हो सके। पीछे शरीर छूट गया और नाम की वासना को साथ ले गये।

राग और मोह की फाँसी बहुत सूक्ष्म है। सन्त सियारामजी इस सब को भली-भाँति जानते थे। आप तो पहले ही से सब-कुछ प्रभु की शरण में समर्पण कर चुके थे। भला शरण गहे की लाज को भगवान् क्यों न रखते। उन्हीं की अनुग्रह से ही आप का त्याग-भाव सदैव बना रहा, इसमें कभी कमी नहीं आने पाई।

नवां प्रकरण (हरिद्वार का कुम्भ)

महाराजजी बरसोड़ा से चलकर कुछ दिनमें अजमेर में ठहरे। यहाँ ही स्वामी सत्यानन्दजी के पिता का एक पत्र आया, जिसमें उन्होंने महाराजजी को बहुत अपशब्द लिखे थे; और यह भी लिखा था कि "अबकी बार यदि स्वामीजी मुझे मिलें तो मैं जूतियों से उनका सिर ठीक कर दूँगा।" यह पत्र आपने बड़ी प्रसन्नता से सबको सुना दिया। कुछ क्षोभ प्रकट नहीं किया। उधर चुपके से सत्यानन्दजी के पिता को लिख दिया, "तुम्हारा पुत्र यहाँ है; तुम यहाँ आकर उसे ले जा सकते हो।" वह भी शीघ्र वहाँ आ गये। तब आपने उससे कहा, "हमारा इस पर कुछ अधिकार नहीं है। आप जैसे चाहें, इसको अपने घर ले जायें, यह हमारे कहने के अन्दर नहीं है। आपका पत्र भी हमको मिल चुका है, जिसके लिये आपको धन्यवाद है। हमारा सिर भी हाजिर है, अपनी इच्छा अच्छी तरह से पूरी करो।" यह कहकर महाराजजी ने अपना सिर नंगा करके उसके आगे कर दिया। यह सब देखकर वह बिचारा बहुत लज्जित हुआ और महाराजजी से क्षमा प्रार्थना करने लगा। महाराजजी दयालु तो थे ही; जब मान-अपमान, निन्दा-स्तुति की ही चिन्ता नहीं थी, तो फिर क्रोध क्यों करते। सन्त तो सबके हितकारी होते हैं। उसके दुःख को देखकर आप भी पं० वंशीधरजी से कुछ रुपये की सहायता उसके छोटे पुत्र की पढ़ाई के खर्च के लिये दिलवाते रहे।

एक दिन पं० वंशीधरजी ने महाराजजी से आर्य्य समाज-मन्दिर में उपदेश देने के लिये बहुत आग्रह किया। पहले तो महाराजजी इनकार करते रहे; पर जब उनका आग्रह बहुत

बढ़ता गया, तो आप कहने लगे, "अच्छा, हम व्याख्यान देंगे। तुम्हारे मकान में जितनी तसवीरें और मूर्तियां हैं, उन सबको टोकरों में भरकर वहाँ मेज़ पर रखवा दो।" पं० वंशीधरजी यह सुनकर चुप लगा गये और आग्रह छोड़ दिया। पीछे जब सत्यःव्रतजी ने दर्शन किये और यह कथा सुनी, तो महाराजजी से पूछा, "आप उस व्याख्यान में इन चित्रों के सम्बन्ध में क्या कहते।" उत्तर मिला, "जो उस समय सूझता।"

अजमेर के राधा स्वामी के संग में जानेवाली एक बुढ़िया भी महाराजजी के दर्शन को आई थी। वह भजन-ध्यान में अच्छी बतलाई जाती थी। उसने स्वामीजी से पूछा, "महाराजजी, मैं कब समझूँ कि भजन में कामयाब हो गई हूँ।" उत्तर मिला, "जब तेरे जवान पुत्र तेरे सामने मरे पड़े हों और तेरे जी में दुःख बिलकुल न हो।" बुढ़िया ऐसा सुनकर चुप हो गई, कुछ न कह सकी।

दो फरवरी १६१५ को आप वृन्दावन पहुँचे। आपका विचार वृन्दावन में रहकर होली का कुम्भ देखना था। वहाँ के गुरु-कुल के अध्यापक और कई उच्च श्रेणी के विद्यार्थी आप से मिलने आते थे। कई विद्यार्थियों को शास्त्र में विश्वास कम हो रहा था और ईश्वर के अस्तित्व में भी संशय था। इस कारण गुरु-कुल के आचार्य्य चिन्तित थे, कि यदि पहले जत्थे के स्नातक ही नास्तिक हुये तो आर्य्य जगत में बड़ी खलबली मच जायेगी। गुरु-कुल जैसी प्राचीन विद्या की संस्था को हानि होगी और शास्त्र में भी सर्व साधारण का विश्वास कम हो जायेगा। महाराज जी को सत्संगति ने उन सबके संशयों को छिन्न-भिन्न कर दिया। स्वामीजी की शास्त्र में बड़ी श्रद्धा थी। कर्म काण्ड के सम्बन्ध में तो आप शास्त्र को ही परम प्रमाण मानते थे। आप

का कहना था कि "शास्त्र के सहारे बिना हम अपनी बुद्धि से इतना भी नहीं जान सकते कि सत्य बोलना हमारे लिये श्रेयस्कर है। फिर ऐसे अन्य अनेक कर्म्मों के सम्बन्ध में कैसे निश्चय हो सकता है कि उनका ऐसा फल होगा, क्योंकि फल तो अगले जन्म में होना है, या मृत्यु के बाद मिलना है।" एक अनुभवी महात्मा के गम्भीर और अलौकिक तर्क अथवा विवेचना को सुना, तो डावाँडोल हृदय फिर से स्थिर होने लगे। जब तक तर्क ऊपर ऊपर ही रहता है, तब तक संशय बढ़ाता रहता है; पर जब अनुभव के सहारे चलते चलते गहराई में पहुँचता है, तो श्रद्धा के सामने उसका मुख बंद हो जाता है।

स्वामीजी महाराज किसी अन्य के गृह पर भिक्षा करने नहीं जाया करते थे। मास्टर अयोध्याप्रसादजी का अन्न ही आपके सूक्ष्म चित्त को अनुकूल था। शुद्ध दूध और घी आपको प्रिय था; परन्तु नाना प्रकार के व्यंजनों में रुचि नहीं रहा करती थी। मास्टरजी की मौसी आपको पुत्र भाव से प्रेम करती थी। अनेक प्रकार के स्वादु भोजन बनाती, पर आप सबको एक साथ मिला जुलाकर ही खाते। अपना परिश्रम व्यर्थ जानकर फिर वह भी सादा खाना बनाने लगी। रोटी, दाल और रेचक शाक आपको भले लगा करते थे।

जैसा कि आपकी सर्वदा रुचि रही है, अनेक साधु महात्माओं की कुटी पर, मास्टरजी को संग लेकर जाया करते और घंटों उनसे ज्ञान-वैराग्य के संबंध में वार्त्तालाप होता रहता।

प्रेम-महाविद्यालय के बोर्डिंग हाउस में एका हैज़ा का केस हो गया। एक सप्ताह के लिये सफ़ाई होने के कारण विद्यालय बंद कर दिया गया। कुछ विद्यार्थी और कार्य्यकर्ता आगरा के ऐतिहासिक स्थान देखने को चल दिये। वे चाहते थे कि आगरा

में मास्टरजी के मकान पर ठहरें। जब मास्टरजी जाने लगे, तो स्वामीजी महाराज भी वहाँ से २१ मार्च को चल दिये। मथुरा में पहुँचकर विद्यार्थियों के संग जमना बाग़ और अजायबघर देखते रहे, फिर आप हरिद्वार के कुम्भ में जाने के लिये रवाना होगये।

आप वृन्दावन के आध्यात्मिक वायु-मंडल की बड़ी प्रशंसा करते थे, कि यह स्थान भक्ति-भाव से परिपूर्ण है। महाराजजी श्री कृष्णजी के सखा-भाव को बहुत अच्छा समझते थे। इसी विचार से वे कभी-कभी रास-लीला भी देखने जाते थे। मनुष्य भावनामय है। जिस वस्तु को जिस भाव से देखता है, उसके प्रति वैसा ही भाव दृढ़ होता चला जाता है। जिस लड़की को छोटे-पन से पिता पुत्री के भाव से देखता चला आता है, उसीके युवा होने पर और शृंगार करने पर भी पिता के चित्त में कोई विकार पैदा नहीं होता, केवल निर्मल प्रसन्नता के भाव जाग्रत होते हैं; पर वही स्त्री दूसरे पुरुष के लिये काम की साक्षात् मूर्ति दिखाई देती है। रास-लीला को देखने से महाराजजी के हृदय में सखा-भाव दृढ़ होता जाता था, और प्रभु की मित्रता को वह सदैव अनुभव करते थे, कि किस प्रकार जीव के कल्याण के लिये भगवान् साथ होकर उत्साह देते रहते हैं, और कैसे ज्ञानियों के चित्त प्रभु के क्रीड़ास्थल या नाच-घर बन रहे हैं। अँगरेज़ी के महाकवि शेक्सपियर ने कहा है कि जीवन एक नाटक है; परंतु यह तो हमारे शास्त्रों की पुरानी बात है कि संसार प्रभु की लीला है। वह स्वयं इस नाटक के लीलाधार हैं। हमारी मनोवृत्तियाँ वह गोपियाँ हैं जिनके साथ आत्मदेव दिन-रात अपनी क्रीड़ा करते रहते हैं। हमारा शिर, मस्तक और हृदय, वह वृन्दावन है जिसकी गलियों में अथवा नाड़ियों में भगवान् कृष्ण का अमर नाद सर्वदा

गूँजता रहता है। राम-कृष्ण परहंसजी कहा करते थे कि कामी पुरुष, कृष्ण और गोपियों के रास को और श्रीमद्भागवत की कथा को सुनने और देखने का अधिकारी नहीं है। पवित्र हृदय से ही रासलीला का रहस्य समझ में आ सकता है। परमहंसजी भावुक पुरुष थे। कई वार अपने सत्सङ्गियों के घर जाकर गोप-लीला करते; पर ज्ञान पर आरूढ़ सन्त शिरोमणि स्वामी सियारामजी उसी रास को देखकर सखा-भाव को दृढ़ करते रहे। आप अपने शिष्यों से, चाहे वह कितने छोटे वा बड़े हों, हमेशा मित्र समझकर व्यवहार करते थे। 'यार' कहकर पुकारते। आपने कभी गुरु के अभिमान को पास नहीं आने दिया। सबको पूरा-पूरा सम्मान देते, हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से नमस्कार करते, साधु भेपवालों के तो चरण ही छू लिया करते थे। आप कहा करते थे, 'मुझे तो कोई शिष्य नहीं दीखता, भाग्य अनु-सार अपनी-अपनी सेवा सब ले रहे हैं।' हाँ, उपदेश और शिक्षा देते समय उचित ताड़ना भी किया करते थे; पर यह जिज्ञासु के दोष बताने और उसके कल्याण के लिये ही होता था। केवल अपनी सेवा-सुश्रूषा के लिये ऐसा कभी नहीं करते थे।

हरिद्वार में स्वामीजी महाराज और सत्यानंदजी थोड़े ही दिन रहे। अनेक साधु-सज्जनों के दर्शन करते रहे। ऐसे धार्मिक महा मेलों पर, जहाँ अनेक अच्छे अच्छे साधु, सारे भारतवर्ष से आकर एकत्र होते हैं, वहाँ ढोंगी भी भोले भाले श्रद्धालु यात्रियों से अपना मतलब सिद्ध किया करते हैं। ऐसा ही एक साधु किसी चौबारे पर बैठा धोती निगल रहा था। अनेक बार ऐसे करता रहा। दर्शकों की भीड़ लग जाया करती। बहुत लोग भेंटा भी चढ़ाते। एक बार ध्यान लोगों की ओर होने से धोती

का दूसरा सिरा भी निगला गया। फिर वेचारे ने अनेक यत्न किये ; पर कुछ न बना। कपड़ा अन्तड़ियों में सड़ गया, बड़े कष्ट से शरीर छूटा।

इसी कुम्भ पर सन्यासियों ने, शायद पहली बार, 'वेद' की सवारी निकाली। महात्मा गाँधी जी भी देश को अवस्था देखने के लिये आये हुये थे। उस समय वे व्याख्यान आदि तो देते ही नहीं थे। सेवा-समिति के कैम्प में रहते रहे। उसी कैम्प के पीछे नांगे साधुओं का डेरा था। एक माई वहाँ अपना छोटा सा, चार-पाँच वर्ष का सुन्दर, स्वस्थ लड़का नागों के अर्पण कर गई। सेवा-समिति के स्वयंसेवकों ने बहुत समझाया, पर उसकी श्रद्धा के आगे तर्क को हार ही माननी पड़ी। वह छोटा वालक उसी समय से नंगा रहने लगा। ऐसे ही एक दूसरा युवा पुरुष भी उनके अखाड़े में शामिल हुआ। श्रद्धा भी बड़ी वलवती होती है। तीस चालीस आदमियों की मृत्यु कुम्भ के दिन भीड़ में गिर जाने के कारण हो गई। युवा स्त्रियां, छोटे वालकों को, कंधों पर लिये, एक कटि वस्त्र पहने, वेधड़क हो कर धक्के खाती हुई, अपनी लाज की भी चिन्ता से रहित, हर की पौड़ी पर स्नान के लिये चढ़ी चली जा रही थीं। बूढ़ों को अपने डूबने का भय नहीं था। प्रातःकाल तीन बजे से लेकर सांयकाल के आठ बजे तक स्नान होते रहे, और लोग अनेक कष्टों और बाधाओं को सहार कर अपने हृदयों को तृप्त करते रहे। उधर कुछ ईसाई पादरी इस झमेले के चित्र भी ले रहे थे, जिनके सहारे से भारतवर्ष की असभ्यता और धर्मान्धता जतला कर अपने दानियों से इस देश में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिये धन की याचना करते हैं।

आर्य्य समाज के भी प्रचार का प्रबन्ध था। अन्य अनेक

स्थानों पर साधु महात्माओं के उपदेश और कीर्त्तन भी होते रहते थे। पं० जगदीश मित्रजी भी हिप्नोटिज़म के अनेक विचित्र करशमे दरशाया करते थे। महाराजजी सत्यानन्दजी के साथ एक दिन वहाँ पहुँचे। सत्यानन्दजी की इच्छा थी कि उनको भी मूर्छित किया जाये; पर जैसा श्री गुरुदेवजी ने पहले ही कह दिया था, जगदीश मित्रजी की लीला का उन पर कुछ असर न हुआ। फिर जगदीश मित्रजी से महाराजजी की कुछ बात-चीत होती रही। आपने उनको समझाया कि 'आप इस खेल में अपनी शक्ति का ह्रास न करें। तमाशा बन्द कर दें, और आध्यात्मिक उन्नति में लग जायें।' पर उनकी रुचि इधर न हुई।

इस प्रकार से कुम्भ की लीला को निहारते रहे। फिर जब कुम्भ समाप्त होते ही हैज़ा फूट पड़ा, तो स्वामीजी, सत्यानन्दजी के साथ वहाँ से उत्तर काशी को चल दिये।

दसवाँ प्रकरण (उत्तर काशी)

जब आप काँगड़ी में थे, तो माता और भाई के सङ्ग बद्री-नारायण की यात्रा को गङ्गोत्री होकर गये थे। यह उत्तराखण्ड तपोभूमि है। इस स्थान की महिमा हमारे इतिहास-पुराणों में बहुत वर्णित है। इसमें अनेक ऋषि-मुनि तपस्या करते रहे हैं। अभी तक यहाँ हिन्दू-राज्य है। वेदव्यास और वशिष्ठ आदिक मुनि भी इन स्थानों में तप करते थे। स्वामी शंकराचार्य और आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द, रामतीर्थ, विवेकानन्द आदि सब यहाँ भूमि विचरते रहे। जो भूमि अनेक महात्माओं के तप और योग से पवित्र हो चुकी हो, जहाँ से पतित पावनी भागीरथी

निकली है, जहाँ कैलाश में शिवजी सती-साध्वी पार्वती सहित निवास करते रहे हों, जिस भूमि में महाभारत युद्ध के पश्चात्, पाँचों पाण्डव तप करने गये, जिधर अब भी हर साल भारत-वर्ष के लाखों नर-नारी अनेक कष्ट सहारते हुये तीर्थ-यात्रा को जाते हैं, जहाँ के देश-वासियों में अभी तक इतनी सरलता है कि चोरी और व्यभिचार का नाम भी नहीं जानते ; ऐसे स्थान के पवित्र वायु-मंडल में महाराजजी साधु-भेप में पहली वार पहुँचे। जव पहले यहाँ आये थे, तो भी चित्त वड़ा प्रसन्न हुआ था, और यह विचार था कि छोड़-छाड़कर कुछ काल तक इधर विचरा करेंगे । यहाँ का शुद्ध वायु-मंडल तो ऐसे ज्ञानी संतों को अवश्य अपनी ओर खींचता है।

यहाँ पर आकर आप वड़े गुप-चुप होकर रहने लगे। योग के क्रियात्मक ज्ञान में निपुण होते हुये भी, किसीको कुछ पता न चला कि कोई ऐसे महात्मा यहाँ रहते हैं। केवल उन्हें इतना ही मालूम पड़ा, कि यह साधु थोड़ी-थोड़ी अँगरेज़ी जानते हैं। 'ज्ञानसु' में एक अँधेरी-सी गुफा में रहा करते थे। क्षेत्र से सत्या-नंदजी रोटी ले आते ; उसी में ही निर्वाह हो जाता। घी, दूध आदि, अभ्यासी के अनुकूल चिकने पदार्थ कुछ भी खाने में नहीं आते थे।

यहाँ महाराजजी लग-भग पाँच मास तक रहे, कई महात्मा लोगों के दर्शनों को जाया करते ; पर कोई भी आपके गुणों को न जान सका । स्वामी केवलाश्रमजी और रामाश्रमजी के साथ अनेक वार ज्ञान-गोष्ठी होती । वेदांत पर अनेक सूक्ष्म प्रश्नोत्तर हुआ करते । महाराजजी को ब्रह्मवाद की वात ठीक नहीं जँचती थी। वे तो अनुभव पर खड़े होकर अनेक युक्तियाँ देते, कि जीव ब्रह्म नहीं हो सकता। एक दिन स्त्री के सम्वन्ध में

बात-चीत चली। उनके पूछने पर महाराजजी ने कहा, "हमको स्त्री जैसी है वैसी ही भासती है।" पर वह महात्मा कहने लगे, "कोई भाव तो होना चाहिये। स्त्री को माता-भाव से ही देखना उत्तम है।" श्री स्वामीजी महाराज ने सुझाया, "मातृ भाव भी तो कल्पना ही है। जैसा हाड़, मांस का पिंजर रुधिर, कफ़ आदि दोषों से भरा है, वैसा ही दीखना चाहिये।" तब उनको यह बातें शास्त्र के अनुकूल प्रतीत होने लगीं और जँचने भी लगीं। वे सब लोग महाराजजी के ज्ञान और वैराग्य की बड़ी प्रशंसा करते थे। आपके गहरे विचार, सरल स्वभाव, नम्रता आदि गुणों पर तो सब मुग्ध थे। पर फिर भी यह कोई नहीं जानता था कि आप इतने उच्च कोटि के संत हैं, अथवा योग-विद्या में ऐसे कुशल और निपुण हैं। यदि कोई पूछता कि आप क्या करते रहते हैं, तो आप बड़ी सरलता से उत्तर देते, "हम तो कुछ बहुत साधन नहीं करते, हाँ, थोड़ा सा जाप आदि कर लेते हैं।" कभी-कभी आपकी अनुभव-भरी बातें, उनकी समझ में न आतीं। आपके त्याग-भाव की सराहना तो सब किया ही करते थे, पर आपकी योग में दक्षता किसी को प्रकट न हुई। अपनी बात-चीत में भी आप योग की चर्चा नहीं छेड़ा करते थे। वैराग्य, ज्ञान की बातें होतीं। आत्मा, परमात्मा के संबंध में बड़े गहरे प्रश्न चलते, पर यह कोई न जान सका कि इस गोदड़ी में योग के लाल भी हैं। जैसा कि आप कहा करते थे, "गुप्ता सो सिद्धः" "भजन की चोरी ही भगवान् को प्यारी है। मन भर करो तो रत्ती भर जतलाना चाहिये, वह भी जब कोई पूछ बैठे, नहीं तो चुप ही भली है। यदि ऐसा न होगा तो अभिमान झट आ दबा लेगा। और जहाँ अहंकार आगया, वहाँ ईश्वर से वेमुख होकर संसार की ओर रुचि होने लगती है।" ऐसे

सद्नियम पर आप बड़ी कड़ाई से कटिबद्ध रहा करते थे। यदि कोई निरर्थक दोष भी लगा देता, तो भी अपने आप को निर्दोष साबित करने का यत्न नहीं करते थे। स्तुति, निंदा में समता की हद हो गई थी।

श्री स्वामीजी यहाँ बड़े आनंद से रहते रहे। भोजन का उत्तम प्रबंध न होते हुये भी आपका चित्त बहुत प्रसन्न रहता था। योग का मार्ग अनेक बंधनों से जकड़ा हुआ है, इसलिये इससे बहुत लोग घबराते हैं। खान-पान के अनेक नियमों का पालन करना बड़ी कठिनता पदा करता है। थोड़ी गड़बड़ी हो जाने से भी, शरीर में रोग होने का भय लगा रहता है; पर इतना सब कष्ट होते हुये भी महाराजजी स्वामी सत्यानंदजी के साथ बड़े आनंद से अपना वर्षा-काल काटते रहे। १४ जून १९१५ के एक पत्र में आप इस प्रकार इस तपोभूमि की मुक्त कंठ से सराहना करते हैं। "हम बड़े आनंद से हैं। यहाँ पर ख़ूब वर्षा हो रही है। गंगा-जल बहुत ठंडा और मीठा है। पहाड़ी लोगों का अन्न इतना शुद्ध प्रतीत होता है कि उनके घरों के रूखे-सूखे टुकड़े माँगकर खाने में जैसा चित्त प्रसन्न रहता है, वैसा नीचे रईसों के घरों के स्वादिष्ट पदार्थ खाने से नहीं रहता।" ख़ुद इतने त्यागी और ज्ञानी होते हुये भी दूसरों की प्रशंसा ही आपको प्रिय लगती थी। "यहाँ पर कई एक विरक्त महात्मा रहते हैं। कभी-कभी कोई पढ़ी-लिखी माई भी इस देश में आकर कुछ काल सत्संग और एकांत सेवन करती है।" इतना अच्छा स्थान होते हुये और इतने प्रसन्न रहते हुये, फिर आप क्यों शहरों की गंदी हवा में जाकर रहा करते थे, इसका कारण था आपका करुणामय चित्त, और ईश्वरीय प्रेरणा, जिससे दूसरों के कल्याण के निमित्त सब कष्ट सहारना पड़ता था।

उसी पत्र में आप लिखते हैं:—"नीचे के कई अभ्यासियों की प्रेरणा है कि जाड़े में हम नीचे रहें, ताकि वे भी फ़ायदा उठा सकें, क्योंकि वहाँ रहने से, रेल-द्वारा सुगमता से पास आ सकते हैं।" यदि भगवान् यह दया-भाव महापुरुषों के हृदयों में न पैदा करते, ते अनेक विरक्त त्यागी संतों के सत्संग से जन्म जन्मांतरों से भटकते हुये प्राणी, कल्याण-मार्ग का पता भी न पा सकते। दयालु प्रभु अपने भक्तों को सब वासना से मुक्त कर देते हैं; पर जहाँ उचित समझते हैं, वहाँ उनके हृदयों में करुणा का ऐसा महासागर उभारते हैं कि जिसमें संसार के अनेक तपित हृदयों को शांति की दात मिल जाती है।

कुछ काल पश्चात्, ब्रह्मचारी सत्यव्रतजी और पं० वंशीधरजी वकील भी, अजमेर से यहाँ आ गये। यहाँ ते, आप इतनी गुमनामी से रहा करते थे कि मानों चोरी करके पहाड़ में आ छुपे हों। बहुत जाँच करने पर, थोड़े अंगरेजी पढ़े-लिखे साधु की आड़ से पता चला, पर यह तो कोई जानता ही नहीं था, कि कोई बड़े ज्ञानी, त्यागी, सिद्ध योगी महापुरुष रहते हैं। नाम की सूक्ष्म कड़ी भी बिलकुल टूट चुकी थी। यह दोनों सज्जन पास ही रामचंद्र पंडा के बग़ीचे में ठहरे। इनको आज्ञा मिली, 'शाम को तीन बजे के लग-भग, जब हम गंगा के किनारे बैठते हैं, आकर मिला करो।" शेष समय में मिलने की आज्ञा नहीं होती थी। उन दिनों, महाराजजी की दशा ऐसी थी कि एक पत्थर के ऊपर गंगा की ओर मुख किये बैठे रहा करते। कई बार तो ऐसा होता कि यह दोनों जाकर खड़े रहते और महाराजजी को बहुत देर पीछे इनका आना ज्ञात होता।

जैसा कि आपका स्वभाव था, आप दोनों अभ्यासियों को प्रसिद्ध विद्वानों और महात्माओं के दर्शन कराने के लिये साथ लेकर

गये। स्वामी केवलाश्रम और स्वामी रामाश्रम के दर्शन करके स्वामी प्रकाशानंद गिरि के दर्शन कराये। कुछ बात-चीत चल पड़ी। स्वामी प्रकाशानंदजी ने उसको प्रतिपादित किया; पर महाराजजी ने पूछा, "अनुभव क्या कहता है।" उत्तर मिला :— "हमें अनुभव नहीं है। शास्त्र पढ़े हैं, उन्हीं के आधार पर कहते हैं।"

यह महाराजजीकी विशेष बात रहा करती थी कि आप पूरे वैज्ञानिक की तरह अनुभव और तजुर्बे की कसौटी पर प्रत्येक सत्य को कसा करते। जो बात परोक्ष है, उसके सम्बन्ध में, शास्त्र को ही परम प्रमाण मानते थे; पर यह भी प्रायः कहा करते थे, "जितनी काम की बातें हैं। वह सब अनुभव से सिद्ध हैं, मोक्ष-मार्ग तो प्रत्यक्ष का मार्ग है।" गीता को तो 'प्रत्यक्ष-शास्त्र' ही कहा करते थे। आपका विचार था, "अध्यात्म-शास्त्र उतना ही प्रत्यक्ष पर अवलम्बित है, जितना कि पाँच ज्ञान इंद्रियों के विषय। वही भीतरी अनुभव ही संसार के धोखे को निवारण कर, संसार की असारता और आत्म-ज्योति की सारता और सत्यता सिद्ध करता है; पर अनुभव होना चाहिये। वैराग्य, विचार और सतगुरु ही इसमें विशेष सहायक हैं।"

एक 'नाथ' साधु ने भी महाराजजी से कुछ भजन सीखा था; परन्तु भोजन आदि का प्रवन्ध न होने के कारण उसने पीछे से इस मार्ग का अवलंवन छोड़ दिया।

ब्रह्मचारी ताड़कानंद अनेक दिनों से योग के जिज्ञासु थे। उत्तराखंड में आपको एक भी अनुभवी महात्मा न मिले जिन पर आपकी श्रद्धा हो आती। जब आपने स्वामी केवलाश्रमजी से महाराजजी के त्याग, वैराग्य की प्रशंसा सुनी, और उनकी विचार से भरी बातों का पता चला, तो आपका हृदय उधर

खींचा जाने लगा। महापुरुषों के अन्दर ऐसी शक्ति होती है कि वे पुण्यात्मा को अपने आप ही खींच लेते हैं; हाँ, हृदय अहं-कार-रहित और पवित्र होना चाहिये। पर यह तो पता न लगा, कि आप योग-मार्ग में इतने निपुण हैं। इस कारण दूसरा कोई सहारा न देखकर श्रीस्वामीजी महाराज से पूछने लगे, "स्वामिन्! आप योग-विद्या जानते हैं, कृपा करके मेरे कल्याण के लिये उपदेश कीजिये।" आपने उदासीन भाव से उत्तर दिया, "मुझ से किसी का क्या उपकार हो सकता है, मैं तो किसी का कल्याण नहीं कर सकता, उपकार करने वाले तो प्रभु ही हैं।" "यह बात तो आप की सत्य है। परन्तु परम्परा से गुरुजनों द्वारा ही दूसरों का कल्याण होता आया है।" इतना सुनने पर भी आप उदासीन ही रहे। यहाँ तो अपने गुणों को छिपाने की धुन लगी रहती थी, उधर उन्हीं दिनों एक दूसरे योगाभ्यासी महात्मा उत्तर काशी में पधारे थे। वह बात-बात में योग-दर्शन के सूत्रों की साक्षी देते थे, जिससे उनके योग-बल की धाक जम गई। यह सब सुनते हुये भी, जब लोकेषणा भी नहीं रही, तो फिर मन कैसे विचलित होता।

केवलाश्रमजी वेदान्ती थे, संत सियारामजी द्वैतवादी। इस कारण जब ताड़कानन्दजी ने जो केवलाश्रमजी के पास ठहरे हुये थे और उनके विशेष कृपापात्र थे, उनसे पूछा, "मेरी योग सीखने की इच्छा है, मैं इस मार्ग में स्वामी सियारामजी से दीक्षित होना चाहता हूँ, आपकी कैसी सम्मति है।" उन्होंने कहा "समकालीन योगी से ही योग सीखना अच्छा है, स्वामी सियारामजी का त्याग-वैराग्य तो प्रशंसनीय है, पर वे द्वैतवादी हैं। इनकी बात हमारी समझ में नहीं आती, कहीं धोखा न खा जाओ।" पर ताड़कानंद जी तो मुग्ध हो चुके थे।

सोचा, "विद्या की प्राप्ति करनी है, सो वह कहीं से मिले उसके ग्रहण करने में दोष नहीं।" एक और बात भी उनको बहुत खटकती थी। स्वामीजी तो पटचक्र भेदन के लिये छे मास का समय बताते थे; परन्तु वह योगाभ्यासी महात्मा बारह वर्ष कहते थे। सत्य-असत्य के निर्णयार्थ, उस महात्मा को श्रीस्वामी जी महाराज के पास ले आये; पर यहाँ तो मान-अपमान का मर्दन हो चुका था, स्वाभाविक सरलता से बातें कहने लगे।

'आप क्या साधन करते हैं'

'थोड़ा सा जाप आदि'

'क्या आप अन्य हठ-योग की क्रियाएं भी करते हैं'

'हाँ, घट शुद्धि के लिये थोड़ी-बहुत वह भी कर लेता हूँ'

इन सरल उत्तरों से उस महात्मा की कुछ संतुष्टि न हुई और साधु-मंडली में उसने अपने भाव इस प्रकार प्रकट किये, "यह योग इत्यादि कुछ नहीं जानता, अँगरेज़ी पढ़ा हुआ है, प्रतिष्ठा चाहता है।" यह शब्द महाराजजी के कानों तक भी पहुँचे, पर वह अडोल ही रहे। महापुरुष गम्भीर समुद्रवत चलायमान नहीं होते। जहां अभिमान का लेश नहीं वहां क्षोभ और उद्वेग क्योंकर हो सकता है। और नाहीं उन्हें अपने गुणों का ढँडोरा पीटने की चाह बाक़ी थी। ताड़कानंदजी तो आपके साथ नीचे आकर योग सीखना चाहते थे, और जब उस योगाभ्यासी महात्मा ने कहा कि "यह योग जानते ही नहीं," तो वे फिर द्विधा में पड़ गये। इधर महाराज जी की बातचीत सत्य प्रतीत होती थी, श्रद्धा भी बढ़ गई थी। उधर अन्य सहवासियों की सम्मति भिन्न थी। स्वामीजी महाराज तो परहित में रत थे। दूसरों का संशय निवारण करने का यत्न, सर्वदा सरल से सरल विधि से किया करते थे। उनकी त्रुटि आपको संकोच में

नहीं डाल सकती थी। वह उनका हित जरूर करते और उनको दोष के लिये उचित उपदेश भी दे देते। ऐसा अनुभव करते हुये, स्वामी ताड़कानंद जी एक दिन आपकी सेवा में उपस्थित हुये, और प्रणाम करके, द्विधा मिटाने के लिये उन्होंने बड़ी हिम्मत से ऐसा निवेदन किया, "मुझे इस बात का पता नहीं, कि आप योग जानते हैं कि नहीं। आप प्रतिज्ञा करें कि मैं आपके साथ रहने से धोख में न रहूँगा, और आप के निर्दिष्ट मार्ग पर चलने में राग-द्वेष आदि क्लेश ढीले पड़ जायेंगे अथवा हट जायेंगे। यदि इस बात का विश्वास दिलायें, तो मैं आपके साथ चलूँ।"

श्रीमहाराजजी थोड़ी देर चुप रहे। इतनी धृष्टता और इतना अविश्वास भी देखकर, आप किसी प्रकार से विचलित न हुये। शंका सरल हृदय से की गई थी, कोई छल-कपट तो था नहीं कि आपके अति निर्मल चित्त में घृणा का भाव पैदा करता। अतः आपने कहा, "आप तीर्थ-स्थान में मुझसे प्रतिज्ञा करवा रहे हैं, मैं प्रतिज्ञा क्यों करूँ, मुझे आपसे धन की इच्छा नहीं, और ना हीं सेवा की आवश्यकता है। फिर भी मैं देखता हूँ, कि आज-कल साधु-भेष-धारियों से, जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं, जिज्ञासु लोग बहुत धोखा खाते हैं। मुझे स्वयं सत्रह साल से धोख में भटकना पड़ा है।" (उनके साथ उस समय स्वामी सत्यानंदजी भी थे, उनकी ओर देखकर कहा) "इन से पूछ लो।" ताड़कानंद जी ने कहा, "मुझे आप के वचनों पर ही विश्वास है।" श्रीगुरुदेव के सरल वाक्यों से वे बहुत प्रभावित हुये। आज तक कोई ऐसा दृष्टांत नहीं मिलता कि जब शिष्य के हितार्थ गुरू ने प्रतिज्ञा की हो। यह स्वामीजी महाराज की उदारता, सरलता, परोपकार-भाव और करुणामय हृदय का जाज्वल्यमान प्रमाण है।

स्वामीजी महाराज चाहे अपने गुणों को छिपाते ही थे, तो भी उत्तर कांशी के बहुत से प्रसिद्ध साधु आपके वार्त्तालाप की शैली पर मुग्ध हो गये। फिर भी जब स्वामी ताड़कानंदजी ने महाराजजी के विषय में स्वामी केवलाश्रमजी से जब कभी बात चलाई, तो वे उनके निरभिमानता, सत्यशीलता, सरलता, दक्षता, त्याग, वैराग्य आदि अनेक गुणों को स्मरण कर गद्‌गद हो जाते थे। महाराजजी की शरीरांत की सूचना सुनकर वह सुन्न रह गये। पीछे कहने लगे, "उत्तम वस्तु संसार में थोड़ी देर ही रहती है।" 'सच है, जो यहां प्यारा है, वह प्रभु को भी प्यारा लगता है।' स्वामीजी महाराज और स्वामी सत्यानंदजी के मधुर, मनोहर मिलाप पर सब चकित थे। द्वैत-अद्वैत का भेद होते हुये तथा अन्य अनेक गुणों से अभिज्ञ होने पर भी सब लोग स्वामीजी के सरल व्यवहार पर ही मुग्ध थे। आहा, कितने सरल और फिर कितने सत्यता पर आरूढ़, न कोई बनावट और ना ही कोई आडम्बर। सद्‌गुरुदेव प्रायः कहा करते थे, "जहाँ बनावट है, दिखलावा है, वहाँ जरूर पुलाड़ है," 'दाल में काला-काला प्रतीत होता है। इस बात को उन जैसा निष्कपट संत ही जान सकता था। वे स्वयं कितने सूधे थे, यह वही जानते हैं जिनको उनके चरणों में रहने का कुछ भी अहोभाग्य मिला है, अथवा जो उनसे बात-चीत कर भांपने की बुद्धि रखते थे। स्वामी केवल आश्रमजी यह भी कहा करते थे, "सियारामजी का ही सामर्थ्य है कि नाना प्रकार के विषय-भोग पास होते हुये भी उनकी स्थिति पर्वत के समान अचल और अडोल रहती है।" योग-दर्शन में ऐसे स्थिति वाले पुरुष को ही धीर कहा है, 'विकार हेतौ विक्रियंते येषां न चेतांसि ते एव धीराः।' भगवान् कृष्ण ने जो जीवन मुक्त का लक्षण श्रीगीता में किया है वह आप पर अक्षरशः घटता था।

दुःखेषु अनुद्विग्न मनाः सुखेषु विगत् स्पृहः।
वीतराग भय-क्रोधः .स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।। भ. गीता २, ५६

जिन सूक्ष्मदर्शी भाग्यशाली सज्जनों को श्रीमहाराजजी के समीप रहने का अवसर मिला है, उन्होंने कभी आपको शोक-भय आदि के वशीभूत होते नहीं देखा।

उत्तर काशी में आप एक बार शौच को बैठे थे। देखा कि सामने से एक भयंकर, पाँच छः हाथ लंबा साँप फन उठाये आ रहा है। साँप ने आपको नहीं देखा था, वह आगे को वढ़ता ही आया। आप सोचने लगे कि "आत्मा तो नाश नहीं होता, शरीर का जैसा भोग है, वैसा ही होगा। देखें तो सही क्या होता है।" निर्भय, द्रष्टा वन, साक्षी होकर, उसी स्थान पर डटे रहे। वह साँप एक हाथ की दूरी पर रुका और महाराजजी को चार-पाँच मिनट तक देखता रहा, फिर वापिस लौट पड़ा।

ऐसे ही जिस स्थान पर महाराजजी गंगा के किनारे वैठा करते थे, वहाँ भी पास ही एक साँप रहा करता था। पहले दिन तो महाराजजी को देखकर डरा; पर आपके निर्भय हृदय ने उसको भी अभय प्रदान किया। वह फिर हिल-मिल गया और आराम से खेलने लगा। कई दिन तक ऐसा ही होता रहा।

क्रोध पर भी आपने पूरा जय प्राप्त किया हुआ था। ताड़का-नंदजी शांत-प्रिय स्वभाव के भद्र व्यक्ति हैं। एकान्त वास उनको अच्छा लगता है। साधु लोगों के वहुत निकट रहने से यह वह भलीभाँति जान गये थे कि थोड़े दिनों में खटापटी हो ही जाती है। पर श्रीगुरुदेव के चरणों में कई वर्ष रहे, फिर भी कभी किसी भूल या त्रुटि के कारण आपको उद्वेग में नहीं पाया। अतः इसी कारण श्री महाराजजी से अधिक वार्त्तालाप करके लाभ उठाने का उन्हें ध्यान रहता था। वे जव सर्प तक को भय से मुक्त

कर देते थे, तो मनुष्य को कहाँ भय में रख सकते थे ? इस कारण भी कई वार दुष्टों को आपकी सरलता से वेजा फ़ायदा उठाने का अवसर मिल ही जाया करता था, और विचारहीन सत्संगी भी आपकी सज्जनता के महत्व को समझने में असमर्थ रहा करते थे । पर जव छली अपने अवगुणों को नहीं छोड़ते, तो संत सद्गुणों को क्यों त्यागने लगे ।

आप सर्वदा समाहित चित्त रहा करते थे, इसी कारण कभी-कभी अधिक भी खा जाया करते थे, जिससे पीछे कष्ट भी सहारना पड़ता । खाते-खाते भोज्य के स्वाद में ध्यान लगाने पर वृत्ति तदात्मकार हो जाया करती और इसीसे स्वाद तो एक ओर रहा, यह भी भूल जाते कि हमने कितना खाना है। आपकी अवस्था तो ऐसी थी जैसा कि कहा है ।

स्वादु खायें स्वाद न जानें, भोगें भोग न सुख को मानें ।
दृष्टि सदा आत्मा माहीं, रखें अन्य भाव में नाहीं ॥

ऐसे ही एक वार उत्तर काशी में पोदीने की चटनी वना रहे थे, तो ताड़कानंदजी ने पूछा, "इस समय आपका चित्त कहाँ है ?" उत्तर मिला, "चटनी में ।" वे कहने लगे "मैं तो उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते राम-नाम जपने की कोशिश करता हूँ क्योंकि भगवान् ने गीता में कहा है :—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजति अन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद् भावभावितः ॥ (८, ६)

यदि अभी आपका शरीर छूट जाय तो आप चटनी में ही रहे ।" कितना साहसपूर्वक कटाक्ष और प्रश्न था, पर यहाँ वैसे ही अडोल रहे । वड़ी सरलता से उत्तर दिया कि "मैं जो काम करता हूँ, उसीमें मन को लगा देता हूँ ।" कोई तर्क नहीं दिया, अपने गुणों का वखान भला उनको कैसे रुचता । धीरे-

धीरे ताड़कानंदजी इस बात को भाँप गये कि योग की पराकाष्ठा किसमें है। स्वामीजी का मन पर इतना क़ाबू था कि ऊब कर, किसी काम को बीच में छोड़ देना वह जानते ही न थे। काम एक करते हों और मन कहीं दूसरी ओर भटकता हो यह दुर्गुण है। 'योगः कर्मसु कौशलं' के अनुसार काम करने की चतुराई इसीमें है कि जो काम करो, उसीमें ही मन सावधान बना रहे। यही सहज समाधि है। जिधर मन को जोड़ा, उधर युक्त हो गया। कोई दूसरी बात उसको विचलित न कर सके। सधा हुआ घोड़ा कभी बेक़ाबू नहीं हो सकता, लगाम पकड़नेवाला दक्ष होना चाहिये।

शीघ्र ही सत्यव्रतजी तथा वंशोधरजी वहाँ से चले गये। जबतक पं० वंशीधरजी वहाँ रहे तो कभी-कभी उनको गंगा-तट पर महाराजजी व्यवहार शुद्ध करने के सम्बन्ध में अनेक बातें नोट कराया करते थे।

४

जाग्रति-काण्ड

पहिला प्रकरण (सेवा)

अकतूबर में जब सरदी बढ़ने लगी, तो महाराज नीचे आए। जहां तारकानंद जी बड़ी होशियारी से गुरुदेव की परीक्षा करते रहे, वहाँ महाराजजी बड़ी सरलता और निरभिमानता से उनका जिक्र इस प्रकार एक पत्र में करते हैं, "अब हम उत्तर काशी से चले आये हैं, और रास्ते में हैं। हमारे साथ एक ब्रह्मचारी आये हैं जो पाँच वर्ष से काशी, अयोध्या, हरिद्वार, ऋषिकेश, बद्रीनारायण, केदारनाथ, गंगोत्री आदि की तरफ़ योगियों की तलाश में फिरते रहे हैं, परन्तु अभी तक उनको कोई ऐसे महात्मा नहीं मिले कि जिन पर उनकी पूरी श्रद्धा होती। इसलिये अब वे हमारे साथ देहरादून आये हैं, और वहीं पर योग-अभ्यास में लगेंगे। पीछे से कुछ दिन में उत्तर काशी के और साधु लोग भी योग-अभ्यास के लिये आने को कहते हैं। एक पुरुष पंजाब से आयेंगे और कुछ देहरादून के होंगे। इस लिये हम समझते हैं कि अबकी जाड़े में इन्हीं महात्माओं को

सेवा करें, आगे जैसी ईश्वर की मरज़ी होगी वैसा होगा।" कितनी सरलता और कितना सेवा-भाव है। सच है 'सेवा में प्रभु आप है, नहीं पाप नहीं ताप'। पुरुष सेवा से ही महान होता है, फिर आप तो ईश्वरपरायण थे।

स्वामी सत्यानंद जी भी साथ ही उतर आये। जाड़े में महाराजजी ने देहरादून में डेरा लगा दिया। अजबपुर के पास ठहरने का प्रबंध किया गया। पं० रलारामजी शास्त्री भी यहीं आकर दीक्षित हुये। अभ्यासियों का शरीर कमजोर रहता है, इसलिये आप सबकी सेवा में तन-मन से लगे रहे। आपका कथन कि 'सेवा करेंगे' शब्द मात्र न था और ना ही किसी अभिमानी गुरू का व्यंग भरा वाक्य था; परन्तु उनकी करनी से स्पष्ट प्रकट था कि वे किस प्रकार मुमुक्षु प्राणियों के कल्याण के निमित्त अपनी दयालुता दरशाते थे। हाँ, जहाँ चित्त गवाही न देता, वहां तो उदासीन रहते, रूखा उत्तर भी दे देते, पर जिधर ईश्वर की प्रेरणा हो जाती, उधर तो ऐसी तन्मयता से जुटते कि मानों मोह में फँसकर कार्य्य कर रहे हैं। जिस किसीको आपने अपनाया, उसे यही प्रतीत हुआ कि आप मेरे परम हितैषी हैं। पर यह सब होते हुये भी जब उस प्राणी में छल-कपट का व्यवहार देखते और वह सुझाने-बुझाने पर भी ठीक करने का यत्न न करता तो उदासीन भी हो जाया करते और कहते 'अच्छा हुआ, ईश्वर ने चिंता से छुटकारा दिया'। और यदि अपने प्रेम-पात्र के लिये किसी विशेष आज्ञा की आवश्यकता न होती, तो भूल ही जाते, मानों उससे सम्बन्ध ही नहीं रहा।

शुद्ध अन्न की आप बड़ी आवश्यकता जताया करते थे। खेती कटने के बाद, जो कुछ अन्न रह जाता है उस अन्न को बहुत पवित्र माना गया है। कहते हैं, ऋशि कणाद भी ऐसे ही

अन्न को वीन कर खाया करते थे। आपके देशकी एक माई ने, ऐसा ही कुछ अन्न एकत्र करके भेजने की आज्ञा मांगी। उसकी सूचना को पढ़कर आप लिखते हैं, "पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। तू ने जो नाज धुन कर तैयार किया है, वह हम इन्हीं अभ्यासियों को खिलायेंगे और हम भी खायेंगे। जो नाज कुँवार में पकेगा उसकी जरूरत नहीं, क्योंकि धुना हुआ जो नाज है वह उससे अधिक गुणकारी है। इस लिये जितना तेरे से हो सके, प्रसन्नतापूर्वक तैयार करके भेज दे, तेरी यह मेहनत बहुत फलदायक होगी।"

इन्हीं दिनों देहरादून में वायसराय आये हुये थे, इसलिये खुफ़िया पोलीस के अनेक गुप्तचर वहाँ आते, विघ्न-बाधा डालते, पूछ-ताछ होती रहती; पर महाराजजी बड़ी सरलता और सौम्यता से सब कुछ सुनते और उचित उत्तर देते रहे।

जब तारकानंदजी यहाँ से जाने लगे, तो उन्होंने रुद्ध कण्ठ से श्रीमहाराजजी से निवेदन किया, "आपने जो मेरी निष्काम और निःस्वार्थ-भाव से सेवा की है, उससे मैं कैसे उऋण हो सकूँगा।" उत्तर मिला, "पता नहीं, मैंने सेवा की है अथवा ऋण चुकाया है।" भला ऐसे महापुरुष के संग में शांति न मिलती तो अन्य कहाँ मिल सकती थी। आप इस क़र्ज़ के चुकाने के भाव से ही, ईश्वरीय प्रेरणा के अनुसार, दत्तचित्त होकर सब कष्ट सहते अथवा सब प्रकार की सेवा किया करते थे। आप कहा भी करते थे, "जिस का जैसा भाग्य अथवा भोग होगा, वह हमसे उतनी ही मजदूरी करा लेगा, हम भी सहर्ष उसकी सेवा करते हैं। यही समझते हैं कि जितना ऋण उतर जावे, उतना जन्म-बंधन के चक्कर से शीघ्र छुटकारा मिलेगा। कहीं कुछ रह गया तो फिर जन्म लेकर संसार में दुःख भोगना पड़ेगा।"

इधर स्वामी सत्यानंदजी आपसे बिछुड़कर कुछ दिन तो जहाँ-तहाँ एकान्त-वास करते रहे ; फिर दिसम्बर में मुलतान गये। वहाँ सरदार जसासिंहजी के। भजन-अभ्यास में सहायता देते रहे। सरदारजी ने भी इस सुअवसर के। पाकर ख़ूब मेहनत की। और जैसा आनंद और स्फूर्ति उन दिनों में आपको मिली, वैसी फिर कभी नहीं प्राप्त कर सके।

जब महाराजजी देहरादून से छुट्टी पाकर वृन्दावन पधारे, स्वामी सत्यानंदजी भी वहाँ पहुँच गये। यहाँ आप बड़े आनंद से कुछ रोज़ विचरते रहे। यथापूर्वक यमुना की रेती में, श्रीकृष्ण की बाल-लीला का स्मरण करते हुये, श्रीगुरुदेव अपने युवक सखा के संग समय विताने लगे। गरमी वढ़ती आई, पर जहाँ प्रभु ने भोगवश डाल दिया, उसके आदेश के अनुसार वहाँ ही मस्त होकर रहते रहे।

जिस कार्य्य के। श्री महाराजजी अपने हाथ में लेते थे, उसके। वड़ी कुशलता और परिश्रम से पूरा कर देते। जब कभी यह देखते, कि उनकी सहायता से किसीके। लाभ होता है, और वह कार्य्य शास्त्र-विरुद्ध नहीं है परन्तु धर्म के अनुकूल है, तो चाहे वह कैसा ही साधारण काम क्यों न हो, उसमें दूसरे की भलाई जानकर प्रवृत्त हो जाते और सब कष्ट सह लेते थे। आप तो व्यवहार में ही परम सिद्धि का उपदेश दिया करते थे। 'जो व्यवहार के कार्य्य में गड़वड़ी से काम करता है, तो अभ्यास में भी उसके मन का विगड़ा स्वभाव उसके। सफलता नहीं दिला सकता।' इसी से पता चलता है, कि आपका मन पर कितना काबू था। अपना तो काम समाप्त कर चुके थे, जितना समय होता, आप दूसरे के कल्याण में लगा देते। हां, यदि किसी कार्य्य में विशेष बंधन की शंका होती, तो उसमें न पड़ते, या पहले से

ही कह देते, कि जब चित्त नहीं चाहेगा, झट छोड़ देंगे। जहाँ जरूरी होता, सब कष्ट सहारते, कमजोर होते हुये भी इतने साहस से काम करते कि जवानों में उत्साह भर जाता, और वह अपने आलस्य पर शरम खा जाते।

ब्रह्मचारी सत्यव्रतजी का शरीर उत्तर काशी से लौटने पर कुछ गड़बड़ा गया था। पीछे से संग्रहणी का ज़ोर से आक्रमण हुआ। गुरूजी तो समाचार पाते ही रहते थे और उचित परामर्श भी देते रहे। इधर जब शरीर बहुत कमज़ोर हो गया और रोग के बढ़ने के कारण आशा भी छूटने लगी, तब स्वामीजी की सेवा में एक पत्र लिखा, "बचने की आशा नहीं, दर्शनों को चित्त बहुत चाहता है। यदि कृपा हो सके, तो अहोभाग्य होगा!" कृपालु स्वामीजी महाराज ने उत्तर भेजा, "शरीर नहीं छूटेगा, घबराओ नहीं, शीघ्र आ जाऊँगा।"

मई मास में लाहौर से होते हुये आप अजमेर पधारे। आते ही ब्रह्मचारीजी को जाकर देखा, ढारस बँधाया। फिर शीघ्र ही उनकी अवस्था भी सुधरने लगी। महाराजजी पं० वंशीधरजी के पास ठहरे हुये थे। एक दिन सत्यव्रतजी अपनी हालत कुछ अच्छी देख कर, टाँगे पर चढ़ महाराजजी के दर्शनों को आये, पर उनका कमज़ोर शरीर इस परिश्रम को न सह सका, अवस्था कुछ फिर बिगड़ गई। जब उनकी हालत सुधरने लगी, तो महाराजजी वहाँ से आबू को चले गये।

सत्यव्रतजी को यह कई बार अनुभव हुआ, कि जब-जब उनका शरीर बहुत ख़राब हुआ, और उन्होंने श्रीगुरुदेव को इत्तिला दे दी, तो उनके पास चिट्ठी के पहुँचने के दिन से ही अथवा उत्तर आने के दिन से, इनकी अवस्था सुधरने लगती। वे इसको महाराजजी की शुभ कामना का ही फल मानते रहे।

दूसरा प्रकरण (मान-परीक्षा)

इस बार महाराजजी आबू पहुँचकर राम-कुण्ड पर ठहरे। पण्डित किशनचंद्रजी को सेवा और सत्संगति का फिर अवसर मिला। आबू की महाराजजी बड़ी प्रशंसा किया करते थे कि अंगरेज़ों के पहुँचने से पहले इधर बहुत सिद्ध लोग रहा करते थे। जनता रात को कई जगह जंगल में रोशनी देखती थी। एक फारिस्ट आफ़िसर को, जब वह रास्ता भूल गये थे, एक महात्मा मिले, जिन्होंने उनको नाम से पुकारा और पूछा, "आप तो यहाँ के अफ़सर हैं, यदि आपकी आज्ञा हो, तो हम यहाँ से लकड़ी ले लिया करें।" फिर वह चले गये और आड़ में होकर ग़ायब हो गये। पीछे से उन्हें ख्याल आया कि यह वही महात्मा थे कि जिनकी तलाश में वह गये थे; पर अब तो अवसर हाथ से निकल चुका था, क्या करते। जबसे अंगरेज़ों का आना-जाना हुआ है, तबसे वहाँ रात को जंगल में बहुत कम रोशनी दिखाई देती है। यह भी कथा सुनी जाती है, कि एक बार कई दिन तक यह आकाश-वाणी गूँजती रही 'सिद्धो! उत्तराखण्ड चले जाओ, यह भूमि तुम्हारे रहने लायक़ नहीं रही'।

इसी बीच में एक दिन मालवीयजी से महाराजजी का मेल हो गया। कई दिन तक बात-चीत होती रही। मालवीयजी आपकी बातों से बहुत प्रभावित हुये और आपसे अनुरोध किया कि आप मेरे पास ही चलकर रहें'; पर इस बात को महाराजजी ने स्वीकार न किया।

पण्डित वंशीधरजी भी यहाँ आये हुए थे। एक दिन उनको बड़ी भूख लगी, तो शरीर कमज़ोर होते हुये भी, वहाँ से बड़ी दूर जाकर कुछ खाने को ले आये। जब महाराजजी को पता लगा

तो आपने कहा, "जैसे भूख के कष्ट को दूर करने के लिये, आप इतनी दूर खाने का सामान लाने के लिये गये, ऐसे ही यदि आपको यह निश्चय हो कि अन्तःकरण की शुद्धि के लिये हवन करना वैसा ही आवश्यक है, तो आप इस भूख के कष्ट की भी परवाह न करते हुये, पहले उस धर्म-नियम का अवश्य पालन करते ; पर अँगरेजी पढ़े-लिखों को शास्त्र में विश्वास ही नहीं। नहीं तो किसी क़िस्म का वहाना भी न वनायें कि जंगल में लकड़ी अथवा सामग्री नहीं मिल सकती। जैसे शरीर के लिये दूर जाकर भी आहार ले आते हैं, वैसेही अन्तःकरण के लिये भी, कष्ट उठाकर सव प्रवंध हवन आदि का हो सकता है।"

थोड़े दिन पश्चात् महाराजजी पंडितजी के साथ कश्मीर चले गये। रास्ते में अमृतसर के स्टेशन पर सत्यानंदजी के पिता भी मिले। उनसे भी स्वामीजी ने कह दिया, "तुम्हारे पुत्र अव मेरे वश में नहीं हैं, मुझे पता भी नहीं कि वह कहाँ गये हुए हैं। यदि कुछ और वात हमारे अख़तियार में हो तो कहो।'

कश्मीर में पहुँचकर महाराजजी हाउस वोट में रहने लगे। यहाँ पर पंडितजी का स्वास्थ्य भी कुछ अच्छा होने लगा और महाराजजी का चित्त भी वहुत शांत रहता था। एक जिज्ञासु को उत्तर देते हुये आप ऐसा लिखते हैं "मेरी रुचि अव पत्र लिखने में नहीं। आप अपने संशयों को स्वयं विचार कर निवृत्त कर सकते हैं। जव तक उत्तर न मिले, धीरज से उसी प्रश्न को वार-वार अपने सामने रखते रहो।"

जव महाराजजी कश्मीर में थे, तो राज्य की ओर से यत्न हुआ कि आप उनको सत्संगति का अवसर दें और राजा के गुरु वनें। ब्रह्मचारी नित्यानंदजी तो आपसे पहले ही परिचित थे। उन्होंने आपसे कुछ भजन की विधि भी सीखी थी। वे

महाराज कश्मीर के पास रहा करते थे। उनकी ही प्रेरणा से संत सियारामजी को भी बुलवाने का प्रबंध हुआ। एक बड़े राज्य-कर्मचारी हाउस बोट में आये, पर वे कुछ विशेष ठाठ-बाठ और आडम्बर न देखकर प्रभावित न हुए। वापिस लौट गये; पर जब नित्यानंदजी ने कहा कि "वही सीधे-सादे पुरुष ही गोदड़ी के लाल हैं, तो फिर एक राज्य-कर्मचारी वहाँ भेजे गये। पण्डित वंशीधरजी भी उस समय वहीं थे। बात-चीत होती रही, पर श्री गुरुजी किसी प्रलोभन में न फँसे। यही निश्चय किया, "राजा के लिये अपनी प्रजा की रक्षा और पालन-पोषण पर्याप्त कार्य है, उसीको धर्मानुकूल करना चाहिये। शेष किसी बखेड़े में पड़ने से राज्य-कार्य में हानि होने की सम्भावना है, जिस से प्रजा को जो भी दुःख होगा उसका पाप उनके सिर रहेगा।" बरसोड़ा में आप अनुभव कर चुके थे कि राजों के लिये, इस मार्ग के कड़े नियम पालना कठिन है। उनके सिर इतनी जिम्मेदारी होती है, कि वे उसीको ही नहीं निभा सकते। इस कारण से आप महाराज बीकानेर के ऐसे ही निमन्त्रण को अस्वीकार कर चुके थे। मान-मर्यादा को इच्छा तो थी नहीं, फिर जब दूसरे के कल्याण की भी सम्भावना न हो, तो उसमें व्यर्थ समय क्यों नाश करते और अपने आपको बंधन में डालकर कष्ट काहे को सहते। अस्तु, येन केन प्रकारेण, आपने उस झंझट से अपना पीछा छुड़ा लिया।

सत्यानंदजी, तारकानंदजी के साथ कश्मीर पहुँचे हुए थे। पर उनको वहाँ रहते हुए यह पता न चला कि स्वामीजी भी इधर आये हुए हैं। इधर सत्यानंदजी, प्रोफेसर सदानंदजी से कहते रहते थे कि "आप कुछ साधन करें, जीवन वृथा चला जाता है।" गरमी की छुट्टियाँ होने पर सदानंदजी भी पीछे से कश्मीर

पहुँचे। उसी साल कृष्णकुमारजी को भी जब वे कालिज में पढ़ते थे, प्रोफेसर सदानंदजी के मकान पर स्वामी सत्यानंदजी के दर्शन हुए थे। आप जैसे सौम्य और विनीत महात्मा के दर्शन से चित्त को बड़ी शांति मिली।

यह तीनों, श्रीनगर से १२ मील परे 'दानेहोम' ग्राम के पास ठहरे रहे। वर्षा-ऋतु में कभी-कभी घूमते-फिरते भी रहते थे, भीग भी जाते। ऐसे कारणों से स्वामी सत्यानंदजी के जोड़ों में दर्द रहने लगा। जब कई दिन तक दर्द बढ़ता ही गया, तो यह सब वहाँ से डेरा उठाकर, शहर के क़रीब हरि पर्वत के पास वाले मंदिर में रहने लगे। कुछ औषध-उपचार भी होता रहा। एक पुजारी ने कुट का प्रयोग बतलाया, कुछ दर्द कम हुआ। ऐसी दिक़्क़त के कारण कुछ नियम पूर्वक साधन न हो सका; अतः सदानंदजी थोड़े दिनों में वापिस लौट आए। लाहौर से आपने आकर स्वामी सत्यानंदजी को पत्र लिखा, "आपको वहाँ का जल-वायु अनुकूल नहीं है, इसलिये बेहतर है कि आप यहाँ आ जावें"। थोड़े दिन पीछे, वे दोनों लाहौर पहुँच गये। यहाँ आकर स्वामी सत्यानंदजी ने अपनी अस्वस्थ अवस्था का वृत्तान्त महाराजजी को वृन्दावन के पते से दिया। वह पत्र स्वामीजी को कश्मीर में मिला। वृत्तान्त जानकर उन्होंने खेद प्रकट किया और तसल्ली भी दी और यह भी लिखा, 'हमको भी ऐसा पता चला था कि आप लोग कश्मीर में आये हुए हैं। कुछ ढूंढा भी, पर आप मिल न सके!'

तीसरा प्रकरण (मौलिक उपदेश)

जब इन सबको महाराजजी का कश्मीर से पत्र मिला, तो यह बड़े दुःखी हुये कि वहाँ रहते हुये भी उनके सत्संग से लाभ न उठा सके। फिर कश्मीर लौटना तो संभव न था। महाराजजी से निवेदन कर भेजा कि आप लाहौर में दर्शन देकर कृतार्थ करें। इधर ला० सदानन्दजी ने भी बड़े भक्ति-भाव से एक निमन्त्रण-पत्र भेजा जिसके उत्तर में स्वामीजी ने ऐसा लिखा।

'श्रीमान् सद्गुण-पूर्ण, धर्म-मूर्त्ति, जिज्ञासु, सदा आनन्दजी महाराज को सविनय प्रणाम पहुँचे। कृपा पत्र आपका इस वक्त प्राप्त हुआ। जैसे किसी ग़रीब ब्राह्मण को बहुत दिनों में खीर-पूड़ी का निमन्त्रण पाने से आनन्द होता है, ऐसा ही आनन्द आपके पत्र से हमको मिला। इसमें सन्देह नहीं कि आपको स्मरण करने से ही चित्त प्रसन्न होता है फिर आपके दर्शनों को पाकर क्यों न प्रफुल्लित होगा। जहाँ तक सम्भव हुआ, कम से कम दो-तीन दिनके वास्ते अवश्य ठहरने का विचार है, आगे अन्न-जल के आधीन है।'

अक्तूबर १६१६ में स्वामीजी महाराज लाहौर पहुँच गये। प्रोफ़ेसर सदानन्दजी के यहाँ ठहरने का यह पहला अवसर था। मई १६१२ में, पहले-पहल एम-एस० सी० की परीक्षा देने के पश्चात् सदानन्दजी कनखल में जाकर स्वामीजी के दर्शन कर आये थे। दूसरी बार १६१४ में वृन्दावन भी दो-तीन रोज़ ठहर कर दर्शन किये थे। वैसे तो स्वामी सत्यानन्दजी के मुख से महा-राजजी के सद्गुणों का कई बार वर्णन सुन चुके थे जिससे दर्शनों के लिये लालायित रहा करते थे। खैर, अबकी बार यह मेल एक अनुपम मेल था; मानों किसी पुराने सहकारी को

बड़ी खोज से पाया हो। ऊपर दिये पत्र से महाराजजी के भाव बड़े स्पष्ट हैं। जैसे महाराजजी कहा करते थे "सबकी सेवा करते रहो, और सृष्टि का नाटक देखते जाओ, पीछे फिर से देखने की इच्छा शेष न रहने पावे, नहीं तो फिर यह झगड़ा आगे आन-कर खड़ा हो जायेगा। यदि बाज़ीगर की वृत्ति रहे कि मदारी ने खेल तो दूसरों को दिखला दिया, परन्तु अपने आप उसमें आसक्त न हुआ, उसका लक्ष्य केवल लोगों को प्रसन्न करके पैसा कमाना होता है, इसी तरह यदि केवल ईश्वर को प्रसन्न करना लक्ष्य हो, तो ठीक है। वे आपही सँभाल लेंगे।" इस उपदेश को प्रोफ़ेसर सदानन्दजी ने अनेक वर्षों के सत्संग से चरितार्थ करने का पूरा यत्न किया है। उसमें जो भी सफलता हुई है वह महाराजजी में आपकी अगाध भक्ति और उनकी कृपा का ही प्रताप है।

इस बार का मेल ऐसा हुआ कि फिर तो शरीर शांत होने तक आप पर महाराजजी की बड़ी कृपा बनी रही। आपसे ही स्वामीजी अन्न-वस्त्र की सेवा लेते रहे। आपके शुद्ध भाव की प्रशंसा सबसे किया करते कि 'कैसे निष्काम-भाव से सब प्रकार से सहायता करने के लिये तैयार रहते हैं।' इनके हृदय की पवित्रता को, महाराजजी का निर्मल चित्त, शुरू से ही भांप गया था; इनके उत्साह और कार्य्य-कुशलता पर आप सदैव प्रसन्न रहे। व्यवहार सम्बन्धी अनेक बातों में इनसे सलाह लिया करते थे। दूसरे सत्संगियों को भी यही राय देते, 'प्रोफ़ेसरजी से सलाह ले लेना।' आपकी सूक्ष्म बुद्धि को महाराजजी शीघ्र ताड़ गये। जितनी गहराई से आपने महाराजजी के सद्उपदेशों को ग्रहण किया है, वैसा कम लोगों ने जाना है। अपने व्यवहार सम्बन्धी अनेक अड़चनों के होते हुये भी, जैसे आपने अपने कल्याण का

मार्ग निकाल लिया है उसको बहुत कम जानते हैं। महाराजजी की चित्त की गवाही ही सबसे बड़ी साक्षी है कि अन्त तक उनका निर्मल चित्त, आपके अन्न को ग्रहण करने से प्रसन्न होता था। इसीसे ही, आपके व्यवहार-आचार की निर्मलता स्पष्ट प्रकट है।

इस बार महाराजजी थोड़े दिन ही यहाँ पर रहे। डाक्टर हरनामदासजी आपके दर्शन करने आये। और वैसे भी अनेक विषयों के सम्बन्ध में बातें चलती रहीं, जिसमें से कुछ उपदेश हम पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं।

१—अहिंसा—'हिंसक जीव, सिवाय इसके कि भोग बड़ा प्रबल हो, बिना छेड़ने के कष्ट नहीं देते। गुरु-कुल में रहते हुये अनेक बार बिच्छू हमारे आसन के नीचे रहा करते, पर न हमने कभी उनको मारा, न उन्होंने कभी काटा। ऐसे ही पहाड़ में कई बार सर्प के दर्शन हुये, उसके पास आने पर भी, जब हमने कुछ नहीं कहा, तो वह भी चुप-चाप चले गये। मच्छर तो प्रेम से काटते हैं, यहाँ द्वेष का भाव नहीं, क्योंकि जब हम फल तोड़ते हैं, तो हमें वृक्ष से कुछ द्वेष नहीं। दुःख के दूर करनेवाली शैं प्रेम से तोड़ी या काटी जाती हैं, इसलिये, वृक्षों को भी निरर्थक नहीं छेड़ना चाहिये।'

२—लोभ—'जब तक मनुष्य समझता है कि मेरा संसार से लोभ है तब तक लोभ है। यदि मुझे आठ हज़ार रुपये काफ़ी हैं और मैं एक करोड़ जमा करने का यत्न करता रहूँ, तो यह लोभ है। जब जरूरत नहीं है, तो आगे को इच्छा करना लोभ प्रतीत होता है। जान-बूझकर जरूरतें खड़ी करें, तो कोई अन्त नहीं। सोने के खम्भों वाला मकान हो, और सोने के बर्तन हों, तो थोड़ा फ़ायदा भी है; पर नाम अधिक है। जरूरतें पशुओं से अधिक नहीं होनी चाहिये। जितना कुछ कर्तव्य-पालन के लिये

आवश्यक है, वही ठीक है, केवल निन्यानवे के फेर में पड़ना, लोभ है, दुःख का मूल है, बन्धन का कारण है और महा-मूर्खता है।'

३—संतान-शिक्षा—बहुत पढ़ाई-चढ़ाई सब फ़ज़ूल है, सचाई को तरफ़ ले जाना लक्ष्य होना चाहिये। बच्चे को संतोष में रक्खे, ज्यादह ऐश में न जाने दे। ए० बी० सी० की जरूरत नहीं है। सारी किताबों को पढ़ने से नतीजा क्या निकलता है। अगर हमारा बच्चा होता, तो हम पढ़ाते ही नहीं, उसको थोड़े दिन में स्वतंत्र कर देते। 'मनुष्य का कर्त्तव्य क्या है,' यही जानना है। अपने अंदर से टटोले तो पता लगता है कि दुनिया के कामों में धन्धा बहुत है, लाभ थोड़ा है। ट्रेनिंग देने के लिये जैसा कुछ हो वैसा करना चाहिये।

४—सत्य—सत्य का ग्रहण और झूठ का त्याग यही बड़ा आवश्यक है। इसके अतिरिक्त और कोई बात नहीं, धोखे से अपने आप को बचाना चाहिये। मनुष्य धोखे को छोड़ दे, तो बाक़ी निर्णय हो जायगा। जितने अंश में धोखा है, उतने अंश में आवश्यकताएँ बढ़ती ही जाती हैं, बार-बार समझाने से मन को उपदेश देता रहे कि क्या लाभ प्रतीत होता है। अगर लाभ नहीं तो 'तेरा धोखा है, तू बड़ा मूर्ख है' इस तरह मन को समझाता रहे। इसीसे मन का ख्याल शिथिल होता जायेगा। हठ से तो बंद न होगा। नदी को अगर बंद कर दिया जाय, तो एक दिन तोड़कर ऊपर से चली जायेगी। मन समझानेसे धोखा छोड़ देगा और काम बन जायेगा। इसी प्रकार से जितने भी मानसिक रोग हैं—काम, क्रोध, लोभ आदि—उनका निदान भी विचार से होना चाहिये। शारीरिक रोग तो औषधियों से ठीक हो जाते हैं; पर मानसिक रोग विचार से अथवा सत्य के ग्रहण से ही ठीक हो सकते हैं।

५—मोह—मोह की बड़ी कड़ी लड़ी है ; परन्तु मुसाफ़िर-दृष्टि से देखने पर सब सम्बन्ध कल्पित मालूम होते हैं । ट्रेन के डब्बे में बहुत से आदमी बंद हैं, टिकट समाप्त होने पर उतरते जाते हैं । जब तक रहते हैं, एक दूसरे की सहायता करते हैं, मित्रता हो जाती है, पर कोई चले जाने पर कुछ मोह नहीं करता। ऐसे विचार गृहस्थी को रखना चाहिये । जितने दिन का जो टिकट लाया है उतने दिन रहेगा । संयोग वियोग-होना, इसी का नाम सृष्टि है । ऐसा विचार करते रहना चाहिये - 'आते हैं, जाते हैं, जब उनको जाना होगा, वह चले जायँगे, जब हमें चलना होगा, हम चल देंगे । मोह क्यों करना है ? अपना कर्त्तव्य करते जाओ, इतना ही सम्बन्ध है, और कोई सम्बन्धी नहीं ।

६—काम-क्रोध—जब मरीज़ बेहोश होता है, तब कुछ नहीं सूझता। होश आने पर, सत्संग से कुछ कुछ समझ में आता है। जब समझ में आये तो फिर उस पर अमल करे। काम-क्रोध का वेग तो आना स्वभाविक है; पर आदत को पक्का करने के जिम्मेवार हम हैं। क्रोध आवे तब बोलें ही ना, इतनी सज़ा काफ़ी है कि क्रोध के मन में रहने से .खुद जलता रहे। जब शान्त हो, तो फिर अपनी मूर्खता पर विचार करे। ऐसे ही स्त्री के शरीर की गंदगी को सामने रक्खे। पसीने से बदबू निकलती है। तमाम सुराखों से मल निकलता रहता है। शरीर में हड्डी मांस, कफ़, वात आदि के सिवाय क्या है। असली स्त्री पर तवज्जोह नहीं देता। असल वस्तु पर ध्यान रखने से ही धोखा मिट सकता है। मौक़ा आने पर इन विचारों को अमल में लावे। यदि एक बार चल पड़ा, तो बल बढ़ता जायेगा। यह भी विचारता रहे कि सब अपना प्रारब्ध साथ लेकर आते हैं। मनुष्य

को मिथ्या अभिमान नहीं करना चाहिये कि मैं किसी का पालने वाला हूँ। सत्संग से चितावनी आती है, अपने आप नहीं आती। इसलिये किसी अच्छे आदमी की सत्संगति करते रहना चाहिये। किसीके कहने की ऐसी रीति होती है, जिससे दिल में बात जच जाती है। और कोई मौक़ा ऐसा होता है, कि कहने से चितावनी आ जाती है। इसीलिये सत्संग की बड़ी महिमा है।

७—पुरुषार्थ—निर्णय करना, शुभ कर्म करना, शरीर की रक्षा करना, सत्संग करना, यह सब पुरुषार्थ है। मिथ्या बुद्धि को हटाना पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ केवल परमार्थ के विषय में है और तरफ़ नहीं। विचार की तरफ़, अभ्यास की तरफ़, सत्य की तरफ़, जो पुरुषार्थ है वही असल में पुरुषार्थ है। अन्तःकरण की शुद्धि के लिये ही पुरुषार्थ होता है। बाक़ी जितने दुनियावी काम हैं सब प्रारब्ध-वश हैं। नौकरी करना, शादी करना, धन कमाना, यह प्रायः भोगवश होता रहता है। बुद्धि का काम दुनियां में ज्यादह होता है, इसीको ठीक करना परम पुरुषार्थ है। जितनी बुद्धि-शुद्ध होगी उतना ही अधिक वह विचार में लगेगी, और विषयों में कम। जिनकी बुद्धि मंद है, शास्त्र के अनुसार कर्म करना उनके लिये आवश्यक है। फिर धीरे-धीरे उनकी बुद्धि बढ़ जायेगी। ज्ञान-इन्द्रियों से, ज्ञान का ही काम लेना चाहिये। वे ज्ञान के साधन हैं, इनसे केवल ज्ञान ही प्राप्त करना चाहिये। कर्म-इन्द्रियों से कर्म किया जाता है। इन्द्रियों के कर्म और ज्ञान दो ही काम हैं। विषय सेवन करना इन्द्रियों का काम नहीं है। शास्त्र ने किसीको 'विषय इन्द्रिय' नहीं कहा। यह सब मनकी चालाकी है। पुरुषार्थ से सब कुछ ठीक हो सकता है। पुरुषार्थ की बड़ी महिमा है। सब साधन इसीके अन्दर आ जाते हैं; पर पुरुषार्थ

परमार्थ के सम्बन्ध में ही होना चाहिये'। ऐसे-ऐसे अनेक उपदेशों से आप अपने भक्त को अनुगृहीत करते हुये थोड़े दिन लाहौर रहे।

कश्मीर से झटपट नीचे उतर आने के कारण, कुछ बुखार सा भी हो गया। इधर सत्यानंदजी का शरीर भी वायु के रोग से पीड़ित था। उनका भी कुछ न कुछ औषध उपचार होता रहा। साथ ही महाराजजी ने उनको फटकारा भी, "काश्मीर तुम क्यों गये थे, तुम्हारे चित्त में सुन्दर दृश्य देखने का सूक्ष्म राग है। काश्मीर कोई तपोभूमि तो है नहीं, यह तुम्हारे राग का ही फल है, अब बड़े आनंद से दुःख को भोगते चले जाओ।" स्वामी सत्यानंद ने भी अपनी भूल को स्वीकार किया।

इन्हीं दिनों में स्वामी सत्यानंद के पिता अमृतसर से आ गये। नवम्बर का महीना था, सर्दी आरम्भ हो गई थी। सत्यानंदजी एक चादर ओढ़े बैठे थे। पिता को देखकर तो यही विचार आया कि "अब महाराज जी फिर मुझे अमृतसर जाने को आज्ञा दे देंगे।" परन्तु उनको वहाँ जाने का बिलकुल चित्त नहीं होता था, केवल लंगोट बाँधे ही वहाँ से उठे और बाहर चले गये। जब पूछा, "कहाँ जाते हो?" तो कहा कि "पेशाब करने जा रहा हूँ।" पेशाब करने के बाद आप वहाँ से चले गये। रात को किसी सराय में जाकर रहे। बैठे-बैठे सर्दी में ठिठुरते रहे। दो-तीन दिन तक वापिस न लौटे। इधर उनके पिता इन्तजार करने के बाद हताश होकर लौट गये। जब सत्यानंदजी लौटकर आये, तो उन्होंने अपना सारा वृत्तान्त स्वामीजी को सुनाया। महाराजजी ने कहा, "यदि तुम यहाँ होते, तो मैं जरूर तुम्हें अमृतसर जाने को कह देता। तुमने अच्छा किया जो अपना रास्ता निकाल लिया।"

यहाँ पर रहते हुये स्वामीजी सत्यानंदजी को मल-मल कर

स्नान कराते थे, ऐसा प्रतीत होता था कि कोई शिष्य गुरु की सेवा कर रहा है। महाराजजी तो मित्र-भाव से सब काम किया करते थे, इसलिये अवसर आने पर अपने साथियों की सेवा में कमी नहीं करते थे।

ब्रह्मचारी तारकानंदजी ने पूछा, "महाराजजी, यम-नियम का अच्छी तरह यथाशक्ति पालन करता हूँ, धार्मिक पुरुषों का अन्न भी मिलता है. फिर भी मन शांत नहीं होता।" उत्तर मिला, "प्रतिग्रह अन्न से मन का शांत होना कठिन है, जब मैं अपना कमाया हुआ अन्न खाता था, तो मन अनायास ही शांत रहता था। अब दूसरों का अन्न खाता हूँ, ध्यान भी रखता हूँ कि अच्छी कमाई का खाऊँ, श्रद्धालु से ही लूँ जो निष्काम भाव से देता हो, जितनी होती है उनकी सेवा भी करता हूँ, फिर भी मन को शांत करने के लिये जोर लगाना पड़ता है।" महाराजजी को इस ऋषि-वाक्य पर बहुत श्रद्धा थी, और आपका अनुभव भी इसको पुष्ट करता था:—"अन्न शुद्धौ सत्व शुद्धिः, सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।" इसको आप हमेशा दृष्टि में रखते, और खाने-पीने का प्रबंध ऐसे ही सत्संगी के यहाँ करते कि जहाँ चित्त गवाही देता।

चौथा प्रकरण (योगी का देहान्त)

यहाँ से महाराजजी शीघ्र शाहजहांपुर चले गये। कुछ-कुछ भगंदर की शिकायत फिर होने लगी थी। आपके मित्र डाक्टर रामचंद्रजी उन दिनों वहीं थे। वहाँ रहकर आपरेशन कराया और उनको सत्संग का अवसर भी दिया। रोग की अवस्था में

पड़े-पड़े जब कभी अधिक ध्यान किया करते थे, तो ज़ख़्म का भरना रुक जाया करता था, और जब ऐसा न करते तो वह ठीक होता चला जाता। यहाँ दो-तीन महीने रहे। गृहस्थ में रहने के कारण, स्त्रियों में भी रहने का स्वभाव पड़ गया। और अपने मन की जाँच करते रहे। फिर वहाँ से वृन्दावन पहुँचे। इस बार, १९१७, फ़रवरी मास में सरदार जसासिंहजी ने आपके यहाँ दर्शन किये। यहाँ रहकर सत्संग करते रहे। स्वामीजी सरदारजी की सरलता पर मुग्ध थे, और कई बार उनकी साधुताई की प्रशंसा किया करते थे। आपके साथ ही मार्च में सरदारजी कनखल आ गये। यहाँ पर आप निराकारी साधुओं के अखाड़े में ठहरे रहे। सरदारजी भी आपके साथ रहकर सत्संग से जीवन को कृतार्थ करते रहे। थोड़े दिन पीछे जब महाराजजी ऋषिकेश चले गये तो सरदार जी फिर लौट गये।

कनखल में ही एक ब्रह्मचारी ने महाराजजी को पत्र भेजकर आपके साथ रहने की आज्ञा माँगी। पत्र को देखकर, पढ़े बिना ही, आपके दिल में यह भाव पैदा हुआ कि 'इस ब्रह्मचारी के हृदय में बनावट बहुत है, दिखलावा बहुत करता है।' उत्तर में उसको लिख दिया; 'ऐसी भावना तुम्हारे पत्र को देखकर हृदय में पैदा हुई थी। तुमको आने की आज्ञा है, पर अपने व्यवहार से इस भाव को झुठला कर दिखलाना पड़ेगा।'

स्वामी सत्यानंदजी तो हरिद्वार से ही महाराजजी के साथ हो लिये थे, पीछे से स्वामी तारकानंदजी भी आ गये। यहाँ पर, ऋषिकेश से दूर एकांत में रहने का प्रबंध किया गया। लछमन-झूला के पुल के उस पार, बद्रीनाथ के रास्ते में क़रीब आध मील चलने पर एक पियाऊ है, उसके ऊपर तीन कुटियाँ स्वर्ग आश्रम वालों की थीं, वहाँ रहने लगे।

एक दिन जब यह तीनों स्वामी मंगलनाथजी को मिलने गये, तो बातों-बातों में उन्होंने पूछा 'आप इतनी दूर क्यों जा ठहरे हैं ?' महाराजजी ने कहा, 'निकम्मे आदमी को एकांत रहने में ही अच्छा रहता है, और वहाँ शौच आदि के लिये स्वतंत्रता रहती है।' शेष तो कुछ करने-धरने को रहता ही नहीं था, शरीर यात्रा ही सुखपूर्वक कट जाये इसी पर दृष्टि रहा करती थी।

यहाँ रहते हुये स्वामी तारकानंदजी को कृमि रोग हो गया। यह निश्चय हुआ कि गौ-मूत्र का प्रयोग किया जाये, क्योंकि इसको कृमिनाशक बतलाया है, पर इसको पीने से उनका चित्त घबराता था। तब महाराजजी ने कहा, 'आओ, हम तुम्हें बतायें कि यह कोई बड़ी कठिन बात नहीं है।' गौ-मूत्र मंगाया गया। बासी होने के कारण बड़ी दुर्गन्धि आती थी। इन दोनों ने तो किसी न किसी प्रकार, लाचारी से, नाक मुँह चढ़ा पीना आरम्भ किया, पर स्वामीजी महाराज उसको ऐसे स्वस्थ चित्त से पी रहे थे जैसे दूध। आपने रसना और घ्राण इन्द्रिय को बड़ी अच्छी प्रकार से वश में किया हुआ था। जहाँ अपने को जरूरत न होती वहाँ दूसरे के कल्याण के लिये ही सब-कुछ करने को तैयार हो जाया करते थे।

यहाँ पर एक दिन एक बिच्छू ने महाराज जी को अंगूठे पर काट लिया। बड़ी पीड़ा हो रही थी, पर आप शांति से सब कुछ सह रहे थे। थोड़ी देर पश्चात् आपने अपने दोनों साथियों को सोने की आज्ञा दे दी, और आप भी सोने का विचार करने लगे, पर वेदना के मारे नींद कैसे आ सकती थी। महाराजजी ने उसी अँगूठे में ही चित्त को लगाया, चित्त के समाहित होते ही झट नींद आ गई। रात भर आराम से सोते रहे। आपने एकाग्रता को कैसा साधा हुआ था!

महाराजजी का व्यवहार बहुत गम्भीर और रहस्यमय होता था। दूर रहनेवाले तो क्या जान सकें, पास रहनेवाले भी कई बार धोखा खा जाते। एक बार एक फलाहारी ब्रह्मचारी, जो लक्ष्मणझूला में रहता था, स्वामी सत्यानंदजी से मिलने के लिये आया। वह महाराजजी की कुटिया में गया। महाराजजी अपनी चारपाई को छोड़कर नीचे उतर आये। वह विचारा समझ नहीं सका; चारपाई पर जाकर बैठ गया। जब सत्यानंदजी आये तो उनसे पूछा, 'यह कौन व्यक्ति हैं?' सत्यानंदजी ने कहा, 'मेरे गुरु महाराज हैं।' वह विचारा बड़ा आश्चर्य-चकित और शरमिन्दा हुआ, क्षमा मांगने लगा। नासमझी के कारण आपके व्यवहार में शंका हो जाती थी, परन्तु पीछे से पता चलता कि अपने सहवासियों के उपदेश के निमित्त ही आप सब कार्य्य करते रहते थे।

स्वामी तारकानंदजी को सर्वदा एकांत अच्छा लगता था; परन्तु महाराजजी उन्हें कई बार व्यवहार में प्रवृत्त कर कहा करते थे, 'व्यवहार में ही अपने मन का ठीक-ठीक पता लगता है'। एक बार एक मरणासन्न अभ्यासी को स्वामी तारकानंद जी की सहायता की आवश्यकता थी, सब उनको उसकी सेवा करने की सम्मति देते थे। वह महाराजजी से पूछने को आये। आपने कहा, 'तुम्हारी क्या इच्छा है'? तारकानंदजी ने उत्तर दिया, 'वे सेवा के अधिकारी तो हैं, पर बीमार के पास रहने में तकलीफ़ ही होगी, ख़ामुख़ा कौन अपने सर पर मुसीबत मोल ले'। महाराजजी ने कहा, "जब तुम उसको अधिकारी समझते हो, तो अवश्य सहायता देनी चाहिये। बिना दुःख उठाये, कोई कार्य नहीं हो सकता और ना ही किसीको सुख पहुँच सकता है। देखो, मैं भी जिसको अधिकारी समझता हूँ, अपने शारीरिक कष्ट

और मान-अपमान का विचार न करके उसकी सहायता करता रहता हूँ। व्यवहार में ही अपने जीवन का पता चलता है। ज्ञानी तो, संसार को नाटक समझकर, सुख-दुःख की परवाह किये बिना कर्त्तव्य कर्म का निष्काम भाव से पालन करता रहता है। अतः तुम्हें अवश्य उसकी सहायता करनी चाहिये।" पीछे से, व्यवहार में पड़कर, उन्हें महाराजजी के उपदेश की सत्यता पूरी तरह से समझ में आने लगी और इस प्रकार से जो लाभ उनको हुआ उसके लिये वे अब तक बहुत कृतज्ञता अनुभव करते हैं।

इन्हीं दिनों में, महाराजजी एक मास तक कुछ व्रत करते रहे। शरीर साधने का विचार तो हमेशा लगा ही रहा करता था, कुछ न कुछ तप करते रहने से ही आपका चित्त प्रसन्न रहा करता। यह दोनों युवक वशिष्ठ गुफ़ा देखने गये। स्वामी सत्यानंदजी का वहां एकांत में रहने का विचार था। महाराजजी का बड़ा सूक्ष्म विचार चला करता था। जब वे लौट आये, तब आपने सत्यानंदजी से कहा, "देखो" मनुष्य को अपने प्राणों की रक्षा के लिये कितना मोह होता है। जब तुम लोग बाहिर चले गये, तो मैं एक बहुत अंधेरी रात को, बाहिर निकला, मन बहुत उदास था। मैंने देखा कि गंगा के दूसरे पार हलवाई की दूकान से दीपक की रोशनी आ रही है, उससे मन को साहस हुआ। विचार हुआ कि मनुष्य में दूसरों के संग की कितनी प्रबल इच्छा है। सोचने से देखो, विपत्ति पड़ने पर गंगा-पार इतनी दूर से, किसी सहायता की आशा नहीं, फिर भी मन कुछ न कुछ सहारा बना ही लेता है कि वहां आदमी तो हैं। ईश्वर को छोड़कर मनुष्यों का सहारा ही बंधन का कारण है।"

एक दिन स्वामी मंगलनाथजी से मिलने का अवसर हुआ।

वह पूछने लगे, 'क्या द्वैत मानने से घाटे में नहीं रहोगे ?' महाराजजी ने कहा, 'हमें हठ तो नहीं है, जब अनुभव में आ जायेगा मान लेंगे'। 'श्रुति तो ऐसा ही कहती है।' 'श्रुति के अर्थ तो लोग भिन्न-भिन्न करते हैं, आप अपने अनुभव की बात कहिये, यदि अनुभव में आता हो तो मान लूंगा।' 'शरीर छूटने पर अनुभव होगा'। तब महाराजजी ने कहा, 'उस समय जैसा अनुभव होगा वैसा मानूंगा'।

जब गुरूजी ने कनखल जाकर यागेश्वरजी के पास ठहरने का विचार किया, तो स्वामी मंगलनाथजी ने कहा, 'आप गृहस्थियों के पास क्यों रहते हैं ? आप जैसे महात्माओं को तो तीर्थ-स्थानों में ही ठहरना चाहिये ; क्योंकि आपके कारण ही तीर्थों की शोभा है'। उत्तर मिला, 'गृहस्थियों के पास ठहरने में वहां के दुःख देखने में आते रहते हैं, इससे वैराग्य पुष्ट होता रहता है'।

चाहे महाराजजी अपने को छिपाते ही रहते थे, पर फिर भी खिले हुये फूल की भांति आपके सद् गुणों की सुगन्ध फैल ही जाती थी। प्रो०सदानंदजी भी यहां ठहरे हुये थे, कुछ शरीर शुद्धि ही कर पाये थे, कि फिर कार्य्यवश घर लौटना पड़ा। ब्रह्मचारी रामदेवजी ऋषिकेश में रहकर षट क्रियाओं का अभ्यास करते रहे। इधर सत्यानंदजी का शरीर गड़बड़ चल रहा था। गठिया को तो आराम हो चला, पर बुख़ार आने लगा। कुछ शरीर शुद्धि की गई, तो भूख बड़ी तेज़ लगने लगी, इससे महाराजजी बड़े चकित थे और आपको ऐसा प्रतीत होने लगा कि सत्यानंदजी का शरीर अब नहीं रहेगा। वे ऐसा भी चाहते थे कि दूसरा उनके पास रहे। महाराजजी ने बड़ी कड़ाई से कहा, "दूसरे से तो संसार की बातें होंगी, तुम्हें अभी संसार में राग प्रतीत होता है,

कुछ नाम की भी इच्छा है, तभी तो अपना काम पूरा किये विना, दूसरों को उपदेश करने में प्रवृत्त हो गये। इस समय तो अकेला रहना ही भला है।" जब इनको भूख तेज लगने लगी तो यह विचार हुआ कि पाँच दिन पीछे उनके कुछ अधिक स्वस्थ होने पर नीचे उतर जायेंगे, परन्तु पाँच दिन पीछे उनकी वृत्ति बहुत अन्तर्मुख हो गई। अपने विचार में ही मस्त रहा करते थे। कभी-कभी अंगुली से बड़े ज़ोर का इशारा करते थे। पूछने पर पता चला कि कुछ विचार करते रहते हैं, जब निश्चय रूप से किसी परिणाम पर पहुँचते हैं, तो हाथ उठाकर अंगुली से इशारा करते हैं, कि यही बात ठीक है। प्राण की तेजी के कारण से भी ऐसा करने में वह बाधित थे। कभी-कभी उनका चित्त बहिर्मुख होता या घबराता तो महाराजजी समझा बुझाकर शांत कर दिया करते। पर कमज़ोरी होते हुए भी उनका चित्त प्रायः बहुत शांत रहा करता था। एक दिन एक पास बैठे ब्रह्मचारी से पूछने लगे, 'तुम जानते हो दक्षिणायण, उत्तरायण मार्ग क्या हैं'। 'नहीं, मैं नहीं जानता'। इस पर सत्यानंदजी कहने लगे, 'मुझे पता लग गया है कि यह मार्ग क्या हैं'।

आख़िरी दिन स्वामीजी महाराज आठ बजे सुबह को उनकी कुटी में गये। उस समय उनकी वृत्ति बहुत ही अन्तर्मुख पाई। ज़ोर से आवाज़ देने पर जवाब मिला, "अच्छा हुआ, आप आ गये, आपकी इन्तज़ारी कर रहा था, कि दर्शन कर लूं और धन्य-वाद दे दूं, कि आपने ख़ूब अनुभव कराया। ऐसा उपकार दूसरा न करता, अब मेरे को कोई शिकायत नहीं है। मैं बहुत ही आनंद का अनुभव करता हूँ। शरीर की सुध-बुध कुछ नहीं है। फिर मिलेंगे, अब मैं जाता हूँ।" यह सुन कर महाराजजी बड़े घबराये और सोचने लगे, 'अब हमें भी साथ ही घसीटते

रहोगे, इससे भी गुरु में सूक्ष्म राग प्रतीत होता है।' फिर माता को भी धन्यवाद दिया। वंदना के रूप में एक भजन गाया, फिर वार्त्तालाप बिलकुल बंद कर दी और कभी तो ख़ुशी मनाते हुये हँसते थे, और कभी ओंकार का जाप करते थे। २३ अगस्त को चार बजे शाम के योग-मार्ग में ऐसे ही आनंद का अनुभव करते हुये, शरीर छोड़, परलोक सिधार गये।

उसी दिन ही महाराजजी ऋषिकेश चले आये। सत्यानंदजी को भी पालकी में उठवा लाये थे और रास्ते में जहां उनका शरीर छूटा, वहीं पत्थर बाँधकर गंगा जी में प्रवाहित कर दिया गया।

स्वामीजी महाराज यहां से देहरादून को चले गये। कुछ काल वहाँ ठहर कर, प्रोफ़ैसर सदानंद जी के आग्रह करने पर, आप कनखल होते हुये लाहौर पधारे, और उनके मकान में डेरा लगाया। यहाँ चार-पाँच मास तक रहते रहे।

पाँचवाँ प्रकरण (जाग्रति)

आत्म-कल्याण तथा मोक्ष-साधन के महत्त्व को कोई विरला ही समझ सकता है। इसी कारण प्रायः ऐसे उपदेशों के प्राप्त होने पर भी कमजोर प्राणी उसकी उपेक्षा कर देता है। इस बात को देखते हुये कि बहुत से जिज्ञासु बड़ी लापरवाही करते हैं तथा कटिबद्ध होकर श्रेय पथ पर आरूढ़ नहीं होते, या तो समझते नहीं या उसको मुफ़्त पाकर परवाह नहीं करते; आप एक सत्संगी को लिखते हैं, "आपने बेपरवाही की होगी, क्योंकि

उपदेश के लिये आपको कुछ फ़ीस तो देना ही नहीं पड़ती। यदि १००) रुपये कम-से-कम एक उपदेश के लिये आपको देना पड़े, तो शायद आप अधिक ध्यान दें, वह बात होना ग़ैर मुमकिन है, क्योंकि 'रुपया देने से' (paid up) उपदेश नहीं हो सकता। इसका मोल नहीं है। लाख रुपये देने पर भी उपदेश न मिले और बातों-बातों में मिल जाये, इसकी फ़ीस केवल जिज्ञासु का हृदय है और कुछ नहीं।" जिस वस्तु का जो अधिकारी होता है, वही उसकी ठीक-ठीक जाँच भी लगा सकता है। जौहरी ही लाल की परख कर सकता है। ऐसे ही, सद्हृदय, विचारशील, गम्भीर और पवित्र आत्मा के यहाँ, श्री गुरुदेव ने, १९१७ नवम्बर मास में, लाहौर में छावनी डाल दी।

कुछ दिन सेवा में रहकर, कार्य्यवशात्, सदानंदजी मुलतान चले गये। इस बीच में ला० ईश्वरदास और ला० करमचंदजी वहाँ आये। दस-बारह दिन रहकर भजन अभ्यास करते रहे। इस थोड़े से तजुर्बे से उन्होंने निर्णय कर लिया, 'कि जिस मार्ग पर वे पहले चल रहे थे उससे यह कहीं बढ़कर है, और उनको बहुत लाभकारी प्रतीत हुआ है। इसलिये अब वे ज़ोर से इस मार्ग में चलना चाहते थे'।

यहाँ पर रामदेवजी, पुनः आपकी सेवा में पहुँच गये थे। उधर माघ में प्रयाग का कुम्भ भी था, वहाँ से भी निमन्त्रण आने लगे। पर शीघ्र ही प्रो० सदानंदजी मुलतान से निवृत्त हो कर आ गये। भला आप जैसे शुद्ध हृदय अधिकारी को, संतजी छोड़कर जा सकते थे ? वही हुआ, श्री गुरुदेवजी वहीं डटे रहे। नई उपजाऊ भूमि में ज्ञान, वैराग्य और ध्यान के बीज डालने लगे। शिष्य ने भी ऐसे सुलभ, सुप्राप्य, करुणामय प्रभु की सेवा में कसर न उठा रक्खी। शीघ्र ही बहुत दिनों के

बिछुड़े की तरह वे एक-दूसरे को जान गये, और पूर्ण ज्ञान के नाते, ऐसी गाढ़ मित्रता हो गई, कि जिसको काल का भयंकर चक्र भी न तोड़ सका। श्री महाराजजी तो दया की मूर्त्ति थे। जहाँ जिज्ञासु का हृदय उनको मिल जाता, वहाँ भला उपदेश में कमी कब करते। दूसरे को साथ लेकर परले पार पहुँचाना चाहते थे। एक बार तो आपने अपने सुयोग्य शिष्य को वहाँ खड़ा कर दिया जहाँ के आगे कुछ नहीं था। निर्भय पद के दर्शन करा दिये। वहाँ पर स्थिति रहने की विधि दिखा दी। उस अवस्था को स्थिर करने का मार्ग सुझाया और दरशाया। जिस पर प्रभु कृपालु हों, जो प्रारब्ध से अच्छे संस्कार ले आया हो, जिसमें सूक्ष्म विचार हों, और जिसका जीवन उत्साह से भरा हुआ हो, जो कटिबद्ध होकर रण-क्षेत्र में डट गया हो, फिर जिसको करुणा के सागर, संत शिरोमणि सद्गुरु मिल जायें, उसका बेड़ा भवसागर-पार क्यों न पहुँचे।

सदानंदजी कई साल से थोड़ा-बहुत साधन कर रहे थे। स्वामी सत्यानंदजी ने ही आपकी इधर रुचि दिलाई थी और शुद्ध बोध की स्मृति जगाई थी। फिर पहले भी थोड़े दिन कई बार सत्संग कर चुके थे। इसी वर्ष ही हृषीकेश में रहकर षट क्रियाओं का अभ्यास करके शरीर का कल्प भी कर लिया था। सत्संग से पूजा और वैराग्य के तत्त्व को भी भली भाँति समझने लगे थे। परोपकार की लग्न को भी परमार्थ पर न्योछावर करने का निश्चय हो चुका था। कई वर्षों से संतोष में जीवन व्यतीत करते थे, कि जिस संतोष को आपके अध्यापक और मित्र आलस्य ही मान बैठे थे, पर जिसके बिना प्रभु की शरण में टिकना हो ही नहीं सकता। ऐसा सब होते हुये, फिर पारस रूपी गुरुदेव से भेंट हो गई, जिसके स्पर्श से जब लोहा

भी सोना बन जाता है तो चाँदी सम उज्ज्वल हृदय के कंचन होने में क्या कमी हो सकती थी। अस्तु, आपने इस थोड़े समय में "धूड़ी छान के लाल नूं कढ्लीता" अथवा घट रूपी कीचड़ में से अमृत रूपी आत्मा को निखेर लिया। गुरु भी इस प्रकार चिंता से शीघ्र मुक्त हो गये। जब तक शिष्य को उस पार नहीं पहुँचाते, उसके कल्याण की फ़िक्र आपको लगी ही रहती। पर एक बार वहां खड़ा करके, मानसरोवर के अन्दर पहुँचा कर, जब तन-मन शीतल कर दिया, तो फिर संसार रूपी अग्नि का दाह शांत हुये बिना कैसे रह सकता था। इसी समय श्री सदानंदजी स्वामीजी से सांख्य-शास्त्र और योग-शास्त्र के कुछ प्रकरण भी पढ़ते रहे, और उनके रहस्यों को जानने का यत्न करते रहे।

श्री महाराजजी का नियम था कि प्रातः तीन बजे उठकर ध्यान में रहते, फिर शौच आदि से निवृत्त होकर, दोबारा भजन में बैठते। सात-साढ़े सात बजे, कभी तो घूमने चले जाते और कभी यदि किसी जिज्ञासु को एकांत में मिलने का समय दिया होता, तो उससे बात-चीत करते। फिर ग्यारह बजे के लग-भग भोजन करते। पश्चात् थोड़ा आराम करके अनेक युवा विद्यार्थियों के साथ आपका सत्संग होता। योग-मोक्ष के सम्बन्ध में वार्त्तालाप होता, प्रश्न-उत्तर चला करते, संशय का निवारण होता रहता, हृदय के उच्च भाव जगाते, और भगवान् की भक्ति की धारणा पैदा करते।

स्वामी सत्यानंद जी, पंडित भगवतदत्त जी के मित्र थे। यह दोनों स्वामी लक्ष्मणानंदजी के भक्त थे। जब स्वामी सत्यानंदजी की श्रद्धा इधर हुई तो भगवद्दत्तजी भी इधर झुके। अपने अनेक मित्रों और सहपाठियों का ध्यान योग में प्रवीण इस महापुरुष की ओर खींचा। उधर रामदेव जी कुछ सत्संग करके लाभ

उठा चुके थे। फिर स्वामीजी गुरु-कुल रह आये थे और वेद-शास्त्र पर आपकी बड़ी श्रद्धा थी, और अँगरेजी साइन्स के विद्वान के यहाँ ठहरे हुए थे; फिर जो एक बार भी श्रीमुख से सरल हृदय को चुभनेवाले वाक्य सुन जाता, वह मुग्ध हुये विना रहता ही नहीं था। इन सब कारणों से बहुत भीड़ लग जाया करती थी।

तीन बजे के पश्चात् स्वामीजी, रावी के किनारे रेल की सड़क के उस पार, जंगल में घूमने जाया करते। कभी-कभी कोई जिज्ञासु भी, जिस को समय दिया हुआ होता था, आपके साथ संशय-निवारण करने जाता। ज्ञानचंदजी जो इस समय एम० ए० में पढ़ते थे अनेक बार मित्रों सहित आपसे मिलने जाया करते थे। पं० विश्वबन्धु, ला० अचिन्तराम, ला० फिरोजचंद, अजीतसिंहजी सत्यार्थी, पं० भगवत्दत्त, पं० रामगोपाल, कल्याण-देव जी इत्यादि अनेक युवा उत्साही वीर वहाँ जाया करते थे। कई तो प्राणायाम आदि अनेक विधियों से भजन में लगे भी।

प्रभु की त्रिगुणमयी माया बड़ी बलवान् है। किसी न किसी प्रकार से अपनी ओर खींच ही लेती है। दुःखी, दीन, पराधीन, दरिद्री भारतवर्ष के पुत्र भला उसकी हित कामना में न लगकर प्रभु-चिंतन में कैसे लग सकते थे। धीरे धीरे देश और जाति की सेवा के कार्य्य की ओर आकर्षित हो गये। पूर्ण स्वराज्य ही ऐसी सद् हृदय आत्मा को प्रभु की शरण में जाने की आज्ञा दे सकता है। प्रभु ही उनको दुखियों के कष्ट निवारणार्थ देश-सेवा के कार्य्य में लगा देते हैं।

ज्ञानचंदजी की प्रेरणा से कृष्णकुमारजी भी एक दिन दयाल-सिंह कालिज होस्टल से महाराजजी के दर्शनों को गये। दो-तीन रोज से कुछ बुखार आ रहा था, जो तीन बजे से बढ़कर

रात को देर में जाकर उतरता। दिन को एक बजे जब वे दोनों प्रोफ़ैसरजी के मकान पर पहुँचे, तो डी० ए० वी० कालिज के अनेक विद्यार्थी वहाँ बैठे थे। महाराजजी उन दिनों नंगे पैर घूमने जाया करते थे। शीत लगने के कारण पैर फट गये थे। दो एक विद्यार्थी आपके चरणों को गरम जल से मलकर धो रहे थे। यह भी जाकर प्रणाम करके चुपचाप बैठ गये। कुछ बातें होने के बाद संतरे का प्रसाद बाँटा गया। कृष्णकुमारजी को भी एक फाँकी मिली। थोड़ी देर पीछे जी मतलाने लगा, वमन हो गया, बुखार चढ़ने का समय हो रहा था, इसलिये प्रणाम कर के वापिस लौट गये। बड़े दिन की छुट्टी के बाद जब यह ज्ञानचंदजी से मिले तो ज्ञानचंदजी से पता चला कि श्रीमहाराजजी ने इनके बारे में पूछा था और कहा था, 'वह लड़का बड़ा शांत चित्त प्रतीत होता था।' ऐसी बात सुनकर इनके हृदय में उत्साह बढ़ा। फिर कई बार श्री सेवा में पहुँचकर आपके साथ भ्रमण करने जाते रहे। फ़िलासफ़ी तो पढ़ते ही थे, इसी सम्बन्ध में अनेक प्रश्न-उत्तर होते रहते। दिन प्रतिदिन स्वामीजी महाराज की अनुभव भरी बातों से साहस बढ़ता गया, और यह विचार हुआ की कुछ ध्यान सम्बन्धी बातें पूछें।

पं० भगवतदत्त और अन्य मित्रों से प्राणायाम और योग के विषय में अनेक बातें सुनी थीं। सात्विक आहार का भी सेवन दो एक वर्षों से हो रहा था। कुछ काल पहले आर्य समाज के प्रसिद्ध संन्यासी श्रीस्वामीसत्यानंदजी से कुछ प्राणायाम सीखा था। इस सब थोड़े बहुत यत्न से कुछ भीतर परिवर्तन भी हो चला था। जब इसका जिक्र श्रीस्वामीजी महाराज से किया, तो आपने बड़ी दयालुता से एक दिन रात्रि को बुलवा भेजा और बड़े प्रेम से भजन के लिये उत्साहित किया। दो

महीने पीछे परीक्षा भी आ रही थी फिर भी महाराजजी की प्रेरणा से एक मास तक कुछ साधन करते रहे। फिर परीक्षा की तैयारी के लिये घर चले गये; पर वहाँ जाकर थोड़े दिन पश्चात्, ब्रह्मचर्य के नियम को तोड़ने के कारण शरीर बहुत बिगड़ गया, जिससे सांसारिक अथवा पारमार्थिक दोनों परीक्षाओं में बहुत हानि उठाई। स्वामीजी महाराज अभी लाहौर में ठहरे थे, और अप्रैल के आदि में यह जब वापिस आये, तो श्रीगुरुदेव के चरणों में सब वृत्तान्त कह सुनाया। इतना सब दोष होते हुए भी स्वामीजी ने हताश न होने दिया। फिर यह निश्चय हुआ कि गरमी की छुट्टियों में गुरुजी की शरण में रहकर मन को पवित्र करने का यत्न किया जाये।

जब महाराजजी लाहौर आये थे, तो आपका विचार था कि अँगरेजी पढ़े लिखे विद्यार्थियों में प्रभु-भजन की कुछ जाग्रति कर दी जाये। इसीसे बहुत कुछ कष्ट सहकर भी सबको समय देते रहे। ऐसे सुअवसर प्राप्त करते हुये भी कोई विरला ही तन-मन को प्रभु के अर्पण कर सकता है। वैसे तो जितना थोड़ा-बहुत सत्संग हो जाये उतना ही अच्छा है।

महाराजजी सदैव वैराग्य पर बड़ा जोर देते थे। घट शुद्धि के लिये हठयोग की क्रियाओं का अभ्यास भी बतलाया करते। शरीर को स्वस्थ और कोमल करने के लिये अथवा नाड़ी जाल को शुद्ध करने के लिये योग के अनेक आसनों को लगाना भी सिखाते, प्राणायाम और पूजा की विधि भी बतलाया करते, ध्यान जमाने की युक्तियाँ भी सुझाते; पर यह सब कराते हुये भी, आपका विशेष जोर वैराग्य और विचार पर रहा करता था। विषयों से उपरामता पाये बिना, चित्त को शांति कहाँ मिल सकती है! प्रभु की शरण में, वे ही विश्राम पा सकते हैं,

जो माया से विमुख हो चुके हैं। इसी कारण यम-नियम के पालन पर जिज्ञासु का ध्यान दिलाते। कहा करते, 'पाप को छोड़े बिना और शास्त्र के अनुसार व्यवहार को जब तक प्राणी शुद्ध नहीं करता, उसके तप और साधन कुछ फल नहीं ला सकते। प्रायः लोग सिद्धियों से आकर्षित होकर योग की ओर ध्यान देते हैं, पर संयम के बिना योग निरर्थक है।'

एक ब्रह्मचारी, जिनको तीन साल भजन में लगे हुये हो गये थे, जिनके अन्तःकरण में अनेक नूतन और सूक्ष्म अनुभव फुरा करते और विश्व-रूप दर्शन भी होने लगे थे, कुछ काल पीछे काम से पीड़ित रहने लगे। स्वप्न-दोष भी हुआ करते। कभी-कभी काम-ज्वर भी हो जाता। वैद्यों की कुसम्मति और कुसंग के कारण विवाह का विचार भी दृढ़ हो रहा था। कुछ दिन जोरू की तलाश भी होती रही। उनको ऐसा निश्चय होगया था कि सब ब्रह्मचारी कामज्वर से दुखित रहते हैं, और काम को जीतना असम्भव सा है; पर सौभाग्यवश वह अपनी अवस्था की सूचना स्वामीजी को देते रहे, इसी कारण श्री गुरु-देव की अपार कृपा का सहारा उनको मिल गया। ब्रह्मचर्य्य के अनेक नियम पालन करने लगे। श्री चरणों में बैठकर विषयों से उपरामता के अति दुर्गम ज्ञान को प्राप्त करके, अपने आपको सँभाल लिया। अभ्यास इतना बढ़ा होने पर भी तन-मन के संयम के बिना गिरावट से नहीं बच सकते। शम-दम के सेवन से ही मनुष्य, हृदय में वैराग्य धारण कर, माया के मोह से छुट-कारा पा सकते हैं।

महाराजजी का दृढ़ निश्चय था कि ब्रह्मचर्य्य से शरीर को किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती। हाँ, यदि ब्रह्मचर्य्य के नियमों का पालन नहीं होता, तो कष्ट होने का भय जरूर है।

जो डाक्टर और वैद्य काम से व्यथित मनुष्य को विवाह की सम्मति देते हैं, वे ब्रह्मचर्य्य के महत्व को नहीं जानते। विवाह से काम-ज्वर भले ही शांत हो जाये, पर और अनेक ज्वर पैदा हो जाते हैं। मुमुक्षु के लिये यही उचित है कि वह ब्रह्मचारी ही रहे। यदि भोगवश विवाह में फँस चुका है, तो नियम पूर्वक ऐसा साधन करे, कि जिन कुसंस्कारों के कारण उसकी आसक्ति गंद से भरे हाड़ माँस और चाम के शरीर पर हो रही है, वह सब मिट जाये। स्त्री-पुत्र आदि के बंधन में पड़ा हुआ, मोह में न फंसकर अपने मन को विचार से सुदृढ़ करता जाये। साथ ही अनेक मानसिक अथवा शारीरिक साधनों द्वारा काम-वृत्ति को शांत करने का उपाय करता रहे। दृढ़ संकल्प, सात्विक आहार, स्वाभाविक शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम, मोक्ष शास्त्रों का चिंतन, तपस्वी अनुभवी महात्माओं का संग, और ईश्वर परायणता इन सब बातों को जीवन में धारण करने का उपदेश, आप सदा दिया करते थे।

नम्रता और निरभिमानता की तो आप मूर्ति थे। जिसको आप एक बार अपना लेते, उसका कल्याण करने में चिंतित रहा करते। जब तक जिज्ञासु का उत्साह और श्रद्धा बनी रहती, बड़े शुद्ध भाव से, निष्कामता पूर्वक उसकी सेवा का भार उठाये रहते। इसी भाव से प्रेरित होकर आप एक सत्संगी को लिखते हैं:—'नौकर का काम है नौकरी बजाना, सो जैसे अपने से बनता है वैसे नौकरी आपकी आज्ञानुसार बजाये देते हैं। मालिक का काम मालिक जाने।' इतनी दया करते हुये भी निरर्थक बंधन में अपने आपा को कभी नहीं डालते थे। सब काम उदासीनता से ही हुआ करता था। उन्हीं सत्संगी को फिर लिखते हैं:—"पता देने की नौकरी जो आपने हमारे ऊपर लगाई

थी, वह जवाबदेही हम नहीं ले सकते। उसको हम 'जिन ढूंढा तिन पाया' के मिसल पर छोड़ देते हैं।" यह सब होते हुये भी, इतनी उदारता और उपरामता को साथ-साथ प्रकट करते हुये भी, अवसर अनुकूल बड़ी कड़ाई से काम लिया करते थे। जिज्ञासु के हितार्थ उसकी बड़ी-कड़ी आलोचना करके, उसके दोष उस पर जाहिर कर देते थे। अनेक विधियों से उसके कल्याण के लिये उपदेश करते। अनेक उपायों से उसका हित साधते; परन्तु जब उसको प्रभु से विमुख हुआ देखते, अथवा उसकी रुचि मोक्ष-मार्ग से हटकर संसार की ओर बढ़ने लगती थी, किसी प्रकार का छल-कपट उसके व्यवहार में पाते, तो तुरन्त ही उसको प्रणाम करके चिन्ता से मुक्त हो, उदासीन हो जाया करते। प्रभु का धन्यवाद करते, कि जो कष्ट भोगवश खड़ा हो गया था, उसको उन्होंने निवारण कर लिया।

इन्हीं दिनों महात्मा हंसराजजी भी आपके दर्शन करने आये। कुछ योग दर्शन के सूत्रों के सम्बन्ध में वार्त्तालाप करते रहे। जो विरोधाभास उनको प्रतीत हो रहा था श्री स्वामीजी महाराज ने भली प्रकार समझा कर दूर कर दिया। अभ्यास के विषय में कहा, 'योग के अभ्यासी को व्यवहार और अन्न की शुद्धि पर विशेषतया ध्यान देना पड़ता है। इस कारण से वे सज्जन जो परोपकार के कार्य्य में घूमते रहते हैं, इस मार्ग का अवलम्बन नहीं कर सकते।'

स्वामीजी महाराज हमेशा सरल और स्पष्ट व्यवहार को पसंद किया करते थे। ऐसी सभ्यता और नीति को वे पसंद न करते कि जिसमें बात भी स्पष्ट न हो सके। इसी सम्बन्ध में एक सत्संगी को लिखते हैं:—"संभव है, आपने सभ्यता से इशारतन ज़िक्र किया हो। क्योंकि अपनी जन्म-भूमि ग्राम की

है और रहना तथा व्यवहार आदि ज्यादहतर ऐसे ही पुरुषों के साथ रहा और रहता है कि जिनके साथ वात स्पष्ट रीति से होती है, जहाँ सभ्यता और असभ्यता का ख़्याल नहीं रहता, इसलिये कुछ आदत ऐसी ही हो गई है, कि जब तक बात स्पष्ट न कही जावे समझने में कम आती है; इसलिये जब कभी लिखें, तो सभ्यता असभ्यता का ख़्याल छोड़कर जो कुछ लिखना हो स्पष्ट शब्दों में लिखें।"

छठाँ प्रकरण (योगाश्रम)

लाहौर से महाराजजी १५ अप्रैल १६१८ ई० को चल दिये। जम्मू से होते हुये शीघ्र ही कटरा पहुँचे। वैष्णवदेवी के आस-पास रहने का विचार था। एक बार पहले भी यहाँ आ चुके थे। तीर्थ-स्थान में रहने को आपका चित्त किया ही करता था। इस स्थान के आस-पास कुछ आबादी भी नहीं और सड़क से दूर होने के कारण आधुनिक काल की बुराइयाँ भी यहाँ नहीं फैलीं। और, क्योंकि कई नये अभ्यासी गरमी में आने को कहते थे, इसलिये यहाँ पर एकांत तीर्थ-स्थान में प्रबंध करने का विचार था। मुलतान के, ला० नारायणदास भी आपके साथ आये थे। एक दिन कटरा ठहरकर वैष्णव देवी को देखने गये। वहाँ का जल-वायु बड़ा उत्तम है। मकान भी बहुत हैं; मेले के दिनों के अतिरिक्त ख़ाली ही रहते हैं, परन्तु गृहस्थियों को महाराजा साहिब या धर्मार्थ के अफ़सर की आज्ञा लिये बिना तीन दिन से अधिक ठहरने को नहीं मिलता। यहाँ पर एक दुकान

भी है जिसमें खाने-पीने की सामिग्री बड़ी मँहगी मिलती है। दूध का वन्दोबस्त भी नौकर के विना नहीं हो सकता। इन सब असुविधाओं के कारण, इस स्थान का विचार छोड़कर अन्य स्थान ढूंढ़ने लगे। बाल गंगा के ऊपर कोई डेढ़ मील पर एक छछड़ की गुफा टूटी-फूटी पड़ी थी। उस ही की मरम्मत कराके वहीं पर रहने लगे। नारायणदासजी के अतिरिक्त वानप्रस्थी मंगलसैनजी भी पहुँचे हुये थे। यहाँ पर अच्छा एकांत तो मिल गया, पर अधिक आदमियों के ठहरने के लिये प्रबन्ध न था। इसलिये शीघ्र ही एक नया मकान अथवा कुलिया बनाने का उद्योग किया गया। लकड़ी तो धर्मार्थ से मिल गई, एक-आध मजदूर लगा दिया, और कोई एक दो ग्रामीण भी सेवा-भाव से उसमें काम करने लगे। स्वामीजी स्वयं भी वड़ा परिश्रम करने लगे। अपना स्वार्थ न होते हुये भी जिज्ञासुओं के कल्याण के लिये इतने सूक्ष्म शरीर से भी इतना काम लेते कि सत्संगी हैरान रह जाते। कहा जाता है कि भारतवर्ष में गुरु-डम बहुत है, मठधारियों की तो गिनती ही नहीं। गद्दी को प्राप्त करने की चाह में ही कई एक साधु जीवन बिताते रहते हैं। शिष्य सम्प्रदाय को बढ़ाने की ममता भी बाबा लोग नहीं छोड़ सके। फिर भला शिष्यों से सेवा की आशा रखना कुछ ऐसा अनुचित भी नहीं दीखता। अँगरेजी के विद्वान्, गणित विद्या में निपुण, योग कला में इतने प्रवीण; ज्ञान और ध्यान में ऊपर उठे हुये; शास्त्रों के रहस्य को सम्यक् प्रकार से समझनेवाले; और फिर इतने नम्र और निरभिमान। सच है प्रभु के सच्चे भक्त शील के पुंज होते हैं। जितना मनुष्य महान् है उतना ही सेवा में अग्रसर है; जितना परमात्मा का भक्त है, उतना ही निरभिमान है।

'जिस मस्तक में ज्ञान है, आत्म प्रभु का मान,

फलित पेड़ सम नम्र हो, रहे भूल अभिमान ;
नम्रता में राम है, नम्र नारायण जान,
परमार्थ है नम्रता, नम्र ही सेवक मान।'

थोड़े दिनों में कई अभ्यासी एकत्र हो गये। धीरे-धीरे जैसे-जैसे छुट्टियाँ मिलती गईं महाराजजी की छोटी सी कुटी जिज्ञासुओं से भर गई। लाहौर से, पहले कृष्णकुमारजी पहुँचे, फिर प्रो० सदानंदजी भी आ गये। जालन्धर से ला० करमचंदजी और रामदेवजी पधारे। स्यालकोट से ला० ईश्वरदासजी और गुंजरांवाले से ला० हरदयालजी का आगमन हुआ। स्वामी तारकानंदजी भी वहाँ उपस्थित थे। अभ्यास तो कम होता था, परन्तु सत्संग खूब हुआ करता। नये अभ्यासियों को षट क्रियाओं का अभ्यास आरम्भ कराया। गुरुदेव महाराज, सबको निष्पक्षता से सब प्रकार का उपदेश देते थे। कोई-कोई तो शीघ्र ही क्रिया में चल पड़ते, परन्तु किसी-किसी के साथ बहुत ही पुरुषार्थ करना पड़ता। कभी-कभी जब जिज्ञासु को उत्साहहीन पाते तो अपनी मानसिक शक्ति लगाकर उसके बल को बढ़ाते। सारा दिन बड़े आनंदपूर्वक सब काम होता रहता। प्रातःकाल उठकर जहाँ-तहाँ स्थान ढूँढ़कर, सब लोग थोड़ा-थोड़ा भजन करते। आठ बजे से भोजन की सामग्री तैयार होने लगती; जिसमें सब अपनी शक्ति अनुसार थोड़ा-थोड़ा योग देते। इसी समय से सब लोग घट शुद्धि के निमित्त क्रियाओं का अभ्यास किया करते। तब भोजन का समय हो जाता। रोटी पकाने का भार, वानप्रस्थी मंगलसैन के सिर पर था। इस कार्य्य को वह कई दिन तक बड़ी कुशलता और सज्जनता से करते रहे। पीछे जब गरमी के कारण उनको शारीरिक कष्ट होने लगा, तो आज्ञा हुई, सब अपने आप भोजन बनाया करें। कभी, जली रोटी खाते-खाते

ग्रेजुएटों को भोजन पकाने का ढंग आने लगा। अपने-अपने बर्तन तो प्रत्येक मला ही करता था। महाराजजी कहा करते थे, "स्त्री से स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये पाक-विद्या का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान होना चाहिये, नहीं तो काम तृप्ति के अतिरिक्त, भोजन के निमित्त भी स्त्री का दास बनना पड़ता है। इससे उसकी मोह-पाश से निकलना और भी मुश्किल हो जाता है। जिज्ञासु गृहस्थी को उचित है कि स्त्री पर बहुत निर्भर न रहे। अपने सब काम प्रायः ख़ुद करने चाहियें। परतंत्रता में दुःख ही होता है, और मनुष्य यही समझ बैठता है, कि स्त्री के बिना उसका निर्वाह ही असम्भव है। ऐसी धारणा को रखते हुये, काम, मोह से छुटकारा पाना और भी कठिन हो जाता है।"

दोपहर को सब लोग थोड़ा आराम करते। तीन चार बजे नाले के किनारे अथवा चट्टान पर बैठकर, ज्ञान वैराग्य की चर्चा हुआ करती। प्रश्न-उत्तर भी ख़ूब होते, महाराजजी बड़ी दक्षता से सब प्रश्नों का उत्तर देते। सायंकाल को, सब लोग, जहाँ-तहाँ स्थान पा थोड़ी देर संध्या उपासना करते। रात्रि को दूध पीकर, ज्ञान-चर्चा होती रहती, जिसमें अनेक व्यवहार परमार्थ की गुत्थियों को सुलझाने का कार्य्य श्री गुरुदेवजी बड़ी चतुरता से पूरा करते थे। कभी-कभी दिन को उपनिषदों के कुछ प्रकरण पढ़े जाते और प्राण उपासना का रहस्य समझाया जाता।

वर्षा के दिन थे, इसलिये कभी-कभी अधिक पानी पड़ने के कारण जहाँ-तहाँ कुटी अथवा कुलिया चू पड़ती। महाराजजी यहाँ भी अग्रसर होकर मट्टी लाते और कूट-पीट करके छत को ठीक किया करते। आपकी मिसाल से शरमिंदा होकर सब का आलस्य दूर हो जाता और प्रयत्नशील बनना ही पड़ता। आपके व्यवहार से भी बहुत उपदेश मिला करते। महाराजजी के जीवन

में कथनी और करनी का अनुपम मेल था। जिस उच्च अवस्था का आपके मुख से निरूपण सुना करते थे और जो ज्ञानी के गुण शास्त्रों में पढ़ा करते थे, वे सब महाराजजी के जीवन में प्रत्यक्ष दीखते।

काम है न क्रोध जाके, लोभ है न मोह ताके,
मद है न मत्सर न, कोऊ न विकारो है।
दुःख ही न सुख माने, पाप ही न पुण्य जाने,
हर्ष न शोक आने, देह ही ते न्यारो है॥
निंदा न प्रशंसा करे, राग ही न द्वेष धरे,
लेन ही न देन जाके, कछु न पसारो है।
'सुन्दर' कहत ताकि, अगम अगाध गति,
ऐसो कोऊ साधु संत राम जी को प्यारो है॥

यह विचित्र योगाश्रम तीन मास तक बड़े उत्साह से चलता रहा। वहाँ रहते-रहते चित्त को स्वतः ही शांति हो जाया करती। संत की समीपता में शरीर की ममता अथवा सम्बन्धियों का मोह प्रतीत ही कहाँ हो सकता था। इसी कारण से साधक अनेक कष्ट सह कर भी, श्री चरणों में रहने का यत्न करते। पास रहते-रहते विना उद्योग साधुताई का रंग चढ़ने लग जाता। साधु संगति की महिमा अकथनीय है। तीर्थ यात्रा का भी इस की अपेक्षा कुछ बड़ा महत्व नहीं।

मथुरा जावे द्वारका, भावें जावे जगन्नाथ।
साधु संगत हरि भक्त बिन, कछु न आवै हाथ॥ १॥
कबीर संगत साधु की, बेग करीजै जाई।
दुर्मत दूर गवाई सी, देसी सुमत बताई॥ २॥
एक घड़ी, आधी घड़ी, आधी से पुनराध।
तुलसी संगत साधु की, तोड़े कोट अपराध॥ ३॥

तीर्थ की पुण्य भूमि हो, फिर एकांत स्थान, उस पर तप और साधन का जीवन, और संत शिरोमणि, करुणा के सागर, ज्ञान के भंडार, परम साधुता से परिपूर्ण, विनय-शील-सम्पन्न, योग-निपुण, परमहंस सियाराम जी महाराज का संग हो तो फिर भला चित्त में वैराग्य का उदय होना अवश्यम्भावी क्यों न हो जावे। एक दिन इस विचित्र रंग का प्रभाव एक सत्संगी के अनुभव में प्रत्यक्ष रूप से आ गया। शौच के समय उसने देखा कि झाड़ी की एक टहनी पर, एक हरा साँप, उससे एक गज़ दूर, टिकटिकी लगाये वैठा है। चुपके से वहाँ से हट जाने का काफ़ी स्थान था, परन्तु यही विचार उठा, कि यदि योग है तो सर्प कूद-फाँद करके भी काट सकता है, साक्षी वनकर देखते रहो कि क्या होता है। ऐसा साहस सत्संग का ही फल था।

इतने दयालु होते हुये भी स्वामी जो महाराज का यदि किसी की ओर से चित्त हटता तो उसके अनेक उपाय करने पर भी, महाराजजी उसे टाल दिया करते। कोरा जवाव भी दे देते। यही कहते, 'अभी चित्त में प्रेरणा नहीं है, तुम्हारे में कुछ गड़वड़ी है, जिसके कारण उत्साह नहीं होता। अपने आपको अधिकारी बनाओ, तो फिर प्रभु तुम्हारे हितार्थ किसी को प्रेरणा कर ही देंगे।' ऐसा ही निराशा अथवा धैर्य्य से मिला-जुला उत्तर महाराजजी ने आये हुये एक सज्जन को दिया। उन्होंने, अपनी ओर से, वहुत प्रयत्न किये, नम्रता भी दिखलाई, कटाक्ष भी मारे, पक्षपात का भी इशारा किया, पर जव प्रभु के आदेश अनुसार ही स्वामीजी का सव काम होता था तो किसी की स्तुति निंदा की आप कैसे परवाह कर सकते थे।

यहाँ पर, एक भाई का व्यवहार कपट और चालाकी-पूर्ण होता रहा जिसके कारण महाराजजी के हृदय में उनके प्रति घृणा

के भाव बढ़ते गये। पीछे जब उनकी कुटिलता का पता चल गया, तो महाराजजी ने उनको बहुत समझाया। जब फिर भी उनकी समझ में बात न आई और उनके आचार से सबको कष्ट पहुँचने लगा, तो आपने बड़ी नम्रता से उनको चले जाने के लिये आग्रह किया। जो कुछ भी उन्होंने मकान और भोजन आदि में खर्च किया था, वह दूसरों से दिलवा दिया और उनके चरण छू प्रणाम करके कहा 'जब तक आप ऐसे दूषणों को दूर नहीं कर सकते, पास रहने की कृपा न करें।' जिस के व्यवहार से स्वामीजी असंतुष्ट हो जाते और सुझाने-बुझाने पर भी वह अपने दूषणों को छोड़ने का यत्न न करता, तो उससे सेवा लेने में आपको बड़ा दुःख होता। नाम अथवा लोभ तो रहा ही नहीं था। सद्‌हृदय ही, आपके प्रभु-आश्रित हृदय को रिझा सकता था। भला जिसने अपने आपको प्रभु के समर्पण कर दिया हो उसकी रक्षा भगवान क्यों न करेंगे। और जिधर उस परम पिता की प्रेरणा न हो, अथवा जो ईश्वर से विमुख हो रहा हो, उसकी ओर वह कैसे ध्यान दे सकते हैं।

धीरे-धीरे सब लोग वापिस जाने लगे। वहाँ दो एक व्यक्ति ही रह गये। बीस सितम्बर को 'कांगड़ी' गुरु-कुल के भण्डारी दयालरामजी भी वहाँ पहुँचे, और समय पाकर पास से ग्रामीण लोग भी महाराजजी के सत्संग से लाभ उठाने लगे। आप उनको अनेक धर्म और व्यवहार की बातें सुझाया करते। 'अमरू' जिमींदार को रामायण अथवा कुछ अंगरेजी पुस्तक मँगाकर, कुछ सहायता देते रहे। भण्डारीजी को भी शरीर-शुद्धि के उपरान्त भजन का उपदेश देकर कृतार्थ किया। थोड़े दिनों में परिवर्तन होने लगा और आत्म-शक्ति जग पड़ी।

सर्दी बढ़ने के कारण, अक्तूबर के मध्य में आप 'कटरे'

जाकर रहने लगे। यात्रा के दिन भी शुरू हो गये थे। नीचे, देश में इनफ़लूएन्ज़ा का जोर था। यात्री इसको आस-पास के ग्रामों में भी फैला गये। फिर भी स्वामीजी नवम्बर का सारा महोना वहीं डटे रहे।

सातवाँ प्रकरण (सहन-शक्ति)

कृष्णकुमार जी अब लाहौर डी. ए. वी. कालिज में पढ़ाने का काम करते थे। लाहौर के लिये स्वामीजो महाराज को निमन्त्रण दे गये थे। घर जाकर सत्संग अथवा साधना के प्रभाव को भी भली प्रकार अनुभव किया था। अपने जीवन में शांति और संयम को देखकर वे बड़े उत्साह से अपनी प्रार्थना को दुहराते रहे। डेढ़ महोना बीमार रहने पर भी सत्संग की इच्छा वैसो ही बनी रही। प्रो० सदानंदजी भी कभी-कभी ढारस दे आया करते थे। रोग-अवस्था में अनेक औषधियों के सेवन करने से कुछ स्वस्थ होने पर चित्त मलिन अथवा असंयमी होने लगा। सत्संग की बहुत आवश्यकता हुई। अपनी तीव्र इच्छा को प्रभु चरणों में रक्खा। परम उदार श्रीसद्गुरुदेव ने लाहौर आना निश्चित कर लिया। स्वामीजी कुछ दिन तो जम्मू में लाला फकीरचंदजी के पास ठहरे। फिर ११ दिसम्बर १९१८, बुधवार को १० बजे सुबह लाहौर पहुँचे और प्रो० कृष्णकुमारजी के घर रहने लगे।

कृष्णकुमारजी का शरीर अभी कमजोर था। अभी तक बीमारी का पूरा-पूरा असर दूर नहीं हुआ था। कभी-कभी खांसी

भी हो जाया करती थी। श्रीमहाराजजी ने आते ही कुछ सफ़ाई कराके ऐसे पदार्थों का सेवन कराया कि जिससे खांसी शीघ्र दूर हो गई। स्वामीजो ने वैद्यक के ग्रन्थों को देखकर बड़े परिश्रम से पदार्थों के गुण-दोषों की एक सूची बनाई हुई थी। योगेश्वरजी के पास रहते-रहते साधारण औषधियों का पर्याप्त बोध प्राप्त कर रक्खा था। अपने अथवा सत्संगियों के सम्बन्ध में बहुत कुछ अनुभव भी प्राप्त किये थे, इन्हीं के आधार पर अपने अथवा सह-वासियों के साधारण कष्ट निवारण के लिये अवस्था-अनुसार औषध-उपचार बताया करते, जिससे अनेक बार बहुत-कुछ लाभ भी होता। यहाँ भी आपकी कृपा के कारण उनका स्वास्थ्य अच्छा हो गया।

इसी मकान में महेशदासजी और नेवराजजी भी रहा करते थे। थोड़े दिन पश्चात् कृष्णकुमारजी का कुटुम्ब भी आ गया। विचार था कि उनकी धर्मपत्नी भी कुछ सत्संग से लाभ उठा सकेगी और भोजन आदि के सम्बन्ध में भी आराम रहेगा, पर हुआ उलटा हो। जिस नये ढंग से वह रहे हुये थे, वह उस देवी को समझ में न आया। वह भयभीत हो गई। खान-पान में भी कुछ असाधारणता थी। इधर कुछ संयम में होने के कारण दूसरा रंग चढ़ रहा था। भयभीत प्राणी अपनो रक्षा में क्या नहीं करता है। वह देवी प्रोफ़ेसरजी के मित्रों से शिकायत करने लगी कि 'उसका घर चौपट हो गया है, और वे तो साधु हो जायेंगे'। उनके मित्र भी यह देखकर कि वे परोपकार अथवा गृहस्थ सम्बन्धी कर्त्तव्यों से विमुख हो रहे हैं, चिन्तित हो उठे। इधर इस देवी का स्वभाव कुछ कड़ा था, आत्म रक्षा में और भी उद्विग्न हो उठी। घर में कलह होने लगा। अशांति से व्यथित हो, उनके कालिज के काम में भी शिथिलता आने लगी। इससे

उसका डर और भी बढ़ गया। अनेक उचित-अनुचित उपायों से उसने अपनी रक्षा के निमित्त यत्न किया। श्री महाराजजी को भी निन्दा सुननी पड़ी। कई सज्जन वहीं आकर भला-बुरा सुना जाते। स्वामीजी ने भी भरसक यत्न किया कि उस देवी का वृथा भय मिट जावे। कृष्णकुमारजी के अनेक मित्र उनके हित के विचार से, स्वामीजी का विरोध करने लगे। इस सब कलह से घबराकर, अपने सम्बन्धियों की ओर से गुरूजी की निन्दा अथवा अपमान होता देख, अपनी उदासीनता और क्रोध को वैराग्य समझ उन्होंने कालिज से इस्तीफ़ा दे दिया। महाराजजी तो दूसरे के कल्याण के निमित्त सब कष्ट सहारते रहे। धीरे-धीरे महेशदासजी, हरगोपालजी और नेत्रराजजी विरोध छोड़ महाराजजी के सत्संग से थोड़ा बहुत लाभ उठाने लगे।

कृष्णकुमारजी के श्री स्वामीजी भजन-साधन में ऊँचा उठाने का यत्न करते रहे। ज्ञान-विज्ञान की अनेक बातें सुझाईं। संयम पर आरूढ़ रहने के नियम-उपनियम सिखलाये, परन्तु कुसंस्कार शीघ्र पीछा नहीं छोड़ते। उनका मन विचलित होने लगा, संयम के पथ से गिरने लगे। कुछ काल तो हठ पूर्वक डटे रहे; पर पीछे जब नौकरी छूट गई और विरोध भी घट गया, तो जो जोश सहारा दे रहा था, वह भी जाता रहा। Reaction (पलटा) शुरू हुआ। धीरे-धीरे अपनी त्रुटि प्रतीत करने लगे। कपट और अभिमान प्रकट हो गया। महाराजजी के आगे सब कथा लिख भेजी। फिर भी दयालुता से आप अपनी कृपा बनाये रक्खे। उपदेश दिया, "अपनी शक्ति देखकर सँभलने का यत्न करो। भूलें और अपवाद होते ही हैं, पर निराश नहीं होना चाहिये। पुण्य के संस्कारों को दृढ़ करते रहना चाहिये। यत्न को मत त्यागो, यदि शुद्ध हृदय से लगे रहे तो प्रभु आप ही

रक्षा करेंगे।" इस अमूल्य अवसर को जिन कारणों से कृष्ण-कुमारजी ने हाथ से खोया वह तो उनका दुर्भाग्य, पर दूसरे सज्जन तो महाराजजी के सत्संग से लाभ प्राप्त करते ही रहे। अजमेर से, देवीदत्तजी दस-पंद्रह दिन के लिये लाहौर आये थे और वहीं रहकर कुछ साधन करते रहे। बाहिर से ला० मुल्क-राज, ला० करमचंद, ला० ईश्वरदास, भक्त धनपतराय, भक्त रामचंद्र आदि अनेक सज्जन सत्संग के निमित्त समय-समय अनु-सार आते रहे। प्रो० सदानंदजी भी इस वर्ष लाहौर में परिवार सहित रहते थे। कई वार श्रीमहाराजजी के दर्शनों को आये। ज्ञान-ध्यान की अनेक बातें होती रहती थीं। ऐसे सुअवसर को प्राप्त करके वे सब प्रकार से अपने जीवन को स्वच्छ बनाने के यत्न में लगे रहे।

बीज कैसा ही अच्छा हो, उपजाऊ भूमि में ही बढ़ सकता है। यदि वैराग्य, संयम और दृढ़ता रूपी खाद न मिले, तो क्या हो सकता है। ऐसे सद्गुणों और साधनों से सम्पन्न पुरुष ही श्रीमहाराजजी के उत्तम और अति श्रेष्ठ उपदेशों से पूरा लाभ उठा सकता है।

महाराजजी का हृदय कितना करुणामय था! एक दिन कृष्णकुमारजी अपनी माता और स्त्री के सहित महाराजजी के पास बैठे थे। महाराजजी जानेवाले ही थे। गुरुदेव कहने लगे, "इसकी मोक्ष में इच्छा देखकर संयम, तप और भजन का उपदेश देते हैं। इससे 'राधामाई' को कष्ट होता है। हमें तो दोनों का कल्याण चाहिये, इसके कष्ट को भी हम नहीं बरदाश्त कर सकते।" ऐसा कहते हुए महाराजजी की आँखों में आँसू आ गये। बड़े धीरज से रोककर और रुककर फिर कहने लगे। "किसी का दुःख हमसे नहीं सहारा जाता, शास्त्र को ही आधार

मानकर मोक्ष-मार्ग का उपदेश देते हुए जो कष्ट संसारी वासना के अधीन सम्बन्धियों को होता है उससे उपेक्षा ही करनी पड़ती है। प्रभु ही सबको सह लेने का बल देते हैं। हर एक प्राणी अपने-अपने मतलब से संसार में विचर रहा है। जिसमें एक का कल्याण है दूसरा उसको बुरा मानता है। शास्त्र के आधार पर ही हम पाप-पुण्य का निर्णय कर सकते हैं। यह भी निश्चय है कि यदि कृष्णकुमारजी शुद्ध भाव से अपने व्रत पर डटे रहे, तो इनके तप का प्रभाव इस देवी के हृदय पर भी पड़ेगा। सब क्रोध-शोक हट जायेगा। इसके बिना जब कोई दूसरा रास्ता ही नहीं होगा तो मन आपही निर्वाह की सूरत निकाल लेता है"। स्वामीजी के चित्त में दूसरे के दुःख को देखकर कैसा दया का भाव उत्पन्न होता था यह तो ईश्वर ही जाने। करुणा के तो आप सागर ही थे। यही इच्छा रहती कि झट-पट प्राणी का कल्याण हो जावे। उसको पकड़कर, घसीट-कर, और उठाकर भी परले पार पहुँचाने का यत्न करते। किसी का भाग्य ही खोटा हो तो दूसरी बात, नहीं तो उसका बेड़ा पार होने में कोई संदेह नहीं हो सकता था।

आठवां प्रकरण (एकांत सेवन)

इधर गांधीजी ने भी सत्याग्रह की घोषणा कर दी थी। छः अप्रैल को .खूब हड़ताल रही। तत्पश्चात् स्वामीजी वहाँ से शीघ्र ही चल पड़े। जम्मू से होते हुये, अप्रैल के मध्य में कटरा पहुँच गये। कुटी सुरक्षित थी; वहीं जाकर रहने लगे। वहाँ भी

आपको कृष्णकुमारजी के कल्याण की चिंता लगी रही कि कहीं वह अपने व्रत से गिर न जाये। प्रोफ़ैसर सदानंदजी द्वारा उनको चितावनी और ढारस दिलाते रहे कि, "यदि वह कड़ा रहा और ब्रह्मचर्य्य-व्रत को न तोड़ा, तो उसको स्त्री का स्वभाव भी, जो इस समय भयभीत हो रहो है, पलट जायेगा। इस प्रकार दोनों का कल्याण होगा।" पर अभी श्रीमहाराजजी को क्या पता था, कि कुसंस्कार पहले ही गिरा चुके थे।

कटरा पहुँचकर 'अमरू' नम्बरदार को गीता पढ़ाने लगे। इधर प्रोफ़ैसर सदानंदजी और कृष्णकुमारजी के कल्याण की चिंता भी आप करते रहे। कुछ नये नियम अथवा उपदेश लिख भेजे। "वड़ा शूर-वीर वही है जो काम को जीत ले। इन्द्रियों के स्वाद से ख़ूब सावधान रहे। संसार में कैसे दुःख तुम्हारे सामने हो रहे हैं उन पर दृष्टि रखते हुये वैराग्य को ख़ूब बढ़ाते जाओ, दूसरों के certificate (प्रमाणपत्र) की परवाह न करना, अपने आपको satisfy (संतुष्ट) करने की कोशिश करते जाना चाहिये, नहीं तो गिर जाने का डर है। चुपचाप अपना काम करते जाओ।" पर ऐसे उपदेश का असर तो वहाँ हुआ जहाँ शुद्ध भावना थी। जहाँ कपट ने डेरा डाला हो, वहाँ क्या हो सकता है।

थोड़े दिन पीछे धनपतरायजी श्रीसेवा में पहुँचे। उनको वलियाराम के यहाँ ठहराया गया। स्वामीजी अकेले ही कुटी में रहा करते थे। गरमी के कारण वाहिर सोते थे। कभी-कभी चितरा रात को उधर आया करता था। ग्रामवाले कहते थे, 'महाराज जी, कुछ धूनी रखा करें,' मगर यहाँ तो ईश्वर का सहारा था, फिर भला भय क्यों लगता। इतने ज्ञानी और निर्भय और ईश्वर परायण होते हुये भी आप वड़े विनीत भाव से एक सत्संगी को

लिखते हैं, "बाहिर ही सोता हूँ, मुझे ईश्वर-कृपा तथा आपके आशीर्वाद से भय वग़ैरा कुछ नहीं मालूम हुआ। ग्रामवाले तो कहते थे कि धूनी वग़ैरा रक्खूं; पर मैंने ईश्वर के सहारे से आराम से दिन काटे हैं। आगे जैसा होगा देखा जायेगा। चितरा कभी-कभी इधर आता है; परन्तु मेरे पर उसकी भी कृपा-दृष्टि रहती है। आप जब आयेंगे तब आपसे गीता पढ़ूंगा, तब तक जैसी कुछ समझ में आयेगी, समझने की कोशिश करूंगा।" कितना शील और कैसी साधुता है। सूधापन से मनुष्य साधु होता है, आपको अपने ज्ञान-ध्यान का कुछ भी तो अभिमान नहीं।

इधर धीरे-धीरे जब पलटा शुरू हुआ, कृष्णकुमारजी भी इस बात को अनुभव करने लगे कि दम्भ से बहुत दिन काम नहीं चल सकता। विचार था, कि महाराजजी के संग काश्मीर जाते और श्रीसेवा में रहकर जीवन को पवित्र करते। पर अब तो हालत ही दूसरी थी। जब श्रीगुरुदेवजी को सब बात का पता चला, तो फिर आपने भी काश्मीर जाने का विचार ढीला कर दिया। जिसके कल्याण की कामना करते उसके सूक्ष्म राग को भी नष्ट करने का विचार रहता। काश्मीर यात्रा का यही कारण था कि जो रूप देखने में अथवा प्राकृतिक सौन्दर्य्य में चित फँसा हो इससे उसको सचेत कर दें; पर यहाँ तो अभी स्त्री का स्थूल विषय ही नहीं छूटा था। कुसंस्कार फिर बड़े ज़ोर से जग रहे थे। ऐसी स्थिति को जानकर परम कृपालु भगवन् फिर उसके हितार्थ उपदेशरूपी अमृत से पुण्य संस्कारों को सींचने का यत्न करने लगे। "पाप तथा छल कपट से विकारों को जीतना असम्भव है। धर्म पर आरूढ़ होकर ही तुम सफलता प्राप्त कर सकते हो। सचाई को सचाई खींचती है। पाप मिश्रित आचरण से स्त्री के श्राप से नहीं बच सकोगे। जवानी में ही सब कुछ हो

सकता है। यदि यह समय यूं ही गुज़र गया तो बड़ा भारी घाटा रहेगा। स्त्री भाव का नाश किये बिना काम नहीं चलेगा। जो निष्कपट भाव से उपदेश पर आचरण करता है वह सफल हो ही जाता है। करनी, कथनी और विचारों में एकता होनी चाहिये। हृदय में कुछ और है, तो काम नहीं बनेगा। महात्मा गांधी की आत्मा इसी तरह से बलवान हुई है कि प्रत्येक विषय में उनके thoughts, (विचार) words (कथनी) और deeds (करणी) एक जैसे होते रहे हैं, और होते हैं। ऐसा नहीं है कि मन में कुछ, मुख में कुछ, और कर्म में कुछ और। इतना अवश्य कहता हूँ कि ऊपर लिखित उपाय से अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है, कि जिससे सुसंस्कार दृढ़ हो; ख्याल को व्यवहार में लाने ही से संस्कार दृढ़ होता है। युद्ध में चोटें लगती हैं, पर शूरवीर उससे घबराते नहीं। कायरों का काम युद्ध करना नहीं है।"

इस प्रकार गिरते हुए को उठाने का सत् उपदेश देकर सहारा दे दिया। अनेक जन्मों के कुसंस्कारों से युद्ध करने को बल प्रदान किया, 'अपनी अपनी अवस्था-अनुसार यत्न जारी रहना चाहिये इसके बिना कोई उपाय नहीं है'।

'नान्यः पंथा अयनाय' इसका ही दृढ़ निश्चय हो जाये, तो कभी न कभी कल्याण होकर ही रहेगा। फिर उपदेश देते हैं "जो बीज बोया जाता है उस पर चाहे कितनी मट्टी तथा सुआ (राख) पड़ जाये, परन्तु मौका पाकर अंकुर लाता है, और रक्षित रहने पर फल देता है। यही हाल उपदेश का है। पाप से वह चाहे कुछ काल के लिये दब जाये, पीछे अवश्य असर दिखलाता है। मोह को जीतना अत्यंत कठिन है। जो पुरुष ज़खमों से घबराता है, वह शत्रुओं के साथ लड़ाई नहीं कर सकता, उसका जीतना तो दूर रहा। हाँ, जो मरद बनकर जान को हथेली

पर लेकर चोट का भय न रखकर लड़ता है वही विजय प्राप्त कर सकता है।"

कटरा में रहते हुये स्वामीजी को पं० कश्मीरी शाहजी से उचित सहायता मिला करती। शाहजी तो पहले साल से ही सब प्रकार की सहायता दे रहे थे। भोजन सामग्री भी उन्हींके यहाँ से जाया करती थी। नवीन सत्संगी उनके सहारे ही महाराजजी के पास पहुँचते थे। आने-जाने में सब प्रकार का प्रबन्ध वह करा दिया करते थे। उनके पुत्र भी पूरा आतिथ्य सत्कार करते। शाहजी स्वयं बड़े सज्जन और सेवा भाव से परि-पूर्ण पुरुष थे।

यहाँ पर महाराजजी या तो भिक्षा से निर्वाह करते रहे या ऐसे सत्संगी का अन्न ग्रहण करते, जो उनके उपदेश पर बड़ी कड़ाई से चल रहा हो, जिसकी कमाई शुद्ध अथवा भाव निष्काम हो। पर जो ढीला हो गया हो, उससे सेवा लेने में प्रसन्नता नहीं हुआ करती थी। इसी अभिप्राय से एक सत्संगी को आपने लिखा, "यदि आप की बहुत रुचि है कि कुछ दें, तो आठ आना महीना दें। परन्तु यह रुपया तब लूंगा जब आप काम-क्रोध के संस्कारों को नष्ट कर देंगे और आपके स्वभाव में यह बात दृढ़ हो जायेगी। कर्त्तव्य के विचार से सब काम हो, बदनामी-नेकनामी से बेपरवाह हो जाना, जिह्वा के स्वाद के ख्याल से कोई पदार्थ न खायें, बल्कि शरीर-रक्षा के लिये उप-योगी समझकर खायें, झूठ से सख्त परहेज रहे। यह पाँच बातें हैं जो आपके स्वभाव में आ जानी चाहियें। जब तक यह स्वा-भाविक न बन जायेंगी मैं रुपया नहीं ग्रहण करूँगा। और तब तक आप कभी भेजने का ख्याल भी न करना। मेरे में कोई सामर्थ्य नहीं कि मैं आपको कुछ बना सकूं, आप अपने पुरुषार्थ

अथवा ईश्वर-अनुग्रह से ही कुछ बन सकते हैं। इससे आपको यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि ईश्वर का दिखाना मेरे लिये असम्भव है। यदि वे आपही कृपा करें तो अपने आपको दिखला सकते हैं। मैं केवल साधन बतलाता हूँ। उन पर चलने से वे कभी न कभी अनुग्रह कर देते हैं, ऐसाही उनका कथन है।" कितना त्याग है, फिर जिज्ञासु की कितनी हित-कामना। किसी भी आड़ से हो, प्राणी को पुरुपार्थ पर लगाना लक्ष्य रहता था। फिर नम्रता कैसी है। महापुरुष ऐसेही होते हैं।

फिर लिखते हैं, "आपने पाँच रुपये जो रिश्वत के तौर पर भेजे हैं, उसकी आवश्यकता नहीं थी। विना जरूरत लेने को भी चित्त राजी नहीं होता। आगे से आप ऐसी तकलीफ़ न करें। इस रिश्वत से काम नहीं चलेगा। आपका आना भी वृथा होगा"। हृदय के छिपे भावों को तो आप सदैव जान जाते थे, कभी चूक न हुई थी।

इस साल महाराजजी अकेले ही रहे। संसारी झमेलों के कारण बहुत लोग नहीं आ सके। स्वयं तो कुटी पर रहे, जो कोई आया उसको इधर-उधर ठहरा दिया। प्रो० सदानंदजी तो कुछ काल सत्संग करने आये ही थे। इस अवसर पर वे स्वामीजी महाराज से श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेशों का रहस्य समझते रहे। दूसरे भी कई सज्जन बारी-बारी आते रहे।

नवाँ प्रकरण (जम्मू)

इस प्रकार से श्री स्वामीजी महाराज कटरा में १५ दिसम्बर

तक अकेले ही आनंद करते रहे। भिक्षा-वृत्ति से निर्वाह करके एकांत में रहते रहे। मुलतान से सरदार जैसासिंहजी ने बहुत नम्र निवेदन किया, अजमेर से पं० देवीदत्तजी ने भी बहुत जोर लगाया और लाहौर से प्रो० सदानंदजी भी आशा लगाये बैठे थे; परन्तु जब आप जम्मू पहुँचे, ला० फ़क़ीरचंदजी सुपरिन्टेन्डेन्ट महकमा जंगलात ने, आपको रोक लिया। इसलिये आपने प्रोफ़ैसरजी को सूचना दे दी, 'मेरी गाड़ी अभी यहाँ पर रुक गई है, जब ड्राईवर एंजिन को चलायेगा, तब गाड़ी आगे को चलेगी। पता नहीं कब तक यहाँ रुकी रहे, फिर यहाँ से कहाँ को चले। इसलिये आपको सूचना दी है कि आप औरों को सूचना दे दें। जो लोग आना चाहें वे विनायक धर्मशाला में आकर प्रथम ठहर जायें, फिर ढूंढ़ लें, और अपने चलने की सूचना अवश्य दें। जब गाड़ी चलने को होगी तब फिर आपको सूचित करूँगा।'

इधर कृष्णकुमारजी भी जालन्धर में नौकर हो गये थे। अपनी अवस्था को लिखा। फिर से सत्संग करने की इच्छा तीव्र होने लगी। महाराजजी ने भी उसकी अवस्था का पूर्ण समाचार प्रो० सदानंदजी और महेशदासजी को भेज दिया, ताकि वे अपने मित्र की गिरावट से चितावनी पाकर सचेत रहें।

बख्शी रामदासजी और कई एक राज्य-कर्मचारी दर्शन करने आये। बख्शीजी ने बहुत महात्माओं का सत्संग किया हुआ था। यहाँ भी वैसी ही बातें सुनने में आईं। दूसरे लोग तो प्रश्न-उत्तर करते रहे, पर वे उदासीनता से सुनते रहे। ऐसी ही अनेक बातें उन्होंने पहले भी सुनी थीं और ग्रन्थों में भी पढ़ी थीं। फिर बीच में वे पूछने लगे, "महाराजजी, ऐसी तो बातें सब महात्मा लोग कहते हैं। शास्त्रों में भी आई हैं, पर ना तो समझ

में आती हैं और ना ही हम अमल में ला सकते हैं।"तब स्वामीजी ने उत्तर दिया, "यदि छः महीने की छुट्टी लेकर हमारे पास रहो, तो समझ में आने लगेंगी।" इन्होंने यह समझा कि ऐसा उत्तर देने से टालने का ही यत्न किया गया है। फिर यह तो चुप रहे, पर इनकी मंडली के एक विद्वान् पुरुष प्रश्न कर उत्तर पाते रहे। जब वहाँ से सब चल दिये, तो कुछ दूर तक चुपचाप चले गये; और एक गली के सिरे पर पहुँचकर जब अलग होने लगे, तो उस विद्वान् साथी ने कहा, "यह कोई विचित्र महात्मा प्रतीत होते हैं। प्रश्न पूरा होने से पहले ही उत्तर तैयार रहता था। अब विचार करने से पता लगता है कि वह उत्तर बिलकुल ठीक बैठते हैं, और पुस्तकों में भी नहीं पाये जाते। इसमें सन्देह नहीं कि यह कोई बड़े अनुभवी पुरुष हैं।" ऐसा सुनकर बख्शी रामदासजी भी विचारने लगे कि उन्हें भी टाला नहीं गया, और इस अवसर से उनको लाभ उठाना चाहिये। फिर सत्संग को जाने लगे और यह याचना करते रहे कि छः महीने के समय को कुछ कम कर दिया जाये; पर ऐसा न हुआ। वे भी छुट्टी के लिये यत्न करने लगे। पर स्वामीजी के जम्मू रहते हुये उनको छुट्टी न मिल सकी। पीछे जब महाराजजी कटरे चले गये, तब उनको सत्संग का अवसर मिला।

महेशदासजी जो अब बड़ी लगन से भजन में लगे हुये थे, फ़रवरी में श्री चरणों के दर्शनों के लिये आये। सैर पर जाते हुये ही स्वामीजी के दर्शन हो गये। वहाँ से सैर करते-करते तवी नदी के किनारे चले गये। वहाँ पर अवस्था के अनुसार आप उनको उचित उपदेश करते रहे। संयम, वैराग्य तथा भजन सम्बन्धी अनेक बातें बताईं। इन दिनों महाराजजी दया-भाव से बड़े पूर्ण हो रहे थे। आपका विचार था कि वह, "साधु ही

क्या है जो दूसरे के कल्याण के लिए सब प्रकार से अपने तन-मन को अर्पण न कर दे।" ऐसे ही सेवा-भाव से परिपूर्ण, श्रीमहाराजजी अनेक व्यक्तियों को सहायता देते रहते थे।

दूसरे दिन आप महेशदासजी को नहर के बिजलीघर की ओर ले गये। सब कुछ दिखाकर, वहीं नहाने लगे। जब महेशदासजी पानी के अन्दर गये, तो जल इतना शीतल था कि शरीर सुन्न होने लगा। परन्तु जब स्वामीजी जल में गये, तो आप काफी समय, खूब मल-मलकर नहाते रहे; इस सहन-शक्ति को देखकर वह बड़े चकित थे।

यहाँ अनेक विद्यार्थी आपके पास आया करते थे। कई भक्तजन-साधु, गृहस्थी और जिज्ञासु भी आया करते। उसी मकान में नीचे के हिस्से में कई गृहस्थी रहा करते थे। ऊपर लाला फकीरचन्दजी रहते थे। नीचे एक माई ने अपने पुत्र से कहा कि, "बेटा, तुम भी जाकर कभी कभी महात्मा के दर्शन किया करो।" इस प्रकार रामलाल भी दर्शनों को आने लगे। विद्यार्थियों से तो आपका प्रेम रहा ही करता था, कुछ पूछने ताछने के बाद महाराजजी ने कह दिया था कि "जो बात अपनी पढ़ाई के सम्बन्ध में पूछनी हो, पूछ लिया करो।" इस बात को सुनकर कि स्वामीजी उनके पुत्र को पढ़ाया करेंगे, उसके माता पिता बहुत प्रसन्न थे।

पहिले दिन उन्होंने रामलाल को कुछ मिठाई ले दी और कहा कि, "सन्त महात्माओं के पास खाली हाथ जाना ठीक नहीं।" कुछ मिठाई तो स्वामीजी ने खाई, बाक़ी सब बाँट दी। दूसरे दिन फिर इसी प्रकार वह मिठाइ ले गया। स्वामीजी ने उसे ग्रहण कर लिया और बाँट भी दिया, परन्तु समझा दिया कि, "फिर ऐसी रिशवत न लाना।"

तीन महीने तक इस प्रकार से महाराजजी इस विद्यार्थी को सहायता देते रहे। एक दिन पढ़ते-पढ़ते उसके पेट में दर्द होने लगा। स्वामीजी ने तुरन्त गरम पानी कराया और बस्ती क्रिया द्वारा सफ़ाई करा दी, जिससे उसकी पेट की व्यथा दूर हो गई। फिर खाने-पीने के सम्बन्ध में अनेक नियम-उपनियम बताते रहे। यह भी कहा कि, "भोजन तभी करना, जब तेज़ भूख लगे, जिस प्रकार अग्नि जलाकर उसकी लपट निकलने पर होम करते हैं, उसी प्रकार जठराग्नि से, जिस समय लपट निकलती मालूम पड़े, उस समय भोजन करना उचित है, और वह भी युक्ति से, मानों औषधि ही ले रहे हैं।" और नमक कम खाने के लिए भी कहा।

महाराजजी की संगति से पहले वह बेचारा सब काम अन्धा-धुन्ध किया करता था, जिससे दुःख तथा व्याकुलता रहा करती। महाराजजी के सत्संग से कुछ परिवर्तन होने लगा—ऐसा प्रतीत हुआ, कि मानो दूसरा ही जन्म हुआ हो। सत्य है, गुरू की सत्संगति में ही मनुष्य द्विजन्मा होता है।

इन्हीं दिनों में, तीसरी बार, रियासी के लाला हरीरामजी ने यहीं पर आपके दर्शन किये। भोजन के उपरान्त कुछ वार्तालाप होती रही। इतने में महाराजजी ने कहा, "कुछ हवन सामग्री की चीज़ें बाज़ार से ख़रीद कर ले आओ, आपको अच्छी समझ है"। वह सामग्री बनवा लाया। महाराजजी ख़ुद भी मट्टी के प्याले में प्रातः हवन किया करते थे। युवक ब्रह्मचारियों को 'पंच महायज्ञविधि' रखने, और उसके अनुसार अमल करने की शिक्षा दिया करते। 'पंच महायज्ञ विधि' की कुछ प्रतियाँ मँगवाने के लिए किसी पुस्तकालय को पत्र भी लिखा था। इन्हीं दिनों आर्य्य-समाज जम्मू का वार्षिक उत्सव था। श्रीस्वामी सर्वदानंदजी के बारे में कुछ चर्चा होती रही, तो आप उनके विचार, तप

तथा सरलता की बड़ी सराहना करते रहे। फिर जलसा के स्थान पर स्वामी सर्वदानंदजी से आप मिलने गये। परिचय के पश्चात् स्वामी सर्वदानंदजी ने आपको खाट पर बिठाया। कुछ बात-चीत होने लगी, फिर जल्दी ही वार्तालाप करते हुये नदी की ओर चले गये।

इधर रामलालजी का इमतिहान हो गया, फिर वह महाराजजी से गीता पढ़ने लगा। महाराजजी कहा करते कि "श्रीमद्भगवद्गीता की हर एक बात अनुभव में प्रत्यक्ष जचती है।" जब कोई बात समझ में न आती, तो कहते कि 'तजुर्बा करके देख लो।' बड़ी तुली हुई बातें कहा करते कि जिससे हृदय बड़ा प्रभावित होता तथा तजुर्बे में भी बिल्कुल ठीक उतरतीं। आपने संध्या तथा हवन करने की विधि भी उसे सिखला दी जिससे उसके जीवन में बड़ा परिवर्तन होने लगा। और भी अनेक उपदेश दिये, "यदि सुखी रहना चाहते हो तो, अपनी जरूरियात को कम करो, और यदि शादी पर चित्त न हो तो कदापि न करना। इसमें बड़ा भारी बंधन है और बंधन से बड़ा दुःख होता है। अपने मन को कड़ा रक्खो—मन से बड़ी लड़ाई होगी। यदि डटे रहोगे तो सुख पाओगे। मन के अधीन हो गये तो बड़ा दुःख होगा। स्त्री से बड़ा बन्धन हो जाता है और इससे परमार्थ के कामों में से रुचि हट जाती है। इसका कारण यह है कि स्त्री-सेवा में ही समय व्यतीत हो जाता है। स्त्री के खुश रखने की फ़िकर पड़ी रहती है, और इससे हर एक के अधीन होना पड़ता है। फिर सन्तान से नये बन्धन खड़े हो जाते हैं। स्त्री जो नाच नचाये, नाचना पड़ता है। इस लिये पुरुष को अपना नफ़ा-नुक़सान सोच लेना चाहिए। बिना सोचे-समझे ज़हर का लड्डू नहीं खा लेना चाहिए।"

थोड़े दिन पश्चात्, रामलालजी ने ब्रह्मचारी रहने के लिए नियमपूर्वक व्रत ले लिया। परीक्षा से उत्तीर्ण होने के बाद लाला फ़कीरचन्द के वसीले से उन्हें नौकरी भी मिल गई।

इसी बीच में जालन्धर से दर्शनों के लिए, कृष्णकुमारजी भी आये। नदी किनारे, दो तीन दिन प्रभु-संगति में उपदेश लेते रहे। महाराजजी ने बहुत समझाया कि "विचार करके देखो! संसार बिल्कुल असार है, जितनी भी वस्तुएँ दीखती हैं, वह सब निरर्थक तथा दुःख का मूल हैं। धोखे के कारण ही मनुष्य बन्धन में पड़ा रहता है। परन्तु विचार पर खड़ा होने से तत्व को प्राप्त कर सकता है, और संसार-बन्धन से मुक्त हो सकता है। जो पुरुष अपने अनुभव से काम नहीं लेता, वह मारा जाता है।"

फिर दूसरे दिन काम के जीतने के सम्बन्ध में अनेक बातें सुझाते रहे। "इसमें सन्देह नहीं कि काम का जीतना बड़ा कठिन है। अनेक वर्षों के तप के पश्चात् ऋषि मुनि लोग भी गिर जाया करते थे, परन्तु यदि मनुष्य ठीक रास्ते से सच्चाई को ग्रहण करने के लिए कोशिश करता रहे, और यथार्थ बोध पर डट जाये, तो इस पर विजय पाना इतना कठिन नहीं।" बड़े प्रेम से गिरते प्राणी को उठाने की ढारस दी। निराशा में आशा की झलक आने लगी। जिज्ञासु के हृदय में तप तथा संयम के भाव फिर से जागृत होने लगे।

यहाँ पर महेशदासजी फिर दूसरी बार दर्शन करने आये। मुलतान से बेलीसिंह भी आये हुये थे। और जम्मू के अनेक सज्जन आपके सत्संग से लाभ उठाते रहे। जहाँ स्वामीजी महाराज अनेक व्यवहार द्वारा परमार्थ सम्बन्धी उपदेशों से जिज्ञासुओं को कृतार्थ करते रहे, वहाँ उनकी आर्थिक आवश्यकताओं को भी यथा सम्भव दूर किया करते। कुछ पारस भाग, गीता-

आदि अन्य पुस्तकें भी जिज्ञासुओं को मँगवा दीं। हवन-कुंड तथा अन्य ऐसी वस्तुओं से भी उनकी सहायता करते रहे। १२ एप्रिल के पश्चात् श्री स्वामीजी जम्मू से चलकर कटरा पहुँच गये।

दसवाँ प्रकरण (उदासी)

इन्हीं दिनों में अनेक सज्जन आपके पास दर्शन तथा सत्संग करने के लिये अपने-अपने समय से आते जाते रहे। प्रोफ़ेसर सदानंदजी, स्वामी सोमतीर्थजी, काशीनाथजी, ला० कर्मचन्दजी, महेशदासजी, तथा अन्य अनेक जिज्ञासु महाराजजी के दर्शन और उपदेश से कृतार्थ होते रहे। कृष्णकुमारजी को भी थोड़े दिन आने का सौभाग्य मिला। ला० हरदयालजी भी पहुँचे हुये थे। श्री महाराजजी के पास आठ बजे के बाद सायंकाल तक यथा अवसर सब लोग उपदेश तथा सत्संग के लिये जाया करते। उन दिनों चितरा के भी दर्शन रात को हुआ करते थे। ग्रामवालों के पशुओं की ओर उसकी दृष्टि रहा करती, परन्तु महाराजजी निःसंकोच कुटी की छत पर सोया करते और कभी-कभी चितरा को आस-पास जाते हुये देखा भी करते थे। दोपहर के पश्चात् महाराजजी नाले के किनारे वृक्ष की छाया में बैठा करते, कुछ कथा होती रहती। उधर नाले के पार दो गज़ के फ़ासले पर एक काला साँप आने लगा। कई दिन तक वहाँ आकर बैठ जाता तथा इधर-उधर के कीड़े खाता रहता। कई बार तो ऐसा समाहित होकर महाराजजी की ओर देखता रहता मानों कथा सुन रहा है। महाराजजी भी कभी-कभी पूछ

लिया करते कि, "कहो यार, क्या हाल है।" इस प्रकार से कई दिन होता रहा। पीछे से साँप के दर्शन होने बन्द हो गये।

ब्रह्मचारी सत्यव्रतजी इसी साल २५ मार्च को संन्यास ग्रहण कर चुके थे। और स्वामी सोमतीर्थ के रूप में ३० जून को कटरा पहुँचे। दूसरे दिन प्रोफेसर सदानंदजी के साथ ऊपर गये। कुछ दिन कुटी में ही रहते रहे। पीछे से 'डावा' में स्थान का प्रवन्ध करके वहाँ रहने लगे। इन्हीं दिनों काशीनाथ फ़िदाजी के प्रोग्राम के सम्बन्ध में बातें हुआ करतीं। महाराजजी इस बात को अनुभव कर चुके थे कि विना वैराग्य, अभ्यास में बहुत पुरुपार्थ निरर्थक रहता है। थोड़ी दूर तो गाड़ी चलती है, पीछे वैराग्य के अभाव में तरक्की रुक जाती है। यदि पहिले वैराग्य प्राप्त करने में पुरुपार्थ किया जाय, तो बहुत लाभ हो। योग शास्त्र के "अभ्यास वैराग्याभ्याम् तत्व सिद्धिः" सूत्र पर भी विचार होता रहा। अन्त में यही निश्चय हुआ, कि वैराग्य के विना कल्याण नहीं हो सकता। स्वामीजी ने कहा 'कोई क्रिया-योग वैराग्य से बढ़कर फलदायक नहीं हो सकता। कमज़ोरी और बीमारी की हालत में वैराग्य का ही सहारा रहता है। जब दूसरे अभ्यास बन्द हो जाते हैं, तब भी वैराग्य का अभ्यास चलता रहता है। योग-आनंद के कारण विषय-वासना नहीं छूटती। विषय में सुख ही नहीं, तो उसे पहले ही छोड़ना चाहिये।'

शास्त्रों के पढ़ने के सम्बन्ध में बात चल पड़ी तो आपने कहा, "ईश्वर प्राप्ति तथा दुःख निवृत्ति के लिये पढ़ने लिखने की जरूरत नहीं है। अनेक महात्मा हुये कि जिनको अक्षर-बोध तक भी नहीं था। वैराग्य, विचार और सत्संग यही आवश्यक हैं।" फिर वैराग्य के सम्बन्ध में कहा, "जो वैराग्य दुःख होने, रोग

होने और मुर्दा देखने से होता है, वह वैराग्य नहीं, "शोक है। ज्ञानी को वैराग्य होता है, पर शोक, मोह नहीं होता। यदि प्राणों के दवाव से कुछ देर वेख़बरी रही, तो क्या हुआ। वेख़बरी का आनंद कोई आनंद नहीं है। जब होश आवेगा तो फिर दुःख होगा। वैराग्य से ही परम शांति मिल सकती है।"

बातों-बातों में आपने फिर कहा, "चित्त करता है कि किसी एकांत स्थान में पड़े रहें। जैसा हो शरीर को भोग पर छोड़ दें। पर फिर यही विचार आता है, कि आज-कल अच्छे महात्मा कम मिलते हैं। जिज्ञासु को बड़े कष्ट का सामना करना पड़ता है। यदि किसी ऐसे स्थान पर रहें, कि अधिकारियों को सहायता मिलती रहे तो अच्छा है। इसलिये सब कष्ट सहते रहते हैं।"

विचार पर बहुत ज़ोर देते थे। 'हर कार्य्य में देखते रहना चाहिये कि हम कैसे स्वार्थ-वश सब कुछ करते रहते हैं। चाहे कुछ भी कहें, वस्तुतः दुःख से छूटने का उपाय ही होता रहता है। अज्ञानता से दुःख के कारण को नहीं जानते, इसलिये उलटा-सीधा प्रयत्न करके दुःख को और भी बढ़ाते चले जाते हैं।'

काशीनाथजी कवि थे। कवि तो अपनी कल्पना के शब्द-जाल पर ही मोहित रहते हैं। जो पुरुष मन की कल्पना को नहीं रोक सकता, वह यथार्थ बोध पर कैसे खड़ा हो सकता है। यह बात भी स्वामीजी महाराज को खटकती थी। आख़िरकार यही निश्चय हुआ कि फ़िदाजी घर से सब सम्बन्ध तोड़ दें। कविता को प्रणाम करें, कल्पना-शक्ति को काग़ज़ी घोड़े दौड़ाने से रोकें, अपनी सम्पत्ति को किसी शुभ काम में लगा देने का पहिले से ही प्रबन्ध कर दें। त्याग-भाव से वानप्रस्थ आश्रम का आश्रय लें। फ़िदाजी ऐसा ही करने के लिये घर चले गये और थोड़े ही दिन पीछे वे सब प्रबन्ध करके लौट आये, और सत्संग में रहकर

अनेक उपदेश लिये। "वैराग्य, सत्य को ग्रहण और असत्य को त्याग करने से प्राप्त होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार को त्याग देने से ही वैराग्य-सिद्धि होती है। सत्य पर डटे रहना चाहिये। और प्रत्येक काम में यह विचारना चाहिये कि स्वार्थ से ही सब लोग कर्म करते रहते हैं। जब सम्बन्धी अपने स्वार्थ में रत होकर हमारे परमार्थ में रोड़ा अटकाते हैं, तो हमारे हितैषी क्योंकर माने जावें। सब कार्य्य समता और पक्षपात रहित होकर करना चाहिये। अपने-पराये का भेद ही मोह अथवा अज्ञान की जड़ है। मनुष्य अकेला आया है, अकेला ही जायेगा। मोह को छोड़, मौत से निर्भय होकर विचरना चाहिये।" इस प्रकार से अनेक बार उपदेश देकर वैराग्य की महिमा सुनाते रहे। काशीनाथजी भी शंका-निवारण करते हुये अपने विचार को बढ़ा रहे थे। थोड़े दिन पीछे वानप्रस्थ-आश्रम के लिये तैयार हो गये। फिर एक शुभ दिन में, डावा ग्राम में, सनातन रीति से 'वनी' बन गये। अनेक ब्राह्मण, साधु, महात्माओं को भोजन भी कराया।

बख़शी रामदासजी ने तीन महीने की छुट्टी प्राप्त की, पर कटरा पहुँचने से पहिले ही बीमार पड़ गये। एक-डेढ़ महीना तो ऐसे ही गुजर गया, फिर स्वामीजी महाराज से पूछा, तो स्वामीजी ने सब वृत्तान्त जानकर लिख दिया, 'कुछ हर्ज नहीं, चले आइये।' यहाँ भी बख़शीजी का स्वास्थ्य बहुत अच्छा न रहा, फिर भी सत्संग में रहकर कई एक नये अनुभव किये, जिससे उनकी श्रद्धा और भी बढ़ती गई। एक दिन बिना नमक-मसाले के भोजन खाया; तब आपको पहली बार पता चला कि "प्रत्येक वस्तु का कुछ अपना स्वाद भी होता है।"

'डावे' में काशीनाथजी के साथ लाहौर-निवासी धर्मचंदजी

भी रहा करते थे। वह कुछ दिन बीमार रहे और पीछे एक रात्रि को उनका देहान्त हो गया। स्वामी सोमतीर्थजी यह विचार कर कि वहाँ भोजन में देर हो जायेगी, महाराजजी की कुटी की ओर चले गये। रास्ते में आप आते हुये मिले। जब सब समाचार सुना तो कहा 'मुझे भी ऐसा ही सन्देह हुआ था, पता करने चला था।' फिर यहीं से लौट गये।

ऐसे ही कई बार जब कटरा से सत्संगी पत्र ले आते और देना भूल जाते, तो स्वामीजी अपने आप कह देते, "आज आपने पत्र नहीं दिया।"

इधर एक दिन महाराजजी पत्थर से फिसल कर गिर पड़े। रीढ़ की हड्डी के अन्तिम स्थान में जो भगन्दर की वजह से प्रथम ही कमजोर था, बड़ी जोर से चोट लगी। कई दिन तक कष्ट होता रहा। कमजोरी के कारण अधिक खाना-पीना शुरू किया, तो जुकाम ने आ पकड़ा। कुछ दिन तक उसका इलाज होता रहा।

इस वर्ष कटरे के पं० केदारनाथजी ने आपकी सत्संगति से बहुत लाभ उठाया, भजन-साधन में भी दीक्षित हुये।

अजमेर से देवीदत्तजी बार-बार आने के लिये लिख रहे थे ताकि वे सत्संग का अवसर पा अभ्यास में कुछ उन्नति कर सकें। उनके निवेदन पर महाराजजी ने लिखा, "व्यवहार शुद्धि की अपेक्षा आपको घटिया बातों की ओर अधिक ध्यान रहता है। आपको मेरे वचन पर विश्वास नहीं है, तो आप मेरे से क्या फ़ायदा उठा सकते हैं। क्या आप समझते हैं, यदि आप तीन मास की छुट्टी लेकर आ जायेंगे तो मैं, जो फ़ीस आपने भेजी है, उसके बदले में आपकी नौकरी अवश्य करूंगा? यह ख़्याल आपका बिलकुल ग़लत है। जब तक मेरे चित्त में उत्साह नहीं होगा, मैं कुछ नहीं कर सकूंगा। मेरे चित्त में उत्साह तभी

हो सकता है जब आपके दिल में तीव्र वैराग्य होगा।" आप तो ईश्वरीय प्रेरणा के अधीन ही सब काम किया करते थे। जब उत्साह न होता, तो आप उपेक्षा कर जाया करते थे।

ग्यारहवां प्रकरण (ज्ञान-सार)

इधर रियासी से, हरीरामजी, चौथी बार, आपके दर्शनों को कटरा आये, और रियासी पधारने के लिये निवेदन भी किया। थोड़े दिन पीछे स्वामी तारकानंदजी के साथ आप रियासी चले गये। स्वामी सोमतीर्थजी चतुरमासा की मर्यादा के कारण साथ तो न जा सके; पर कुछ दिन बाद २७ नवम्बर को वहाँ पहुँच गये।

वहाँ पर पहले तो आपने नदी के किनारे एक स्थान देखा, पर वहाँ हवा बड़ी तेज चला करती थी। इस कारण इसका विचार छोड़कर कोई और जगह देखने लगे। अंजी नाले के पास, बस्ती से डेढ़ मील की दूरी पर, चंद्रभामा नदी के पार, एक पहाड़ी के नीचे, मूला नामी सुन्दर चश्मा था, वहाँ ठहरने का निश्चय किया। कुछ मकान तो पहले था; पर उसके नीचे एक गुफ़ा भी खुदवाने का प्रबन्ध कर लिया।

महाराजजी को यह संस्कार था कि जन्म-पत्री के अनुसार इस वर्ष मेरे देहान्त का योग है। यह आपकी आयु का अड़तालीसवाँ वर्ष था। आप शरीर छोड़ने की तैयारी कर रहे थे। इसी सम्बन्ध में एक सत्संगी को लिखते हैं, "यदि शरीर चला गया तो झगड़ा चुका, यदि रह गया तो कुछ दिन और बेगार भुगतनी पड़ेगी।" यहाँ तो ऐसी अवस्था थी।

जिस मरने ते जग डरे, मेरे मन आनन्द ।
कब मरहैं, कब देखहु पूर्ण परमानन्द ॥

आपने केवल शुद्ध अन्न ही ग्रहण करने का निश्चय कर लिया था जिससे दूपित अन्न के कारण कोई वासना मन में गड़बड़ी न पैदा कर दे। इसी अभिप्राय से प्रो० सदानंदजी को लिखते हैं "यदि आप पूर्ण निष्काम-भाव से देंगे तो लूंगा - परन्तु यह निश्चय रक्खें कि मैं इसके बदले में यह वचन आपको नहीं दे सकता कि कभी कभी आपको पत्र लिखूं या कम से कम केवल संकल्प मात्र से आपकी जय मनाऊँ। यह मुझे बंधन प्रतीत होता है। आप यदि ईश्वर अनुग्रह पर भरोसा रखते हैं, तो भिक्षा देना स्वीकार करें, जैसे निष्काम-भाव से कुत्ते को टुकड़ा डाल देते हैं। आशा है कि आप मेरी खुदग़रजी और मुफ़तखोरी पर पूर्ण दृष्टि देंगे। मेरे में सामर्थ्य नहीं है जो मैं आपका प्रतिउपकार कर सकूं। परन्तु ईश्वर सर्व कर्म फल-दाता होने से अवश्य फल देंगे। जैसी उदारता आपने मेरे को दिखलाई हैं, वैसेही ईश्वर आप पर प्रकट करेंगे। मांगना कर्म मुर्दों का है, देना कर्म जिन्दों का है। मुर्दा किसी का कुछ नहीं कर सकता। लिहाज़ छोड़कर चित्त खुश रहता है। आपको यदि बन्धन न मालूम हो, अपने हालात से सूचित करें।'

इस वर्ष आपका चित्त भी सुस्त था। कटरा में तीन सज्जन आपके पास भजन करने के लिये आये; पर उदासीनता के कारण उनको कोरा जवाब दे दिया। हाँ, पूर्ण अधिकारी बनने के लिये बातें बता दीं।

ऐसा समाचार सुनकर करमचंदजी ने जालन्धर से लिखा:-
"यह वर्ष अकाल मृत्यु का है, यदि आप मेरे पास आ जावें, तो स्थान का प्रबन्ध भी कर दूंगा और औषधि का भी पूरा प्रबन्ध

रहेगा, जिससे यह अकाल मृत्यु टल जाये।" आप प्रो० सदानंदजी को इसके उत्तर में लिखते हैं, "आप उनको मेरी तरफ़ से धन्यवाद दे दें, कि वे मेरे लिये अपना कमरा देने को और चिकित्सा के चारों पाद उपस्थित करने को तैयार हैं। जब कभी जरूरत होगी, तभी देखा जावेगा। वे कहते हैं मेरा यह साल अकाल मृत्यु का है, जो इलाज से टल सकता है। मेरी समझ में काल और अकाल मृत्यु नहीं बैठती। मैं समझता हूँ जब तक शरीर का भोग है अवश्य रहेगा। भोग ख़तम होने पर चिकित्सा कुछ नहीं कर सकती। परन्तु जिस पुरुष को संसार में सुख न भासे, शरीर से कुछ लाभ प्रतीत न हो, बल्कि क़ैदख़ाना भासे, उसके लिये यह कितनी मूर्खता की बात होगी कि वह बहुत काल तक जीने का संकल्प करके क़ैद की मियाद को बढ़ाने की इच्छा करे। ऐसी तीव्र इच्छा भी नहीं मालूम होती कि हठ से शरीर को अभी छोड़ दूँ, बल्कि इस वृत्ति में सुख प्रतीत होता है कि जैसा होता है होने दूं। मैं द्रष्टा बना रहूँ। उदासीन वृत्ति के साथ जब दुःख हो, तब जैसा कुछ भोग बुद्धि के अनुसार सूझे उपाय करूँ। परिणाम को मध्यस्थ बना देखता रहूँ। इस वृत्ति के सहारे अब तक जो कष्ट हुये वे नाटक की तरह प्रतीत होते रहे हैं। चित्त में क्षोभ नहीं हुआ।"

संतोष और वैराग्य का कैसा सुन्दर मेल है। नम्रता और ईश्वर-विश्वास तो कूट-कूटकर भर रहा है। त्याग की पराकाष्ठा है।

उधर आपने यह सूचना अपने सब सत्संगियों को दे दी कि इस वर्ष शरीर छूटने का योग प्रतीत होता है, मानों अन्तिम प्रणाम् कर रहे हों। इस दुखदायक सूचना को सुनकर कई एक सत्संगियों ने वहाँ पहुँचकर अंतिम दर्शन करने का विचार किया।

पर गृहस्थ के बंधन शीघ्र थोड़ा छोड़ते हैं । महेशदासजी इधर अभ्यास में खूब बढ़ रहे थे। ऐसी सूचना सुन अधीर हो उठे। शीघ्र ही स्त्री को घर छोड़, नौकरी से इस्तीफ़ा दे, श्रीचरणों में जा पहुँचे । दिन को प्रभु-सेवा में रहते, रात्रि को दूर एकांत, एक कुटी में; पीछे जब सर्दी कम हो गई, तो एक छतरा बनवा पास ही आकर रहने लगे।

इधर आपके देहात से मेंडीजी तथा एक और बुढ़िया भी, वहाँ कुछ दूर पर आकर रहने लगीं। यह भी बहुत दिन से भजन में लगी थीं और पहले भी अनेक स्थानों में दर्शन तथा सत्संग करने जाया करती थीं। स्त्रियों का हृदय बड़ा कोमल होता है। सेवा करने और तपोमय जीवन व्यतीत करने चली आईं। स्वामी तारकानंदजी तो सेवा में रहते ही थे।

यहाँ आकर आर्य्य समाजियों का यह विचार था कि "हमको स्वामीजी के यहाँ आने से सनातन विचार के लोगों पर विजय पाने का अवसर मिल जावेगा।" पर यहाँ तो परमहंस वृत्ति से गुज़र होता था। आर्य्य समाजी प्रायः ऐसे ही विचारों को लेकर आया करते थे। पर यह महाराजजी को बहुत बुरा लगता था।

लोग विचारा नींदई, जिनहुँ न पाया ग्यांन।
राम नाम राता रहै, तिनहुँ न भावै आंन॥

आपने एक दिन कह भी दिया "कि यहाँ आर्य्य समाजी विचार लेकर मत आया करो। कट्टरपना अच्छा नहीं। दूसरे के दोषों को निकालते हो, पर अपने छिद्र नहीं देखते । सभी मत गुण-दोष युक्त होते हैं। यदि जीवन के कल्याण की इच्छा हो, तो खंडन-मंडन छोड़कर अपने में सद्गुण लाने का यत्न करना चाहिये । लोग तुम्हारे शुद्ध आचरण को देखकर खुद बखुद

तुम्हारे पथ पर आ जावेंगे । केवल दूसरों के दूषण दिखाने से ही लोग तुम्हारे रास्ते पर नहीं चलेंगे।" सन्त ने सत्य कहा है—

दोष पराये देखकर, चल्या हसंत हसंत।
अपने चित्त न आवई, जिनकी आदि न अंत॥

साम्प्रदायिकता का खंडन करते थे। पर यह लोग कहते कि "यहाँ के लोग अशिक्षित हैं, सभी वेद-विरुद्ध मूर्ति-पूजा करते हैं, आप मूर्ति पूजा का खंडन कीजिये।" जब कोई चारा न देखा, तो आप कहने लगे, "केवल सनातनी तो मूर्ति-पूजक नहीं, सभी मतवाले मूर्ति-पूजक हैं।" महाशयजी बोले, "आर्य्य समाजी तो मूर्ति-पूजा नहीं करते, वह तो मूर्ति-पूजा का खंडन करते हैं।" महाराजजी ने कहा, "मूर्ति-पूजा का अर्थ है, कल्पना करके ईश्वर की उपासना करना। कोई 'सहस्र शीर्षा पुरुषः' कहता है, कोई 'ओ३म्' भी कहता है। यह सभी ईश्वर के नाम हैं, और हैं यह भी कल्पनायें ही। यदि ओ३म् ही ईश्वर का नाम हो, तो 'ओ३म्' कहते ही सारे संसार को पता लग जाना चाहिये कि ईश्वर का नाम लिया जा रहा है, परन्तु मुसलमानों और ईसाइयों को तो पता नहीं लगता। शब्द तो संकेत है, जिनको उस संकेत का पता है वह ही उसको ईश्वर का नाम मानते हैं। जो कुछ इन्द्रियों के विषयों के अन्तर्गत है, वही मूर्ति है; और जो इन्द्रिय-गोचर नहीं, वह अमूर्ति है। सनातनी रूप के सहारे ईश्वर की पूजा करते हैं, तो आर्य्य समाजी शब्द के सहारे। हाँ, इतना अवश्य है कि आर्य्यसमाजी सूक्ष्म मूर्ति-पूजक हैं, क्योंकि शब्द, रूप से ज्यादह सूक्ष्म है।'

सहन शक्ति तो थी ही नहीं, निन्दा करने लगे। जम्मू की रहनेवाली एक विधवा के दुःख दूर करने, उसको उसके मेके रियासी में माँ के पास पहुँचाने और भजन में लगाने का यत्न

महाराजजी कई मास से कर रहे थे। उसके दुःखित जीवन को देखकर आपका दयावान् हृदय अधीर हो उठा। अबला की रक्षा और उसका कल्याण लक्ष्य में था। अनेक उपाय किये। लाला हरीरामजी की सहायता भी माँगी। पर यहाँ तो किसी आड़ से कट्टरपन में अन्ध लोग अपना क्रोध निकालने की चाह में थे। ख़ूब अपवाद हुआ, पर आप अचल रहे। उनको धन्यवाद दिया। अपनी सहन-शक्ति की परीक्षा होती रही। 'खल परिहास मोर हित भाई' इस सन्त उक्ति के अनुसार आप सब कुछ सहते रहे। हरीरामजी से इतना ज़रूर कहा कि, "तुम को भ्रम हुआ है। जिनका कल्याण मेरे से होना था उसमें तुम रुकावट डाल रहे हो। यह भी उनका भोग है, जो किसी पाप के कारण उदय हुआ है। अच्छा, जो हुआ, सो भला है।" यहाँ के विरोधी कभी-कभी रात को देखने आते कि माईयाँ कहाँ सोती हैं, कहीं रात को महाराजजी की कुटी में तो नहीं चली जातीं। पर इससे भी वे निराश हुये। फिर दो दुश्चरित्र स्त्रियों को आपके पास भजन सीखने के बहाने भेजा। उनको देखकर ही आपके हृदय में घृणा हुई। यह चालाकी भी निरर्थक गई। यह सब सहारते हुये आप ईश्वर को धन्यवाद देते रहे कि उन्होंने सब प्रकार से रक्षा की और सहन शक्ति की परीक्षा में पास कर दिया। चित्त में ज़रा भी क्षोभ न हुआ। जो लोग इस सब नाटक के कर्ता थे, वह जब महाराजजी के पास आते, तो आप बड़ी उदारता और मित्रता से बात-चीत करते, तथा उचित उपदेश देते। आपका व्यवहार वैसा ही सरल होता जैसा कि पहले। यह समता और सहन-शीलता महा पुरुषों के ही योग्य है।

पीछे से लोगों को सब बात का पता चला, तो क्षमा-

प्रार्थना करने आये। पर आपने क्रोध ही नहीं किया था, तो क्षमा क्या करते। कहने लगे, "भाई तुमने मेरा कुछ विगाड़ा तो नहीं, वल्कि उपकार ही किया है। अपना अवगुण अपने आप को दिखाई नहीं पड़ता। तुमने सावधान कर दिया है कि यह दूषण कभी न आने पाये।" क्षमा के तो आप धनी थे ही। ऐसी क्षमता जीवन-मुक्त ही दर्शाते हैं।

शरीर के गड़वड़ रहने, चित्त के सुस्त होने तथा मृत्यु के भोग की शंका के कारण आपने उपवास तथा मौन रहने का निश्चय कर लिया। गुफ़ा तो वन चुकी थी, उसी में रहने लगे। अन्दर हवन किया करते, अधिक देर अन्दर ही रहते। अभ्यासियों को सहायता देने के अर्थ वोलते, यदि लिखकर काम निकल जाता, तो वात-चीत भी नहीं करते थे। उपवास का क्रम ऐसा रहा—

१५ दिसम्बर से यह व्रत शुरू हुआ। पहले पाँच दिन तोला ड़ेढ़ तोला घी, पाव भर पके हुये पानी में डाल कर पीते रहे। फिर इससे चित्त हट गया। तव २१ दिन तक कुल २० से ५० वादाम की ठंडाई दो वक्त पीते रहे। जव इससे भी चित्त हट गया, तो फिर यह भी छोड़ दिया। किसीने कहा था कि 'आठ दिन जल छोड़ देने से शरीर नहीं रहता', तो आपने तजुर्वे के तौर पर जल भी छोड़ दिया। सव लोग भय से आप को जल ग्रहण करने की प्रेरणा करते रहे। एक दिन तो शहर में संदेशा पहुँचा कि 'आज रात को महाराजजी का शरीर छूट जावेगा। सवेरे आकर आपका संस्कार कर दिया जावे।' पर जव प्रातः हरीरामजी, फ़िदाजी तथा अन्य अनेक सज्जन पहुँचे, तो आप हड्डी के पिंजर को लिये, उज्ज्वल चेहरे के साथ वड़ी सावधानी से वात-चीत

कर रहे थे। इसको देखकर सब हैरान रह गये। इसी सम्बन्ध में आपने स्वामी सोमतीर्थजी को एक पत्र लिखा थाः—"व्रत के समय प्रथम १५ दिन तक कुछ मेरी ग़लती और कुछ सेवा करने वालों की ग़लती से भूख, गरमी तथा ख़ुश्की ने बहुत सताया। (इन दिनों आप भूख-निवृत्ति के लिये वायु-भक्षण किया करते थे)। जिस दिन से मुझे ग़लती का ठीक पता लग गया, उस दिन से भूख, गरमी तथा ख़ुश्की भी शांत हो गई; परन्तु जल छोड़ने पर फिर ख़ुश्की शुरू होगयी। भूख-प्यास तो रुक गई, पर ख़ुश्की से कोई तकलीफ़ नहीं प्रतीत होती थी। अगर शरीर में पानी की मालिश की जाती, तो झट सूख जाता था।" फिर जब यह देख लिया कि अभी शरीर का भोग है, तथा सत्संगी भी बहुत दुःखी थे, तो प्यास न होने पर भी आपने मकर की संक्रान्ति (६ जनवरी १६२१) को जल-ग्रहण करना शुरू किया। पहले तो बहुत कमजोर हो गये थे। फिर reaction (पल्टा) हुआ। स्वयं मल-मल कर नहाने की शक्ति आ गई। स्वामी तारकानन्दजी, और मेंढ़ीजी की प्रबल सेवा और सबके आशीर्वाद से शरीर बच गया, तथा व्रत निर्विघ्न समाप्त हो गया। कितनी निरभिमानता है। व्रत के समाप्त होने पर आपने स्वामी तारकानन्दजी और महेशदासजी को बुलाकर उनके चरण धोये। वह बड़े घबराये। शर्म भी उनको लगी। पर आपकी आज्ञा और दृढ़ संकल्प को कौन टाल सकता था। आपने कहाः—"यह मैं इसलिये करता हूँ कि मुझमें यह अभिमान न आये कि मैंने ऐसा कोई अलौकिक कार्य्य सिद्ध कर लिया है।" आप कितने विचारशील तथा विनय-सम्पन्न थे। जिस दिन पानी पीना फिर से आरम्भ किया तब प्यास

बिलकुल नहीं थी, दूसरे दिन फिर भी पाव भर पानी हठ से पिया; परन्तु उस दिन झड़ी के होने, और वायु के अधिक चलने, और ग़लती से कपड़े का सहारा अधिक न रखने के कारण सत्संगियों के साथ देर तक कुटिया में बैठे रहे। इससे सर्दी लग गई। कुछ दिन जौशांदा पिया। सफ़ाई की, शान्ति हो गई। ४० दिन पश्चात् दूध पीना शुरू किया। थोड़ा-थोड़ा दूध पीने लगे। ड़ेढ़ पाव सारा दिन में पिया करते थे। फिर मुनक्का और खजूर का सहारा भी लेने लगे। कुछ सांवक पानी में उबाल कर दूध के साथ खाने लगे। पर अन्न खाने को चित्त नहीं करता था। धीरे-धीरे शरीर कुछ बलवान होने लगा, फिर अन्न भी ग्रहण करने लगे।

इस व्रत में आपको अनेक विचित्र अनुभव हुए। 'व्रत आरम्भ होते ही शरीर कृश होने लगा था। बल को भी घटना ही था। जब निर्जल रहे थे, उस वक़्त त्वचा के ऊपर श्वेत छिलका जमा हो गया था, और त्वचा बिलकुल हड्डी से चिपक गई थी। मांसपेशी से त्वचा का कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता था। कनपटी के गढ़ों में कम से कम डेढ़ तोला पानी भर जा सकता था। नाक और चेहरे पर रौनक़ रहती थी। मस्तक की कांति को देखकर लोग हैरान रह जाते थे। वरना बाक़ी शरीर को देखकर यही ख्याल करते थे कि शरीर नहीं रहेगा। इस सबके होते हुए भी दिल नहीं घबराया। चित्त प्रसन्न रहता था। उत्साह नहीं घटा और व्रत क़ायम रखने का जोश बना रहा। किसी के कहने पर भी जब तक मन रज न जाये तब तक छोड़ने को चित्त नहीं करता था। लोगों का रोकना बुरा लगता था।

ख़ुश्की का यह हाल था कि यदि मुँह में पानी रखते तो

ओष्ठ, मसूढ़े, तथा तालू और जबान सब पानी सोख लेते। गले के नीचे एक बूंद भी न जाती।

व्रत के १५ दिन बाद ऐसी हालत आ गई कि खाने-पीने के संस्कार बिलकुल भूल गये थे। शरीर मानो भूला सा रहता था। निर्जल अवस्था में उसे इतना भूल गये थे कि शरीर के एक अंग का दूसरे अंग से कोई सम्बन्ध नहीं ख़्याल में आता था। केवल दृष्टापने की हालत में रहते। संसार की वासनाओं से मुक्त थे। स्त्रियों से और बहुत से पुरुषों से घृणा हो गई थी। इसलिये माईयों से सेवा लेना बिलकुल बन्द कर दिया था। एक मास तक बन्द रक्खा, तब मेंडीजी भी देश को चली गईं। उस वक्त यही ख़्याल रहता कि यदि शरीर छूट जाये, तो कोई हरज नहीं, यह मुर्दा सा दीखता है।

व्रत चुकने के बाद बेपरवाही बहुत बढ़ गई थी। खाने पीने में दूसरों की रायजनी की बिलकुल परवाह नहीं करते थे कि वे क्या कहेंगे। शरीर जब चाहे तब चला जाये। अकसर सभ्यता-असभ्यता की भी परवाह नहीं रहती थी। जिसके साथ जैसा बर्ताव करने को चित्त में आता वैसे ही बिना संकोच करते। निन्दा कुछ बुरी न लगती थी, और न हीं द्वेष का भाव उठता था।

उधर मेंडीजी ने श्रद्धा के कारण यह धारणा की थी, कि यदि श्री सतगुरुदेव का शरीर रहा, तो एक बड़ा यज्ञ करेंगे तथा ब्राह्मण साधुओं को भोजन करावेंगे। ऐसा ही हुआ।

कई दिन आप अन्न चबाते रहते, निगलते न थे, तो ऐसा मालूम होता कि प्राण नाड़ियों-द्वारा रस खींचते जा रहा है। रस जाता हुआ अनुभव होता। आपके गुरू कहते थे कि प्राण ही अन्न को खाता है। पर इस पर विश्वास नहीं था कि वह

वेदान्ती हैं इसलिये ऐसा कहते हैं। अब पता चला कि बात बिलकुल ठीक है।

महाराजजी यह भी कहते कि यदि पता लग जावे, तो शरीर छोड़ने से पहले ऐसा ही निराहार रक्खें जिससे शरीर छोड़ने में आसानी रहे। फिर जब शरीर कुछ पुष्ट हो गया तो आपने एक मित्र को लिखाः—"१५-२० दिन से इसे ख़ूब खिलाता हूँ, क्योंकि इसने काम अच्छा दिया है। अब ख़ून की वृद्धि भी अधिक है। मांस, चरबी में भी तरक़्क़ी है, और अब नौकरी देने लायक़ हो गया।" आप शरीर को भाड़े का टट्टू समझा करते थे कि यह hired pony है। उसको जैसे उचित होता कभी पतला कभी मोटा करते रहते, जरा भी तो उस पर दया न करते। अपना लक्ष्य ही सामने रहता कि जितनी सेवा इससे हो सके ले लो। प्रायः ज़ुकाम भी लगा रहता, पर बड़ी कड़ाई और बेरहमी से सब काम लेते।

शरीर की अवस्था से बिलकुल बेपरवाह रहते। भोग पर छोड़ देते। कभी-कभी जब बहुत गड़बड़ा जाता, तो गड़बड़ी चलने देते। जब चित्त करता तो उचित साधन और औषध करके उसको ठीक भी कर लेते। हम तो शरीर को मोटा तथा तकड़ा होने में ही कल्याण मानते हैं, पर आप शरीर कमजोर होते हुए भी अपनी मानसिक तथा आत्मिक शक्ति से सब काम करते रहे। अपने बल, उत्साह, परिश्रम और सहनशीलता से जवानों को चकित कर देते थे।

उन दिनों में एक महाशय ने महाराजजी से कहा, "बिना वेद-शास्त्र पढ़े ज्ञान नहीं हो सकता।" महाराजजी ने कहा, "बहुत शास्त्र पढ़ने की जरूरत नहीं है। संयम, वैराग्य और सद्गुरु की आवश्यकता है। यह चीजें हों तो काम बन जाता है।"

पर इस वाक्य पर उनको विश्वास न हुआ। गुफ़ा के बरामदे में स्वामी तारकानंद रहा करते थे। उनको दूसरे दिन प्रातःकाल बुलाया और कहने लगेः—"आज-कल लोग थोड़ी बात में विश्वास नहीं करते, बहुत शास्त्र पढ़ने से ही ज्ञान होगा इसी भ्रम में पड़े हुये हैं। तुम जरा समाधान चित्त होकर देखो। तुम्हारे सामने यह विशाल सृष्टि है। इसमें, सिवाय पांच इन्द्रियों और उनके विषयों के, और क्या है। विषय हैं—'पृथवी, जल, तेज, वायु और आकाश' जिनको तुम 'श्रोत्र, स्पर्श, चक्षु, रसना, तथा घ्राण' इंद्रियों द्वारा जान रहे हो। सम्भव है इससे परे भी कुछ हो; परन्तु उसको जान नहीं रहे। तुम्हारे साथ एक स्थूल 'शरीर' भी है जिसमें कर्म तथा ज्ञान की इंद्रियां हैं। और यह भी तुम्हें पता लगता है कि एक-एक इंद्रिय द्वारा एक-एक विषय का बोध होता है। एक चीज और भी दिखाई पड़ती है, जो अकेले ही पांचों को जान रही है। उसे 'मन' कहते हैं। विषय और इंद्रियों का संयोग होते ही उसमें गति उत्पन्न होती है। इसीलिये उसका नाम संकल्प विकल्पात्मक कहा है। कुछ एक और वस्तु भी दीखती है, जिसको अभ्यासी लोग इन्द्रियों और मन को जोड़नेवाली जानते हैं। उसे 'प्राण' कहते हैं। जब मन किसी बात को जान लेता है, तो कोई उसका निश्चय करता है, उसे 'बुद्धि' कहते हैं। कभी-कभी पिछली बात का स्मरण भी करते हैं। जो उस स्मृति को सामने लाता है उसे 'चित्त' कहते हैं। बुद्धि से लेकर शरीर तक जो कुछ कार्य होता है उस सबको जाननेवाला भी कोई है, उसीको 'पुरुष' कहते हैं। इन सभी पदार्थों में तुम दो मोटे पदार्थ देखते हो, 'परिवर्तनशील' और 'अपरिवर्तनशील'। परिवर्तन का नाम सुख-दुःख है, वह शरीर आदि में होता है। आत्मा में

नहीं, क्योंकि उसमें परिवर्तन नहीं होता। वह ज्ञान स्वरूप है। यदि अन्तःकरण में ही सुख-दुःख है, तो आत्मा के सुख-दुःख क्यों प्रतीत होता है? अन्तःकरण तो आत्मा से भिन्न पदार्थ है। पता लगता है कि इनके संयोग का कोई और कारण है। उसको 'अहंकार' कहते हैं। यह अहंकार ही दुःख का मूल है और यही संयोग का कारण है। इसको 'अविद्या' कहते हैं। अविद्या का अर्थ ठीक ठीक न जानना है। वास्तव में आत्मा में सुख-दुःख नहीं होता, बुद्धि में ही परिवर्तन हो रहा है। परन्तु वह अपने-आप में मानता है। बस, तुम्हें इतनी ही बातों का पता लग रहा है, पाँच कर्म-इन्द्रियों सहित शरीर, पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाँच विषय, मन, प्राण, चित्त, बुद्धि, अहंकार और एक सब कुछ जाननेवाला आत्मा। तुम यह भी जान रहे हो कि संयोग से दुःख हो रहा है। परन्तु उस दुःख के चाहते नहीं। न चाहते हुए भी, किसी बड़ी शक्ति से शासित तुम इस चक्र में पड़े हो। इस सम्पूर्ण विश्व के नियम में रखनेवाले के, जिसकी प्रेरणा से नक्षत्र, सूर्य, चंद्र आदि अपने-अपने कार्य के कर रहे हैं, 'ईश्वर' मानते हैं। वह बुद्धि का विषय तो है नहीं। फिर कैसे जानते हैं? यह प्रश्न उठ सकता है। जैसे हम स्वय अपने आपको, जो बुद्धि का विषय नहीं, अनुभव से जानते हैं, उसी अनुभव से ईश्वर के भी जानते हैं। ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप है। तुम ही बताओ इससे अतिरिक्त और क्या है कि जिसको जानना चाहिये। बहुत शास्त्र पढ़ लेने से भी इससे अधिक किस बात का पता लग जावेगा। हाँ, ब्रह्म-निष्ठ सद्गुरू की आवश्यकता पड़ती है, जो ठीक-ठीक मार्ग बतलाकर इस दुःख से मुक्त होने का उपाय बतायें।"

महाराजजी द्वैतवादी होते हुये भी 'आत्मा में सुख-दुःख नहीं

होता, यह बुद्धि का धर्म है, आत्मा ज्ञान स्वरूप है' ऐसा मानते थे।

आपने कहा, "उपनिषद् का रहस्य जब शरीर सूक्ष्म हो, तभी समझ में आता है। पानी जाते ही लूट मच गई। सभी स्थानों का प्राण पानी को अपनी ओर खींचता प्रतीत होता है, प्राण ही सब कुछ खाता है।" एक दिन आप कहने लगे, "यह शरीर एक मुरदार है जो मेरे से अलग पड़ा हुआ है। इसमें कई क्वारटर हैं। जब एक क्वारटर में कार्य्य होता है, तो प्राण वहां का सम्वाद दूसरे क्वारटर में ले जाता है। सुख-दुःख भी प्राण का खेल ही दीख पड़ता है। शास्त्रकार भी ठीक-ठीक कहते हैं कि इन्द्रिय आदि से सूक्ष्म भोक्ता प्राण ही है।"

इस प्रकार तारकानन्दजी को सब तत्वों का बोध करा दिया। अन्तःकरण चतुष्टय तथा पाँच कोशोंका साक्षात्कार हो गया।

व्रत में रहे शरीर कृश हो गया था, चलने में असमर्थ थे, परन्तु मुख पर वही कान्ति थी। सत्संगियों को उसी प्रेम से उपदेश करते। आप बीमार होने पर भी यदि दूसरे को कुछ ढारस मिलती तो झट अपने कष्ट की परवाह न कर उसके हित के लिये उपदेश करने लग जाते।

कई बार कहा करते थे, "शरीर से कुछ लाभ तो प्रतीत होता नहीं, किसी घने जंगल में जाकर शरीर छोड़ दिया जाये। फिर विचारता हूँ, आज-कल लोग अंगरेजी पढ़कर पाश्चात्य दर्शन पढ़ धोखे में पड़े हुये हैं, अपने शास्त्र को देखते नहीं, बहके हुये हैं। ऐसे लोगों के हित लिये जनता में रहना चाहिये। जिनका लक्ष्य पुस्तकें लिखकर रुपया कमाना है, वह उपनिषद के तत्व को क्या समझ सकते हैं। आज-कल जो कुछ लिखा

जाता है वह विना अनुभव के इधर-उधर पुस्तकों से लेकर ही लिखा जाता है। विना संयम, वैराग्य आदि गुणों के शास्त्र के गूढ़ तत्त्वों को समझना असम्भव है।" नवीन सभ्यता और पाश्चात्य दर्शन से चकित अथवा पाण्डित्य के मद में भरे लोग महाराजजी से वार्तालाप करने के लिये आते। थोड़ी ही देर में अवाक् रह जाते।

एक दिन महेशदासजी जो इस वक्त घर छोड़ चुके थे, साबुन लेकर कपड़े धोने का विचार करके महाराजजी के पास आये। महाराजजी को कुछ पता नहीं था। पर कहने लगे "साधु को अपना खर्च बहुत कम करना चाहिये। साबुन की बजाये, अपनी धूनी की राखसे ही कपड़े सफ़ा कर लेने चाहियें।"

यहां पर पं० रघुनाथदासजी वकील आपके बड़े भक्त बन गये थे। उनके लड़के तेजराम ने यहां पहली बार आपके दर्शन किये। पंडितजी ने उसकी पढ़ाई और हिसाब की कमी का जिक्र किया, तो आपने कहा, "कटरा में गरमी में आ जावे, तो हम इसकी कमी दूर करा देवेंगे।" जिसकी ओर आपका चित्त खिंचता, तो आप सब प्रकार से उसकी सहायता में जुट जाते। जब यह पता चला कि उसका विवाह हो गया है, तो गृहस्थ में रहते हुये ब्रह्मचर्य्य के पालने का उपदेश दिया, तथा कुछ नियम बतलाये।

वैसे तो सारा प्रबन्ध ला० हरीरामजी करते थे। उनमें संदेह तथा अश्रद्धा के अंकुर फूटने पर भी वह शर्म के मारे सब काम करते रहे। महाराजजी को यह सब पता था, फिर भी उसके कल्याण पर दृष्टि रखते हुये उसीसे ही सब सेवा लेते रहे।

इधर महेशदासजी की स्त्री, उसके भाई और पिता भी आ गये। उसकी स्त्री को छोड़कर बाक़ी सब चले गये। फिर

महाराजजी ने उन दोनोंको इकट्ठे ही रक्खा। पर महेशदासजी फिर भी अपने संयम के नियम में डटे रहे। उस देवी की याचना पर महाराजजी ने ज़रा दृष्टि दी, उसकी शक्ति जगने लगी। यदि दो-एक दिन और ध्यान देते, तो सुषुम्णा खुल जाती। पर फिर आपका चित्त इससे हट गया। कुछ दिन बाद आपने इन दोनों को वापिस घर भेज दिया। महेशदासजी को कहा, "घर रहकर वैराग्य को दृढ़ करो।"

बारहवां प्रकरण (समता)

१५ मई १६२१ के लग-भग आप स्वामी तारकानंदजी के संग वहां से चल दिये। ला० हरीरामजी ने अब अपना सारा क्रोध निकाला। पेट भरकर गाली सुनाते रहे, निन्दा भी की, कई आक्षेप भी किये। यह भी उपदेश दिया कि आप आलिम हैं, सँभल सकते हैं। पर महाराजजी सब कुछ बड़ी सरलता से सुनते रहे। कोई दो घंटा तक खड़े-खड़े समझाते भी रहे कि "आपको ग़लतफ़हमी हो गई है, इसी भूल के कारण जो कल्याण आपका मेरे द्वारा होना था, वह रुका हुआ है।"

महाराजजी की इच्छा थी कि ऐसे निन्दक के भी चरण छू लिये जायें ताकि हृदय में उसके प्रति अच्छे भाव ही रहें कि उसने अपना कल्याण ही किया है। इसी विचार से चलते समय आपने लाला हरीरामजी के चरण नम्रता-पूर्वक छू लिये। आपका आचरण इस संत-उक्ति के अनुसार था:

निन्दक नेड़ा राखिये आंगण कुटि बंधाई।

विन साबुण पाणी विना निर्मल करे सुभाई ॥
निन्दक दूर न कीजिये दीजै आदर मान ।
निर्मल तन मन सव करे वक-वक आनै आन ॥

साथही यह भी विचार था कि किसी प्रकार से उनके हृदय से भ्रम दूर हो और सन्मार्ग में लग जावें, दूसरे के हित पर ही सदैव आपकी दृष्टि रहा करती थी।

कुछ रोज पश्चात् कटरा से महाराजजी ने ला० हरीरामजी को एक पत्र लिखाः—

"प्यारे हरीरामजी, नमस्ते, कई वार आपका ध्यान आया। उस दिन जब मैं भजन में बैठा, तो भी आपका ध्यान आ गया। मैंने अपने सिर को आपके कदमों पर झुका दिया। और आपको गुरू भी मानता हूँ; क्योंकि आपके मुँह से अपनी निन्दा और कड़े शब्दों को सुनकर मुझे अपनी सहन-शक्ति का इमतिहान हो गया। भगवान् की कृपा है कि इस परीक्षा में मैं कामयाब हुआ। मगर आपके लिये ऐसा करना अपनी उन्नति को रोकना है। प्यारे, तुम्हारा चित्त तो शुद्ध है, मगर कुसंग से तुम्हारे में यह ख़रावी आ गई है। तुम्हारे अन्दर यह अभिमान है कि 'मैं सत्य बोलता हूँ।' मगर कई मौकों पर आपने मेरे सामने झूठ बोला। आप ग़लतफ़हमी का शिकार हुये हैं। अच्छा, यह पापों का फल है, जैसा चाहो, करो।'

ऐसी उदारता, नम्रता, सेवा भाव, फिर भला जिज्ञासु का चित्त क्यों न पलटता। अन्त में वही हुआ। जब पाप का भोग चुक गया, तब पता लगने लगा कि किस प्रकार से भ्रम में पड़ अपने और दूसरों के कल्याण में बाधा डालते रहे। पश्चात्ताप हुआ और क्षमा-प्रार्थना करके सन्मार्ग में रुचि पैदा हुई।

दूसरे पर किसी प्रकार का क्रोध तथा द्वेष दर्शाना तो आपके

लिये असम्भव सा था। इसके विपरीत उससे ऐसी सज्जनता का व्यवहार करते कि वह धीरे-धीरे अपने भ्रम को छोड़कर महाराजजी के सत्संग से लाभ उठाने लगता।

जिस कार्य्य को भी महाराजजी हाथ में लेते, उसको पूर्ण किये बिना कभी न छोड़ते। एक बार कटरामें कमण्डलु में राल लगानी थी। शाम हो गई। तारकानंदजी ने सोचा कि काम इतना आवश्यक नहीं है, फिर देखा जायेगा। परन्तु महाराजजी बीच में छोड़ने वाले न थे। बड़ी देर हो गई; परन्तु वह उसीमें लगे रहे, और पूर्ण करके ही सोये। आपने कहा कि "कर्म-मात्र में कुछ न कुछ कठिनाई तो होती ही है। यदि उसमें आई हुई थोड़ी सी कठिनाई के भय से ऊबकर कर्म करना छोड़ दोगे तो तुमही बताओ कि मन की ऐसी आदत बन जाने पर मुक्ति जैसी दुर्लभ वस्तु, जिसके रास्ते में नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, कैसे प्राप्त कर सकोगे।"

महाराजजी के गुणों के सम्बन्ध में तो बड़े-बड़े विद्वान् पुरुष आते और धोखा खा जाते। एक दिन एक बंगाली महात्मा महाराजजी को मिलने आये। कुछ वार्त्तालाप के पश्चात् कुटी देखने गये। महाराजजी कुटीको सजाकर तो रक्खा ही नहीं करते थे, परन्तु आँखों की सहन-शक्ति बढ़ाने के लिये कभी-कभी बहुत सफ़ाई करना भी बन्द कर दिया करते थे। वह बंगाली महाशय इस दृश्य को न सहार सके, और अपने साथियों में जाकर कहने लगे कि "यह कैसे योगी हैं। योगी का स्थान तो रमणीक होना चाहिये। महाराजजी की दृष्टि में तो वही स्थान रमणीक था जो निरुपद्रव, एकान्त और भजन करने लायक़ हो तथा जहां पर स्वच्छ जल-वायु हो। पीछे से जब एक दिन उस महात्मा ने महाराज़जी के साथ बिना नमक मसाले का

भोजन किया, तो कहने लगे, "मेरे विचार भ्रमात्मक थे। मैंने भूल की जो इनके लिये ऐसे-ऐसे विचार प्रकट किये। जिस सात्विक वृत्ति से आप रहते हैं, वह किसी महापुरुष का ही काम है।"

दूसरे के दुःख को देखकर आपके मन में अत्यन्त करुणा उत्पन्न होती थी; और वैसे तो आप अपनी योग की शक्ति छुपाते रहे, पर कभी-कभी दया के कारण उसका प्रयोग हो ही जाया करता। एक जिज्ञासु जो गृहस्थ था आपके पास आया। वह ब्रह्मचर्य्य-पालन का प्रयत्न कर रहा था। कुछ सफलता होने पर भी उसको गिरावट का भय लगा ही रहता था। महाराजजी के बहुत पीछे पड़ा कि आप अपनी शक्ति द्वारा सहायता दीजिये। पहिले तो आप टालने की कोशिश करते रहे, परन्तु वह मानने वाला न था। अन्त में जब वह हर समय यही याचना करता रहा, गुरुदेव भी विवश हो गये। कृपा के आवेश में आपने कहा "अब तुम्हें भय नहीं होगा।" उस दिन से उसका ब्रह्मचर्य्य व्रत अखंड रूप से चल रहा है। ब्रह्म-निष्ठ, सत्य-आरूढ़ महात्माओं का आशीर्वाद वृथा नहीं जा सकता है।

श्री स्वामीजी और तारकानन्दजी कुछ काल के लिये बाल-गंगा में ठहर गये थे। रियासी में बुखार आजाने के कारण कुछ शरीर अधिक कमजोर हो गया था, उसको स्वस्थ करने के विचार और पुरुषार्थ में थोड़े दिन बीत गयें।

महेशदासजी को घर तो भेज दिया था। पर अभी उसके वैराग्य में संदेह था। इसलिये प्रो० सदानंदजी द्वारा सूचना भिजवा दी कि "उसमें पूर्ण वैराग्य नहीं है, उसके अन्दर मोह बहुत है। ऐसी अवस्था में घर ही में रहे तो अच्छा है। जब तक दूषण दूर न हों और वैराग्य तीव्र न हो, तब तक न छोड़े, नहीं तो बहुत कठिनाई झेलनी पड़ेगी। उसे अपने पास रखने में भी

बन्धन प्रतीत होता है। यदि वह आयेगा तो संभल कर आये, उसे स्वतंत्र ही रहना पड़ेगा।"

थोड़े दिन बाद महेशदासजी वहां आ ही गये। उनके पिता, उनकी धर्मपत्नी भी पीछे से पहुँचे। युवा काल में मोह को जीतना बड़ा कठिन है। काम भी पीछे लगा रहता है। फिर, महाराजजी को चेला मूंडने की कोई इच्छा नहीं थी, इसलिये उसको वापिस घर में रहने के लिये ही कह दिया; और वे लौट गये।

इस वर्ष प्रो० सदानन्दजी, जो अप्रैल से मुलतान में कालिज खुलने के कारण, वहीं नियुक्त हो गये थे, फिर महाराजजी के सत्संग को आये और कई दिन तक रहकर लाभ उठाते रहे।

यहां रहते हुये ही तेजरामजी भी गरमी की छुट्टियों में रियासी से आये। महाराजजी से गणित और अंगरेजी की कमी पूरी करते रहे। मास्टर कर्मचंदजी भी यहां कुछ दिनों से आये हुये थे, उनसे भी वे अंगरेजी की सहायता लेते रहे। स्वामीजी की आज्ञानुसार तेजरामजी ने मास्टरजी से रोटी पकाने की विधि भी सीखी। कुछ दिन बाद महाराजजी ने संध्या पूजन की विधि बतलाई जिससे उनका मन बहुत शांत रहने लगा। उनका विवाह हो चुका था, इससे आपने उनको तीन और भी उपदेश दिये। "(१) अपनी स्त्री को हिन्दी भाषा पढ़ाना जिससे वह धर्म-ग्रन्थों का पाठ कर सके। इसपर उसने जब पहिला अवसर मिला तो उसी समय से ही आचरण शुरू कर दिया। (२) स्त्रीसे कहना, 'मैं तुमसे तब प्रसन्न रहूँगा जब तुम हर प्रकार से सास-ससुर की तन-मन से सेवा करोगी।' इस उपदेश से उसकी गृहिणी का जीवन बड़ा प्रेममय और मधुर बन गया। (३) विषय-भोग में बहुत न फँसना, ब्रह्मचर्य्य के नियमों-उपनियमों का पालन करते रहना।" यहाँ रहते-रहते तेजरामजी की दिनचर्य्या इतनी नियम-

पूर्वक हो गई कि छुट्टियों के बाद भी जम्मू में जाकर वैसे ही नियमों से रहने लगे। सत्संग में रहकर आपने उस छोटी अवस्था में ही अनेक लाभ पाये जिससे जीवन की कला भी पलट गई।

ला० हरीरामजी भी जम्मू जाते हुये यहाँ आये। उनकी श्रद्धा तो नहीं थी क्योंकि भ्रम अभी मिटा नहीं था; पर फिर भी महाराजजी की बातें इनको अच्छी लगती थीं, इसी कारण आने से नहीं रुक सके। यहाँ आकर अपने अनेक संदेहों को स्वामीजी के सामने प्रकट किया। महाराजजी के बिना रोष प्रकट किये, उसके अज्ञान को दूर करने के लिये बड़े प्रेम से सब-कुछ समझाते रहे। कुछ संशय हिले तो, पर अभी जड़ से न उखड़े। यह स्वाभाविक है कि जो भाव एक बार जड़ पकड़ लें वह शीघ्रता से पीछा नहीं छोड़ते, चाहे वह अज्ञानवश ही क्यों न पैदा हुये हों। उनको दूर करने में देर लगती है।

सुभीता और शरीर अस्वस्थ होने के कारण आप नवरात्रों तक यहीं ठहरे रहे। जब सब सत्संगी चले गये और शारीरिक अवस्था भी सुधर गई, तो ऊपर अपनी गुफ़ा में जाकर रहने लगे। जब महाराजजी अपनी गुफ़ा में पहुँच गये थे, तो महेश-दासजी तीन-चार मास घर रहकर वापिस आ गये। आप तो कहते थे कि 'अभी बहुत कसर है', पर वह बहुत बेचैनी प्रकट कर रहे थे। अपनी इच्छा से ही स्वामी तारकानंदजी से संन्यास ग्रहणकर 'आत्मानंद' के रूप में रहने लगे। उनको डाबा में रहने की आज्ञा हुई। और यही निश्चय हुआ कि भिक्षा का प्रबन्ध करके जाड़ा भर वहीं रहें। दैनिक विचार के लिये गुरूजी महाराज ने कुछ उपदेश लिखवा दिये। "(१) पाँच ज्ञान-इंद्रियों से केवल ज्ञान ही होता है, इनसे यथार्थ बोध प्राप्त करना चाहिये। विषय-भोग में पड़ने से यथार्थ बोध नहीं प्राप्त हो

सकता। (२) सब ज्ञानइंद्रियाँ शरीर के निर्वाह के अर्थ हैं। (३) शरीर के निर्वाह मात्र पर दृष्टि रखनी चाहिये। (४) दुःखों को हर समय स्मरण करना चाहिये। (५) स्वतंत्रता के लिये हर समय उपाय करते रहना चाहिये। (६) भजन नियमपूर्वक होना आवश्यक है। (७) अभिमान से बचो, नहीं तो गिर जाओगे। (८) द्रष्टा रहने का स्वभाव दृढ़ करना चाहिये। (९) संसारी पुरुषों के संग से दूर रहना चाहिये। (१०) इंद्रियों और मन के विषयों से उपराम रहो (११) मोह की सैना को विचार की सैना से जीतना चाहिये। काम को यथार्थ बोध से, क्रोध को क्षमा से, लोभ को संतोष से, अहंकार को नम्रता से और मोह को संसार की असारता पर विचार करने से जीत सकते हैं। (१२) दुःखों के कारण का त्याग अथवा सर्वनाश, जीवन का लक्ष्य है।"

प्रो० सदानंदजी और सरदार जेसासिंहजी भी मुलतान से बुला रहे थे। कुछ चित्त हुआ भी, पर पीछे मुलतान का विचार आते ही घृणा आने लगी। इसका कारण पीछे पता चला। प्रो० सदानंदजी संसारी झगड़ों के कारण दुविधा में थे; और यह विचार था कि यदि महाराजजी आये, तो उनकी सेवा न हो सकेगी। इस भाव का असर गुरुदेव के निर्मल चित्त में भासित हो गया। आपका चित्त इतना उज्ज्वल रहा करता कि पत्र को देखने मात्र से, वस्तु और मनुष्य के दर्शन से, अथवा उनके चिन्तन से ही उनके अनुकूल भाव चित्त में पैदा हो जाते थे।

तेरहवां प्रकरण (युवकप्रेम)

इस बार बख़शी रामदासजी जम्मू से प्रेरणा कर रहे थे। बहुत दिनों से श्रद्धा और भक्ति पूर्वक सेवा भी करते रहे। पहले उनको कई बार टाल भी चुके थे, अबकी बार उनको सहायता देने का विचार था। जम्मू से दूसरे सत्संगी भी आशा लगाये बैठे थे। पर यहां एक सज्जन अम्बिकादत्तजी अभ्यास सीखने आये हुये थे, उनकी वजह से शीघ्र छुट्टी न पा सके। जब उनकी चिन्ता से मुक्त हुये, तो आप स्वामी तारकानंदजी के संग दिसम्बर में जम्मू पहुँचे, और वेद मंदिर में ठहरने का प्रबन्ध किया।

इधर कुछ दिन से रोटो से चित्त घबरा रहा था। ऐसे कठिन व्रत के कारण शरीर और चित्त बहुत सूक्ष्म हो गया था। इसलिये रोटी को छोड़ फल, दूध और सब्जी पर निर्वाह करने लगे। रात को एक फटी लोई में गुजारते। दिन को नंगे बदन धूप में बैठे रहा करते थे। आपका कई बार यह विचार होता कि यदि सर्दी गरमी सहार ली जावे, तो कपड़ों का बोझ न लादना पड़े। इसी बात का अभ्यास यहां भी कर रहे थे। परन्तु अभ्यास के कारण ऐसे नियमों से रहते थे कि जिससे आपका शरोर और भी सूक्ष्म होता जा रहा था। शरीर सर्दी गरमी सहारने के काबिल नहीं था। जब कभी थोड़े दिन हठ से ऐसा करते रहते, तो शरीर फिर गड़बड़ा जाता और लाचारी उस यत्न को त्यागना पड़ता। यह सब होते हुए भी आप प्रायः इसी उद्योग में लगे रहते; और यद्यपि अपने इस लक्ष्य में आप कभी सफल नहीं हो पाये, परन्तु फिर भी अपने अनेक साधु और गृहस्थी युवक साथियों की अपेक्षा आपका जीवन तितिक्षा से अधिक सम्पन्न था। यहां एक ब्रह्मचारी योग सीखने के विचार से आया, और वह पास ही ठहराया गया।

उस पर पूरा विश्वास करके स्वामीजी उसकी सेवा में प्रवृत्त हुए। परन्तु उसका चित्त अभी तक योग की अपेक्षा भोग में अति अधिक आसक्त था। थोड़े दिनों बाद एक कम्बल, कुछ रुपया और थोड़ी खानेकी सामग्री लेकर चलता बना। महाराजजी ने ईश्वर का धन्यवाद किया कि "ऐसे अनधिकारी को भजन में लगाने के पापसे तो बच गये, नहीं तो पीछे कष्ट ही होता।"

महाराजजी के पास बख़शी रामदास, कम्पौन्डर देवीदयाल, दुर्गादास, रामलाल, तेजराम, रामरखा आदि अनेक वृद्ध युवा सज्जन सत्संगमें आकर विशेष लाभ उठाया करते थे। रामरखाजी तो पहली बार ही आपसे मिले। महाराजजी की प्रशंसा तो कई बार अपने सहपाठी तेजरामजी से सुन चुके थे। कई और लड़कों के साथ दर्शनों को आने लगे। दो-चार बार तो चुप चाप बैठकर लौट जाते रहे। महाराजजी उदासीन वृत्ति से बैठे रहा करते थे। जो लोग आते उनको विषयों के त्याग का उपदेश करते रहते। एक बार साहस करके बड़ी नम्रता और संकोच से पूछा "महाराजजी, आपने विषय-त्याग का तो बहुत उपदेश दिया, पर यह बतलाया ही नहीं कि विषय कैसे छोड़े जाते हैं।" फिर महाराजजी ने एक दिन फूल को दिखलाकर इनको जचवाया कि जब ध्यान से देखा जाता है तो विषयों में सुख नहीं प्रतीत होता। ऐसेही विचार से अनुभव को दृढ़ करते रहना चाहिए, चित्त आपही उपराम हो जाता है।

रात को कपड़ा तो थोड़ा लेते थे। पर सरदी बढ़ने लगी। इसी पर एक दिन आपने कहा कि "ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर हमारी परीक्षा ले रहा है। कभी-कभी यह भी विचार आता है कि कहीं नमोनिया न हो जाये। फिर भी बुद्धि यही रहती है कि देखें क्या होता है।" जिस साधन में स्वयं रहते उसीकी ही

प्रायः चर्चा किया करते थे। तप, त्याग और वैराग्य सम्बन्धी बातें छेड़ते। यदि कोई दूसरा प्रश्न कर देता, तो बिना बुरा माने जैसा उचित समझते अपने विचार प्रकट करते थे।

तेजरामजी भी प्रायः दर्शनों को आते रहे। इन्हीं के रहन सहन और खान-पान से प्रेरित होकर रामरखाजी और अन्य कई विद्यार्थी आया करते थे।

जितने भी बड़े पुरुष हुये हैं उनको युवकों से हमेशा प्रेम रहा है। इनका चित्त अधिक सरल और झमेलों में कम फंसा होता है। श्री रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे, "बालकों का हृदय सोलह आने उनका अपना होता है। यदि वह चाहें तो सारे का सारा प्रभु की भेंट कर सकते हैं। जब उनका विवाह होता है, तो आठ आना चित्त स्त्री ले लेती है, जो शेष बचता है, वह बच्चों सम्बन्धियों, धन, और नाम की इच्छा में बांटा जाता है, फिर भला वह प्रभु को क्या भेंट कर सकते हैं।" यही कारण है कि युवक भी महान उपदेशों को ग्रहण करने के लिये अधिक उत्सुक रहते हैं। उच्च भावनायें उनके आशावादी हृदय में शीघ्र अपना प्रभाव दिखलाती हैं।

रामलालजी भी जो १९१९—२० में आपके पास पढ़ते रहे थे और सत्संग भी किया था, इस वर्ष फिर आने लगे। उनके विवाह के सम्बन्ध में फिर चर्चा चली। महाराजजी ने यही कहा, "यदि तुम्हारा चित्त नहीं, तो इस बन्धन में कदापि न पड़ो।" सोच-विचार करके, उसने जहाँ उसकी सगाई हुई थी, उनको इनकार लिख दिया। इससे उसके माता-पिता बड़े घबराये। रामलालजी ने उनको निश्चय दिलाया कि वे घर नहीं छोड़ेंगे और उनकी सेवा में लगे रहेंगे। पर उनको विश्वास कब आता था।

उनके पिता एक दिन श्रीस्वामीजी से कुछ बुरा-भला

उस पर पूरा विश्वास करके स्वामीजी उसकी सेवा में प्रवृत्त हुए। परन्तु उसका चित्त अभी तक योग की अपेक्षा भोग में अति अधिक आसक्त था। थोड़े दिनों बाद एक कम्बल, कुछ रुपया और थोड़ी खानेकी सामग्री लेकर चलता बना। महाराजजी ने ईश्वर का धन्यवाद किया कि "ऐसे अनधिकारी को भजन में लगाने के पापसे तो बच गये, नहीं तो पीछे कष्ट ही होता।"

महाराजजी के पास बख़शी रामदास, कम्पौन्डर देवीदयाल, दुर्गादास, रामलाल, तेजराम, रामरखा आदि अनेक वृद्ध युवा सज्जन सत्संगमें आकर विशेष लाभ उठाया करते थे। रामरखाजी तो पहली बार ही आपसे मिले। महाराजजी की प्रशंसा तो कई बार अपने सहपाठी तेजरामजी से सुन चुके थे। कई और लड़कों के साथ दर्शनों को आने लगे। दो-चार बार तो चुप चाप बैठकर लौट जाते रहे। महाराजजी उदासीन वृत्ति से बैठे रहा करते थे। जो लोग आते उनको विषयों के त्याग का उपदेश करते रहते। एक बार साहस करके बड़ी नम्रता और संकोच से पूछा "महाराजजी, आपने विषय-त्याग का तो बहुत उपदेश दिया, पर यह बतलाया ही नहीं कि विषय कैसे छोड़े जाते हैं।" फिर महाराजजी ने एक दिन फूल को दिखलाकर इनको जचवाया कि जब ध्यान से देखा जाता है तो विषयों में सुख नहीं प्रतीत होता। ऐसेही विचार से अनुभव को दृढ़ करते रहना चाहिए, चित्त आपही उपराम हो जाता है।

रात को कपड़ा तो थोड़ा लेते थे। पर सरदी बढ़ने लगी। इसी पर एक दिन आपने कहा कि "ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर हमारी परीक्षा ले रहा है। कभी-कभी यह भी विचार आता है कि कहीं नमोनिया न हो जाये। फिर भी बुद्धि यही रहती है कि देखें क्या होता है।" जिस साधन में स्वयं रहते उसीकी ही

प्रायः चर्चा किया करते थे। तप, त्याग और वैराग्य सम्बन्धी बातें छेड़ते। यदि कोई दूसरा प्रश्न कर देता, तो बिना बुरा माने जैसा उचित समझते अपने विचार प्रकट करते थे।

तेजरामजी भी प्रायः दर्शनों को आते रहे। इन्हीं के रहन सहन और खान-पान से प्रेरित होकर रामरखाजी और अन्य कई विद्यार्थी आया करते थे।

जितने भी बड़े पुरुष हुये हैं उनको युवकों से हमेशा प्रेम रहा है। इनका चित्त अधिक सरल और झमेलों में कम फंसा होता है। श्री रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे, "बालकों का हृदय सोलह आने उनका अपना होता है। यदि वह चाहें तो सारे का सारा प्रभु की भेंट कर सकते हैं। जब उनका विवाह होता है, तो आठ आना चित्त स्त्री ले लेती है, जो शेष बचता है, वह बच्चों सम्बन्धियों, धन, और नाम की इच्छा में बांटा जाता है, फिर भला वह प्रभु को क्या भेंट कर सकते हैं।" यही कारण है कि युवक भी महान उपदेशों को ग्रहण करने के लिये अधिक उत्सुक रहते हैं। उच्च भावनायें उनके आशावादी हृदय में शीघ्र अपना प्रभाव दिखलाती हैं।

रामलालजी भी जो १६१६—२० में आपके पास पढ़ते रहे थे और सत्संग भी किया था, इस वर्ष फिर आने लगे। उनके विवाह के सम्बन्ध में फिर चर्चा चली। महाराजजी ने यही कहा, "यदि तुम्हारा चित्त नहीं, तो इस बन्धन में कदापि न पड़ो।" सोच-विचार करके, उसने जहाँ उसकी सगाई हुई थी, उनको इनकार लिख दिया। इससे उसके माता-पिता बड़े घबराये। रामलालजी ने उनको निश्चय दिलाया कि वे घर नहीं छोड़ेंगे और उनकी सेवा में लगे रहेंगे। पर उनको विश्वास कब आता था।

उनके पिता एक दिन श्रीस्वामीजी से कुछ बुरा-भला

कहने आये, कभी मिन्नत समाजत भी करते कि किसी प्रकार से आप स्वयम उसको विवाह की आज्ञा दे देवें। जब कुछ असर न हुआ, तो वह बहुत बिगड़े। तब महाराजजी ने कहा, 'भाई, मेरी समझ में जो कुछ सत्य होता है, उसीको करने के लिये कह देता हूँ। यदि उसीको कोई करने लग जाय, तो इसमें मेरे साथ क्रोधित होने से क्या लाभ है। मैं वही बात भरी समाज में कहता हूँ। किसी का आत्मा शुद्ध है, उसके दिल में लग जाती है। तुम बूढ़े अथवा अन्य लोग भी तो यही बातें सुन जाते हैं, परन्तु उस पर आचरण का ख्याल भी आपको नहीं आता। वह बच्चा है, उसका मन पवित्र है, अब उसे भला काम करने से कैसे रोका जा सकता है। मैं तो सच्ची बात ही कहूँगा। हाँ, जो तुम लोग नाराज़ हो जाओ, तो जब हम भिक्षा माँगने आवें न देना। आख़िर कुत्तों को भी तो कई बार तुम टुकड़ा नहीं डालते।" निरभिमानता तथा दृढ़ता का कैसा ही अनुपम मेल है। यह भी डटे रहे। लाला हरीरामजी भी इनको प्रण से गिराने का यत्न करते रहे, और पीछे से माता-पिता के कष्ट को देखकर यह घबरा गये, और विवाह करना स्वीकार कर लिया। जब महाराजजी को फिर पता चला, तो उन्हों ने ढारस दी और यह भी अपने प्रण पर अड़ गये। धीरे धीरे जब उसके माता पिता को भी विश्वास हो गया कि उनका पुत्र घर नहीं छोड़ता, पर ब्रह्मचर्य्य से रहना चाहता है, तो वह आप ही ढीले पड़ गये। इधर जब लाला हरीरामजी के अपने विचार बदले और भ्रम दूर हो गया, तो कहने लगे, "महाराजजी के उपदेश अमृत हैं, उन्हीं पर चलने से कल्याण हो सकता है।" इस वर्ष रामलाल भी घट-शुद्धि का कुछ अभ्यास सीखते रहे, फिर भजन-साधन में प्रवृत्त हुये।

एक दिन पूज्य महाराजजी केवल लँगोट पहिने हुए बैठे थे।

रामरक्खाजी और अन्य विद्यार्थी भी पास ही बैठे थे। बूट, सूट कसे कुछ फ़ैश्नेबल आदमी आये। रामरक्खाजी ने कहा "महाराजजी एक चटाई अन्दर से बाहर निकाल लाऊँ?" आपने उत्तर दिया, 'रहने दो, बैठना होगा तो बैठ जायेंगे"। वह आदमी इधर-उधर देखकर अपने बैठने योग्य कोई स्थान न पा वापिस चले गये। तब महाराजजी ने कहा "मक्खीयें उड़ गईं, सो अच्छा हुआ"।

एक दिन लाला हरीरामजी आपसे मिलने आये। महाराजजी उनसे बड़े प्रेम से बातें करते रहे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे किसी परम श्रद्धालु से बातें कर रहे हों। जब वे चले गये, तो पास बैठे विद्यार्थी को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि यह वह पुरुष हैं जो भ्रम में पड़कर आपको गालियां देते रहते हैं। आपका हृदय द्वेष से सर्वथा शून्य था।

आपके पास ग्राम का बना एक जूता था। बहुत पुराना हो गया था, और गठवाते-गठवाते काफ़ी भारी प्रतीत होता था। जब किसीने उस जूते के त्यागने के लिये कहा, तो आपने उत्तर दिया, "माँग कर निर्वाह जितने थोड़े से हो सके करना चाहिये, नहीं तो प्रतिगृह का दोष लगता है। साधू को बड़े संकोच से व्यय करना चाहिये।" फटे हुए कपड़े, कई टाकियाँ लगी हुई धोती, जुड़ते-जुड़ते भारी हो गया हुआ जूता, यह सब आपके सरल और सादा जीवन को दरशाते थे। आज कल तो अनेक लोग साधू बनकर ठाट-बाट में रहने से ही अपना कल्याण समझते हैं।

फ़रवरी के आरम्भ में स्वामीजी कुछ दिन के लिये वृन्दावन और कनखल चले गये थे। वहाँ के सत्संगियों को कृतार्थ कर फिर शीघ्र लौट आये।

जम्मू में प्लेग फूट पड़ी। लोग शहर छोड़कर इधर-उधर जाने लगे। पर सब कहाँ जा सकते थे। लोग बहुत घबराये हुए थे। पहले तो महाराजजी का विचार भी चले जाने को था किन्तु; जब लोगों की दशा देखी, तो रुक गये। अनेक नर-नारी सत्संग में आकर धीरज पा जाते। ऐसी शोचनीय दशा में उनको छोड़कर जाने में भी चित्त नहीं मानता था। इस लिये वहीं डटे रहे।

विद्यार्थियों का इमतिहान आ गया। यह बिचारे कहाँ जा सकते थे। उनके सम्बन्धी तो चले गये। कई एक तो वेद-मंदिर में ही महाराजजी के पास आ कर रहने लगे। पूरा होस्टल सा बन गया। प्रत्येक विद्यार्थी अपनी बारी पर अपनी रुचि अनुसार भोजन बनाता था। सब लोग उसीको खाते। दाल-साग बिना नमक ही बनता था। इनको अभ्यास तो था ही नहीं, कभी कभी नमक माँग बैठते। एक दिन महाराजजी ने स्वामी तारकानंदजी से कहा, "तुम इनको नमक दे दिया करो, यह तो स्वाद के लिये भोजन करते हैं।" ऐसा सुनकर सब शर्मा गये, और फिर थोड़ा बहुत स्वाद पर अधिकार प्राप्त कर लिया। कभी-कभी आप लड़कों के साथ खेला भी करते थे। एक दिन उनको potato-game भी सिखलाई।

विद्यार्थियों को खिलाते समय भी आपका ध्यान उनकी मनोवृतियों पर रहा करता था। खेल चुकने पर आप उनको बताया करते कि अमुक लड़के का मन निर्मल है। उसने पीछे रहना स्वीकार किया पर छल नहीं किया। अमुक लड़के ने बनियापन किया है। खेल के नियम को पूरा किये बिना ही वापिस लौट गया। अमुक लड़का वीर है, वह हारने के भय से पीछे नहीं हटा, इस प्रकार आचार्य्य की तरह खेल-कूद में भी युवकों को उपदेश दिया करते थे।

आपकी सहन-शक्ति बहुत बढ़ी हुई थी। मार्च में धूप काफ़ी तेज़ हो जाती है; परन्तु स्वामीजी लंगोट लगाये घंटों धूप में बैठा करते थे। आपके युवक साथी थोड़ी देर में घबरा जाते थे। एक दिन रामरक्खाजी ने पूछा कि महाराजजी आपने करना तो कुछ नहीं, पर आप शरीर को क्यों इतना कष्ट देते रहते हैं। महाराजजी ने उत्तर दिया "पहिले छाते के बिना धूप में नहीं चल सकता था, धूप बहुत काटा करती थी, परन्तु अब जितनी देर चाहूँ बड़े मज़े से चल अथवा बैठ सकता हूँ"।

आपने मान को भली-भाँति मर्दन किया हुआ था। शहर के अनेक सम्मानित पुरुष आपके दर्शन को आया करते थे। परन्तु आप कभी कभी एक सुलफ़ा पीनेवाले साधू के यहाँ जाते और जूते उतारने वाले स्थान में बैठ आया करते। पूछने पर आप कहा करते थे, "मन कहीं अभिमान में अपने आपको बड़ा न समझने पावे, इसलिये इसकी परीक्षा करते रहना चाहिये।"

इस प्रकार उनमें बालक समान विचर कर उनके सरल पवित्र हृदयों में अनेक शुद्ध संस्कार डालते रहे। पीछे गरमी आ गई, तो भी आप रुके रहे। जब लड़कों का इम्तिहान होने लगा, तो प्रातःकाल उनको खिला-पिलाकर भेजते थे। उसके बाद भजन में बैठते। जब ज़रूरत पड़ी, तो दोपहर की रोटी भिजवाने का भी प्रबन्ध कर दिया। मातृ-स्नेह से सबकी रक्षा करते रहे। फिर जब उनका इम्तिहान समाप्त होगया, तो बड़ी उपरामता से कटरे को चल दिये। सबको ब्रह्मचर्य्य का उपदेश ऐसे देते थेः—"काम के वश मनुष्य घाटे में मरा जाता है। गृहस्थी विषय में रत हो जाते हैं। संतान-निमित्त ही विवाह की आज्ञा है। जो इस बखेड़े में ना पड़ें तो अच्छा है। स्त्री-पुरुष यदि संयम में रहने लगें तो बहुत सा दुःख कम हो जाये, पाप से

बचें और भजन-उपासना में लगकर शान्ति और आनंद का अनुभव कर सकें।"

एक दिन कुछ वेदांती झगड़ा करने आये। पर जब महाराजजी बड़े प्रेम से सब बातों को समझाते रहे, तो उधर भी गम्भीरता और शांति आने लगी।

इस वर्ष बख्शी रामलाल की प्रेरणा से आप जम्मू में रहे थे। भोजन आदि की सेवा भी वे किया करते। भिक्षा बड़े शुद्ध-भाव से देते कि जिसमें महाराजजी का चित्त प्रसन्न रहता। उन्होंने सत्संग से खूब लाभ उठाया और महाराजजी ने आपको अनेक उपदेश दिये कि जिनका कुछ सार हम यहां देते हैं:—

१—इन्द्रियों के विषयों को निष्पक्ष भावसे देखना चाहिये। मन के संयोग बिना कुछ बोध नहीं हो सकता; पर जब तक मन निष्पक्ष न रहे, तब तक यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते।

२—मन का जहाँ-जहाँ लगाव हो, वहाँ-वहाँ यह विचारना चाहिये कि असली तत्त्व क्या है; कितना धोखा है, कितना भ्रम है, कितनी सचाई है। आसक्ति के कारण को देखो, अविद्या है या कुछ और।

३—हर वस्तु से बेलगाव रहना चाहिये, और हर समय मन निष्पक्ष रहे। इसके भावों के अधीन होकर पक्षपात में बुद्धि को फंसने नहीं देना चाहिये।

४. जब मन अपने आप कुछ करना चाहे, तो सोचो इससे कौन सा दुःख दूर होगा। यदि दुःख मे बढ़ना ही हो, तो उस काम को हाथ में लेना मूर्खता ही होगी।

५—एकाग्रता के अभ्यास के लिये जिस काम में रुचि हो उसमें लग जाओ। उसको पूरी तवज्जो से करो। बाधाओं से घबराकर बीच में मत छोड़ो।

६—जो वस्तु या बात निष्पक्षता से जैसी अनुभव में आये, उसको वैसा ही समझना सत्य है, उसके खिलाफ़ झूठ है।

७—सत्यके बराबर कोई तप नहीं। इसलिये सत्य और असत्य का निर्णय करो। सत्य का ग्रहण करना और असत्य का बलपूर्वक त्याग करना परम धर्म है। अपने से जुदा जो चीज़ है वह सब विषय में दाख़िल है। इनको सुख लाभके लिये प्रयोग में लाना विषय सेवन है, परन्तु दुःख निवारण के लिये प्रयोग में लाना दवाई है। इसी औषध रूपसे ही सब पदार्थों को बरतना ठीक है।

८—विषय में सुख का धोखा होने से ही राग होता है। यदि यथार्थ बोध से सुख बुद्धि ही उड़ा दी जाये, तो फिर राग नहीं होगा। और न चित्त ही फंसेगा।

९—सब दुःख सुख मानसिक हैं। मन की खिलाड़ हैं। हक़ीक़त में प्रकृति के खेलों में न सुख है, न दुःख है।

१०—सबसे ऊँचा दर्जा इस भाव की पुख़्तगी है कि सब कुछ ईश्वर कर रहा है; हम कुछ नहीं कर सकते। गोया अहम्-भाव बिलकुल मद्धिम हो जावे। इससे कम यह है कि जो कुछ करें ईश्वर अर्पण करें। अपना ममत्व साथ न रहने दें। तीसरा दर्जा यह है कि जो कर्म किसी फल की प्राप्ति के लिये किया जाये, वह शास्त्र की विधि के अनुसार होना चाहिये; और भावना यह हो कि जो हमारे अधिकार में था, वह हमने कर दिया; अब जैसा फल ईश्वर देंगे, उसी में ही संतोष मानेंगे। इससे भिन्न जो भी भावनायें हैं, वह पापमय और अत्यंत दुःख कारक हैं।

भोजन आदि में बख़शीजी से सहायता मिल ही रही थी। इधर कुछ रुपये प्रो० सदानंदजी ने भोजनादि के लिये भेज दिये। इस पर आपने उनको लिखा, "इतना रुपया बिना ज़रूरत

तथा विना सूचना दिये हुए आ जाना बोझ सा प्रतीत होता है। आशा है, आगे को आप इस बात पर जरूर ध्यान देंगे। अधिक रुपया पास होने पर बेजा चिंता हो जाती है। भूख होने पर जब माता दूध पिलाती है तो दूध अधिक क़दर के योग्य होता है। विना भूख के अजीर्ण होजाने की सम्भावना रहती है"।

आप कई बार कहा करते थे कि "गृहस्थी हमारे माई बाप हैं। इन्हींको हमारे खिलाने-पिलाने की चिंता रहती है। वे ही हमारा पालन पोपण-करते हैं।"

स्वामी तारकानंदजी का विचार नैपाल की तरफ़ जाकर किसी ठंढे स्थान में भजन करने का था। पर फिर वहां जा न सके। यहाँ से महाराजजी १६ मार्च को चलकर कटरा पहुँच गये।

चौदहवाँ प्रकरण (नम्रता)

यहाँ पहुँच कर आप फिर उसी कुटी में रहने लगे। एक छतरा में तो स्वामी आत्मानन्दजी रहा करते थे, दूसरा छतरा स्वामी तारकानन्दजी ने अपने लिये बनवा लिया। इस प्रकार तीनों सज्जन वहाँ रहने लगे।

स्वामी कृष्णानन्दजी पिछले साल रियासी में मिल आये थे। प्रो० कृष्णकुमार द्वारा ही आपको श्री सेवा में जाने का विचार आया था। आज्ञानुसार गायत्री जाप भी करते रहे थे। जिससे बहुत कुछ लाभ हुआ, आसन भी काफ़ी दृढ़ हो चुका था, इसी वर्ष जम्मू में दर्शन कर आये थे। आदेश अनुसार कटरा पहुँचे हुये थे। बाल गंगा में रहने का निश्चय हुआ। महाराजजी ने

एक दिन व्रत कराके भजन में लगाया। प्राणायाम में लग गये। निर्वात स्थान में अभ्यास करने की आज्ञा थी। खुली हवा में प्राणायाम करने के संस्कार पड़े थे। एक दिन बाहर बैठकर साधन करने लगे, पर सफलता न हुई। जब अन्दर जाकर किया, तो ठीक होने लगा। महाराजजी से सब हाल कहा तो आपने उत्तर दिया, "मैं उधर आया था, मैंने देखा कि आप बाहर बैठे साधन कर रहे हैं। मैंने सोचा कि आपने मेरे कहने पर विश्वास नहीं किया, सो ठोकर खाकर समझ आ जावेगी।" स्वामी कृष्णानन्दजी दूध और सूखे फलों पर निर्वाह करते थे। दिन रात्रि में चार बार २-३ घंटे साधन करते रहे। फिर शीघ्र ही ध्यान में लग गये। अधिक मौन रहते। महाराजजी के पास तीसरे चौथे रोज़ जाकर सब हाल कह आते, अथवा उचित आदेश ले आते। स्वामी आत्मानन्द भी यथा अवसर आपकी सेवा करते रहते। स्वामी कृष्णानन्दजी जब कभी गुरुदेव के पास जाते, तो महाराजजी उनसे बड़ी नम्रता और प्रेम से पेश आते। वे चकित थे कि किसी प्रकार का गुरु भाव नहीं दरशाते। कभी-कभी वे उन्हें पहले से ही दण्डवत कर देते। महाराजजी की इच्छा थी कि वे अभी कुछ काल वहीं रहते; परन्तु इनका दिल उचाट था, इसलिये जाने की आज्ञा दे दी। पर जाते हुए यह वचन ले लिया कि वे स्वामी आत्मानन्दजी को घर जाने की राय नहीं देंगे।

इधर आत्मानन्दजी का चित्त भी कुछ दिनों से फिर मोहवश हो रहा था। इसीसे महाराजजी के प्रति अश्रद्धा बढ़ती जाती थी। संन्यास से लौट घर जाने को तो आप पाप समझते थे। वहाँ से तो आज्ञा न मिली। फिर चित्त में जलन होने लगी। इधर वह स्वामी कृष्णानन्दजी और स्वामी सोम-

तीर्थजी से अपना हाल कहते रहते थे । कुछ शास्त्र की आज्ञा अथवा प्रायश्चित्त आदि के सम्बन्ध में पूछते रहते । चित्त डाँवाडोल था ही, वे मुज़फ़्फ़रगढ़ लौट आये। जब मुलतान में आये, तो प्रो० सदानन्दजी ने फिर हिम्मत बँधाई । मुज़फ़्फ़रगढ़ गये, तो वहाँ सम्बन्धियों को देख चित्त और डाँवाडोल हुआ, और वहाँ से घर लौट गये । जब महाराजजी को पता चला, तो बड़ा तरस आया । वह इस बात पर और भी चकित थे कि कोई संन्यासी प्रायश्चित्त बताकर घर लौट जाने की राय भी दे सकते हैं । आपका विचार था कि ऐसा विधान किसी शास्त्र में नहीं; और जो ऐसा बताते हैं, उनको प्रायश्चित्त की Philosophy (रहस्य) भी समझ में नहीं आ सकती। प्रायश्चित्त तो अधमअवस्था से ऊपर ले जाता है, ऊपर से नीचे गिराने में कैसे सहायक हो सकता है।

इस बार छुट्टियों में प्रो० सदानन्दजी, मा० कर्मचन्दजी, रामरक्खाजी, साधुसिंहजी आदि अनेक लोग सत्संग करने आये । आपने रामरक्खाजी को भजन-साधन का उपदेश किया। क्रियायें आदि भी सिखलाईं । बिना बहुत चिकने पदार्थ खिलाये उनको अभ्यास में लगा दिया । शायद ऐसा करने का आपका पहला ही तजुर्बा था। तजुर्बा अच्छा रहा।

रामरक्खाजी को दूध का हिसाब रखने का काम सौंप रक्खा था। इसमें उन्होंने कुछ बेपरवाही कर दी, तो महाराजजी ने जरा कड़े शब्दों में डाँट दिया । झटपट बाद ही कहा, "तुम लोग सोचते नहीं कि मुझे ग़ुस्सा लाने में कितनी कठिनाई होती है । मैं समझाता रहता हूँ, तुम ग़लतियाँ करते रहते हो, यह ठीक नहीं । यह पाप है, अपनी ज़िम्मेदारी को तुम समझते नहीं हो।"

द्रूड़ में गंगाराम की कन्या बीमार थी। उसके दुःख को देखकर आप कभी-कभी उचित सहायता देने चले जाते और कहते, "देखो संसार में कितना दुःख है। माता को चैन नहीं पिता भी दुःखी हैं। पता नहीं वह लड़की कितने समय तक संसार में है, पर उसका दुःख देखा नहीं जाता।"

शरीर कमजोर था, पर जब कभी वर्षा के कारण कुटी चू पड़ती, तो मट्टी मँगवाकर इतनी देर तक कूटते रहते कि युवक साथी हैरान थे। उनको क्या पता था कि महाराजजी तो मानसिक शक्ति से ही कड़े से कड़ा कार्य्य कर लिया करते थे।

शहर में रहनेवालों को साबुन से कपड़ा धोने की आदत होती है। एक दिन आपने समझाया, "राख से ही कपड़े सफ़ा कर लेने चाहिये। इससे दुर्गंध तो चली जाती है। बहुत साफ़ कपड़ें पहनना भी व्यसन है। कपड़ा इतना साफ़ हो कि बदबू न आवे, बहुत फ़ैशन की परवाह नहीं करनी चाहिये।"

जिस कुटी में आप रहते, उसी में सारा सामान रहता। एक जिज्ञासु की यह इच्छा हुई कि रोज़ कमरे को सफ़ा कर दिया जावे। आप उसके भाव को ताड़ गये। कहने लगे, "तुमको आँखों का दोष है, सजा हुआ कमरा तुमको अच्छा लगता है, रूप में फँसे हो। आगे से चार पाँच दिन के बाद ही कमरा सफ़ा किया करो। यदि कोई वस्तु रास्ते में हो, तो हटा दो, ज़रा सहन-शक्ति भी बढ़ानी चाहिये।"

पन्द्रहवां प्रकरण (मुल्तान)

स्वामीजी महाराज पहली नवम्बर, १६२२, बुधवार को जम्मू पहुँच गये। आपके संग स्वामी तारकानंदजी भी थे। यहाँ पर बखशी रामदासजी, वजीर वज़ारत, के पास ठहरे रहे।

मुल्तान से सरदार जेसासिंहजी और प्रोफेसर सदानंदजी कई वर्षों से बुला रहे थे। इस वर्ष मुल्तान जाने का विचार हो चुका था; परन्तु मुल्तान में थोड़े दिन पहले कुछ झगड़ा हो गया था, इसी रौले के कारण यह विचार था, कि कुछ दिनों बाद वहां पहुँचे। साथ ही, जालन्धर से भी, खींच हो रही थी। महाराज जी का विचार था कि मुलतान में शायद कुछ ज्यादा दिन लग जायेंगे, इस लिये थोड़े दिन जालन्धर रह कर मुलतान पहुँचें। ऐसे हो विचारों से प्रेरित होकर स्वामीजी बीस नवम्बर को जालन्धर आ गये। यहाँ पर सात दिसम्बर तक रह कर, कपूरथला और जालन्धर के अनेक सत्संगियों को कृतार्थ करते रहे। आप ठैहरे तो मास्टर कर्मचन्दजी के पास करते थे, परन्तु साधुसिंहजी भी आपके विशेष कृपा-पात्र थे। यह सज्जन कई वर्षों से महाराजजी का सत्संग कर रहे थे। स्त्री के देहान्त होने के पश्चात् अपने लड़कों समेत बड़े संयम से जैसे-तैसे निर्वाह किया करते। महाराजजी के उपदेश से आप फिर इस बखेड़े में नहीं पड़े। एक सच्चे सिक्ख की तरह भक्ति और उदारता से आप का हृदय भरा हुआ है। गुरुओं की बाणी का पाठ करते करते आप प्रभु के भजन के लिये लालायित हो रहे थे। इधर जबसे स्वामीजी महाराज की शरण में बैठकर भजन उपदेश में लगे थे, तब से बड़ी भावना और लग्न के साथ, दिनोंदिन, प्रभु की समीपता

प्राप्त करते चले जाते थे। इस बार भी महाराजजी को पास पाकर बहुत लाभ उठाते रहे।

स्वामीजी का विचार था कि रात की गाड़ी से असुविधा होने के कारण यात्रा न करें, परन्तु रात्रि को लाहौर ठहर कर दिन की गाड़ी से मुलतान पहुँचे। इसी विचार से मुलतान से एक आदमी भी आ गया था, जिसकी सहायता से जालन्धर से चलकर एक रात्रि लाहौर में रहने का विचार था।

मुलतान एक बड़ा पुराना नगर है। पुरातनकाल में भक्त प्रहलाद ने यहीं जन्म लेकर अपनी अटल भक्ति का परिचय दिया था। यहाँ पर दैत्यराज हिरण्यकश्यप ईश्वर विमुख होकर शासन करता था। उसने अपने शासन-काल में प्रभु-पूजा के स्थान पर अपनी ही पूजा प्रचलित कर रक्खी थी। राम-भक्त बड़े भयभीत हो रहे थे। ऐसे समय में, भगवान् की अपार कृपा से, भक्त प्रहलाद ने दैत्यराज हिरण्यकश्यप के घर में जन्म लिया था। छोटेपन से ही, वह राम की भक्ति में मस्त रहता था। पिता ने बहुत प्रकार से स्वयम् समझाया, परन्तु बालक बड़ा दृढ़ प्रतिज्ञ था। उसकी माता और राज्य-कार्मचारी हिरण्कश्यप के दुष्ट तथा मदोन्मत्त स्वभाव को भली भांति जानते थे। वे सब अनेक प्रकार से प्रहलाद को पिता का भय जताने लगे, पर वह तो उलटा उन सबको राम-भजन का उपदेश दिया करता था। हिरण्यकश्यप ने अनेक प्रकार से अपने क्रोध को प्रगट किया। अनेक दण्ड विधान किये, परन्तु प्रभु अपने भक्त की रक्षा आप ही करते हैं। अन्त में हिरण्यकश्यप का संहार हुआ। और राम-भक्ति का नाद यहाँ पर गुँजाया गया। इस सब कथा को समस्त हिन्दू संसार भली भाँति जानता है। प्रति वर्ष चारों दिशाओं में होलिका-दाहन के सम्बन्ध में भक्त प्रहलाद और प्रभु

की कृपा की चर्चा होती है। इसी कारण से इस नगरी का पुरातन नाम प्रह्लादपुरी है। इसके अतिरिक्त, यहाँ ही पर और भी अनेक ज्ञानी और संत हुये हैं। यहाँ ही आधुनिककाल में मुसलमान फ़कीर शमस्तबेरज का आततायियों के हाथ से बध हुआ था। प्रभु की अविचल भक्ति और सत्याग्रह के दो उज्ज्वल दृष्टान्तों के कारण यह नगरी विख्यात है। हिन्दू और मुसलमान, दोनों में भक्तिभाव बहुत है। अपने साधुओं और फ़कीरों के लिये, यह शहर अब भी मशहूर है। ऐसे बहुत से स्थान नगर के अन्दर और बाहर हैं कि जहां अनेक भक्त लोग, सत्संगति अथवा प्रभु-कीर्तन के निमित्त प्रातः-सायं एकत्र होते हैं। वेदान्त का विचार भी प्रचलित है। ऐसे ही मुसलमानों में भी भक्ति और सूफियाना विचार बहुत पाये जाते हैं।

स्वामीजी महाराज यहाँ पहिले भी आ चुके थे। जब आप नौकरी करते थे, तो मुलतान के संत मोतीरामजी की प्रशंसा सुनी थी। पीछे अवसर मिलने पर आप उनके दर्शन के निमित्त यहाँ पर आये थे। अब फिर इसी पवित्र भूमि में अपने सत्संगियों के भक्ति भाव से प्रेरित होकर महाराजजी नौ दिसम्बर को पधारे। आपके ठहरने का प्रबन्ध आरापुरे में किया गया। इन दिनों में सरदार जेसासिंहजी यहीं रहा करते थे। जिस मकान में स्वामीजी ठहरे हुये थे, वह उनके घर से थोड़ी दूरी पर था। स्वामी तारकानंदजी भी पास ही ठहराये गये। एक दिन के अतिरिक्त शेष सब समय महाराजजी उस मकान से बाहर, जब तक मुलतान में रहे, नहीं गये। अभी तक आप दूध, फल, तरकारी आदि का आहार किया करते थे। अन्न खानेको अभी चित्त नहीं करता था। आपके भोजन की सामग्री प्रोफ़ेसर सदानन्दजी के घर से आया करती थी। शेष स्थानीय सेवा का भार सरदार जेसासिंहजी अथवा नन्दलालजी

पर रहा करता था। प्रातःकाल तो स्वामीजी महाराज अपने भजन ध्यान में रहा करते। कुछ काल पीछे, चार वजे से ही सरदार जी की पुत्री को भी वहाँ बुलवाकर ध्यान आदि का अभ्यास कराया करते थे। फिर आठ वजे से वे लोग आते कि जिनको विशेष समय दिया गया होता। दोपहर को भोजन आदि से निवृत्त होकर फिर इसी प्रकार से अनेक अधिकारी आज्ञानुसार भजन-उपदेश लेने आते। जो भी दर्शन करने आता, वह पहले इस वात का संदेशा भेजता। सरदार जेसासिंहजी और उनकी अनुपस्थिति में नन्दलालजो द्वारपाल का काम करते थे। सूचना मिलने पर, जिसके प्रति चित्त में जैसी प्रेरणा होती, वैसा उत्तर दिया जाता। यदि घृणा के भाव उदय होते, तो चाहे कैसा ही सम्मानित व्यक्ति क्यों न हो, उसे दर्शन की आज्ञा न मिलती, पर यदि चित्त प्रसन्न होता, तो साधारण पुरुष होने पर भी उसे सत्संग को आज्ञा मिल जाती। यहां तो ईश्वरी प्रेरणा के अधीन सव काम होता था। समाज किसको वड़ा अथवा छोटा समझती है, कौन श्रीमान अथवा कौन धन-हीन है, इससे सन्तों को क्या वास्ता?

चार-पाँच वजे के लगभग आम सत्संग लगा करता था; जिसमें सर्व साधारण स्त्री-पुरुष आ सकते थे। कभी-कभी केवल माताओं को ही आने का समय दिया जाता। इस प्रकार से अनेक नारी और नर, महाराजजी के दर्शनों और सत्संग से लाभ प्राप्त करते रहे। कभी-कभी दर्शकों की संख्या पचास तक पहुँच जाती। स्थान थोड़ा होनेके कारण, कई सज्जन, खड़े ही रहा करते थे। सव प्रकार के लोग दर्शन करने आते। समय-अनुसार ज्ञान-स्थल, देवपुरा, संतोस्थल आदि सव स्थानों के सत्संगी महाराजजी के दर्शन करने आते रहे। वेदान्त के

सम्बन्ध में अनेक प्रश्न-उत्तर हुआ करते थे। महाराजजी कहा करते थे "कोरे तर्क-वितर्क से कल्याण नहीं हो सकता। मनुष्य वृथा वाग्युद्ध में अपना समय नष्ट करते हैं। ब्रह्मवाद के भ्रम में पड़कर, साधन छोड़कर, सिद्ध बन बैठते हैं। विषय-वासना तो छोड़ ही नहीं सके, मन सर्वदा अशान्त रहता है, कलह और क्लेश में जीवन व्यतीत करते रहते हैं, मोह आदि दोषों से छुटकारा नहीं पाया, माया के जाल में अनेक प्रकार से फँसे होते हुए भी अपने आपको ब्रह्म ही मानते रहते हैं। फिर यह भी नहीं सोचते, कि जैसे जब एक पुरुष बूढ़ा हो जाता है तो सब उसको 'बाबा' कहने लगते हैं, वह किसीको ऐसा कहने के लिये नहीं कहता, और न ही वह अपने आपको इस उपाधि से बुलाता है; इसी प्रकार यदि तुम 'ब्रह्म' हो, तो लोग अपने आपही तुमको 'ब्रह्म' कहेंगे। परन्तु दूसरा तो कोई तुम्हारे ब्रह्मत्व को जानता ही नहीं, तुम वृथा 'अहं ब्रह्म अस्मि' का दावा किये चले जाते हो। पर जिस दावा की पुष्टि में एक भी साक्षी न मिले, उसके सत्य होने में संदेह ही है। फिर यह भी विचारो, कि जब साधारण पुरुष ही अपने आपको नहीं भूलता, तो सच्चिदानंद स्वरूप, आनन्द-घन पारब्रह्म जो ज्ञान स्वरूप ही हैं, अपने स्वरूप को कैसे विस्मरण कर सकते हैं। संसार को स्वप्नवत् मिथ्या मानने में अनेक दोष आते हैं। (१) स्वप्न बोध होने पर नष्ट हो जाता है, पर संसार भासता ही रहता है। (२) स्वप्न में प्रति दिन नये नये दृश्य दिखाई देते रहते हैं, पर संसार में बहुत कुछ वैसा ही बना रहता है, इसीके आश्रय ही सुव्यवस्थित व्यवहार चलता है। (३) स्वप्न भिन्न-भिन्न पुरुषों को भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, परन्तु जागृत संसार के दृश्यों में अति अधिक समानता है, जिस के कारण सामाजिक जीवन

चलता रहता है। (४) स्वप्न का कारण बीज रूप जागृत अवस्था है, पर संसार स्वप्न का कारण बीज रूप क्या है। जो पूर्व जन्म के संस्कार मानो, तो फिर उसका कारण क्या है? ऐसे विचारों से द्वैत ही सिद्ध होता है। परन्तु द्वैत-अद्वैत का झगड़ा निरर्थक है। संसार-दुःख से छूटने के लिये वैराग्य की बड़ी आवश्यकता है। यम-नियम का पालन, आहार-व्यवहार की शुद्धि, विचार पूर्वक संसार का यथार्थ बोध प्राप्त करना अति आवश्यक हैं। साधन सम्पन्न हुये बिना, कल्याण का पाना असम्भव है। यदि मोक्ष-सुख की इच्छा रखते हो, तो व्यर्थ बातों में अपना समय नष्ट न करो। जीवन बहुत थोड़ा है, धोखे में मत मारे जाओ, शीघ्र ही अपने आचार-विचार को पवित्र कर लो, प्रभु की शरण पड़ो। शरण गहे की लाज वह अवश्य रखते हैं। जो सच्ची लग्न से उसका दरवाजा खट-खटाता रहता है उसकी कभी न कभी सुनाई हो ही जाती है।"

इस प्रकार, दो-तीन मास तक उसी मकान के अन्दर रहते हुये, अनेक बार मुलतान के प्रेमियों को अपने मधुर-सरस और सरल उपदेशों से अनुगृहीत करते रहे। कभी-कभी पूछनेवाले, कटाक्ष भाव से प्रश्न करते थे, और कभी द्वेष और क्रोध में आकर पूछते, पर शान्ति-सरोवर, करुणा के सागर, संत सिया-रामजी ऐसे प्रेम और गम्भीरता से उत्तर देते कि बहुत लोगों के हृदयों में श्रद्धा-भक्ति के भाव उदय होने लगते। इसमें सन्देह नहीं, शठ तो शठ ही हैं, उनको तो ब्रह्मा भी कुछ लाभ नहीं पहुँचा सकते, पर जिन हृदयों में कुछ भी भले संस्कार विद्यमान हैं, वे शीघ्र ही पारस रूपी सत्संग से कंचन बनने लगते हैं। अनेक नर-नारियों को तो सतसंग का अवसर मिलता ही रहता था, इनके अतिरिक्त ईश्वर-प्रेरणा-अधीन कई एक माइयों और

पुरुषों को भी आपके सत्संग से विशेष लाभ प्राप्त हुआ, उनमें से कुछ एक का वर्णन यहाँ होना आवश्यक है।

भगत धनपतराय पहले १६१६ में कटरा में रहकर सत्संग कर चुके थे। इन दिनों कार्य्य-वश खानेवाल में रहा करते थे। पर जिस भले पुरुष ने, एक बार, श्रीचरणों में रह कर अमृत-पान किया हो, वह भला ऐसे सुअवसर को कब हाथ से जाने देता। हर इतवार को धनपतिजी, स्वामीजी महाराज के दर्शनों के निमित्त मुलतान आ जाया करते थे। इस प्रकार, अनेक बार, सत्संग करके, अपने जीवन को कृतार्थ करते थे। इन दिनों स्वामीजी हवन करने पर बहुत ज़ोर दिया करते थे। भगतजी ने पूछा—"संन्यासी के लिये तो हवन का विधान नहीं किया, तो फिर आप इस कर्म को क्यों करते रहते हैं, वैसे भी हवन करने से क्या लाभ होता है कि आप सबको ऐसा करने का उपदेश देते रहते हैं।" आपने उत्तर दिया, "शास्त्रों की जो आज्ञा है, वह हमारे कल्याण के लिये ही है। शास्त्रों का जो आशय है, सो वह जानें; पर इतना अनुभव में आता है कि मनुष्य का सूक्ष्म शरीर वायु का बना हुआ है, उसको शुद्ध करने अथवा रखने के लिये हवन से बहुत सहायता मिलती है। शहरों का वायु बहुत गड़बड़ रहता है। यहाँ आते ही चित्त उदास हो जाता है। हवन करते रहने से कुछ सहारा रहता है, यहाँ का दुर्गंधित वायु सहन करने का सामर्थ्य आ जाता है। पहाड़ों में भी हवन करने से लाभ ही होता है, यदि न भी करें, तो निर्वाह हो जाता है। शास्त्रों ने तो गृहस्थी के लिये पाप निवारणार्थ इसका विधान किया है, पर अभ्यासी चाहे किसी आश्रम में हो उसके लिये तो हितकारी ही है; चित्त का प्रसाद पाये बिना मनुष्य साधन में उन्नति नहीं कर सकता।"

एक दिन, एक आर्य्य समाजी, पण्डित सुरेन्द्र शर्मा, स्वामीजी के पास आकर 'मुक्ति से पुनरावृत्ति' के विषय में पूछने लगे। स्वामीजी ने कहा, "समझ में नहीं आ सकता कि, वह मुक्ति ही क्या हुई, जिससे फिर लौटना पड़े। मोक्ष का अर्थ यही है कि दुःखों से नितान्त छूटना।" वे सज्जन कहने लगे—"स्वामी दयानन्दजी भी योगी थे, उन्होंने तो मुक्ति से पुनरावृत्ति मानी है, उनको भी इस विषय में कुछ अनुभव तो होगा ही।" महाराजजी ने कहा कि, "इस विषय में अनुभव तो हो नहीं सकता, जब तक कोई वापस लौटकर न आये; और फिर यह भी कैसे निश्चय हो कि वह जो कहता है उसमें किसी प्रकार की भ्रान्ति नहीं है। उसके कथन को दूसरा पुरुष अपने अनुभव द्वारा परख तो सकता नहीं। हाँ, जो अनुभव है, उसके आधार पर अनुमान तो यही निश्चय कराता है, कि मोक्ष होने पर फिर नहीं लौट सकते हैं, और ऐसा अनेक ऋषि-मुनि मानते आये हैं। स्वामी दयानन्दजी योगी होंगे, परन्तु उनके पुस्तकों से तो कुछ पता नहीं चलता। जैसे योग दर्शन के 'तदाद्रष्टुःस्वरूपे अवस्थानम्' इस सूत्र का जो अर्थ उन्होंने किया है वह हमें ठीक नहीं जँचता। स्वामीजी ने 'द्रष्टा' का अर्थ 'परमात्मा' लिया है। ऐसा अर्थ लेना योग दर्शन के आशय के विरुद्ध है। व्यास-भाष्य भी जो कि अति प्रमाणिक है, ऐसा नहीं मानता और न अनुभव में ही ऐसा आता है।"

स्वामीजी महाराज का चित्त ऐसा निर्मल था, कि विना जाने हुये भी प्रायः ऐसे प्रसंग की बातें किया करते थे, कि जिनका उस नये आनेवाली व्यक्ति से विशेष संबंध होता था। एक बार, मुलतान के एक प्रसिद्ध वकील मिलने आये। यह पहले भी मिलने आये थे, परन्तु महाराजजी ने चित्त की प्रेरणा के

अनुसार मिलने की आज्ञा नहीं दी थी, पर इस वार कई सत्संगियों के कहने पर कि वे वड़े सम्मानित पुरुष हैं और दर्शनों के वहुत इच्छुक हैं, कई वार पहले भी आ चुके हैं, (महाराजजी का चित्त तो नहीं करता था, फिर भी) आज्ञा दे ही दी। जब वे आकर वैठे, तो श्रीस्वामीजी ने तम्वाकू के व्यसन पर कहना शुरू किया, कि जब व्यसन वहुत वढ़ जाता है, तो मनुष्य हुक्का को साथ लिये लिये फिरते हैं। पीछे जब वह चला गया, तब स्वामीजी को पता चला कि उस पुरुष में यहीं वड़ा दोष था।

ऐसे ही, एक वार एक मास्टरजी आपसे मिलने आये, और कहने लगे, कि मुझे भी अपने साथ रक्खें, क्योंकि यहाँ पर वहुत गड़वड़ी होती रहती है, जिससे क्रोध के मारे जलन होती है। उन्होंने ऐनक चढ़ाई हुई थी, और उनकी एक आँख में कुछ नुक़्स था, कि जिसके कारण उसमें से दीखता नहीं था। महाराजजी इसके सम्वन्ध में कुछ भी नहीं जानते थे। आप समझाने लगे कि देखो "यदि एक पुरुष काना हो, और दूसरा उसे एसा कहकर पुकारे, तो पहले को क्रोध आ ही जाता है, पर जब विचार करके देखा जाये, कि यह सत्य ही है, तो फिर क्रोध रुक सकता है।"

एक दूसरे सहृदय पुरुष, भक्ति-भाव से परिपूर्ण, सन्त-सेवी सज्जन, महाराजजी की कई दिन से प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रह्लाद पुरी में कई वर्ष से नृसिंहजी के दर्शनों को नियम से जाया करते थे। महाराजजी के यश और गुणों को सुन चुके थे। कुछ साधन भी करने लग गये थे; पर श्रीचरणों के दर्शनों की इच्छा तीव्र हो चली थी। भक्त धर्मचन्दजी छुट्टी का प्रवन्ध करके कटरा जाने का भी विचार रखते थे, पर ऐसा अवसर न मिल सका।

फिर यह जानकर, कि स्वामीजी महाराज अपने परम सेवक, विशेष कृपापात्र, प्रो० सदानन्दजी के निवेदन के कारण शायद जाड़े में यहाँ आ जावें, इस आशा से धीरज धरकर उस शुभ दिन की बाट देखने लगे। वह दिन आ गया। दर्शन करने के पश्चात् एकान्त मिलने का समय भी प्राप्त हुआ। पहले दिन महाराजजी ने आहार को शुद्ध और सात्विक रखने का उपदेश दिया। जब घर की अड़चनों का जिकर किया गया, तो महाराजजी ने धीरज से कटिबद्ध होने के लिये कहा, और फिर यथावसर एवं आवश्यकता के अनुसार सहायता देने की आशा दिलाई। जब उन्होंने ऐसी शंका की, कि "पिता को कष्ट देने से, मुझे पाप तो नहीं लगेगा," तो आपने समझाया "तुम्हारी नीयत उनको दुःख देने की नहीं है, यदि फिर भी, वे आपसे आप दुःखी होते हे, तो यह उनका भोग है। हाँ, यदि तुम कुकर्म में प्रवृत्त होते, तो सारे पाप के भागी तुम्हीं होते। तुम पुण्य कार्य्य में लगते हो, तो तुम्हारा आचरण शास्त्र के अनुकूल होने से जो कोई भी उससे दुःखी होता है उसमें तुम निर्दोष हो।" इस प्रकार कई दिन जब आहार व्यवहार शुद्ध रखने का अभ्यास हो चला, तो फिर एक दिन महाराजजी ने उनको प्रातः सात बजे समय देकर, अभ्यास में लगाया, और चित्त स्थिर करने की युक्ति बताई। जब वे कमरा बन्द करके भजन करने लगे और ब्रह्मचर्य्य से जीवन व्यतीत करने लगे, तो उनके पिता को बहुत क्रोध आया और वे स्वामीजी के पास जाकर बहुत बुरा-भला कहने लगेः—"आप गृहस्थियों को क्यों बिगाड़ते हैं। जब उनका कोई लड़का भी नही, तो उनकी स्त्री को क्या आश्रय रहेगा? इस तरह वे पाप के भागी बनेंगे। आप भी इस पाप से मुक्त नहीं हो सकते।" महाराजजी ने सब

शान्तिपूर्वक सुना और बड़े प्रेम से कहने लगे :—"भाई, मैं किसीको घर से बुलाने गया नहीं, इसी एक मकान के अन्दर ही रहता हूँ। बाहर जाकर देखा भी नहीं, कि तुम्हारा नगर कैसा है। हाँ जो यहाँ चलकर आवेगा, उसको यथाशक्ति सुझा देना साधु का परम धर्म है। सो मैं करता हूँ। आप तो अपने लड़के के बारे में वृथा ही चिन्तित हैं। हमें तो ऐसा पता चला है, कि उसका पुत्र होनेवाला है।" महाराजजी की शान्ति को देखकर सब हैरान थे। सन्त भला अपनी साधुताई को कब छोड़ते हैं। इस प्रकार धर्मचन्दजी विघ्न-बाधाओं के होते हुये भी, भजन-साधन में लगे रहे। नित्य प्रति दर्शन करने जाया करते और सत्संग में अनेक व्यवहार और परमार्थ सम्बन्धी उपदेश सुनते। ऐसा प्रतीत होता कि महाराजजी उनसे पुत्र से भी अधिक स्नेह करते हैं।

उन दिनों महाराजजी के पास बड़े-बड़े सेठ सम्मानित और प्रतिष्ठित पुरुष आया करते, और चाहते कि स्वामीजी उनको प्रभु-भजन का मार्ग सुझायें; पर जब आप उनको व्यवहार शुद्ध करने का उपदेश देते, तो वे रह जाते। ऐसे ही एक बाबू साहब सरकारी नौकरी से रिटायर होकर, ईश्वर भजन में लगना चाहते थे। नौकरी की अवधि समाप्त कर चुके थे। महाराजजी ने प्रश्न किया, "आप ईश्वर को साक्षी जान कर कहिये कि क्या आप अपनी नौकरी के समय लोगों से रिश्वत लेते रहे हैं? और ऐसा कितना धन आपके पास इस समय जमा है?" झूठ बोलने की हिम्मत न हुई। उसने सच-सच कह दिया "ऐसे कोई बीस हजार रुपये मेरे पास होंगे।" तब स्वामीजी ने तुरन्त कहा, "यदि आप उचित अधिकारियों में, कम से कम, दस हजार रुपये दान कर दें, तो हम आपको अभ्यास में प्रवृत्त कर

देंगे।" परन्तु वह ऐसा करने पर तय्यार न हुआ। महाराजजी ने भी स्पष्ट कह दिया, "मोक्ष मार्ग के लिये पहले बल पैदा करो, जो त्याग से धीरे धीरे उत्पन्न होता है।" महाराजजी ने कभी इस बात का भेद भाव प्रगट नहीं किया था, कि प्रतिष्ठित अथवा धनी पुरुषों को अधिक समय और आदर दें, और निर्धनों से उपेक्षा करें। इसके विपरीत बहुत बार देखा गया कि बड़े बड़े आदमी तो बाहर खड़े खड़े चले जाते थे, परन्तु साधारण अधिकारी भी बहुत देर सत्संग में रहा करते। महाराजजी तो निस्पृह थे। किसी प्रकार की, नाम अथवा धन की, इच्छा तो थी नहीं, ईश्वर-आज्ञा-अनुसार ही मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेश में प्रवृत्त होते थे, फिर भला ऊँच-नीच का विचार कैसे करते। हाँ, अधिकार बढ़ाने का उपदेश सबको किया करते।

डाक्टर ज्ञानसिंहजी १९१९ में, ऋषिकेश में महाराजजी के दर्शन कर चुके थे। कुछ अभ्यास करने के कारण, थोड़ी सिद्धि भी प्राप्त थी, पर चित्त तो शांत था नहीं। जब यहाँ दर्शनों की आज्ञा माँगी, तो आदेश हुआ कि एक सप्ताह मांस भक्षण छोड़कर, फिर मिलने आना। ऐसा ही उन्होंने किया। महाराजजी ने विषयों के त्याग करने का उपदेश किया, और समझाया कि "सिद्धि के मार्ग में पड़ने से कल्याण नहीं हो सकता, सांसारिक लाभ चाहे कुछ मिल जाये।" तजुरबा करके सुझाया, कि "जब निष्पक्ष होकर विषयों को देखते हैं, तो उसमें सुख नहीं मिलता।" इस प्रकार अनेक बार सत्संग करके कल्याण-मार्ग का उपदेश लेते रहे।

लाला राधाकृष्ण भी उपदेश के लिये उत्सुक हो रहे थे। पण्डित सातवलेकरजी की पुस्तकों के आधार से कुछ प्राणायाम

का अभ्यास किया करते थे, पर यहाँ स्वामीजी से कहने का साहस नहीं होता था। उनका सरल स्वभाव और पवित्र हृदय देखकर, एक दिन स्वामीजी ने अपने आप ही, उन्हें प्रातःकाल आने की आज्ञा दी। फिर भजन उपदेश भी किया। आहार व्यवहार शुद्ध रखने पर विस्तार से समझाते रहे। विषय-वासना को त्याग करने का रास्ता सुझाया। एकान्त सेवन के लिये आदेश किया और ऐसा भी कहा, "तुम्हारा हृदय सरल है, यदि डटे रहे, तो कल्याण में कुछ सन्देह नहीं।" ऐसे आशीर्वाद और मंगल-कामना से उत्साहित होकर वे अनेक बार श्री चरणों में बैठकर जीवन को कृतार्थ करते रहे। आपके सत्संग से उनका जीवन पलट गया, सन्तोष की मात्रा बढ़ गई, मृत्यु का भय कम होने लगा, संसार की दुःखरूपता भासने लगी, निष्काम कर्म का रहस्य समझ में आने लगा और अखण्ड ब्रह्मचर्य्य पालन करने का अतुल सामर्थ्य उन्हें मिल गया।

सरदार जेसासिंहजी तो प्रति दिन सेवा में रहा ही करते थे। सायंकाल पीछे आपको श्रीचरणों में एकान्त सत्संग का नित्य प्रति अनुपम-अवसर मिलता। महाराजजी की अमृत वाणी को भक्ति-भाव से सुनते, संशय-निवारण कराते, और अनेक प्रकार से स्वामीजी की सेवा करते हुये रात्रि में चिरकाल तक वहीं रहा करते थे। प्रोफ़ेसर सदानन्दजी, अनेक बार महाराजजी के दर्शनों को आया करते थे। व्यवहार के अनेक झमेलों के कारण उनको श्री स्वामीजी के सत्संग करने का बहुत अवसर तो नहीं मिला करता था, परन्तु विचारशील और अनुभवी होने के कारण, वे जितना थोड़ा अवसर प्राप्त करते थे, उतने में ही अपने कल्याण के लिये पर्याप्त उपदेश ग्रहण करने का पूरा यत्न करते। महाराजजी की उन पर विशेष

कृपा तो रहा ही करती थी। इसलिये जितना थोड़ा अव-सर इनको मिलता था, उतने में ही आप उनसे बहुत बातें कर लिया करते थे। इसके अतिरिक्त, महाशय कन्हैयालाल, लेखराम, रामलाल, बाबा बजरंगदास, कुंवरभान, मूलचंद, मलिक मेहरचंद, श्यामदास आदि अनेक नर-नारियों ने श्री महा-राजजी के चरणों में बैठकर बहुत लाभ उठाया। कई एक तो अभ्यास में भी लगाये गये। कुछ एक ने शरीर शुद्धि के अर्थ क्रियाओं का अभ्यास भी सीखा। स्वामीजी क्रियाओं की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया करते थे। स्वाद को जीतने, धर्म के नियमों का पालन करने, व्यवहार को शुद्ध करने, ब्रह्मचर्य्य का सेवन, विषयों से वैराग्य आदि ऐसी अनेक बातों की ओर सत्संगियों का ध्यान खींचा करते थे।

इस प्रकार तीन महीने तक अनेक जीवों का हित चाहते हुये महाराज मुलतान में रहे। चित्त उदास भी रहा करता था, कभी-कभी बहुत सुस्त पड़ जाता, शहर की दुर्गन्धित वायु भी आपके सूक्ष्म अन्तःकरण पर अपना असर करती ही रहती, लोगों के गड़बड़ व्यवहार और क्षुद्र विचार से चित्त में घृणा भी होती रहती; परन्तु फिर भी हठ से लगे रहते। यही विचार रहा करता, कि जिनका कल्याण ईश्वरीय प्रेरणा के अनुसार होना है, होता रहे, और अपने भाग्य में जो कष्ट सहारना है उसका भी निपटारा हो जाय।

अन्त में, जब चित्त बहुत सुस्त होने लगा, और मुलतान का भोग समाप्त हो गया, तो एक दिन चुपचाप बारह बजे की गाड़ी से चल दिये। सिवाय दो एक सत्संगियों के शेष किसी को पता भी न चला कि, महाराजजी आज जा रहे हैं। जब महाराजजी, जिज्ञासुओं से बात-चीत किया करते थे, तो ऐसा

प्रतीत होता कि उनके कल्याण के लिये बहुत चिन्तित हैं। आप बड़े प्रेम से सब वृत्तांत पूछते, उचित उपदेश देते, विघ्नों के आने पर उत्साह दिलाते हुये उनसे मुक़ाबला करने की विधि बतलाते, उनके हित के लिये निन्दा और अपमान भी सहारते, परन्तु चित्त से सर्वदा उदासीन रहा करते थे। देखने में, मोह से भरे हुए प्रतीत होते; परन्तु निःस्वार्थ प्रेम, निष्काम भाव और ईश्वरीय प्रेरणा के कारण सर्वदा बेलाग रहा करते थे। जाने की तिथि तक का तो किसीको पता न चलता था। उसी दिन ही एक-दो व्यक्तियों को इत्तला कर देते, कि अमुक गाड़ी से जाने का विचार है। आपके त्याग और वैराग्य को सब समझते थे। आपकी अटल इच्छा-शक्ति और अविचल धारणा से सब परिचित थे, किसीको रोकने का साहस न होता। और जिस मुसाफ़िर-दृष्टि का उपदेश दिया करते थे, उसीके अनुसार आपका व्यवहार हुआ करता। जिस शास्त्रीय जीवन का आप व्याख्यान करते थे, जिस योग और वैराग्य का आपके द्वारा निरूपण होता था, जिस ज्ञान-ध्यान की चर्चा आपके यहाँ चला करतीं, जिस प्रभु की शरण का महत्त्व आप बखानते थे, वे सब बातें आपके जीवन में प्रत्यक्ष दीखा करती थीं। पुस्तकों का अध्ययन तो रहता ही नहीं था, फिर हर प्रश्न का उत्तर, प्रत्येक समस्या का हल, अनेक उलझनों का सुलझाना, विघ्न-बाधाओं पर जय प्राप्त करने की युक्ति बताना, सुख-दुःख, मान आपमान, स्तुति-निन्दा इन सब में सम रहना, क्रोध दिलाये जाने पर भी शान्ति और प्रेम को न छोड़ना, घबराहट में पड़े जिज्ञासुओं को उत्साह देते हुये, स्वयं धीर बने रहना, यह सब कैसे सम्भव हो सकता था! पूर्ण आत्म-समर्पण हो चुकने पर भक्त-वत्सल भगवान् आप ही सब योग-क्षेम के ज़िम्मेदार रहते

हैं। सन्तों का चित्त तो, प्रभु की लीला का क्रीड़ा-स्थल बना होता है, तो फिर किसी प्रकार की चिन्ता कैसे खड़ी हो सकती है। प्रभु जैसा उचित समझते हैं, सुझाते और कराते हैं।

सोलहवाँ प्रकरण (निरभिमानता)

स्वामीजी महाराज यहाँ से वृन्दावन के चले गये जिससे उधर रहनेवाले सत्संगियों के लाभ हुआ। थोड़े दिन वहाँ रह कर फिर कनखल पहुँचे। वहाँ भी अनेक जिज्ञासु आपके दर्शन और सत्संग से कृतार्थ हुए। मुलतान निवासी गुरु कुल कांगड़ी के हेडमास्टर गोपालजी तो पहले से ही स्वामीजी महाराज से परिचित थे। आपके सत्संग से भी बहुत वार लाभ उठा चुके थे। इस वार उनकी प्रेरणा से प्रोफ़ेसर लालचन्दजी, पहिली वार, महाराजजी के दर्शनों के आये। स्वामी सोमतीर्थजी भी वहीं बैठे थे। महाराजजी ऐसी :सादगी से रहते थे, कि अनजान के शीघ्र पता भी न चलता। क्योंकि शेष उपस्थित सज्जन इन्हीं से संशय निवारण करा रहे थे, इससे कुछ पता चला। फिर बात-चीत करने के बाद लालचन्दजी ने भी कुछ एकान्त समय मांगा। समय मिलने पर, महाराजजी के साथ घूमने गये। आपने दो बातें के सम्बन्ध में पूछा (१) दृष्टि के कैसे पवित्र किया जाय (२) ईश्वर की शक्ति अनन्त है, संसार भी अन्तहीन प्रतीत होता है, इसके भय से मनुष्य कैसे मुक्त हो सकता है। महाराजजी ने थोड़ा-बहुत समझाया और फिर कहा, कि मरीज़ का इलाज डाक्टर के पास रहने से ठीक होता है। प्रोफ़ेसरजी

ने आगामी ग्रीष्म-ऋतु में सत्संग से लाभ उठाने का निश्चय कर लिया।

स्वामीजी महाराज यहाँ से चलकर जालन्धर आये। यहाँ भी मास्टर कर्मचन्दजी की खींच के कारण अथवा अन्य अनेक सत्संगियों के निमित्त कुछ दिन ठहरना ही पड़ा। गरमी बढ़ रही थी, इसलिये शीघ्र ही चल दिये। जम्मू में स्वामी तारकानन्दजी आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन दिनों जम्मू से ऊधमपुर को लारी जाया ही करती थी। उसीके आश्रय आप दोनों कटरा को चल दिये। आगे जाकर रास्ते में उतर पड़े। यहाँ से कटरा का रास्ता फूटता था। सात-आठमील पैदल चलना पड़ता है। पहाड़ी रास्ता है, उतराव-चढ़ाव भी बहुत है जिससे मनुष्य जल्दी थक जाता है। इधर, इन दोनों के शरीर बहुत कमजोर थे। अपना-अपना असबाव भी सिर पर उठाया हुआ था। चलने का अभ्यास भी कुछ दिन से बन्द था। थक जाना कोई बड़ी बात नहीं थी। स्वामी तारकानन्दजी ने देखा कि महाराजजी एक टीले पर वृक्ष की छाया में बैठे अपने पाँव दबा रहे हैं। पास पहुँचकर, यह भी उनके पाँव दबाने लगे। जब यह पाँव दबा चुके, तो स्वामीजी महाराज ने इनके पाँव दबाने आरम्भ कर दिये। इनको बहुत शर्म आई, बहुतेरा मना भी करते थे, पर आप कब मानते थे। कहने लगे, "अभी बहुत दूर जाना है, तुम भी थके हुए हो, पाँव दबा देने से थकावट उतर जायेगी, और चलने लायक़ हो जाओगे"। ऐसी ऐसी कई घटनायें प्रति दिन हुआ करती थीं कि जिनसे आपकी दयालुता, कोमलता और सन्त स्वाभाव का पता चलता था। दुःखी को देखकर आप करुणा से भर जाते थे। और कहा भी करते थे, "मुझे कोई शिष्य नहीं दीखता, मित्र-भाव ही बना रहता है,

संसार-यात्रा में भोग अनुसार लोग एकत्र हुआ करते हैं। जैसी एक दूसरे की सहायता अथवा सेवा बन सके कर देनी चाहिये"।

इस वर्ष अनेक जिज्ञासु सत्संग करने के निमित्त अथवा एकान्त वास का आनन्द उठाने के लिये कटरा आये। मुलतान से लाला राधाकृष्ण बीस-पचीस रोज़ स्वामीजी का संग करने के लिये यहाँ ठहरे रहे। कुछ, क्रियाओं का भी अभ्यास किया और भजन ध्यान की विधि भी सीखी। जीवन को उच्च करनेवाले अनेक उपदेश प्राप्त किये। कृष्ण-कुमारजी को भी इस वर्ष थोड़ा सत्संग करने का अवसर मिला। श्रीयुत गोपालजी, श्रीमान प्रोफ़ेसर सदानन्दजी, रामरखाजी, और तेजरामजी, स्वामी सोमतीर्थजी, लाला अनन्तरामजी, लाला कर्मचन्दजी, सरदार साधुसिंहजी, और अन्य अनेक सज्जन भी यहाँ आकर सत्संग से लाभ उठाते रहे। प्रोफ़ेसर लालचन्दजी छुट्टियों के होते ही थोड़े दिन पीछे वहाँ पहुँच गये। कुछ दिन तो क्रियाओं का अभ्यास करते रहे। पीछे स्वामीजी महाराज ने आपको भजन-साधन में लगाया। जाप की विधि बताई और ध्यान की युक्ति सुझाई। शीघ्र ही आपको विचित्र अनुभव होने लगे। महाराजजी इस पर चकित थे। पूछने लगे, "यार, तुम क्या करते रहे हो"। प्रोफ़ेसरजी ने जैसी कुछ संध्या आदि किया करते थे, वह सब बता दिया कि किस प्रकार वे प्रभु की शक्ति का विचार करते करते घण्टों मस्त रहा करते थे। महाराजजी इससे बड़े प्रसन्न हुए, और कहा कि, "ख़्याल में बड़ी शक्ति है"। ब्रह्मचर्य्य के सम्बन्ध में बहुत उपदेश दिया करते थे कि "स्त्री के शरीर में दोष दृष्टि पकाने से मनुष्य का चित्त धीरे धीरे हट जाता है"। स्वाध्याय के लिये, प्रश्नोत्तरी

रम्भा-शुक सम्वाद, योग-वसिष्ठ का वैराग्य-मुमुक्षु प्रकरण, श्रीमद्भगवद्गीता, मनुधर्मशास्त्र, पारस भाग, रामायण आदि अनेक पुस्तकों को पढ़ने के लिये आज्ञा दी। जब प्रो० लाल-चन्दजी ने 'ब्रह्मचर्य्य-व्रत को सफल करने के लिये कौन-कौन से जीवन चरित्र पढ़ने चाहिये,' ऐसा पूछा, तो आपने महात्मा बुद्ध, स्वामी रामकृष्ण परमहंस और स्वामी दयानन्द के नाम बताये।

मास्टर गोपालजी इस बार अधिक सत्संग करने के लिये प्रोफ़ैसर लालचन्दजी के साथ ही यहाँ ठहरे हुए थे। आपने पहले-पहल १९१२ में श्री स्वामीजी के दर्शन कनखल में पं० योगेश्वरजी के मकान पर किये थे। उस समय सरदार जेसा-सिंहजी भी साथ थे। महाराजजी की दिव्य तथा शान्त आकृति को देखकर बड़े प्रभावित हुए थे। तब आपने इन दोनों को गंगा-नहर के किनारे उपदेश दिया था। उपदेश देने का तरीक़ा ऐसा था जैसा कि अध्यापक अपने बालकों को विद्यालय में शिक्षा देते हैं। उस दिनों छः घण्टे तक सत्संग रहा। उस सत्संग का मुख्य अंश, जिसने उनके युवा-हृदय को अधिक प्रभावित किया, यह थाः—"सौंदर्य-भावना कोई वास्तविक वस्तु नहीं है, केवल काल्पनिक विचार है—धोखा मात्र है। यदि मनुष्य इसी पर संपूर्णतया विचार करे, तो वह पापों से रहित हो सकता है।" दो दिन तक दर्शन होते रहे। तत्पश्चात् श्री गोपालजी घर लौट गये, परन्तु मन में श्री स्वामीजी से मिलने की उत्कण्ठा बनी रही। पाँच वर्ष तक फिर दर्शन न कर सके। पुनः १९१७ में, उन्हें दर्शनों का सौभाग्य श्री प्रोफ़ैसर सदानंदजी के मकान पर लाहौर में प्राप्त हुआ। वे, इन दिनों, कुछ ज्वर से पीड़ित रहते थे। बहुत इलाज करने पर भी बुख़ार नहीं जाता था। श्री स्वामीजी महाराज ने वस्ति कर्म की विधि

बतलाई और त्रिफला सेवन करने के लिये कहा। उस दिन को वे कभी भूल नहीं सकते जब कि आत्म-उपदेश के साथ-साथ उन्हें श्री स्वामीजी का निष्काम प्रेम भी प्राप्त हुआ था। स्वामीजी के प्रेम की सीमा अपार थी। आप उस त्रिफला को स्वयं व्यवस्थित करके मास्टरजी को सेवन कराते रहे, जिससे उनका बुखार सर्वथा जाता रहा। कई दिन तक वे श्री सेवा में रहे और कृतार्थ होते रहे।

१६१६ में पुनः उन्हें प्रोफ़ैसर कृष्णकुमारजी के मकान पर लाहौर में स्वामीजी के दर्शन करने का अवसर मिला। इस बार के सत्संग में उन्होंने यह अनुभव किया कि श्री स्वामीजी महाराज पूरे सत्याग्रही हैं। कुछ व्यक्तियों की ओर से श्री स्वामीजी के मार्ग में रोड़े अटकाने का कार्य किया गया, परन्तु आप अपने उद्देश्य से तिल भर विचलित न हुए। जिस लक्ष्य को रखकर वहाँ ठहरे थे, उससे आप नहीं हटे। आपके उपदेशों में एक और विशेषता थी कि आप कभी अपने विचारों को जबर-दस्ती ठूँसने के आदी न थे। जितना जिसको अधिकारी समझते उतना ही जिज्ञासु की शक्ति के अनुसार उपदेश देते। अतः कोई भी व्यक्ति आपसे लाभ उठाये विना वापिस न जाता था। आपकी व्यावहारिक बुद्धि भी अनुपम थी। इसलिये संसार की दृष्टि से चालाक से चालाक व्यक्ति भी आपको धोखा नहीं दे सकता था। यह सब बातें गोपालजी को स्पष्ट अनुभव हुईं। पर इन्हें अधिक देर तक सत्संग करने का अवसर १६२३ से पूर्व प्राप्त न हो सका।

१६२२ में यह गुरु-कुल कांगड़ी में काम करते थे। उस समय इनके पुराने मित्र प्रोफ़ैसर सदानन्दजी एम० एस-सी० एक मास के लगभग इनके पास आकर ठहरे रहे। उनके पवित्र

जीवन को देखकर इनके हृदय में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि श्री स्वामीजी महाराज के पास रहकर निश्चिन्त रूप से वे अभ्यास सीखें। इस बार उन्हींके साथ ही वे यहाँ आये थे। यह स्थान इन्हें अत्यन्त रमणीक लगा। दोनों ओर ठण्ढे पानी के चश्मे थे और बीच में महाराजजी की टूटी-फूटी कुटिया। चारों ओर निर्जन वन था। इस प्राकृतिक परिस्थिति से वे बहुत आह्लादित हुए।

श्री महाराजजी की सेवा में १ मास तक रहते रहे। घट शुद्धि के पश्चात् शीघ्र ही भजन में प्रवृत्त हो गये। पवित्र हृदय के कारण थोड़े ही दिनों में विचित्र अनुभव होने लगे। अनेक सन्तों के दर्शन किये। मंत्रों के चित्र भी आपके सामने आ जाया करते थे। भगवान् कृष्ण की लीला को भी अपनी आँखों से देखा। इस प्रकार ध्यान में दिन प्रति दिन उन्नति करने लगे।

वे प्रोफ़ैसर लालचन्दजी के साथ एक छोटी सी कुटिया में रहा करते थे और गुरु-आदेश-अनुसार जीवन को पवित्र करने के उद्योग में लगे रहते थे। भोजन बनाने का कार्य प्रोफ़ैसर लालचन्दजी करते थे। शेष सेवा को मास्टर गोपालजी सम्पादित किया करते थे। प्रातः तथा सायंकाल को महाराजजी का सत्संग होता था। दोपहर के समय आध घण्टे तक योग-वाशिष्ठ का स्वाध्याय होता। अपने जीवन में इन्होंने ऐसा निश्चिन्त रूप से १॥ मास का समय कभी नहीं गुजारा। सब सांसारिक तथा सामाजिक धन्धे भूल गये। महाराजजी के पितृ तुल्य प्रेम का स्मरण अभी तक इनके हृदय पर अङ्कित है।

इसके पश्चात् वे सम्भवतः प्रति वर्ष महाराजजी के चरणों में उपस्थित होते रहे, और उनसे अपने जीवन के सुधार के विषय में उपदेश लेते रहे। मास्टरजी का विचार है कि स्वामीजी के देहावसान से भारत का एक गुप्त रत्न लुप्त हो गया।

मुलतान से जाने के पश्चात् महाराजजी का चित्त बहुत सुस्त रहा। लम्बी यात्रा करने के कारण कुछ शरीर भी गड़बड़ हो रहा था। उदासी बहुत रहा करती थी। कटरा में पहुँचकर एक छोटा सा व्रत भी कर डाला था। शरीर की सफ़ाई भी की गई, पर भूख फिर भी तेज़ न हुई। आहार में रुचि कम रहा करती थी, फिर भी हठ से शरीर को खिलाते-पिलाते रहते थे। कभी-कभी चित्त बहुत शान्त और शरीर हलका रहता। ऊँचे में बैठे हुये सृष्टि को उदासीन भाव से देखा करते। मुलतान के अनुभव से जोश ढीला रहता था, यही चित्त होता कि उत्तम अधिकारी को छोड़ शेष किसी की चिन्ता में न पड़ा करें। यह सब होते हुये भी, जब कोई जिज्ञासु विनीत भाव से आपकी सेवा में उपस्थित हुआ करता, तो करुणा अथवा ईश्वरीय प्रेरणा वश उसके कल्याण में प्रवृत्त होना ही पड़ता था। जैसे कामी पुरुष स्त्री को देख धीरज छोड़ बैठता है, जैसे वृद्ध मनुष्य अपने लड़के-पोते और पुत्र-वधुओं से तिरस्कृत हुआ हुआ भी मोहवश उनकी देख-रेख, सेवा-शुश्रूषा को छोड़ नहीं सकता, जैसे छोटे बालक को भय में पड़ा देखकर जननी मातृ-स्नेह-वश अपने प्राणों को भी ख़तरे में डाल देती है, ऐसे ही भगवान् के भक्त, न चाहते हुये भी, कुछ स्वार्थ न होने पर भी, उस लीला-मय मंगल स्वरूप प्रभु की प्रेरणा के अधीन, करुणा-वश, संसार में भटकते हुये प्राणियों के हित में लगे बिना नहीं रह सकते; और जो दुःख और कष्ट भोगवश सहना पड़ता है, उसको प्रभु की दात्त समझ कर, उसीमें अपना कल्याण देखते हुये, परम सन्तोष को धारण कर मस्त रहते हैं।

इस वर्ष भी मृत्यु का योग था। इसी कारण चित्त सुस्त रहा करता था। भूख बन्द होते देख व्रत किया था। इस समाचार

को सुनकर शिष्यों का दिल दहल जाता था। एक दिन एक युवक सत्संगी ने पूछा, "महाराजजी, यदि आपका शरीर छूट गया, तो हम लोग क्या करेंगे।" आपने बड़े उदासीन-भाव से समझाया, "सभी का सहारा ईश्वर है, दूसरों को निमित्त ही मानना चाहिये। उन्हींकी प्रेरणा से ही मैं तुम्हारी सेवा करता हूँ। प्रभु को ही हर समय रक्षक समझना चाहिये। जैसे रास्ते पर लटका हुआ एक लैम्प रास्ता दिखलाता है, ऐसे ही मैं भी हूँ। चलते-चलते यदि एक लैम्प गुज़र जाता है, तो दूसरा सामने आ जाएगा, इस बात की कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये। अपना अधिकार बढ़ाना चाहिये, प्रभु आपही सहायता करते हैं।" सब कुछ करते हुये भी आप सदैव ईश्वर को ही करता धरता माना करते थे। अहंकार नितान्त मिट चुका था। न केवल फल का, बल्कि कर्तृत्व का भी अभिमान शेष नहीं रहा था। भगवद्गीता के कथानानुसार भगवान् को ही सब लीला का आधार अनुभव करते थे। ज्ञान तथा भक्ति की यही अन्तिम अवस्था है।

किसी ने कहा, 'आपने तो बहुत त्याग किया है।" कहने लगे, "क्या त्याग किया है, दुःख से तो पशु-पक्षी भी भागते हैं। जहाँ मच्छर होते हैं, वहाँ से तो गाय-भैंस भी भाग जाती हैं। यदि हमने भी दुःख रूप समझ कर संसार को छोड़ दिया तो इस में बहादुरी क्या हुई।"

एक सत्संगी ने कहा, "महाराजजी! आपने प्रोफ़ेसरी छोड़ी, इधर कुछ तो प्राप्त हुआ ही होगा, तभी तो आपने सब कुछ छोड़ दिया है।" आपने कहा, "जो गांठ में था वह भी खो बैठे। कुछ प्राप्त किया है, ऐसा तो पता नहीं लगता, जो याद था उसे भुलाने में ही लगे हुये हैं।" "तो आपको गणित पढ़ने में कुछ लाभ

नहीं हुआ ?" केवल इतना लाभ हुआ कि विचार में (exact ness ठीक-ठीक विचारना) आ गई, बस और कुछ नहीं।"

इन्हीं दिनों एक दण्डी संन्यासी आपसे अभ्यास सीखने आये। उनका शरीर बहुत गड़बड़ रहा करता था। कुछ शरीर-शुद्धि आरम्भ की, तो उनको उलटियें आने लगीं। महाराजजी ने कहा कि "यह क्या बात, सफाई से तो शरीर आदि के दोष दूर होते हैं, आपको उलटी क्यों आनी शुरू हो गई ?" उन्होंने कहा, "मुझे यह पुराना रोग है, कई बार ऐसे ही होता है।" महाराजजी ने अपने सिर से बोझ हलका करने के लिये उन्हें एक दिन में इतनी ऊँची अवस्था में पहुँचा दिया जितना कईयों को छे मास में भी सम्भव न था। पिछले जाड़े में मुलतान में रहते हुए भी, इसी प्रकार अपनी मानसिक शक्ति से बहुत लोगों को लाभ पहुँचाया करते थे। इससे आपकी शक्ति का ह्रास तो होता, पर आपका चित्त इतनी उच्च अवस्था में रहा करता था, कि बहुत झंझट सहारने को उत्साह नहीं होता था, पर दयालु होते हुए, नाहीं भी नहीं कर सकते थे, इसलिए शीघ्र ही छुटकारा पाने के लिए जिज्ञासुओं को इस प्रकार निपटा दिया करते थे।

इधर सितम्बर मास में स्वामीजी महाराज को फिर भगन्दर की कुछ तकलीफ़ हो गई। फोड़ा ऐसा था जैसा कि बारह वर्ष पहले त्रिलोकनाथ की यात्रा से लौटते हुए हुआ था। वही शंका थी कि आप्रेशन कराने के लिए नीचे जाना पड़ेगा। परन्तु ईश्वर की कृपा से कुछ दवाई खाने से ही ठीक हो गया। प्रोफ़ैसर सदानन्दजी कुछ पत्तिएँ लाहौर से ले गए थे। उनका रस पीते रहे। उधर कानपुर से प्रोफ़ैसर कृष्णकुमारजी ने अपने मित्र बाबू हृदयनारायणजी से पूछकर कुछ होम्योपैथिक

दवाई दो-तीन बार भेजीं। यह सब खा ली गई। फुन्सी को आराम हो गया और सब कष्ट मिट गया। स्वामीजी महाराज अपने शिष्यों के प्रति भी बड़ी नम्रता का व्यवहार रक्खा करते थे। नम्रता और निरभिमानता की तो वे मूर्ति ही थे। इसी औषधि के सम्बन्ध में आप लिखते हैं, "आपने बड़ी कृपा की। और यह आपके शुभ संकल्प का ही असर था। जो इतनी जल्दी अच्छा हो गया। ईश्वर तुम्हारे मित्र को भी उनके शुभ कार्य्य का फल देंगे, मेरे में तो कुछ सामर्थ्य नहीं है।"

रामरखाजी भी महाराजजी के सत्संग से उत्साहित होकर घर छोड़-छाड़ कर चले आए थे। उनकी माता ने भी अपने पुत्र की दृढ़ता को देखकर जन्म सुधारने के लिये आज्ञा दे दी। घर में इक्कीस दिन ताप से पीड़ित रहकर वे चार नवम्बर को बड़ी कमज़ोर हालत में, स्वामीजी के पास जम्मू पहुँच गये। इधर और भी कई एक सत्संगी महाराजजी के पास जाड़े में रहना चाहते थे, जिनका प्रबन्ध करने के लिये आपने प्रोफ़ैसर सदानन्दजी को पहले से ही सूचना कर दी। यह भी विचार था, कि मुलतान से गरमी आरम्भ होने के प्रथम ही, यदि सम्भव हुआ तो, पहाड़ को चल देंगे, इस लिए स्वामीजी महाराज शीघ्र ही थोड़े दिन जालन्धर ठहरते हुए १५ नवम्बर तक फिर मुलतान पहुँच गए।

सत्रहवाँ प्रकरण (सूक्ष्म चित्त)

इस बार आपके ठहरने का प्रबन्ध, आम ख़ास बाग़ से थोड़ी दूर, लाहौर की सड़क पर, भाई कौड़ाराम पन्सारी की सराय में किया गया। मकान के अन्दर एक कुआँ भी है, जिसकी सफ़ाई कराई गई। उसका आँगन भी इतना बड़ा है कि वायु और धूप ख़ूब आती थी, और उसमें इतनी कोठरियाँ हैं कि बहुत से लोग वहाँ रहकर भजन और सत्संग दोनों से लाभ उठा सकते थे। नगर के भी अनेक नर-नारी बड़ी सुगमता से वहाँ बैठकर स्वामीजी के सत्संग से लाभ प्राप्त कर सकते थे। इधर घूमने-फिरने के लिये भी आराम है। पास ही खेतों में अनेक कुये चला करते थे, जहाँ स्नान आदि का बड़ा सुभीता रहता है। देहात की तरह सब प्रकार से खुली वायु और धूप आदि प्राप्त हैं। साथ ही नगर की समीपता के कारण नगर-वासियों को भी दर्शन उपदेश का मौक़ा मिल सकता था, तथा खाने-पीने की सब सामग्री सुप्राप्य थी। यह सब सुप्रबन्ध प्रो० सदानन्दजी वा उनके मित्रों के प्रयत्न और विचार का फल था। भाई कौड़ारामजी भी प्रशंसा के योग्य हैं, जिन्होंने इस शुभ कार्य्य के लिये अपना मकान बड़ी उदारता से दे दिया।

यहाँ पर अनेक साधु, ब्रह्मचारी, गृहस्थी आकर रहने लगे। श्रीस्वामी सोमतीर्थजी, श्री स्वामी तारकानन्दजी, ब्रह्मचारी रामरखाजी, श्रीयुत पद्मनाभजी, (कर्नाटकवासी) स्वामी आनन्दतीर्थजी, स्वामी कृष्णानन्दजी, बाबू हृदयनारायणजी, एक नेपाली ब्रह्मचारी आदि अनेक सज्जन यहाँ रहकर श्रीस्वामीजी के सत्संग, और भव-भय-हरण उपदेशों से कृतार्थ होते रहे। कुछ थोड़े दिन के लिये, अनन्तरामजी और कृष्णकुमारजी भी

श्रीचरणों में बैठने का सुअवसर प्राप्त कर सके। सराय तो पूरा योग-आश्रम ही वन रहा था। भजन करनेवालों के प्रभाव से उस स्थान का वायु-मण्डल ऐसा पवित्र हो गया था कि एक वार तो जिज्ञासु अन्दर जाते ही शान्ति को अनुभव करता हुआ स्तब्ध हो जाया करता।

स्थान पर्याप्त होने से नगर के अनेक नर-नारी वड़ी सुगमता से आ सकते थे। दर्शकों की कई वार तो काफ़ी भीड़ लग जाया करती। महाराजजी अवकी वार दोपहर पीछे घूमने भी जाया करते। तत्पश्चात् आम सत्संग लगा करता, लोग अपनी-अपनी शंका निवारण कराते। अनेक लोग प्रश्न करते, शंकायें उठाते और संतोप-जनक उत्तर सुनकर अवाक् रह जाते। विशेप करके मलिक लोकुराम और परमानन्द खन्ना, नित्य नई वात विचार कर प्रश्न करने को लाते थे, परन्तु आप वड़ी गम्भीरता और शान्ति से सवका समाधान किया करते थे। वे दोनों सज्जन वड़े वाद-कुशल थे, पर उनको भी यह भली-भाँति प्रकट हो गया, कि महाराजजी के उत्तर केवल शास्त्र के आधार पर, या सुने-सुनाये नहीं होते थे, उनका आश्रय अनुभव हुआ करता था। इन्होंने स्वामीजी से दीक्षा लेने का असीम प्रयत्न किया, पर स्वामीजी के वताये नियमों को पालन करने में असमर्थ होने के कारण फलीभूत न हुए।

इससे पहले साल स्वामीजी महाराज कुछ एक अध्यापिकाओं को अभ्यास में सहारा दे गये थे। पर इनके व्यवहार से स्वामीजी संतुष्ट नहीं थे। आपका विचार था कि अध्यापिकाओं के सुधार से लड़कियों पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा और नई सभ्यता के संसर्ग से जो दूपण हिन्दू देवियों को तप और सेवा से विमुख कर रहे हैं उनमें कुछ रुकावट हो जायगी। पर

जब वे अपने व्यवहार को सरल और शुद्ध न कर सकीं, तो कुछ निराशा सी हुई। अब उनके दर्शन करने आने पर, उनकी देखा-देखी और स्त्रियों में भी तीव्र चाह पैदा हुई, और स्त्रियों का ख़ूब झमेला होने लगा। महाराजजी ने कुछ कड़े नियम बताने आरम्भ किये और यथा अधिकार स्त्रियां भी लाभ उठाने लगीं। जो स्त्रियाँ आती थीं उनके लिये ऐसे नियम हुआ करते थे; (१) पति की सेवा करना, उनको संतुष्ट रखना और उनकी आज्ञा लेकर भजन में प्रवृत्त होना। (२) आहार सात्विक करना और स्वाद को जीतना। (३) व्यवहार को सरल और निष्कपट बनाना, चपलता को त्याग साधुताई को बढ़ाना, (४) मोटा कपड़ा पहनना और शृंगार को धीरे-धीरे छोड़ते जाना। शहर के कुछ गृहस्थी अभ्यासी भी महाराजजी के पास ही, लाला खिलुरामजी के मकान में प्रबन्ध करके रहने लगे। अब तो शहर में उनके सम्बन्धियों ने और भी रौला मचाना आरम्भ किया; क्योंकि स्त्रियाँ भी बहुत आती थीं और कई एक महाराजजी के पास एकान्त में बैठकर भजन-उपदेश भी लेती थीं, अतः इससे विरोधियों को और भी सहायता मिली। वे स्वामीजी पर लांछन लगा-लगाकर गालियाँ देने लगे। कभी-कभी कोई व्यक्ति इसी क्रोध के मारे सराय में महाराजजी को बुरा-भला कहने अथवा मारने तक के लिये आते, परन्तु यहाँ आते ही उस शान्त वायु-मण्डल के प्रभाव से कुछ ऐसे मुग्ध हो जाते, कि विरोध छोड़ भक्त बन जाते। यदि किसीने आकर ऊँच-नीच कह भी दिया, तो महाराजजी अपनी असीम सहन-शक्ति के कारण सहार जाया करते, कि जिससे बात बढ़ नहीं सकती थी। इसीका उपदेश आप सर्वदा दिया करते थे, कि बात सहार जाने से अपना तो भला होता ही है, पर दूसरे के चित्त

पर भी अच्छा असर पड़ता है और धीरे-धीरे उसका विरोध कम होता जाता है।

विरोध करनेवाले भी अनेक आड़ों से विरोध का बहाना ढूंढ लेते हैं। धर्मचन्दजी के पिता ने महाराजजी के जाने से पहले, पिछले साल, उन्हीं के मुख से सुना था कि धर्मचन्दजी के लड़का होनेवाला है। पीछे जब लड़का हो गया, तो वे महाराजजी को सिद्धि में विश्वास करके, बड़ा भक्ति-भाव दिखलाने लगे। आपके आने से पहिले ही उन्होंने अपने मित्र, एक सेठ को महाराजजी से लड़का दिलवाने की आशा दिलाई थी। स्वामीजी के पास उनको ले आये और प्रलोभन भी दिये। दया की भी भिक्षा माँगी, पर सब निरर्थक हुआ। महाराजजी हँस पड़े और बड़े प्रेम से समझाया, "हम में यह सामर्थ्य नहीं है। हम तो केवल ईश्वर-भजन के सिवाय और कुछ तन्त्र-जन्त्र वा औषधि नहीं जानते। हमारे में यह सिद्धियाँ होतीं तो फिर क्या परवाह थी। हम दूसरे के पास मारे-मारे न फिरा करते।" स्वामीजी तो त्याग की साक्षात मूर्ति ही थे। वे भली-भांति जानते थे कि किसी भी बात से प्रेरित होकर यदि एक योगी सिद्धि-द्वारा दूसरे का सांसारिक लाभ जान-बूझ कर करता है, तो माया की फांस को सूक्ष्म रीति से अपने गले में डालने का यत्न करता है, फिर उसे ईश्वर-विमुख होने में क्या देर लगती है? अपने सत्संगियों को भी यही उपदेश दिया करते थे कि 'जो कुछ भी विशेष अनुभव अथवा सिद्धि मिले, उसको गुप्त रक्खो और उससे किसी प्रकार का अपना वा दूसरे का सांसारिक लाभ न लो। उसको माया का फंदा समझकर उपेक्षा-भाव से, उससे उदासीन रहो। ऐसा करने से ही संसार के बंधन से मुक्त हो सकते

हो, और प्रभु का अमर पद प्रसाद रूप में प्राप्त करने के योग्य बन सकते हो।"

इस वर्ष भी अनेक व्यक्तियों ने श्रीचरणों में बैठकर, विशेष लाभ उठाया। सरदार जेसासिंहजी तो आज्ञानुसार वहीं सराय में ही जाकर रहने लगे।

धर्मचन्द और रामलाल पास ही खिलुरामजी के मकान में आकर रहने लगे थे। धर्मचन्दजी तो एक मास की छुट्टी लेकर सत्संग तथा सेवा से अति लाभ उठाते रहे। अब वे पिता से अलग एक मकान में रहा करते थे, और इससे उन्हें यह सन्देह होने लगा कि ऐसा करने से कहीं पापी तो नहीं बनेंगे। पर श्रीस्वामीजी ने समझायाः—"जो तुम माता-पिता से विषय-तृप्ति के लिये अलग हुये होते तो पाप था, पर अब, जब कि तुम्हारा लक्ष्य ईश्वर का भजन है, तो जो भी उसमें रुकावट डालते हैं, वह तुम्हारे वास्तविक शत्रु हैं। उनको तजना पाप नहीं है, जैसा कि तुलसीदासजी ने भी कहा हैः —

जाके प्रिय न राम बैदेही।
सो छांड़िये कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितन, भये मुदमंगलकारी॥
नाते नेह राम के मानियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
'तुलसी' सो सब भाँति परम हित पूज्य प्राण ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो॥

डाक्टर ज्ञानसिंहजी भी अनेक बार दर्शनों को आये। उनके व्यवहार के सम्बन्ध में अनेक बात-चीत चला करती थी और इस बात पर स्वामीजी बहुत आग्रह किया करते थे कि वैद्य का

अन्न बहुत गड़बड़ होता है। उसको फ़ीस नहीं लेनी चाहिये। उनके कपड़ों से अँगरेजी औषधियों की तेज़ गंध आया करती थी। इससे महाराजजी का चित्त बहुत घबराता था, इसीलिये उनका आना कुछ रोज के लिये बन्द रहा। महाराजजी तो गन्ध रहित शुद्ध वायु से ही प्रसन्न रहा करते थे। फूलों और फलों की तेज गन्ध भी आपको असह्य होती थी।

कानपुर से बाबू हृदयनारायणजी, स्वामी कृष्णानन्दजी की सहायता से अभ्यास में रुचि लेकर श्रीचरणों में आये थे। प्रोफ़ेसर कृष्णकुमारजी से भी महाराजजी का बहुत कुछ गुण-वाद सुना था। यहां पर एक मास रहकर भजन सीखते रहे और सत्संग से भी तृप्त होते रहे।

लाला राधाकृष्णजी, लाला राजारामजी और अन्य अनेक सज्जन यथा पूर्व सत्संग से लाभ उठाते रहे। ब्रह्मचारी सत्यानन्दजी स्नातक भी इस साल दीक्षित हुये और बड़ी श्रद्धा और उत्साह से महाराजजी के बताये मार्ग का अनुष्ठान करने लगे। मुलतान के प्रसिद्ध वकील लाला मोतीरामजी भी श्रीसेवा में बैठ सन्मार्ग में प्रवृत्त हुये।

ब्रह्मचारी सत्यानन्दजी के द्वारा एक दूसरे जिज्ञासु को भी महाराजजी के चरणों में बैठने का अहोभाग्य प्राप्त हुआ। स्वामी नारायणहरिजी उन दिनों संतोषस्थल में ठहरे हुये थे। उनका विचार फ़रवरी मास में प्रयागराज को अर्धकुंभी में जाने का था। यहाँ दूसरे महात्माओं के संग हरिद्वार से आये थे। बहुत दिनों से किसी विरक्त योग-अभ्यासी महात्मा की जांच में फिरा करते थे। छोटी अवस्था में घर पर एक गृहस्थ महात्मा से भजन-उपदेश ले चुके थे। घर के विरोध के कारण स्वयं उन्होंने और उनके गुरुजी ने भी सम्बन्धियों के कोप से बहुत-कुछ कष्ट भी

उठाया था। दूसरा चारा न देख, घर छोड़ किराची में कुछ स्वतंत्र आजीविका करके रहते रहे। वहाँ का वायु-मण्डल, ब्रह्मचर्य्य, तप और ईश्वर-भजन के प्रतिकूल पाकर साधुवृत्ति से रहने का निश्चय करके, स्वामी त्रिलोकहरिजी से संन्यास ग्रहण कर लिया था। मुलतान में रहते हुये स्नातक सत्यानन्दजी से कुछ संस्कृत का अभ्यास कर रहे थे। वहीं से पता चला कि श्री स्वामी सियारामजी महाराज मुलतान में रह रहे हैं, और उनके सत्संग से ब्रह्मचारीजी और अन्य अनेक भक्तजन तृप्त होते रहते हैं। स्थान देखकर, आप भी नित्य प्रति सत्संग में जाने लगे। चुपचाप कई दिन जाते रहे, कभी कभी महाराजजी के पीछे-पीछे टहलने भी चले जाया करते। बातचीत तो होती नहीं थी पर फिर भी महाराजजी के पास रहने से अथवा दूसरों के प्रश्नों का उत्तर सुनने से, आपके सरल और शान्त हृदय पर विलक्षण ही प्रभाव पड़ता चला गया। प्रभुकी समीपता में एक प्रकार की मस्ती रहा करती थी। स्वयं तो इतने शर्मीले थे, कभी कुछ पूछा तक नहीं था, फिर भला एकान्त में बात-चीत करने का अवसर कैसे मिलता। स्वामी कृष्णानन्दजी की सहायता से महाराजजी के पास पहुँचने का अवसर मिला। सारा वृत्तान्त यथा-तथा सुना दिया। श्रीगुरुदेव भी आपकी सरलता से बड़े प्रभावित हुये, उचित उपदेश दिया, भजन की दीक्षा भी दी, और दयालुता से खान-पान का कुछ प्रबन्ध भी कर दिया। पीछे से जब पता चला कि जिस स्थान में वे रहते हैं, वह अनुकूल नहीं है, तो अपने चरणों में ही, वहीं सराय में रहने के लिये आज्ञा तथा स्थान दे दिया। चुपचाप रहते हुये वे भी बड़ी लग्न से साधन में लग गये, प्यासे प्राणी की तरह एक तार होकर सन्तों के बचन-रूपी अमृत को पान करने लगे। धीरे-धीरे रंग में रँगते

गये और महाराजजी के सत्संग का भी लग्न बढ़ती चली गई। बातचीत तो कम ही किया करते, पर पास रहने से, अथवा श्रीसद्गुरुदेव की रहनी-कथनी और करनी को अनुभव करने से आपके चित्त में अपने आपही परिवर्तन होता चला गया। सहस्रों लोग महात्माओं के दर्शन करने आते हैं, सैकड़ों भजन में प्रवृत्त होते हैं, अनेकों को सत्संग और उपदेश का विशेष अवसर सहजता से प्राप्त हो जाता है, पर चित्त की अवस्था और पुण्य संस्कारों के कारण, कोई विरला ही महापुरुषों के जीवन के तत्व को भली-भाँति समझने का अधिकारी होता है। जिन थोड़े सज्जनों ने संत सियारामजी के सत्संग से सार को ग्रहण किया है उनमें से स्वामी नारायणहरिजी का नाम विशेपतया उल्लेखनीय है। जब स्वामीजी गरमी में जाने लगे, तो आपकी तीव्र इच्छा थी कि कुछ काल गुरु-सेवा में रहकर जीवन पर और भी ज्ञान ध्यान का पक्का रंग चढ़वा लें कि जिससे बिछुड़ने पर भी चित्त डावांडोल न हो, और लक्ष्य की ओर दृष्टि सदैव बनी रहे। भगवान् भक्तवत्सल हैं, सन्त फिर क्या कम हैं। जाने से पहिले आपने एक दिन "गरमी में कहाँ जाने का विचार है" ऐसा पूछा। शिष्य की शुद्ध भावना को जानकर, निवेदक का अधिकार और पवित्र स्वभाव देख अपनी शरण में रहने की आज्ञा दे दी। दिनोंदिन एक दूसरे को अच्छी प्रकार से जानने का अवसर मिल गया। गुरु का निष्काम प्रेम और शिष्य की श्रद्धा-भक्ति, सब बढ़ते गये। उपदेश देने और लेनेवाले, दोनोंने कुछ कमी न की। आठों याम अमृत बरखा में रहते हुये, सांसारिक क्लेश-वासनाओं की अग्नि बुझती चली गई। पाँचों इन्द्रियों, और अन्तःकरण चतुष्टय से, बिना परिश्रम, सहवास के कारण सार को ग्रहण करते गये। सुगंधित फूलों में रहने से

जिस प्रकार गंध-हीन पदार्थों से भी बास आने लगती है, तथा चन्दन के समीप रहने से जैसे दूसरी लकड़ी में भी उसकी सुगन्ध बस जाती है, ऐसे ही अनेक वर्षों की समीपता से सन्तों की साधुताई धीरे-धीरे आप में रमती गई।

इस वर्ष कुछ माइयों ने भी भजन-उपदेश ग्रहण किया। अपने-अपने अधिकारानुसार थोड़ी-बहुत उन्नति भी की। नारियों में जागृति पैदा करने के निमित्त महाराजजी बहुत समय देते रहे, कष्ट और निन्दा भी बहुत सहारी। यह अनुभव करके कि स्त्रियां ही भजन-आनन्दी पुरुषों के रास्ते में बहुत बाधायें डाला करती हैं, और स्वयं भी कष्ट उठाती रहती हं, आपका यह विचार था, कि यदि देवियों में भी ईश्वर-भजन की लग्न पैदा हो जाय, तो दोनों का कल्याण है। सांसारिक जीवन भी सुख और शान्ति से व्यतीत हो और परमार्थ साधन में भी एक दूसरे के लिये रुकावट होने की अपेक्षा सहायक बन जावें। भिरांवांबाई, उत्तमीबाई, छिनकोबाई आदि अनेक कुमारी, विधवा, और सधवा देवियों ने श्रीचरणों में बैठ विशेष लाभ प्राप्त किये। कई-एकने तो बहुत अच्छी अवस्था प्राप्त कर ली।

पण्डित शिवरामदास, शुरू से ही स्वामीजी के दर्शनों को आया करते थे। वे बहुत भक्ति-भाव और श्रद्धा प्रकट करते। पर महाराजजी का चित्त उनको देखने से प्रसन्न नहीं हुआ करता था। वकीलों के व्यवहार में अनेक गड़बड़ियाँ होती हैं। महात्मा गांधी भी ऐसे ही विचारों को अनेक बार प्रकट कर चुके हैं। वे स्वयं वकालत करते हुए भी बड़ी कठिनाई से सत्य के नियमों का पालन किया करते थे। पर ऐसा करना किसी शूरवीर का काम है। धीरे-धीरे पण्डित शिवरामदासजी महा-राजजी की आज्ञा-अनुसार, अपने व्यवहार को पवित्र करते

चले गये। इस लिये पीछे से स्वामीजी उनसे दूसरों के निमित्त सहायता भी लिया करते थे। १६२३ में जो साधु ब्रह्मचारी मुलतान में अभ्यास के लिये ठहरे हुए थे, उनको भोजन सामग्री, प्रायः इन्हीं के यहाँ से आया करती थी, और यहाँ से जाते समय रेल आदि के भाड़े का भी, इन्होंने प्रबन्ध कर दिया। महाराजजी का अपना खाना तो प्रोफ़ेसर सदानन्द जी के यहाँ से यथा पूर्वक आया करता था। कभी-कभी कोई बाहर की वस्तु पण्डितजी से ले लिया करते। इस बार आपने खिड़की में लगाने के लिये एक कपड़ा भेजा। कपड़ा खिड़की में लगा दिया गया। रात के बारह बजे महाराजजी उठे और दूसरे एक सत्संगी को उठाकर कहने लगे, "इस कपड़े को खिड़की से हटा दो, हमारा चित्त इससे बहुत घबड़ाता है, इस कपड़े से ख़ून की गंध आती है। या तो यह कपड़ा पण्डित शिवरामदासजी को वापिस कर देना, या उन्हें दाम देकर फिर यहाँ लगा देना"। दूसरे दिन जब यह वार्त्ता सत्संगियों और शिवरामदासजी को पता चली, तो वे सब चकित थे। पण्डितजी ने बहुत सोचा कि क्या कारण हो सकता है। विचार करते हुए मालूम हुआ कि शायद, जिस रुपये से यह कपड़ा ख़रीदा गया था वह एक ख़ून के मुक़द्दमे की फ़ीस में मिला था। महाराजजी का सूक्ष्म चित्त ही ऐसी बात को अनुभव करने के योग्य था। ऐसेही उन्होंने लकड़ियों का एक बोझ भेजा था। उससे भी घृणा होने लगी। जाँच करने पर इसमें भी ऐसेही किसी दोष का पता चला।

एक तीसरी घटना इसी साल हुई। प्रोफ़ेसर सदानन्दजी ने अपने एक पुराने मकान की छत उखाड़ी थी। उस छत में छोटे-छोटे डाट के टुकड़े लगे हुए थे, यह लकड़ी बहुत सूख गई थी।

इसीसे उनको विचार हुआ कि इनको चीर-फाड़कर हवन करने के काम में लगा दिया जाय। ऐसीही कुछ लकड़ी, वे महाराजजी के पास ले गये। महाराजजी ने देखते ही कहा, कि यह लकड़ी कुछ गड़बड़ मालूम होती है; पर जब उन्होंने बहुत तसल्ली दी कि बहुत अच्छी है, तो आपने रखवा ली। हवन तो आप नित्य प्रति किया ही करते थे, कि जिसके लिये सामग्री और घी भी प्रोफ़ैसरजी भेजते थे। जब स्वामीजी हवन करने बैठे, तो आपका हाथ उस लकड़ी के पास जाने से घबराता था और चित्त में घृणा के भाव पैदा होते थे। लाचार, उस लकड़ी को छोड़, जो लकड़ी पहले पड़ी हुई थी, उसीसे ही हवन किया। जब प्रोफ़ैसर सदानन्दजी आये, तो आपने उनको यह सब हाल कह दिया। विचारने से पता चला, और स्मरण आया कि उसी मकान में बहुत पहले कोई खून हुआ था। इसी का सूक्ष्म प्रभाव स्वामीजी महाराज के चित्त को प्रतीत हुआ। ऐसेही अनेक घटनायें हुआ करती थीं, जिससे महाराजजी के परम सूक्ष्म और पवित्र चित्त का पता चलता था। वे तो प्रत्येक स्थान के वायु-मण्डल को दूर से ही भाँप लिया करते थे; और इसी प्रकार ही सत्संगियों की मनोगतियां भी आपसे छिपी नहीं रहती थीं।

स्वामीजी महाराज अबकी बार अनाज का सेवन किया करते थे। वे जितने दिन मुलतान रहे, रोज़ ही मूंग की दाल तथा रोटी खाते थे। स्वाद बदलने की इच्छा से आहार में परिवर्तन करने का विचार कभी नहीं किया। स्वाद पर बड़ा अधिकार जमाया हुआ था।

कुछ दिन, रात को, सूरसागर की कथा हुआ करती। इस बार योग की क्रियाओं की ओर तो बहुत कम ध्यान जाता था। प्रायः अभ्यासियों को अपने कमरे में बिठाकर ध्यान कराय

करते थे, और अपनी मानसिक शक्ति लगाकर उनको ऐसी अवस्था में पहुँचा देते कि फिर वह अपने आप ध्यान जमाने के लिये स्वतन्त्र हो जाया करते थे। इस प्रकार कई एक नर-नारियों को प्रभु-भजन में लगाया। स्त्रियों को विशेष करके बहुत समय देते रहे। आपका विचार था, कि स्त्रियों को सत्संग करने का मौक़ा बहुत कम मिलता है। बहुत पढ़ी-लिखी भी नहीं होतीं। इतना गहरा विचार भी नहीं रहता कि शास्त्रों को पढ़कर स्वयं विचार सकें। साधुओं के यहाँ ब्रह्मवाद की कोरी बातें सुनने से कुछ नहीं बनता। फिर कुछ साधु इतने सच्चरित्र कम होते हैं कि जिनके पास वे निःसंकोच जाकर अपनी मानसिक अवस्था सुनायें और उचित उपदेश लें। साधु लोग भी, व्यवहार शुद्धि की ओर कम ध्यान देते हैं। आत्मा-परमात्मा, अथवा द्वैत-अद्वैत के निरर्थक झगड़े में ही लगे रहते हैं। इसलिये, बहुत कष्ट सहकर भी आप देवियों की मंगल-कामना करते हुये उनके व्यवहार को पवित्र करने के लिये भरसक यत्न करते रहे। चित्त शुद्धि के लिये सबको शास्त्र-अनुसार, व्रत करने की आज्ञा देते थे। अनेक नर-नारियों ने चान्द्रायण, प्रजापति आदि व्रत करके अपने हृदयों को शुद्ध किया।

एक दिन एक वेदान्ती ने आकर प्रश्न किया, कि 'कल्याण कैसे हो।' उत्तर मिला, 'सत्य को ग्रहण करो, जैसा जँचे उसके अनुकूल वर्ताव करो।' वेदान्ती ने फिर पूछा, 'महाराज, मन शान्त नहीं रहता, कुछ साधन बताइये।' आपने कहा, 'साधन की तो जीव को ज़रूरत होती है, ब्रह्म को इससे क्या।' उसने फिर पूछा, कि "मन विषयों में अटका हुआ है उससे कैसे छूटें।" महाराजजी ने उत्तर दिया, "इसीमें तो परीक्षा होती है। केवल वेदान्त रटने से काम नहीं बनता। यम-नियम का पालन

करो। व्यवहार शुद्ध करो, कुछ मौन रहो, व्रत करो, तब जाकर कहीं हृदय शुद्ध होगा।"

लाला गिरधारीलाल और लक्ष्मीनारायण दोनों भाई, सुनार का काम करते हैं। गिरधारीलालजी को अनेक बार सत्संग करने का अवसर मिला। व्यवहार-शुद्धि और गृहस्थ के नियम पालने का उपदेश किया, कि जिसका उनके चित्त पर अच्छा प्रभाव हुआ। मिलावट और झूठ के व्यवहार को छोड़कर सत्य पर आरूढ़ हो गये। फिर आपने महाराजजी से भजन उपदेश भी लिया और स्वामीजी के उपदेश से प्रभावित होकर अभी तक सत्य के आश्रय निर्वाह कर रहे हैं। लक्ष्मीनारायणजी भी जब स्वामीजी के दर्शन करने गये, तो अन्दर जाकर पूछने लगे, कि "स्वामीजी कहाँ हैं?" उत्तर मिला, "बैठ जाइये, आ जावेंगे।" पीछे पता चला, वे ही स्वामीजी थे। महाराजजी आपको कई दिन काम, क्रोध, लोभ, मोह के सम्बन्ध में सविस्तर समझाते रहे। कभी-कभी व्रत कराते और क्रोध की कड़ी परीक्षा लेते थे। सत्संग में, उनका मन बहुत शान्त रहा करता, पर पीछे सत्संग छूटने पर फिर वैसी अवस्था प्राप्त नहीं हो सकी।

इसी बार, स्वामी सोमतीर्थजी ने, शंकर भाष्य, वेदान्त-दर्शन की उपोद्घात, स्वामी कृष्णानन्दजी को सुनाई, तो उनको अच्छी लगी। उसकी चर्चा उन्होंने महाराजजी के चरणों में भी करदी। इस विषय की चर्चा सोमतीर्थजी भी महाराजजी की सेवा में कर चुके थे। उन्होंने निवेदन किया, "वेदान्त का पूर्ण रहस्य इस भूमिका में है। मेरा विश्वास इसीसे वेदान्त पर हुआ है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं एक बार इसे आपको सुना दूँ।" महाराजजी ने स्वीकृति दे दी। इस पर सोमतीर्थजी ने निवेदन किया, कि "जब तक मैं कह न चुकूं, तब तक आप

वोलें नहीं।" महाराजजी ने इसको भी स्वीकार कर लिया। भोजन के पीछे थोड़ी देर टहलकर सोमतीर्थजी को आज्ञा हुई कि वह वेदान्त की कथा सुनायें। वे पुस्तक लेकर पहुँचे, और महाराजजी वैठ गये। वहाँ और कोई नहीं था। वे पढ़ते गये और स्वामीजी, एकाग्र-चित्त से सुनते रहे। जव सव सुन चुके तो वोले, "इस वेदान्त को मैं भी मानता हूँ। इसके समझाने के लिये शंकराचार्य्य ही जैसा दिमाग़ चाहिये। मेरा विश्वास नहीं कि स्वामी कृष्णानन्दजी इसको समझ गये हों, यह वहुत ऊँची वात है।" इतना कहकर चुप हो गये। स्वामी सोमतीर्थजी अपने पढ़े और समझे का प्रमाण-पत्र समझकर अत्यन्त प्रसन्न हुये।

अठारहवां प्रकरण (कश्मीर यात्रा)

इस प्रकार अनेक नर-नारियों को अपने अमृत रूपी उपदेशों से कृतार्थ करते हुये, १५ मार्च १९२४ को मुलतान से चल दिये। चलते समय वहुत से सत्संगी दर्शन करने को आये। स्वामी नारायणहरिजी तो सीधे जम्मू चले गये; परन्तु महाराजजी कुछ दिन जालन्धर रुके रहे। रामरक्खाजी भी हरिद्वार से जालंधर पहुँच गये थे। यहाँ से जिज्ञासुओं की इच्छानुसार कश्मीर जाने का विचार था। आपका अपना चित्त तो कश्मीर के स्मरण से उदास हो जाता था; पर दूसरों के चित्त को कशमीर के सौंदर्य्य से उपराम करने के निमित्त ही आपने वहाँ जाने का निश्चय कर लिया था। सात अप्रेल के लगभग जालन्धर को छोड़कर रावलपिण्डी के रास्ते आप कशमीर पहुँचे। वहाँ महाराज

गुलाबसिंहजी की समाधि में रहे। वर्षा हो जाने पर मकान चूने लगा, आपके पास कपड़ा भी थोड़ा था, उधर वर्फ भी पड़ गई, सर्दी अधिक होने से ज़ुक़ाम तेज़ हो गया, और शरीर भी बहुत गड़बड़ाने लगा। ऐसा प्रतीत हुआ कि नमोनिया ही हो जायगा। पर आप इस सब कष्ट को बड़े सन्तोष से, भोग समझकर सहते रहे। कम्बल का प्रबन्ध करने का यत्न किया पर वह भी शीघ्र न हो सका। पीछे राज-गुरु ब्रह्मचारी नित्यानन्दजी को पता चला तो उन्होंने महाराजा रामसिंहजी की समाधि में आपके ठहरने का प्रबन्ध कर दिया। वहाँ ऊपर के दो कमरे आपको रहने के लिये मिल गये, और नीचे एक कमरा रसोई के लिये मिला। आपके साथ, उस समय दो एक ब्रह्मचारी थे। विचार तो यही था, कि थोड़े दिन उनको कश्मीर दिखाकर, शीघ्र कटरा लौट जायेंगे, पर शरीर अधिक अस्वस्थ हो जाने के कारण वापिस लौटना सम्भव नहीं प्रतीत होता था। इसीलिये आपने स्वामी नारायणहरिजी को जम्मू से चले आने के लिये लिख दिया। फिर, यहाँ पर, आप बहुत दिन तक रहते रहे।

कश्मीर में रहते हुये, महाराजजी का स्वास्थ्य वैसे ही चलता रहा। ज़ुक़ाम बराबर जारी रहा। अनेक औषधियाँ कीं, पर किसी तरीक़ से उसमें कमी न आई, बिगड़ता ही चला गया। जैसे-तैसे, शरीर का भोग समझ, सन्तोष से सहारते रहे। कोई विशेष सत्संग तो नहीं हुआ करता था, पर जो कोई अभ्यास के विषय में पूछता, तो सहायता देनी ही पड़ती। इधर सत्संगी भी शरीर अस्वस्थ होने से बहुत बोलने को मना करते रहते थे, पर फिर भी निर्मल चित्त के कारण जो आता उसको कुछ न कुछ उपदेश दे ही दिया करते थे।

लायलपुर से, अनन्तरामजी, नत्थूरामजी और उनके भाई

मुल्कराजजी वहाँ पहुँचे। अनन्तरामजी को तो स्वामीजी महाराज ने एकान्त वास करने की आज्ञा दी। नदी 'दूध गंगा' के तट पर कुछ कुटियाँ खाली पड़ी रहा करती थीं। वे वहीं जाके रहने लगे।

बीस-पचीस दिन तक एकान्त साधन में लगे रहे। इससे उनको बड़ा लाभ हुआ। जिन-जिन संस्कारों में उनका चित्त फँसा हुआ था, उनका स्पष्ट पता चला, और फिर विचार करने से वे संस्कार बहुत कुछ ढीले भी पड़ने लगे। यही विचार रहता कि अपने कल्याण में लगे रहें, दूसरे की चिन्ता करना व्यर्थ है। यदि उसका भला होना होगा, तो ईश्वरीय प्रेरणा वश आप ही हो जायगा। इस प्रकार गुरु आज्ञानुसार साधन से अनेक लाभ प्राप्त किये। फिर घर को लौट गये।

नत्थूरामजी भी घट-शुद्धि निमित्त, कुछ क्रियायें करते रहे। राधा स्वामी विधि के अनुसार कुछ अभ्यास करते थे, और वे उसी में ही सन्तुष्ट थे। इनके छोटे भाई मुल्कराजजी एंट्रेंस पास करके आये थे और ब्रह्मचर्य्य से जीवन व्यतीत करने का विचार था। स्वामीजी ने बड़ी कृपा करके अनेक नियम उपनियम बताये और भजन-साधन में भी लगा दिया। वे अभी तक बड़े जनों की सेवा करते हुये संयम के व्रत में डटे हुये हैं। इनके आने से पहलेही मुलतान से नन्दलालजी और टेकचन्दजी वहाँ पहुँचे हुये थे। टेकचन्दजी पहले कटरा में रहकर सत्संग से कृतार्थ हो चुके थे। अब भी वैसे ही भक्ति भावना को लेकर श्रीचरणों में एक मास तक निवास करते हुये जीवन को उच्च करते रहे। नन्द लालजी ने भी १६२२ में मुलतान में बहुत कुछ सत्संग किया था, वे भी उस पुण्य समय की स्मृति से खिंचे हुये, बीस-पचीस दिन समीप रहकर संयम का आनन्द लेते रहे।

मुलतान से, लाला मुरलीधर भी पहुँचे। पिछले जाड़ों में आपने सत्संग करके अपने जीवन को बहुत सुधारा था। मांस, शराब आदि अनेक दुर्व्यसनों से मुक्ति पाई थी। पर महाराजजी के चले आने पर कुसंग के कारण फिर गिर गये। सदाचार-मय जीवन का कुछ आनंद उठा चुके थे, इसलिये बल प्राप्त करने के लिये फिर कश्मीर पहुँचे थे। सारा हाल सुना दिया। स्वामीजी ने बड़ी दयालुता से समझाया और प्रतिज्ञा भंग करने का पाप भी सुझाया। कुछ जाप आदि प्रायश्चित्त के लिये कहा। वहाँ से चलते समय उन्होंने कुछ भेंट करना चाहा, पर स्वामीजी ने जरूरत होते हुए भी, उनके व्यवहार से असन्तुष्ट होने के कारण कुछ ग्रहण न किया। यह वापस आकर प्रायश्चित्त करके अपने व्रत में डटे रहे। दलाली के काम में जो गड़बड़ी हुआ करती थी, उससे भी धीरे-धीरे छुटकारा पा लिया। अपने व्यसनी साथियों के कटाक्ष सहते हुए भी सदाचार के व्रत से न हटे। इस अद्भुत परिवर्त्तन को देखकर वे भी इनके भक्त हो गये और महाराजजी के सत्संग में आने लगे। पीछे भी १६२६ १६२७, १६२७-१६२८ में जब स्वामीजी मुलतान आते रहे, तो सत्संग में अनेक बार जाकर, अभ्यास में लगने के लिये आप प्रार्थना करते रहे। बाहर की गड़बड़ी छूट गई थी, पर अभी अपनी स्त्री के सम्बन्ध में ब्रह्मचर्य का पालन नहीं होता था। सन्तान भी थी, अवस्था भी ४५ वर्ष की हो चुकी थी, ईश्वर-भजन की लगन बढ़ रही थी; आखिर हिम्मत करके १६२८ के आदि में दम्पति ने विधि पूर्वक ब्रह्मचर्य्य का व्रत लिया, जिस पर वे बड़ी दृढ़ता से डट गये। स्वामीजी महाराज ने प्रसन्न हो एक करोड़ गायत्री जाप करने की आज्ञा दी। जाप की विधि बताई। पहले तो वह घबराये, पर पीछे जब महाराजजी ने

समझाया कि यही अभ्यास है, और इसी से लाभ भी होगा, तो वे उसमें जुट गये। दो-तीन समय नीयत करके बड़ी श्रद्धा से जाप करने लगे। कुछ दिनों में ही विचित्र-अनुभव होने लगा। हृदय बहुत शान्त रहने लगा। जिन पिछले पापों के कारण चित्त भयभीत रहा करता था, उनका भय जाता रहा। ऐसा प्रतीत होता था कि नींद में भी गायत्री जाप होता रहता है। काम काज भी सब भली-भाँति चलता रहा। अभी उनका यह जाप पूरा ही नहीं हुआ था कि इस वर्ष जनवरी, १६३० में नमोनिया के कारण आपका शरीरान्त हो गया। पर मरते समय भी बड़े सावधान रहे और बड़ी उपरामता और प्रसन्नता से शरीर को छोड़ा। इस प्रकार सन्तों की शरण पकड़ने से वे अपने जीवन को सुधार कर पुण्य संचय करते हुए परलोक को चले गये। सत्य है, जिन पर सन्तों की कृपा होजाय और जो श्रद्धा से उनकी आज्ञा का अनुकरण करने लग जायें, फिर उनका बेड़ा पार हो ही जाता है।

इसी प्रकार मुलतान से लाला मोतीरामजी और उनकी भौजाई श्रीमती ईश्वरदेवीजी भी दोनों कश्मीर में आकर उपदेशों से लाभ उठाते रहे।

कश्मीर में भी कई एक सज्जन सत्संग करते रहे। पण्डित जानकीनाथ वकील, नारायण ब्रह्मचारी आदि अनेक जन श्री सेवा में आकर भजन में दीक्षित हुए। एक देवी भी, भजन के मार्ग में प्रवृत्त हुई और अभी तक कल्याण के मार्ग में पुरुषार्थ करती जा रही है। उत्तरकाशी में जिस 'नाथ' साधु ने भजन उपदेश लिया था, वह भी यहाँ पर आये। आहार का नियम न रखने से, अब वे पाँच मिनट भी ध्यान में नहीं बैठ सकते थे। वह संकोचवश ऐसे पदार्थ माँगने में घबराते थे। स्वामीजी

ने कुछ तो स्वयं सामग्री दे दी, और उनके मिलने वालों से भी कह दिया कि उन्हें अभ्यासी होने के कारण चिकने पदार्थों का सेवन कराते रहें। फिर उन्हें भी समझा दिया कि 'जब भिक्षुक बने हैं, तो मान का विचार छोड़, अपने शरीर की जरूरत के अनुसार याचना करने में संकोच नहीं करना चाहिये'। स्वामीजी को पीछे पता चला कि नाथजी शराब और मांस का सेवन कर लेते हैं। जब पूछा, तो, पहले तो वह वेदान्त के ढंग से अपने-आपको निर्लेप अथवा निर्दोष करने लगे। महाराजजी ने अनेक प्रश्न करके उनके अपने मुख से ही यह सिद्ध करा लिया कि वे स्वादवश इस व्यसन में फँसे हुए हैं और ऐसे निर्दोष नहीं जैसा कि वे समझते थे। जब वह चला गया, तो गुरूजी ने अपने सहवासियों से कहा, "देखो भाई, यह अभ्यास भी बहुत करते हैं, बड़े तप और निवृत्ति से रहते हैं, विद्वान् भी बड़े हैं, पर ब्रह्मवाद के नशे में अपने दूषणों को नहीं देख सके। इनके जीवन से शिक्षा लेनी चाहिये और मन की सूक्ष्म चालों से अपने आपको सचेत रखना चाहिये"।

यहाँ ही एक मदरासी ब्रह्मचारी रामचन्द्रजी बी० ए० महाराजजी से मिले। वे उत्तराखण्ड से योगी की तलाश करते हुए आये थे। वहाँ महाराजजी का नाम तो सुना था, पर उनका पता ठीक नहीं चला था। इधर अमरनाथ की यात्रा को भी इसी विचार से जा रहे थे। श्रीनगर में पता चला कि एक योगी महात्मा वहीं रहते हैं। इनके साथ कूपत स्वामी भी थे, यह दोनों दर्शनों को आए। महाराजजी ने सारा वृत्तान्त सुना और कहा, "अमरनाथ-यात्रा का विचार पूरा कर आओ, फिर आकर यहाँ रहना।" जब वह अमरनाथ की यात्रा से लौट आये, तो उनके दूसरे गृहस्थी साथी कूपत स्वामी तो कुछ धन

की सहायता देकर वापस चले गये, पर रामचन्द्रजी महाराजजी के पास ही रहकर साधन करने लगे। उनका विचार था, कि कुछ सिद्धि प्राप्त करके देश-सेवा में लग जाऊँगा। स्वामीजी ने समझाया कि "अभी तो इस विचार को छोड़कर साधन में लगे रहो, पीछे जब सामर्थ्य हो जाय तो जैसा उचित समझना, वैसा करना।" स्वामीजी उसको भोजन आदि में सहायता देते रहे और बड़े कड़े नियम में रखकर प्राणायाम मार्ग से साधन कराया। कूपत स्वामी ने कुछ विशेष तो महाराजजी से नहीं सीखा था, परन्तु अभी-तक वे गुरू भावना से आपके सम्बन्ध में पूछते रहते हैं।

रामरक्खाजी भी साथ ही आये थे। खान-पान में बहुत गड़बड़ी करने के कारण कुछ रुग्ण भी रहते थे। पीछे जब महाराजजी को रोग का पता चला, तो समझाया, और बड़े कड़े नियमों में रखने लगे। परन्तु किशोर अवस्था होने के कारण फिर उनका मन बिगड़ने लगा, बिना कहे ही कुपथ शुरू कर दिया। जब पता चला, तो उसके हितार्थ, प्रायश्चित्त रूप से, भिक्षा माँगने की आज्ञा दी गई। कुछ समय तक नियम-पालन करते रहे, पीछे शरीर अस्वस्थ होने के कारण भिक्षा का नियम छोड़ना पड़ा। जब शरीर की हालत कुछ सुधरी, तो फिर सत्संग में आने लगे।

बाद में प्रोफ़ैसर लालचन्दजी और देवराजजी सेठीजी भी वहाँ पहुँचे। देवराजजी, १६२३ में, जब स्वामीजी कनखल में गये हुये थे, तो परीक्षा के उपरान्त, महाराजजो से मिले थे। कुछ ध्यान की विधि और खान-पान के नियम पूछ आये थे। फिर पिछले जाड़े में दस दिन तक मुलतान में रहकर क्रियायें आदि सीखीं थी। यहाँ पर एक मास पर्यन्त सत्संग करते रहे।

स्वामीजी रूप, रस आदि के सम्बन्ध में यथार्थ बोध प्राप्त करने के लिये बहुत कुछ समझाया करते थे। इन्हीं दिनों में, लाला मूलराज एम० ए० भी महाराजजी से मिलने आये। उनको भी अभ्यास सीखने की रुचि थी, पर मांस-भक्षण छोड़ने पर वे तय्यार नहीं हुये। स्वामीजी भी अपना नियम ढीला करने पर तय्यार न हुए।

प्रोफ़ैसर लालचन्दजी भी यहाँ सत्संग करते रहे। स्वामीजी अनेक युक्तियों से अपने शिष्यों के कल्याण की कामना करते थे। कभी समझाते, कभी प्रशंसा करके उत्साह दिलाते, कभी अभिमान को चूर्ण करने के लिये दूषण दिखाकर डाँट भी देते। भोजन में भी वैसे ही घटी-बढ़ी करते कि जिससे जिज्ञासु स्वाद को जीतने में समर्थ हो जाये। स्वयं भी अपनी अनुकूलता की परवाह न करते हुये वैसा ही आहार किया करते। महाराजजी का शरीर अस्वस्थ रहा करता था, ज़ुकाम भी चलता रहता। लालचन्दजी ने यह विचार करके कि स्वामीजी अपने आपही बदपरहेज़ो करते रहते हैं, बहुत कुछ अनुचित कह दिया। महाराजजी ने बड़ी शान्ति से समझाया कि भोग-वश गड़बड़ी होती रहती है, जिसको अभी तुम मूर्खता के कारण समझ नहीं सकते। यह तो सायंकाल तक अपने क्रोध में मस्त रहे, और यही विचार था कि स्वामीजी सब कुछ सुनकर क्रोध में ही होंगे। पर वह चकित हुये, जब सायंकाल को आपने लालचन्दजी को वैसे ही प्रेम से बुलाया, "चलो यार, सैर करने चलोगे।" जब मान ही नहीं रहा था, तो दूसरे की मूर्खता पर क्रोध क्यों आता।

साथ ही, एक कमरे में स्वामी पूर्णानन्दजी रहा करते थे। वे बड़ी अच्छी वृत्ति के महात्मा थे। एक दिन लालचन्दजी उनके दर्शन करने गये और उपदेश देने के लिये निवेदन किया। उन्होंने

फटकार दिया और कहा, "अच्छे ग्रन्थ का एक वाक्य भी तुम्हारे कल्याण के लिये पर्याप्त है, सबसे उपदेश नहीं लेना चाहिये। ईश्वर की सत्ता को हर समय अनुभव करते रहो।"

जब स्वामी पूर्णानन्दजी जाने लगे, तो महाराजजी से मिलने आये। जब वे कमरे के दरवाजे पर पहुँचे तो महाराजजी भी अपने स्थान से उठकर उनका स्वागत करने के लिये चले। कमरे के दर्म्यान में दोनों ने एक दूसरे के चरण छुये। यह अपूर्व दृश्य था कि दोनों इतने उच्च कोटि के महात्मा होते हुये शील और नम्रता की साक्षात मूर्त्ति बन रहे थे। पीछे आपस में बात-चीत करते हुये, महाराजजी उनको बाहर तक छोड़ आये।

पं० विश्वबन्धुजी भी अवसर अनुसार यहाँ स्वामीजी के दर्शनों को पहुँचे। आपको सर्व प्रथम १९१७-१८ में महाराजजी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जब वे लाहौर में चूना-मण्डी के एक जीर्ण मकान में प्रोफ़ैसर सदानन्दजी के पास ठहरे हुए थे। उन दिनों भी कई बार आप दार्शनिक विषयों पर वार्ता-लाप किया करते थे। उन्हीं दिनों आपकी प्रार्थना पर स्वामीजी महाराज ने प्राणायाम का कुछ साधन बताया था। कुछ काल तक लवण-त्याग की प्रेरणा भी की थी। एक ऐसे सुन्दर चित्र के द्वारा जो आपके मनको बहुत भाता था, विषय सुख के कल्पनात्मक स्वरूप की ओर भी आपका ध्यान खींचा था। पीछे, जब १९१९ में, स्वामीजी, प्रोफ़ैसर कृष्णकुमारजी के पास ठहरे थे, तो आप कुछ विशेष लाभ न उठा सके। अबकी बार वे यहाँ पर आर्य-समाज के उत्सव के सम्बन्ध में आये हुए थे, तो पं० ब्रह्मानन्दजी शास्त्री द्वारा महाराजजी का समाचार प्राप्त करके दर्शनों को पहुँचे। लग-भग ४ घण्टे तक भिन्न-भिन्न विषयों पर वार्तालाप होता रहा। महाराजजी भूमि पर लेटे हुये थे।

प्रथम तो आपने बड़े प्रेम से ब्राह्म महाविद्यालय के समाचार पूछे। पीछे सुख-दुःख, सकाम-निष्काम कर्म तथा अभ्यास और वैराग्य के सम्बन्ध में अनेक उपदेश देते रहे जिनका कुछ सारांश आगे लिखा है।

गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक, ब्रह्मचारी सत्यदेवजी भी दर्शनों को पहुँचे और कई दिन सत्संग में रहकर कुछ साधन करते रहे। पं० महानन्दजी, जो पहले भी कनखल में दर्शन प्राप्त कर चुके थे, यहाँ अनेक बार श्रीसेवा में पहुँच सत्संग से लाभ उठाते रहे।

काशीनाथजी भी बीमारी की अवस्था में, श्री स्वामीजी के दर्शनों को श्रीनगर आये थे। ६ जून १९२४ से लेकर, जब तक महाराजजी वहाँ रहे, आप अनेक बार सत्संग को गये। अनेकों उपदेश लिये अथवा सुने। इन्हींका थोड़ा ख़ुलासा हम यहाँ देते हैं।

(१) दुःख—जब मनुष्य को सख्त प्यास लगती है, जबान सूखने लगती है, बोला नहीं जाता, उस समय वह यह नहीं सोचता कि प्यास किसने पैदा की, कब और क्योंकर हुई, बल्कि उसको सबसे पहले पानी की तलब होती है, और उसे पीकर वह शांत हो जाता है। वह यह नहीं जानता कि तृषा दुनिया में किस प्रकार आई। ऐसेही दुनिया में लोगों को अनेक महान दुःख हैं, उनकी जड़ काटने का सामान भी है, फिर इस फ़िलास्फ़ी, साइन्स और दलीलबाजी की जरूरत क्या है, कि दुनिया किस वक़्त से है, ईश्वर इसको क्यों पैदा करता है। शास्त्रों की आज्ञानुसार अमली जीवन बनाना चाहिये, ज़बानी जमा-खर्च फ़जूल है।

(२) वैराग्य अथवा योग—वैराग्य उत्पन्न करो, और बढ़ाओ, हर एक वस्तु के दोषों को देखो। उनके थोड़े-बहुत लाभ को देखने से संसार में राग बढ़ा है, अब दोष देखने से ही राग

छूटेगा। वैराग्य ही सबसे मुख्य है, इसके बिना कुछ नहीं हो सकता। प्राणायाम, अभ्यास के बाद भी वैराग्य की आवश्यकता रहती है। यदि वैराग्य पूरा हो जावे, तो प्राणायाम की जरूरत नहीं। जिसको वैराग्य नहीं, उसको प्राणायाम चाहिये। यदि वैराग्य हो, तो स्वप्न में भी बुरे काम नहीं हो सकते, कोई स्वप्न में विष्ठा नहीं खाता। जब तक शरीर में राग है तभी तक संस्कार-जन्य स्वप्न होते हैं। पहले हठ से विषयों को त्याग दो, फिर विचार से संस्कारों को छिन्न-भिन्न कर दो। शराब, मांस आदि सेवन करने वाले भी अभ्यास में कुछ उन्नति कर लेते हैं, इस लिये हमारे हृदय में अभ्यास की कुछ क़दर नहीं, वैराग्य ही मुख्य है। बिना त्याग के अभ्यास कुछ नहीं। व्यवहार शुद्ध न होंने से जो पाप होंगे, उनका फल भोगना ही पड़ेगा। वैराग्य और ईश्वर-चिंतन बड़े लाज़मी हैं। वैराग्य के संस्कार ही मरने के वक़्त साथ रहते हैं, यदि अभ्यास में चित्त न लगे, तो कुछ हर्ज नहीं, थोड़ा पुस्तक का पाठ, तथा जाप करता रहे, और वैराग्य की ओर विचार को चलाये। एक अभ्यासी को ऐसी शक्ति प्राप्त हो गई थी कि जो व्यक्ति उससे मिलने को आता, बिना देखे ही उसका पता लगा लेता, वैराग्य के बिना कुछ दिन पश्चात् एक स्त्री में फँस गया। ऐसे ही एक दूसरे महात्मा की कथा है, जिन्होंने योग और भक्ति की कुछ पुस्तकें बनाई हैं, और अच्छे योगी भी थे, पर वैराग्य न होने के कारण, अब दो स्त्रियों को पास रखकर संतुष्ट रहते हैं। मन को स्थिर करने के लिये प्राणायाम की आवश्यकता नहीं, शाइरी करने में भी तो मन लग जाता है, पर प्राण बन्द नहीं होते। परम वैराग्य से ही, बिना प्राणायाम के समाधि लग जाती है। जिन व्यक्तियों को हमने हठ से अथवा कहने सुनने से अभ्यास सिखाया, वह पीछे गिर गये, इस लिये

यम-नियम का पालना लाजमी है, भजन करना छोड़कर जिस चीज़ में मन जाये, वहाँ उसको दोष दिखलाये, ऐसा लगातार करने से वैराग्य के संस्कार दृढ़ हो जायेंगे। बुरे स्वप्न भी नहीं आयेंगे और सब से बड़ी बात यह होगी कि मरते समय ऐसे ही विचार साथ जायेंगे, और आगामी जन्म में फिर उसी धुन में लगकर सफलता हो जायगी। जब तक विषयों में सुख प्रतीत होता है, तब तक ब्रह्मानंद नहीं प्राप्त हो सकता। ब्रह्म का आनन्द तो अभी दूर है, मुमकिन है कि इस जन्म में न मिले, परन्तु जब विषयों में सुख है ही नहीं; तो इस धोखे को मिटाना आवश्यक है। जो व्यक्ति यह इच्छा करके अभ्यास करते हैं कि कुछ सिद्धि प्राप्त करके देश और जाति की सेवा करेंगे, शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि सब क़िस्म की इच्छा बुरी है। केवल योग और वैराग्य की इच्छा इसलिये अच्छी है, कि इस से छुटकारा हो जाता है। विषयों को छोड़कर मन में उदासी आये तो उसको स्वागत करना चाहिये। मूर्ख तो कहने लगता है कि चित्त दुखी हो रहा है। राजयोग और हठयोग में यही भेद है, कि हठयोग से जो प्राणायाम किया जाता है, उसका नशा जब तक रहता है, तब तक मन पर वैराग्य रहता है, फिर वह जाता रहता है। इसलिये हठयोग की क्रिया जचती नहीं, बल्कि योग दर्शन में जो लिखा है वह ठीक है कि वैराग्य ही सब से मुख्य है। विषयों के यथार्थ बोध को प्राप्त करने से राग छूट सकता है। इस प्रकार विचारो, अपना शरीर ही मलमूत्र आदि से भरा हुआ है, और हमारा इसी में ही निवास है, तो जब विचार करते-करते अपने शरीर में ही आसक्ति नहीं रहेगी, तो दूसरे के शरीर में चित्त नहीं फँसेगा। वैराग्य के बिना योग साधन करना मक्कारी ही है।

पं० विश्वबन्धुजी के प्रश्न करने पर महाराजजी ने कर्म के सम्बन्ध में ऐसा उपदेश दियाः —

(३) कर्म—जैसे कृषक भूमि को ठीक करके उसमें बीज डालता है पर फल उस पर निर्भर नहीं है, परमेश्वर के अधीन है, वैसा ही हाल सब कर्मों का है। जब परोपकार की इच्छा होती है तो रजोगुण की प्रधानता के कारण मनुष्य विवश हो जाता है। इसलिये उसको वैसे ही शान्त कर देना चाहिये। मन कुछ न कुछ काम करता ही रहता है, परन्तु ऐसी अवस्था भी आ जाती है कि जब ईश्वरीय प्रेरणा से काम होता है, गुणों के दबाव से नहीं। ऐसी अवस्था में पहुँचने से, सन्तों का स्वभाव ही ऐसा बन जाता है, कि फिर वह गिर नहीं सकते। देश, जाति और धर्म के बंधन से मुक्त होकर, वह सबको समान समझते हैं। किसीमें ममत्व को न रखता हुआ, जो पास आ जाता है, उसकी सेवा कर देते हैं। परन्तु यह उपदेश सबके लिये नहीं हैं। जिनकी कर्म में रुचि है, वह शास्त्रों के अधीन रहकर ही ऊँचे उठ सकते हैं। जो काम से दुःखित हैं, उनके लिये ऋनुगामी का बंधन लगाकर उनकी उन्नति का रास्ता बताया है। शास्त्र का असली मनशा तो वैराग्य और त्याग है। आत्मा सुख दुःख प्रतीत नहीं करता। ज्ञानी, नाटक के समान काम करता रहता है। उसका चित्त किसी में फँसता नहीं। फल में निगाह न रखना निष्कामता नहीं है। ईश्वर पर फल को छोड़ देना तो पहली अवस्था है, ऊँची अवस्था और है कि जहाँ ईश्वरीय प्रेरणा से काम होता है। वहाँ ईश्वर यदि कोई फल दे भी, तो इन्कार कर दिया जाता है। जब तक अपना कर्त्तव्य जचता है, अपने कल्याण के लिये ही काम करते हैं। पर जब ऐसा प्रतीत हो, कि अपने लिये कोई कर्म नहीं है, तो फिर बीच-

राग बनकर पूर्ण वैराग्य से परोपकार होता है, फिर जय और हार से हर्ष-शोक नहीं होता। उस वक्त आनरेरी काम होता है। ईश्वरीय प्रेरणा से ही सब-कुछ हुआ करता है। पर जब तक ऐसी अवस्था न आये, शास्त्रानुसार कर्म करते हुए उसके फल को प्रभु-अर्पण करते रहो, धीरे-धीरे सब भेद खुल जावेंगे। चित्त पवित्र होने पर लीलाधार प्रभु का क्रीड़ास्थल बन जावेगा।

स्वामीजी महाराज का स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ था, ज़ुकाम सुधरने में नहीं आ रहा था। स्थान और जल-वायु परिवर्तन करने के लिये स्वामी नारायणहरिजी और अन्य सत्संगी कहते रहते थे। लाचार, सितम्बर मास में दशहरा के लगभग चल पड़े। चलने से पहले, कई एक राज-कर्मचारी महाराजजी से महाराजा साहब के दर्शनों को आने की आज्ञा माँगते रहे। पहले तो स्वामीजी कहते रहे कि, 'उनके यहाँ आने से क्या लाभ होगा,' फिर जिस दिन चलना था उस दिन कह दिया कि "यदि हम रुक गये तो महाराजा साहब कल आ सकते हैं।" पर आप उसही दिन वहाँ से चल दिये। दशहरा के दिनों में रावलपिण्डी में रहे। यहाँ एक साधु-स्थान पर भी सत्संगियों सहित पहुँचे। महाराजजी ने, बड़ी नम्रता से सबको जाकर प्रणाम किया, मानो ख़ुद भी गृहस्थी हैं। चुपचाप बैठकर दर्शन करके चले आये। अभी गरमी तो थी, पर शरीर को सुधारने के विचार से शीघ्र जालन्धर को चल दिये।

उन्नीसवाँ प्रकरण (चित्र)

स्वास्थ्य के बिगड़े रहने से इस बार आपका चित्त बहुत सुस्त था। एक पत्र में आपने प्रो० सदानन्दजी को कश्मीर से लिखा था:—"अब चित्त रिटायर होने को करता है; लोग बात भी नहीं समझते। यही चित्त चाहता है कि बद्रीनारायण की तरफ़ जाकर शरीर छूटने तक निर्वाह करता रहूँ; पर होना वही है, जो ईश्वर को मनज़ूर है, सो मनोराज्य करना निरर्थक है। जैसा प्रारब्ध है, वैसा ही भोगना पड़ेगा।" ऐसी ही धारणा को आप सदैव मन में धारण किये हुए थे। इसीके अनुसार ही यहाँ आए थे। मुलतान के सत्संगी मुलतान आने के लिये बहुत प्रेरणा कर रहे थे, पर मुलतान के नाम से ही चित्त में घृणा के भाव पैदा होते थे। वहाँ के वायु-मण्डल में घृणा पैदा करनेवाले चिन्ह नजर आते थे। कुछ भयानक और भद्दे दृश्य भी दिखाई दिये, मानों कोई पशु अथवा मनुष्य खून में लिथड़े पड़े हैं। आपका निर्मल चित्त किसी आगामी अनिष्ट की सूचना दे रहा था। प्रो० सदानन्दजी को जब यह सब वृत्तांत ज्ञात हुआ, तो उन्होंने भी मुलतान न आने की राय दी। थोड़े दिन पीछे मुलतान में भयानक रूप से प्लेग फूट पड़ी, ऐसी आशंका तो पहले ही थी। प्रो० कृष्णकुमारजी कानपुर के लिये प्रार्थना कर रहे थे, पर वहाँ की स्मृति से भी चित्त सुस्त हो जाता था। ला० कर्मचन्दजी, जब स्वामीजी अभी कश्मीर में ही थे, तो जालन्धर आकर ठहरने की याचना कर रहे थे। लाचार, शरीर का भोग जान, इधर के सत्संगियों के अनुरोध पर आपने यहीं रहने का निश्चय कर लिया।

आपकी शारीरिक अवस्था इस वर्ष अच्छी न रही। जुकाम जो कशमीर में बिगड़ा था, बराबर जारी रहा । बद्रीनारायण जाने का विचार दृढ़ था, सर्दी सहारने का अभ्यास भी चलता रहा, इससे नज़ले को सहायता मिली। इस सब गड़बड़ी के रहने पर भी जिज्ञासुओं को बराबर सहायता देते रहे । सिद्ध पुरुष के लक्षण ही यही हैं । सहन-शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि किसी कार्य्य में रुकावट नहीं पड़ती।

मा० कर्मचन्दजी बड़ी श्रद्धा से सेवा का कार्य्य निवाहते रहे । बाहर से आनेवाले अनेक जिज्ञासु समय-समय पर श्रीचरणों में बैठकर तृप्त हो-होकर वापस लौट जाते थे।

अजमेर से देवीदत्तजी, जम्मू से ज्योतिप्रकाशजी वकील और जयगोपालजी बज़ाज़, कांगड़ी से प्रो० लालचन्दजी, कानपुर से कृष्णकुमारजी, लाइलपुर से अनन्तरामजी, उत्तर-काशी से गुजरात काठियावाड़ के चुन्नीलालजी, चकवाल से मा० कल्यानदेवजी, मुलतान से पं० शिवरामदासजी तथा भक्त धर्मचन्दजी, कपूरथला से पं० देवराजजी और ला० हरचरण-दासजी आदि अनेक सज्जन अपनी-अपनी बारी से आते रहे। पुराने भक्त तो सत्संग से ही बल प्राप्त करके चले गये । नये जिज्ञासु श्रीचरणों में बैठ, उचित उपदेश पा, अपनी श्रद्धा के अनुसार अनेक मार्गों से भजन-साधन में लगाये गये । कोई प्राणायाम में लगे, तो कोई मूर्त्ति-पूजा के सहारे साधन करने लगे। कोई जाप में प्रवृत्त हुये, तो कोई ध्यान जमाने की युक्ति प्राप्त कर अभ्यास करने लगे । विचार से वैराग्य को बढ़ाने का उपदेश तो होता ही रहता था, संसार की दुःखरूपता का निरूपण, विषय-सुखाभाव का विवेचन, आहार-व्यवहार-शुद्धि की आवश्यकता, तप-साधन का महत्त्व, यम-नियम का

अनुष्ठान आदि अनेक उन्नति के साधनों की चर्चा चलती रहती थी। जालन्धर के भी अनेक जिज्ञासु दर्शनों तथा सत्संग से लाभ उठाते रहे। मा० कर्मचन्दजी के पिता सांसारिक झमेलों से मुक्त होकर साधन में लग गये। ला० जगन्नाथजी बजाज और ला० मेलारामजी ने श्रीसेवा में बैठकर विशेष लाभ पाये। साधकों को विचित्र अनुभव होने लगे, कोई-कोई तो सिद्धि भी प्राप्त करने लगे। सब नये दीक्षित जन सत्य पर आरूढ़ रहने की प्रतिज्ञा में बाँधे गये।

एक पारसी महाशय मिट्टूजी योगियों की तलाश में, बम्बई से तीर्थ-यात्रा करते, उत्तरकाशी से पता पाकर श्रीसेवा में आये। वे बी० एससी० थे, कुछ संस्कृत भी पढ़े थे। आप इस संशय में थे, कि कौन सा धर्म ठीक है। कुछ शास्त्र भी पढ़े थे। अनेक महात्माओं का सत्संग किया था। राधा स्वामी संघ में भी रह आए थे। उन्होंने आते ही यही प्रश्न किया—"कौन सा धर्म ठीक है, ईश्वर है वा नहीं?" महाराजजी ने कहा, "इन सब लिखी बातों को त्याग दो। यह विचारो, कि दुःख का सब इलाज कर रहे हैं। यम-नियम का पालन सब धर्मों में मानते हैं। पाप से बचो, सुख प्राप्त करो। जो समझ में आवे, वही मानो. साधन करो, फिर जैसे जचता जावे, वैसे मानते जाना, पर हमारे साथ रहकर साधन करोगे, तो ठीक काम बनेगा।" फिर वह यह कहकर कि "अब मैंने सबको सुन लिया है, सोच विचार कर निश्चय करूँगा," चले गये। पीछे वे साधु होकर वेदान्त के चिन्तन में लग गये, उनकी रुचि ऐसी ही बनी। साधुसिंहजी भी यथापूर्व सेवा में रहकर अपने हृदय को पवित्र करने लगे।

जब जुकाम ने महाराजजी का पीछा न छोड़ा, तो आप

इधर कुछ ध्यान देने लगे। अपने भोजन का, अनुकूलता के अनुसार, स्वतंत्र प्रबन्ध किया। कुछ उपाय भी किया, जिससे थोड़ा परिवर्तन हुआ। आपके हृदय में यही विचार उठता था कि जिस दिन जालन्धर छोड़ेंगे, उस दिन नज़ला भी बन्द हो जावेगा। ठीक यही हुआ। जब आप वृन्दावन गये, तो रास्ते में ज़ुकाम ठीक हो गया। प्रारब्ध बड़ा प्रबल है, जब तक वह समाप्त नहीं होता सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है।

स्वामी नारायणहरीजी भी बराबर सेवा में लगे रहे। सरल स्वभाव तथा शुद्ध हृदय के कारण आपका चित्त भी धीरे-धीरे साधुताई के रंग में रँगता गया। जहाँ आप अपने कार्य्य में लगे रहे, वहाँ दूसरों को आज्ञा के अनुसार उचित सहायता देते रहे, तथा महाराजजी के स्वास्थ्य की भी चिन्ता करते रहते थे। आपके बार-बार के अनुरोध करने पर ही महाराजजी ने इधर ध्यान देना शुरू किया था।

सेवकों की यही इच्छा थी कि गुरुदेवजी का एक चित्र ले लिया जावे; पर महाराजजी इस पर राज़ी न हुए। पहले भी अनेक बार ऐसा प्रयत्न किया गया था। जब प्रोफ़ेसर सदानन्दजी से राय ली गई, तो उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि चुपके से, मौका ताड़, बिना आज्ञा भी चित्र ले लिया जावे। जब स्वामीजी को पता चला, तो बड़ी फटकार पड़ी। आपने प्रो० सदानन्दजी को लिखा, "बिना किसी की मर्ज़ी के किसीकी चीज़ लेना, 'अस्तेय' है, वा नहीं? और ज़बर्दस्ती लेना 'हिंसा' भी है वा नहीं—ज़रा अन्तरात्मा में विचार करो कि इस तरह से प्राप्त की हुई वस्तु कैसे लाभकारी हो सकती है?" आगे को ऐसा यत्न न करें, इस भाव से फिर लिखते हैं, "जैसे कुत्ते को टुकड़ा दे देते हैं, और उससे बदले की इच्छा नहीं रखते, ऐसे

ही वुद्धि से जव मेरे को टुकड़ा दोगे, तव निराशा नहीं होगी, और न दुखी होंगे। तुमने देख लिया कि मैं भी कुत्ते से वढ़कर न हुआ, वल्कि घट कर निकला, जो कहने पर भी तुम्हारा कहना नहीं माना। और आवश्यकता होने पर पापी पेट के लिये फिर भी लज्जा और शरम को, कुत्ते की तरह छोड़कर, तुम्हारा दरवाज़ा खटकाने लगता हूँ। प्यारे, जब मैं नौकरी नहीं बजा सकता, तो ऐसी निर्लज्जता से शरीर छोड़ देना अच्छा है। अच्छा, प्रभु की कृपा है, कि आँखें अच्छी तरह खोल रहे हैं। आशा है, मेरी कमज़ोरी को क्षमा करोगे। 'आशा हि परमं दुःखम् निराशा परमं सुखम्।' एक साथ ही उपदेश और प्रेम-भरी फटकार को कैसा मिलाया है। जहाँ अपनी नम्रता का प्रवल प्रमाण दे रहे हैं, वहाँ ही निष्काम कर्म का विचित्र, कभी न भूलनेवाला उपदेश भी दे रहे है। धन्य हैं सन्त अथवा उनकी करनी। इसी प्रकार से दूसरे सत्संगियों को भी समझाया, "मिट्टी के शरीर से क्या लाभ? यदि तुम्हारी श्रद्धा है भी, तो जवरदस्ती करने से वह फल प्राप्त न होगा। यह चोरी है कि दूसरे की वस्तु विना आज्ञा लेने को प्रयत्न करते हैं। यम-नियम का पालन न करने से पाप के भागी बनोगे।" हताश, सब लोग चुप कर गये। जो चित्र इस पुस्तक में दिया है, वह आपके मित्र, बाबू अयोध्याप्रसाद फाटकवाला ने, १६१५ में, वृन्दावन में, वड़ी कठिनाई से लिया था; उसीके आधार से यह बनवाया है।

जब महाराजजी यहाँ से चलनेवाले थे, तो एक फ़ारेस्ट आफ़िसर, जो कि पहले भी आपसे परिचित थे, आपके आगे अपना दुखड़ा रोने लगे। "मेरी युवा पुत्री विधवा हो गई है, वह पति के वियोग में बड़ी दुःखी रहती है। उसके कारण हमारा

सारा घर दुःख में डूबा हुआ है, यदि प्रभु-कृपा हो तो कुछ सहारा मिल जावे।" स्वामीजी तो करुणा के सागर थे, अपना शरीर अस्वस्थ होते हुए भी आप दूसरे के कल्याण के निमित्त सब कष्ट सहारना मंजूर कर लिया करते थे। अपना जाना स्थगित कर दिया। सत्य है, जीवन मुक्त तो ऐसे होते हैं:—

'करुणा कृपा दीन पर करता, वीत राग जन दुःख का हरता,
दुःखो देख पिघले कर करुणा, दीन होन के दर्द को हरता'

दूसरे दिन प्रातःकाल वह देवी बुलाई गई। आपने उसे अपने सामने ध्यान में लगाया। अपने आत्मिक बल से उसकी धारणा दृढ़ कर दी। शीघ्र ही उसका शोक-मोह मिट गया। भगवान् कृष्ण के दर्शन करने लगी। उनसे बात-चीत में लग गई। दिल बहलावा होने लगा। अपना दुःख-सुख कहने लगी। इस प्रकार वह घंटों ध्यान में मस्त रहने लगी। अपना दिमाग़ कमज़ोर होते हुए भी स्वामीजी ने दूसरे के कल्याण के निमित्त अपनी शक्ति लगाने में संकोच नहीं किया।

चलने से पहिले स्वामी तारकानन्दजी और पं० जागेश्वरजी आए। तारकानन्दजी उत्तर काशी से इसलिये आए थे कि "मेरा चित्त भजन के लिये बहुत करता है, उसके लिये भोजन की विशेष सामग्री होनी चाहिये। इसके लिये याचना करना अच्छा नहीं लगता। भिक्षा से निर्वाह होता है, पर उससे अधिक अभ्यास नहीं हो सकता।" इस समस्या का हाल पूछें। स्वामीजी ने उत्तर में कहा, "जब-तक तुम्हारा चित्त अभ्यास को कर रहा है, तो भिक्षु होते हुए माँगते रहो, मांगना न छोड़ो। साथ ही यह भी चित्त को समझाते रहो, कि इसमें भी दुःख है। इस प्रकार भजन से भी वैराग्य बढ़ाते जाना चाहिये। पूर्ण वैराग्य से ही परमशांति मिल सकती है। भजन का भी

राग छोड़ना पड़ेगा, जब-तक नहीं छूटता, इसके निमित्त भी दीन बनकर दुःख सहते रहो।" योगेश्वरजी भी बहुत दिन से नहीं मिले थे। दर्शन करने के लिये चले आए थे।

२६ जनवरी को आप वृन्दावन को रवाना हुए। आपके साथ नारायणहरीजी तो सेवा में थे ही। अनन्तराम और चुन्नीलाल भी साथ गये। देहली स्टेशन पर अपने भक्त टेकचन्दजी को दर्शनों से कृतार्थ करते हुए वृन्दावन पहुँचे। अनन्तरामजी और चुन्नीलालजी वहाँ रहकर चान्द्रायण व्रत करते रहे। स्वामीजी यहाँ गोवर्धन और राधाकुण्ड भी गये। दोपहर को नींद टालने के लिये, रास देखने चले जाया करते। थोड़े दिनों में स्वामी तारकानन्दजी, स्वामी सोमतीर्थजी और स्वामी कृष्णानन्दजी भी आ गये। इसी वर्ष स्वामी दयानन्द के भक्त मथुरा में शताब्दी का महोत्सव मना रहे थे। यहाँ रहते हुए स्वामीजी महाराज प्रातः यमुना के किनारे चले जाते। वहाँ शौच आदि से निवृत्त हो, भजन-ध्यान में रहते। वहाँ से ९, १० बजे वापस लौटते। अयोध्याप्रसादजी की स्त्री का देहान्त हो गया था। उनको भी उचित उपदेश देकर शान्ति प्रदान करते रहे। यहाँ से शीघ्र ही चित्रकूट चले गये। जालन्धर रहते हुए ही चित्रकूट की स्मृति से चित्त प्रसन्न रहता था। यहाँ एकान्त स्थान मिल गया। स्वास्थ्य भी अच्छा रहा, चित्त भी प्रसन्न रहा। 'साथी' के भक्त भी यहाँ पहुँच गये थे। १०, १२ दिन तक 'साथी' चलने के लिये आग्रह करते रहे। लाचार वहाँ भी जाना पड़ा। एक पाठशाला का प्रबन्ध गड़बड़ था, उसको ठीक कर दिया। यह पाठशाला आपके एक भक्त ने परमार्थ निमित्त खोल रक्खी थी। पहले तो कई दिन आस-पास के ६, ७ ग्रामवाले अपने-अपने ग्राम में ले जाते रहे। फिर 'साथी' में ही टिक गये। अपने

भक्त शिवदर्शन के यहाँ रहते रहे। आपके भाई आदि भी सत्संग में आया करते थे। आपका भतीजा जो अभ्यास में लगा हुआ था, साधु हो साथ चलने के लिये तय्यार हुआ। पर श्रीगुरुजी ने उसको गृहस्थ में रहकर, अपने वैराग्य को बढ़ाने के लिये समझाया। वृद्ध पिता की सेवा भी करने को कहा। इस प्रकार उसको अपने कर्तव्य-पालन में रहकर कल्याण का मार्ग सुझा दिया। यहाँ भी प्रातः ४ बजे से लेकर ४ बजे सायंकाल तक अनेक स्त्री-पुरुषों को भजन में सहायता देते रहते थे। सायंकाल को एक आम सत्संग लगा करता, जिसमें आस-पास १०, १५ मील तक के रहनेवाले लोग सदुपदेश सुनने को आते। यहाँ एक डिप्टीकलेक्टर भी दर्शनों को आये। वह कई स्थानों पर साधुओं के दर्शन कर आए थे, पर किसी पर श्रद्धा नहीं जमी थी। स्वामीजी ने भी अनेक स्थानों का नाम बताया, कि वहाँ जाकर दर्शन करें और पूछ-ताछ कर महात्माओं का पता चलावें। दो एक दिन में उनकी भक्ति वहीं जम गई। व्यवहार शुद्धि के अनेक नियम सीखे। पीछे छुट्टी लेकर पहाड़ पर रह, भजन-साधन करने का निश्चय हुआ। ऐसा सौभाग्य तो उनको न मिला। मगर तबसे उनके व्यवहार में बहुत पलटा आ गया। बड़े धर्म और दया-भाव से सब काम करते हैं। राजकर्मचारी होते हुए, आपसे प्रजा बहुत प्रसन्न रहती है। सत्संग की महिमा अपार है।

यहाँ से जब ग्रामवालों की इच्छा के विरुद्ध चलने लगे, तो पैर की नस में जोर का दर्द हुआ। दाँत में भी दर्द होने लगा। दाँत का दर्द तो सफ़ाई से हट गया, पर पैर का दर्द कई दिन में ठीक हुआ। फिर चलने को थे, तो पेट में बड़े जोर का दर्द हुआ; जो १६ घण्टे तक रहा। सेंक आदि उपाय करने से कुछ आराम हुआ। २ मार्च से २८ तक यहाँ रहे। फिर वृन्दावन पहुँचे।

इधर जब कशमीर गये थे, तो चित्त उदास रहा करता, तबसे शरीर भी कष्ट में ही रहा। जुकाम तो जालन्धर में भी लगा रहा। उदासी बराबर जारी थी। यही विचार था कि ऊपर पहाड़ में घुसकर शरीर छोड़ दें। इसी भाव से बद्रीनारायण जा रहे थे। उस कठिन यात्रा में जाने से पहले मुलतानवाले भी दर्शनों की आश लगाये बैठे थे। यह विचार कर कि कहीं शरीर छूट न जावे, यहाँ के भक्तों को भी दिलासा देना था। आप ५ अप्रैल को मुलतान पहुँचे। यहाँ १० दिन रहे। अभी प्लेग चल रही थी, इसलिये स्टेशन के पास लाला बल्लभदास के मकान में ठहरे। यहाँ ही सब सेवकों ने दर्शन किये, और उपदेश भी पाये। इस प्रकार से सब सत्संगियों को आदेश-उपदेश दे, दर्शनों से कृतार्थ कर आप मुलतान से बैसाखी के दिन रवाना हुये। दो रोज़ जालन्धर ठहर कर, २० अप्रैल से पहले ही कनखल पहुँच गये। नारायणहरिजी तो वृन्दाबन से यहाँ सीधे ही पहुँच चुके थे।

बीसवाँ प्रकरण (कल्पेश्वर)

कनखल से आप शीघ्र ही ऋषिकेश को चले गये जहाँ से २७ अप्रैल को बद्रीनारायण की ओर चल दिये। आपकी सेवा में स्वामी नारायणहरि, स्वामी तारकानन्द तथा एक और ब्रह्मचारी थे।

कोई १०, १२ मील गये होंगे कि पीछे से लाला नारायणदासजी और लाला टीकमदासजी भी आ मिले। कोई ५० मील

चलने के उपरान्त रामपुर चट्टी पर कुली बीमार हो गया। वह नैपाली था, इस विचार से कि उसका शरीर श्लिष्ट है, उसने बोझा अधिक उठा लिया था। वहाँ से एक सिपाही की सहायता से दो कुलियों का, श्रीनगर तक, प्रबन्ध किया। एक ने तो सामान उठाया, दूसरे ने बीमार कुली उठाया। श्रीनगर में पहुँच कर उस रोगी कुली को अस्पताल में दाखिल कराया। पं० तारादत्तजी वकील आपके दर्शनों को आये। उनकी सहायता से कुली के लिये अस्पताल में देख-भाल करने का और भी अधिक अच्छा प्रबन्ध करा दिया। उसकी अवस्था देखने के निमित्त वहाँ ठहर गये, कि जब वह अच्छा होने लगे तो आगे को जावेंगे।

फिर उसकी मज़दूरी, कपड़े, छाता आदि डाक्टर के सुपुर्द कर दिया, कि जब वह अच्छा हो जावे तो उसको दे दिये जावें। उस डाक्टर से रसीद भी ले ली। कभी ख़ुद, कभी स्वामी नारायणहरिजी उसको देख आते थे। उसका रोग भयानक था, ३ दिन पीछे उस बेचारे की मृत्यु हो गई। फिर यह विचार कर कि कहीं उसकी सामग्री, ला-वारिस समझ, सरकार ही न खा जावे, वहीं ठहर गये। उसका पूरा पता ऋषिकेश में लिख लिया था, उसी पते से उसका रुपया, कपड़े आदि उसके घर भिजवा दिये। महाराज तो दया के स्रोत थे। जब हिंसक जन्तु पर भी कृपा रक्खा करते थे, तो मनुष्य पर अधिक दया क्यों न रखते। उनके लिये तो सब मनुष्य एक समान थे। उसी व्यापक-भाव से प्रेरित होकर उस कुली की रक्षा में इतनी चिन्ता करते रहे। जब प्राणी-मात्र के दुःख का विचार उनको विह्वल कर देता, तो फिर भला एक मनुष्य के लिये इतना यत्न क्यों न करते।

यहाँ से चलने लगे, तो पं० तारादत्तजी ने बहुत निवेदन

किया कि आप मेरी कोठी पर रहकर मुझे सत्संग का अवसर दें, पर आपने यही कहा, "बद्रीनारायण के दर्शन करके ही कहीं ठहरने का विचार करेंगे।" पण्डितजी ने कुछ पत्र भी दिये जिनकी सहायता से रास्ते में अथवा बद्रीनारायण में भी आप को ठहरने आदि में आराम मिलता रहे।

फिर धीरे-धीरे आगे चल दिये। प्रातःकाल को ५ बजे, नित्य-नियम से मुक्त हो, चल दिया करते। ५, ७ मील पर ठहर जाते, वहीं भोजन कर, रात्रि व्यतीत करते। फिर दूसरे दिन वहाँ से आगे रवाना हो जाते। रास्ते में जहाँ कहीं कोई बीमार होता, वहाँ उसको अमृत-धारा देते कि जिससे उसके कष्ट में कुछ कमी पड़ जाती।

इधर धर्मचन्द भी छः सप्ताह की छुट्टी लेकर पीछे से चल पड़े थे। पर वह इतनी शीघ्रता से चले कि रास्ते में महाराजजी को न मिल सके। रुद्र प्रयाग के रास्ते, केदारनाथ होकर बद्री-नारायण पहुँचे। वहाँ श्री दर्शनों के बिना चित्त बड़ा अप्रसन्न रहा। २२ दिन बाद घर को वापस जा रहे थे। नन्दप्रयाग के पास पहले नारायणदासजी को देखकर हक्के-बक्के रह गये। श्री स्वामीजी भी मिल गये। सारी उदासी का वेग उमड़ पड़ा। दर्शन करते ही रोने लगे। फिर आश्वासन दे आपने उन्हें साथ चलने को कहा। इधर इनको घर का मोह सता रहा था। २० दिन छुट्टी रहती थी। धीरज देकर, सुख-पूर्वक यात्रा करने अथवा सत्संग से लाभ उठाने के लिये साथ जाने पर राजी कर लिया। फिर साथ हो वे नन्दप्रयाग पहुँचे। उस दिन धर्मचन्दजी ने एकादशी का व्रत किया था। गुरुदेव ने उन्हें समझाया था कि, "तुमको अकेले जाने का फल मिल गया, क्योंकि तुम केदारनाथ आदि तीर्थों के दर्शनों से कृतार्थ हो आए, यदि हमारे साथ

जाते, तो यह तीर्थ तुम्हारे रह जाते। हम तो रुद्र प्रयाग से सीधे बद्रीनारायण जा रहे हैं। जैसा हुआ, अच्छा ही हुआ।" फिर चमोली पहुँचे। यहाँ से कई रास्ते फूटते हैं, यहाँ पर कई तीर्थों से यात्री लोग आकर ठहरते हैं, भीड़ खूब रहती है। इसलिये यही निश्चय हुआ कि २ मील आगे चलकर ठहरें। वहाँ पर धर्मचन्द्रजी का मन बहुत मचल पड़ा। पहले तो महाराजजी समझाते रहे, पर जब गहरा मोह देखा, तो कह दिया, 'अच्छा, दोपहर पीछे, ठंडाई पीकर घर चले जाना।' रोटी खाने के बाद, धर्मचन्द्रजी को आपने बुलाया और आज्ञा दी कि, 'ज़रा, मेरी पीठ दबा दो।' वे धीरे-धीरे कमर दबाते रहे, महाराजजी भी धीरे से मोह पर चोट लगाने लगे। आपने कहा, "लोगों को लौटते देख, घर जाने का वेग स्वाभाविक ही है, उधर स्त्री, माता-पिता आदि सम्बन्धी भी याद करते होंगे। उनके संस्कारों का असर भी पड़ता है। मोह इसीलिये बढ़ गया है। इस सब वेग को सहारना बड़ा कठिन है। वह शूर-वीर है, जो इस प्रकार के वेगों को सहारता है।" इस प्रकार आधा घण्टा तक उपदेश देते रहे। फिर आज्ञा दी, कि 'ठंडाई बनाकर पी लो, और घर लौट जाओ।' पर अब तो वेग शांत हो गया था। मोह के संस्कार सदुपदेश से छिन्न-भिन्न हो गये थे। सत्संग में रहकर ही अमृत-पान करने को चित्त चाहता था। वे, यहाँ से, साथ ही आगे को चल पड़े।

इस प्रकार चलते-चलते जोशीमठ पहुँचे। वहाँ पं० तारादत्तजी का पत्र कुँवर रामचन्द्र को दिया गया। उन्होंने तपोवन तो नहीं दिखाया, पर पास ही ज्योतिर्मठ स्थान दिखाया। यहाँ ही स्वामी शंकराचार्य्यजी ने कुछ तप किया था। जंगल भी है, एकांत स्थान है। कुछ कुटियाँ भी थीं। ज़रा टूटी पड़ी थीं।

दो-तीन फलों के पेड़ वहाँ थे। देहात भी १॥ मील की दूरी पर है, जहाँ से खाने-पीने का प्रबन्ध हो सकता था। क़रीब ही भविष्य केदार है, जहाँ पहाड़ का लिंग अपने आप बन रहा था। जब बद्रीनारायण का रास्ता बन्द हो जावेगा, तब भक्त लोग भविष्य बद्री की यात्रा को जावेंगे और केदारनाथ का रास्ता भी बन्द हो जावेगा, तो इस भविष्य केदार की पूजा होगी। इन दोनों स्थानों को देखकर फिर आगे को चल दिये। इस पड़ाव से चलने से पहले २२ मई को बा० अयोध्याप्रसाद फाटकवाला भी आ गये थे। वह भी साथ ही बद्रिकाश्रम को चले। महाराजजी की श्रद्धा थी, इसलिये आपने यहाँ से नंगे पाँव यात्रा की। २, ३ दिन में बद्रीनारायण पहुँचे। यहाँ पहुँचते ही धर्मचन्दजी को वह पण्डा मिला जिसके पास वह रह गये थे, तथा जिसके लोभ-व्यवहार से बिगड़कर, उसके पूछने पर, अपने पिता आदि का नाम व पता झूठ-मूठ कुछ का कुछ लिखा दिया था। यह सब, इस मोह से किया था कि पीछे कभी वह उनके सम्बन्धियों को वैसे ही दिक्क न करे। यह कथा तो महाराजजी को पहले ही सुना चुके थे। इसके प्रायश्चित्त के लिये भी वे इनको वापस लौटा लाये थे। पहले तो धर्मचन्दजी ने उससे क्षमा माँगी, फिर दूसरे दिन उपवास तथा मौन रहे। तीर्थ-स्थान में झूठ बोलने का उन्होंने इस प्रकार से अपने-आपको दण्ड दिया। यहाँ पहुँचकर, स्वामीजी ने पं० तारादत्तजी का पत्र, पं० योगेश्वरप्रसाद को दिया। वे वहाँ रावलजी के हिसाब आदि का कार्य्य करते थे। आपको वहाँ आपके साथियों सहित आराम से ठहराया गया। बद्रिकाश्रम के महन्त ने आप सबका आतिथ्य किया। यहाँ पर ३ दिन तक रहे। प्रातःकाल खिचड़ी का बाल-भोग लगता है

जो बच्चों तथा साधुओं को बाँटा जाता है। फिर दोपहर को भोज्य होता है। दाल-चावल का प्रसाद उन यात्रियों को मिलता है, जो भोग में खर्च देते हैं। शेष, कर्मचारी लेते हैं। पर अन्न कच्चा होने के कारण, वह भी यात्रियों के पास बेच देते हैं। जो बचता है वह पण्डा लोग लेकर अपने यजमानों को प्रसाद रूप में देकर उनसे भेंट लेते हैं। पर कच्चा होने से खाया नहीं जाता। लोग दाल का पानी और चावल तो खा जाते हैं, पर दाल छोड़ देते हैं। बहुत सा अन्न खराब होता है। ३ दिन तक स्वामीजी तथा उनके साथी इसी प्रकार ही निर्वाह करते रहे। यह भी आपके चित्त में आया कि रावलजी को कहा जावे कि ऐसा न किया करें कि जिससे यात्रियों को अश्रद्धा हो। रावल की प्रथा स्वामी शंकराचार्य्यजी ने शुरू की थी। यह नियम है कि दक्षिणी ब्राह्मण ही इस पदवी पर नियुक्त किया जाता है। बड़े रावल के होते ही, एक छोटा भी नियुक्त कर दिया जाता है। राजा गढ़वाल इसके लिये जिम्मेदार हैं, पर वह भी तरावन्कोर के राजा की सहायता से ही योग्य पुरुष तलाश करते हैं। यहाँ जो छोटा रावल था, उसको महाराजा तरावन्कोर ने यही राय दी थी कि कुछ काल अच्छे योगी-महात्माओं के दर्शन करने चाहिंये और उनके सत्संग में रहना चाहिये। इसलिये छोटे रावलजी अवसर प्राप्त कर खूब सत्संग करते रहे।

इन दिनों में श्री स्वामीजी बड़े प्रातः मूर्ति के दर्शनों को जाते जबकि पुजारी लोग उसके वस्त्र उतारकर उसको स्नान कराते थे। ऐसी अवस्था में बद्रीनारायण के दर्शन करने से आपका चित्त प्रसन्न होता था। इस मन्दिर में तो आपका चित्त अधिक शांत रहता, पर बद्रीनाथपुरी में वैसा नहीं रहा। स्थान-स्थान के

वायु-मण्डल को आप बड़ी सूक्ष्मता से अपने चित्त पर उसके अच्छे-बुरे प्रभाव के कारण झट जान जाते थे।

पुनः आप गंगा-पार काली कमली वाले के आश्रम में साधुओं के दर्शनों को गये। वहां एक ब्रह्मचारी श्रीमद्भागवत की कथा करते थे। प्रेमवश कथा कहते-कहते रो दिया करते थे। उनके प्रेम की स्वामीजी बड़ी प्रशंसा करते थे।

पं० योगेश्वरप्रसाद की राय से कल्पेश्वर में रहने का निश्चय हुआ। उसका वर्णन सुनने से ही चित्त प्रसन्न होता था। रावलजी ने भी कहा कि यदि बद्रीनारायण ही रहने का विचार हो, तो वहीं कुटी बनवा दी जावें। पर कल्पेश्वर के लिये चित्त अधिक था, इसलिये वहीं ठहरने का निश्चय करके वापस चल दिये।

वापसी पर रावल के आदमी जोशी मठ तक पहुँचा गए। यहां किसीने संस्कार डाले कि कल्पेश्वर के मकान वर्षा के कारण बह गये हैं। इसका पता करने के लिये आप जोशी-मठ में रुक गये। हिलांग के एक दूकानदार से पत्र द्वारा पूछा। तारकानन्दजी भी वहां से पता लेने के लिये भेजे गये। यहाँ ही बद्री के पुजारी मिल गये जिनके नाम योगेश्वरप्रसाद जी ने चिट्ठी दी थी। उनसे पता चला कि मकान वहां अभी तक ठीक है। तब आप जोशी मठ से नीचे उतरे। हिलांग से धर्म-चन्दजी तो वापस मुलतान लौट गये। नारायणदासजी को भी वापस जाने को कहा; पर वह हठ से साथ-साथ कल्पेश्वर जाने लगे। रास्ता में जब उन्हें लहू के दस्त होने लगे, तो फिर अपनी अवस्था बिगड़ती देख वापस घर को चले गये। महाराजजी, स्वामी नारायणहरिजी, स्वामी तारकानन्दजी और एक अन्य ब्रह्मचारी के साथ कल्पेश्वर पहुँचे।

इस स्थान का वर्णन आप इस प्रकार लिखते हैं:—'यह स्थान घने जंगल में है, संगम पर है, इसलिये सर्दी बहुत पड़ती है। निर्जन है, बस्ती से एक मील की दूरी पर है।' केदार-खण्ड ग्रन्थ में यह पंचकेदारी में गिना जाता है। यहाँ उर्व ऋषि ने तप किया था। इसी नाम से एक मील पर उरगम ग्राम भी है। यहाँ गुरुदेव अपने तीन शिष्यों सहित जून के मध्य में पहुँचे। वर्षा शुरू हो चुकी थी। पहले पहल तो स्थान को कूट-पीट कर ठीक कर दिया। धर्म-शाला के उपरले-हिस्से में ठहरे। शीघ्र ही आस-पास से ५-६ मास के लिये लकड़ी इकट्ठी कर ली गई। ग्राम से दुकानदार, खान-पान का सामान भेज देता था। कभी-कभी भिक्षा भी कर लेते। कल्पेश्वर में शिवजी का मन्दिर था। आदि बद्री में जानेवाले कभी-कभी कोई यात्री यहाँ आकर भण्डारा करते, तो उसमें भी अनुकूलता के अनुसार शामिल हो जाते। थोड़े दिन पीछे प्रहलादपुरी (मुलतान के महन्त बाबा बजरंगदासजी भी आ गये। जम्मू से एक सज्जन जिनका एक हाथ टूटा हुआ था, यहाँ पर सत्संग करने आये, थोड़े दिन रहकर चले गये। यहाँ पिस्सू बहुत थे, जिससे शारी-रिक कष्ट काफ़ी रहता था। दो, तीन रात तो नींद न आती, फिर एक रात आ जाती। इतना होते हुए भी चित्त बड़ा प्रसन्न रहता। ध्यान-भजन में मन ख़ूब लगा करता था। बिना परि-श्रम ही वृत्ति शीघ्र आत्माकार हो जाती थी। यह तो दूसरों का हाल था, पर महाराजजी को जो आनन्द होता हो, वह बिना उन जैसा निर्मल चित्त प्राप्त किये के समझ में ही नहीं आ सकता। वहाँ रहते हुए, दोपहर को प्रति दिन शिव पुराण की कथा होती थी। योग सम्बन्धी अनेक बातों का निरूपण देख आप बड़े प्रसन्न हुआ करते। पर यह सब बातें प्रायः अलंकृत भाषा में

हुआ करती थीं, जिसका समझना साधारण पुरुष के लिये दुष्कर है । गुरुदेव तो अपने अनुभव के आधार पर ही उन सबका अर्थ समझाया करते थे । इस पुराण को देखने से यह सब पर प्रकट हो गया, कि पुराणों में भी ऐसा बहुत ज्ञान है, जो अलंकारों के कारण समझ में कम आता है ।

देहात के लोग कहते थे कि कल्पेश्वर में ऊपर, शिव मंदिर में, रात्रि को शिव के गण आकर ऊधम मचाते हैं । पुजारी तो रोज ग्राम को लौट जाया करते थे । एक दिन श्री स्वामीजी वहाँ देखने के लिये गये । दियासलाई, मोम-बत्ती साथ ले गये कि कहीं भ्रम न हो जावे । यहाँ आप श्रद्धा और अन्वेषण बुद्धि को एक साथ प्रयोग में ला रहे थे । रात को वहीं रहे । वर्षा के कारण मंदिर चूता था, इसलिये वहाँ नींद तो नहीं आई, पर शेष कुछ बात का बोध नहीं हुआ । यह गाथा भी ऐसे ही चली हुई है ।

दाल तो मिला नहीं करती थी । जंगल से वनस्पति तथा साग ढूँढ लेते । बथुवा, चौलाई, लिंगड़ा इत्यादि साग मिल जाते थे । पीछे कद्दू भी मिल जाया करता । फलों का मौसम आ गया था । अखरोट, खुरमाणी, सेब, अंजीर, नासपाती, आलूचे आदि अनेक फल जंगल से प्राप्त हो जाते । फलों के कुछ पेड़ ग्रामवालों ने सेवा-भाव से उधर ही लगा रक्खे थे । भिक्षा के अन्न आदि से आपका चित्त बहुत प्रसन्न रहता था । तीन मास तक आप बड़े आनन्द पूर्वक रहे । सर्दी तो बरसात में भी विशेष रहा करती थी । लकड़ी रात को भी जलती रहती । १६) रु० का एक बहुत भारी कम्बल लिया गया, जो सबके ऊपर डाल दिया जाता था और नीचे दूसरे कपड़े रहा करते । २८ सितम्बर १६२५ को आप सब वहाँ से चल दिये । हिलांग

से होते हुए जोशी मठ पहुँचे यहाँ से ही नीती स्टेट (तिब्बत) को रास्ता जाता है, और भविष्य बद्री का रास्ता भी यहीं से फूटता है। आप अब भविष्य बद्री को जा रहे थे। जोशी मठ के रामलाल (शिलाजीत के व्यापारी) ने, उधर के एक ग्राम के चौधरी के नाम चिट्ठी दी। वहाँ दुकान तो नहीं थी, इसीलिये इन्हीं से सहायता लेने का विचार था। रास्ते में आप तपोवन होते हुए उसी ग्राम में पहुँचे। यहाँ, चौधरीजी ने रात भर के रहन-सहन, अथवा खान-पान का प्रबन्ध कर दिया। प्रातः उन्होंने एक आदमी साथ दिया और उसे कह दिया—"आपको भविष्य बद्री के दर्शन कराके, शाम को वापस लौटा लाना।" रास्ते में भिक्षा करते हुए वहाँ दोपहर को पहुँचे। स्नान करके, भोजन बनाया गया। स्थान बड़ा रमणीक था। शीत भी बहुत थी। यहाँ पर कई एक शीतल अथवा गर्म जल के चश्मे थे, पर नदी कोई नहीं थी। समीप ही बर्फ़ानी पहाड़ थे। जो मूर्ति वहाँ बन रही थी, उसको आपने बड़े ग़ौर से देखा, कुछ-कुछ चिन्ह दिखाई देते थे। वहाँ धर्मशाला कोई नहीं थी। यात्री भी यहाँ बहुत कम आते हैं। जो आते हैं, वह उसी दिन लौट जाते हैं। लौटते समय रास्ते में अँधेरा हो गया। जंगल भी घना था। रास्ता बड़ा विकट था। चढ़ाई-उतराई में बड़ा कष्ट हुआ। ख़ैर, शाम को अँधेरा पड़ने के थोड़ी देर बाद आप वापस पहुँच गये। ग्रामवालों ने दूध-चाय का प्रबन्ध कर दिया। यहाँ भी रात्रि को शीत बड़ी थी। जैसे-तैसे करके रात काटी। प्रातःकाल वहाँ से चलकर उसी दिन ही जोशी मठ लौट आये। यहाँ एक दिन आराम करके फिर दूसरी बार बद्रीनारायण गये। अब यात्रियों की भीड़ भी कम थी। वहाँ ३ दिन रावलजी के मेहमान रहे उसके बाद खाने-पीने और रहने का स्वतन्त्र प्रबन्ध

कर लिया । यहाँ से वसुधारा गये । वहाँ जल की एक बड़ी धारा पड़ती थी । बर्फ़ के ऊपर से गुजरकर जाना पड़ता था। यहाँ ही स्नान कर भोजन पाया । फिर सायंकाल को वापस लौट आये।

स्वामीजी बड़ी प्रसन्नता से श्री बद्रीनारायणजी के दर्शन किया करते थे । चरणामृत पीते ; आरती के समय भी वहीं रहते । वैसे तो घंटों ही मन्दिर में बैठे रहते । सन्त तो सब प्रतिमाओं में साक्षात प्रभु को देखते हैं । स्थान पवित्र होने के कारण आपका चित्त प्रसन्न रहता था । अबकी बार बड़े रावल का देहान्त हो चुका था, छोटे रावल गद्दी पर बैठ चुके थे। उन्होंने बड़ी भक्ति से महाराजजी को वहीं रहने के लिये आग्रह किया । आगामी वर्ष आकर रहने के लिये भी कहा। पर स्वामीजी ने तो, जैसा कि उनका स्वभाव ही था, न कोई वचन दिया, और न ही वहाँ रहे। शीघ्र ही लौट पड़े। जोशीमठ होते हुए हिलांग पहुँचे । यहाँ बजरंगदासजी को आज्ञा मिली कि कल्पेश्वर में सर्दी भर रहें, वहीं रहकर चान्द्रायण व्रत भी करने को कहा । आज्ञा अनुसार वह वहाँ रहकर तप करने लगे । एक कम्बल भी महाराजजी ने उसे दे दिया, और उचित उपदेश दे नीचे उतरे । धीरे-धीरे पड़ाव पूरे करते-करते श्रीनगर आये । पं० तारादत्तजी पौड़ी से वहाँ आये हुए थे। वह हर आदित्यवार को पौड़ी से श्रीनगर आया करते थे। यहाँ आप २-३ रोज़ रहे, फिर कुली ले कर देवप्रयाग को चले गये । पं० तारादत्तजी सत्संग के बड़े इच्छुक थे । उन्होंने आगमी वर्ष आने के लिये बहुत आग्रह किया । यहाँ से चलकर स्वामीजी देव प्रयाग पहुँचे। वहाँ पर एक दुकानदार द्वारा ऋषिकेश तक के कुली का प्रबन्ध कर नीचे उतरे । रास्ते में एक

मन्दर चट्टी आती है, वहाँ बड़ी वर्षा हुई। इससे वहाँ एक रोज रुक जाना पड़ा। दो रोज स्वर्गाश्रम में ठहरे। फिर श्री महाराजजी सीधे कनखल पहुँचे और कुछ रोज वहाँ ठहर गये।

इन्हीं दिनों में कृष्णकुमारजी भी यहाँ आपके दर्शनों को आये। उनकी स्त्री का देहान्त हो चुका था। पहले तो बन्धन से छुटकारा पाने पर प्रभु का धन्यवाद दिया। पर फिर एक मित्र ने संस्कार डाल दिया कि यदि कोई बड़ी सुशीला अथवा योगिन स्त्री मिले तो वह मोक्ष-साधन में सहायक होगी। इसी मोह में भटक रहे थे। यहाँ दर्शन करने आये, तब दो दिन के सत्संग से फिर कुछ विचार स्थिर हो गये। गुरुकुल काँगड़ी के भक्त भी यहाँ कुछ दिन तक सत्संग से लाभ उठाते रहे।

यहाँ से स्वामीजी नवम्बर के पहले सप्ताह में जालन्धर पहुँचे। जालन्धर में स्वामीजी महाराज साधुसिंहजी के पास ठहरे। एक अलग मकान में स्वामी नारायणहरिजी रहे। पीछे से स्वामी विशुद्धानन्दजी अपने शिष्य स्वामी ईशानन्दजी के साथ दर्शनों को आए। नन्दलालजी भी लाहौर से सत्संग करने के लिये पहुँचे। १५ दिन तक रहकर, जालन्धर अथवा कपूरथला के सत्संगियों को कृतार्थ करते रहे। फिर मुलतान से सरदार जैसासिंहजी आपको लेने के लिये आ गये थे, अतः स्वामीजी शीघ्र ही उनके साथ नवम्बर के अन्त में मुलतान पहुँच गये।

इक्कीसवां प्रकरण (भूत-बाधा)

मुलतान में पहले तो आप श्मशानभूमि वाली सड़क पर एक मकान में रहे। आस-पास मिट्टी बहुत थी, इससे घूमने में दिक्कत पड़ती थी। श्मशान से कभी-कभी शव के जलने की दुर्गन्ध भी आती थी। वैसे यह मकान था भी छोटा। इससे यही विचार हुआ कि भाई तोलाराम कोड़ारामवाली सराय में चले जावें। बड़े दिन की छुट्टियों में पं० ज्योतिप्रकाश वकील और लाला जयगोपाल बजाज, जम्मू से सत्संग करने आये। तब आप यहाँ से शीघ्र ही उसी सराय में चले गये। वह लोग १० दिन रह कर उपदेश लेते रहे। एक दिन ज्योतिप्रकाशजी ने रात को वेदान्त के सम्बन्ध में कुछ बात-चीत चलाई। प्रश्न-उत्तर होते-होते प्रातःकाल चार बज गये। इस प्रकार स्वामीजी शिष्य की हित-कामना को लक्ष्य में रख अपने स्वास्थ्य का भी कुछ खयाल नहीं करते थे। उधर जयगोपालजी पूजा-तर्पण में बहुत श्रद्धा रखते थे। उनके साथी वेदान्त के प्रभाव में इस कर्मकाण्ड की हँसी उड़ाते थे। इन्होंने स्वामीजी से पूछा कि 'मैं क्या करूँ ?' महाराजजी ने समझाया, "अब जब तुम आन्तरिक साधन करते हो, तो पूजा आदि की जरूरत नहीं। ध्यान-जाप पूजा से श्रेष्ठ है। यदि उनको छोड़ दो, तो कोई हानि नहीं। बहुत चित्त करे, तो थोड़ा सा कर लिया करो।"

स्वामी सोमतीर्थजी और स्वामी विशुद्धानन्दजी भी यहाँ आकर सत्संग करते रहे। ब्रह्मचारी त्रिलोकनाथ चेतन भी गुरु-सेवा में रहकर साधन में लगे रहे। इस वर्ष भी सबके भोजन आदि का प्रबन्ध पं० शिवरामदासजी की ओर से हुआ करता

था। सब सामग्री वहीं पहुँचाते। महाराजजी और स्वामी नारायणहरिजी का भोजन प्रो० सदानन्दजी के घर से आया करता था।

स्वामी विशुद्धानन्दजी के भजन में कुछ समय से विघ्न पड़ता था। उनको ऐसा निश्चय हुआ कि कोई दूसरा व्यक्ति उनके भजन में बाधा डालता है। फिर किसी प्रकार उनको ऐसा विचार हुआ कि पिछले जन्म का कोई साथी भूत बनकर कष्ट देता है जिसके साथ उन्होंने पिछले जन्म में कुछ बुराई की थी। उसके निवारणार्थ कुछ दिन प्रायश्चित्त भी किया। महाराजजी ने सब सत्संगियों को भूत के सम्बन्ध में कह दिया कि, 'ऐसी भी बाधायें आती हैं'। इस पर कुछ आर्य्य समाजी बिगड़े। दो साधु और एक गृहस्थ स्वामीजी से आकर वाद-विवाद करने लगे। कुछ बुरा-भला भी कहा। महाराजजी शांति पूर्वक सब सुनते रहे। फिर यही कहाः—"विशुद्धानन्दजी आर्य-समाजी हैं, विद्वान भी हैं, उनका अनुभव है, सो उन्हींसे जाकर पूछ लीजिये"।

इस बार भी स्त्रियां बहुत आती रहीं। महाराजजी को उनसे घृणा भी होती, पर फिर भी ऐसा प्रतीत होता, कि मानों कोई जबरदस्ती उनकी सेवा में उन्हें लगा रहा है। ऐसी ईश्वरीय प्रेरणा के अधीन होकर ही वह सब कार्य करते रहे। इन दिनों में धर्मचन्दजी फिर पास रहकर सत्संग से लाभ उठाने लगे। उनकी दृढ़ता से प्रभावित हो उनकी धर्मपत्नी भी इधर प्रेरित हुई। महाराजजी ने पति-आज्ञा पर जोर दिया। 'जब तक सासु-सुसर की सेवा अथवा पति की प्रसन्नता नहीं प्राप्त की, तब तक शेष साधन का अधिकार नहीं।' वह देवी भी शीघ्र बदलने लगी और धीरे-धीरे सहायक बन गई।

जब तक काम के आवेश में संसार बुरी तरह फँसकर

कष्ट सहारता रहता है, तब तक स्त्रियों का उपदेशार्थ महात्माओं के पास आना-जाना साधारण लोगों की बुद्धि में खटकता है। कई एक तो स्वार्थवश भी वृथा दोपारोपण करने लगते हैं। पर जहाँ दामन पाक है, वहाँ घबराहट नहीं हो सकती। महाराजजी तो ईश्वर-आज्ञा मान सब निन्दा-अपमान सहर्ष सहते रहते थे। जब बहुत स्त्रियां आने लगीं, तो कुछ कड़ाई भी करने लगे। ऐसा भी आदेश किया कि 'जो देवियाँ साधन तथा उपदेश में आवें, वह चक्की चलाया करें। खाली समय में चरखा चलावें। आहार-व्यवहार को शुद्ध करें।' यह भी विचार था, कि परिश्रम छोड़ने से देवियाँ प्रायः रुग्ण रहती हैं और अनेक व्यसनों में फँस जाती हैं। इस प्रकार से जहाँ उनको सत्संग का अवसर देते, वहाँ उनके जीवन को ढालने में भी भरसक यत्न करते।

पं० ज्येष्ठानन्द और पं० सदानन्दजी भी दो वर्ष से सत्संग कर रहे थे। इस वर्ष कुछ साधन में लगे। मा० कल्याणदेव, डाक्टर राजाराम, प्रो० दौलतराय आदि अनेक सज्जन दर्शन करने आये। प्रो० दौलतरायजी तो साधन में भी प्रवृत्त हुए। हरीरामजी भी रियासी से श्रीचरणों में बैठने को आए। चार-पांच वर्ष तो मूर्खता अथवा अज्ञान में लोगों की सुनी-सुनाई बातों में विश्वास करके महाराजजी के सामने अथवा पीछे पेट भरकर निन्दा करते रहे। पर महाराजजी तो सर्वदा उदार-भाव से उनको समझाते ही रहते थे। धीरे-धीरे सब भेद खुल गया। पश्चात्ताप किया, क्षमा माँगी और जीवन सुधारने के लिये आश्रय की याचना की। यहाँ तो कोई द्वेष था नहीं; सेवा में रखकर भजन-साधन में लगा दिया। उस असीम अनुग्रह के लिये वे बड़े कृतज्ञ हैं, और अब बड़े त्याग-भाव से जीवन-सुधार में लगे हुए हैं।

कालेज और स्कूल के कई विद्यार्थी भी सत्संग में आते थे। उनको आप यही उपदेश देते कि "खर्च कम किया करो, माता-पिता से लड़ाई-झगड़ा करना अनुचित है। उनकी सेवा में लगे रहना ही श्रेयस्कर है। तुम्हारे अधिक खर्च के कारण तुम्हारे पिता छल-कपट करके अधिक रुपया कमाते हैं। इस पाप के तुम भी भागी होगे। बहुत मीठा, चटपटा न खाया करो। सादगी से जीवन व्यतीत करने में बहुत लाभ है।" स्वामी नित्यानन्दजी पिछले साल कल्पेश्वर आए थे, उस समय स्वामीजी ने उनको अनुकूल ऋतु न होने के कारण लौटा दिया था। वे अब फिर सेवा में आए, यहाँ रहकर उन्होंने क्रियाओं आदि का अभ्यास किया। साधन में भी लगाये गये। आपने उन्हें बड़े कड़े नियम में रक्खा, जिससे शीघ्र कुछ अनुभव होने लगे। एक वृद्ध महात्मा भी आए थे। वे पहले भी मिल चुके थे। श्रीनगर में सर्व प्रथम उन्होंने स्वामीजी के दर्शन किये थे। यहाँ महाराजजी उन्हें अपनी निगरानी में रखकर साधन कराते रहे।

इस वर्ष शिवरामदासजी ने जाते समय सब साधुओं को रेल का किराया दिया; और भी जो कुछ सेवा हुई, वे बड़ी श्रद्धा से पूरी करते रहे।

इन दिनों आप यथार्थ बोध पर अधिक जोर देते थे, और कहते थे कि "यम-नियम पालन करने से ही चित्त शुद्ध होता है, और फिर ठीक-ठीक ज्ञान होने लगता है। उसी से ही राग-मोह की जड़ कटती है। सत्य और ब्रह्मचर्य्य मुख्य हैं। इनके अनुष्ठान से ही कल्याण का मार्ग सूझता है, और उसमें दृढ़ता होती है। इसी प्रकार से नाम की इच्छा भी महाँ दुःख का कारण है। जब कोई प्रशंसा करे, तो उसमें मस्त न हो जाओ, पर सचेत होकर यही सोचो कि यह अपना मतलब निकालने

के लिये ही ऐसा कर रहा है। मोह में पड़ कष्ट बढ़ाना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। निन्दा से भी घबराना नहीं चाहिये। "यदि हम में दोष हैं, तो उसने हमको सूचना देकर कृतार्थ किया है, नहीं है, तो आगे के लिये चेतावनी कर दी है।" एक दिन वीर-भानजी दर्शनों को आये। उनके पुत्र नहीं था, वह इसी विचार से आये थे कि स्वामीजी महाराज से याचना करके ऐसा आशीर्वाद प्राप्त करें कि पुत्र कामना पूरी हो जावे। जब सब सत्संग में बैठे, तो स्वामीजी ने यही प्रसंग चलाया "लोग साधुओं के पास पुत्र माँगने के लिये आते हैं। भला, हमारे पास पुत्र कहाँ से आये, रोटी के लिये तो दूसरों के पराधीन हैं; यदि ऐसा सामर्थ्य हो तो फिर मारे-मारे क्यों फिरते रहें। पुत्र प्राप्त करने के लिये तो शास्त्र-अनुसार पुत्रेष्टी यज्ञ आदि उपाय करने चाहिये।" वह बेचारा हैरान था। उसको पहले से ही चेतावनी मिल गई, वह अपनी इच्छा को अन्दर ही रखकर चला गया। फिर अपने साथियों से कहने लगा कि, "महाराजजी तो पहले से ही हमारे हृदयों को भाँप जाते हैं।"

एक दिन जब भोजन करने लगे तो चित्त प्रसन्न न हुआ। भक्त से पता चला कि घर में कुछ कलह था, उसी अवस्था में रहकर भोजन तय्यार किया गया है। तब स्वामीजी ने समझाया कि, "ऐसा नहीं करना चाहिये। हृदय शान्त कर के ही काम करना चाहिये, नहीं तो दूसरों की हानि होती है; इससे पुण्य की अपेक्षा पाप के ही भागी बनोगे।" महाराजजी का चित्त बड़ा सूक्ष्म था, इसीसे सब बातें अनुभव के आधार पर जान जाते थे।

कृष्णकुमारजी के पिता का देहांत हो गया था। वह घर से लौटे और स्वामीजी के चरणों में ३ दिन रहकर, मोह-शांति

का उपदेश ग्रहण करते रहे। इस आपत्ति से कुछ नई उलझनें तो पड़ गईं, पर अभी तक तो यही विचार था कि स्वतन्त्रता से ही जीवन निर्वाह कर कल्याण के पुरुषार्थ में लगे रहें।

एक दिन सेठ प्रभुदयालजी दर्शनों को आये। वे पूछने लगे कि, "मैं तो अच्छा काम करता हूँ, क्योंकि इससे बहुत लोगों को लाभ होता है, अनेकों की पालना होती है, बड़ा परोपकार होता है।" स्वामीजी ने कहा, "यह झूठ है। यदि दो-चार दिन कारखाना बन्द कर दो, तो पता चलेगा कि किसके लाभ के लिये काम होता है। परोपकार तो निष्कामता से होता है। यह धारणा बड़ी ऊँची है, अभी उसको समझना भी बड़ा कठिन है; उस पर चलना तो बड़ा ही दुष्कर है। जब तक संसार में राग है, तब तक ऐसा कार्य होना सम्भव नहीं।"

इस प्रकार कई दिन तक पुराने अथवा नये सत्संगियों को अपने अमृत रूपी पावन उपदेशों से तृप्त करते रहे। शरीर की परवाह न करते हुए, जितना समय होता साधकों अथवा सत्संगियों को देते रहे। इस वर्ष अनेक साधकों को भजनोपदेश दिया। एक बड़ा कमरा इसी काम के लिये रख छोड़ा। वहीं साधन बताया करते। कभी पास बैठकर सहायता देते रहते, कभी युक्ति बता-छोड़ देते, वे अपने आपही साधन करते रहते। उस स्थान का वायु-मण्डल ऐसा हो गया था कि वहाँ बैठ जाने से साधक का चित्त ऐसा शांत होता कि वैसा घर में नहीं हुआ करता था। यह महाराजजी के पवित्र हृदय का प्रभाव था।

आपने १६ फ़रवरी को प्रातःकाल सूचना दी कि आज हम चले जावेंगे। दो रोज पहले नारायणहरीजी को भी तय्यार रहने के लिये आगाह कर दिया था। दोपहर को बहुत देवियां और पुरुष स्टेशन पर छोड़ने गये। यहां से चल आप जालन्धर

उतरे। साधुसिंहजी के यहां एक सप्ताह रहे। पीछे से स्वामी सोमतीर्थजी, स्वामी विशुद्धानन्दजी, और ब्रह्मचारी त्रिलोकनाथचैतन्यजी भी पहुँच गये। यह सब लोग अलग मकान में ठहराये गये, और इनका भोजन ला० कर्मचन्दजी के यहां बनता था। प्रो० लालचन्दजी भी यहाँ दर्शनों को आये। सत्संग प्राप्त कर लौट गये। यही विचार कर गये कि गरमी की छुट्टियों में, स्वामीजी के पास पहुँच कर बद्रीनारायण की यात्रा में जीवन को पवित्र करेंगे।

स्वामीजी तो सब संसार को दुःख का कारण समझते थे। उनका मन किसी वस्तु में अटका ही नहीं था। सारा व्यवहार नाटक वृत्ति से करते रहते थे। एक दिन एक संन्यासी आपसे कुछ ईश्वर सम्बन्धी चर्चा कर रहे थे। उसी समय एक गृहस्थी वहां आये, और अपना कुछ दुखड़ा रोते रहे। फिर स्वामीजी उससे भी वैसी बातें करते रहे। यहां तो किसीमें राग थां नहीं, जब सब कुछ गड़बड़ है, तो फिर कोई बात बुरी कैसे लगती। गृहस्थी के साथ भी वैसी ही गम्भीरता से बातें करते रहे जैसा कि पहले कर रहे थे। महाराजजी तो ईश्वर-विवाद को भी निरर्थक ही कहा करते थे। आपका यही विचार था कि विषय-वासना तमाम करना ही परम आवश्यक है, शेष सब झगड़े आप ही मिट जाते हैं। जब वह सज्जन चले गये, तो वह साधू कहने लगे कि "लोग महात्माओं के पास आकर भी वृथा बातें करते रहते हैं और अपना अथवा दूसरों का समय योंही नष्ट करते हैं।" स्वामीजी महाराज हँस पड़े और कहा, "अपनी बात को कोई वृथा नहीं समझता, दूसरे की बातें ही फ़जूल जँचती हैं, वास्तव में है सब ही गड़बड़।"

बाईसवां प्रकरण (निष्काम उपदेश)

२६ फ़रवरी को आप कलकत्ता मेल से जालन्धर छोड़कर रात को एक बजे नजीबाबाद पहुँचे। रात भर वहीं ठहरे। प्रातः ६ बजे वहाँ से चल ७ बजे कोटद्वार पहुँच गये। यहाँ से चाय आदि पी शीघ्रही लारी द्वारा दोगड्डा को चले गये। यह स्थान कोटद्वार से १० मील ही है। यहाँ पर अन्य स्थान न मिलने के कारण एक हिन्दू होटल में ठहरे। मिर्चाँ का भोजन मिला। रुका हुआ ज़ुकाम जारी हो गया। यहाँ दो-एक दिन रहे, होली भी यहीं की। फिर यहाँ से दूसरी मार्च १६२६ को चल दिये। १२ मील तक खूब चढ़ाई थी। सामान के लिये खच्चर था। शरीर कमज़ोर होने के कारण उसी पर चढ़ भी लेते। रास्ते में वर्षा हुई; शीत अधिक लग गई। फिर एक धुवां से भरे मकान में रात को ठहरना पड़ा। ज़ुकाम ने सब ओर से सहायता प्राप्त कर ख़ूब आनन्द दिखाया। यह सब होते हुए आपने धीरे-धीरे सफ़र जारी रक्खा। ६ मार्च को पौड़ी पहुँच गये। यहाँ पं० तारादत्तजी, आपको उसी दिन सायंकाल के समय, ४ मील के फ़ासले पर, अपने ग्राम कफ़लसैन को ले गये। पहले तो आप तीसरी मन्ज़ल पर ठहराये गये, पर वहाँ शीत अधिक होने के कारण ज़ुकाम और भी बढ़ गया। फिर नीचे की मंज़ल में उतर आये। वर्षा होने से मकान कुछ चूता था। कपड़े तो मुलतान से प्रो० सदानन्द जी ने पहले ही काफ़ी बनवा दिये थे, वहाँ से भी बहुत मिल गये; पर ज़ुकाम बिगड़ता ही गया। फिर बिलकुल नीचे आकर रहने लगे। आस-पास पहाड़ों पर बर्फ़ पड़ी थी। इधर जब सब कुछ करते हुए भी ज़ुकाम बढ़ता गया, तो तारादत्त जी ने डाक्टर बुला लाने को कहा। अब

स्वामीजी ने स्वतन्त्र होकर इस ज़ुकाम को ठीक करने का निश्चय कर लिया। धोती कर, मूंग की दाल का पीना शुरू किया। ज़ुकाम तो बन्द हो गया, पर दोपहर पीछे जाड़ा देकर बुख़ार आने लगा। यह सोच कि वात के विकार से कहीं गठिया न हो जावे, मूंग का पानी छोड़ दिया। त्रिकुटे की चाय पीने लगे। शीघ्र ही बुख़ार भी दूर हो गया और ज़ुकाम भी कष्ट देने से रुक गया। यहाँ पर आप २६ मार्च तक रहे।

रायबहादुर पं० तारादत्तजी बड़े साधु स्वभाव के पुरुष हैं। आप वकील होते हुए भी बड़े संतोष से रहते हैं। जितनी फ़ीस कोई दे देते हैं, उतने में उसका काम कर देते हैं, पर यत्न पूरा करते हैं। पहले तो पूरी खोज करते हैं, यदि पता लगे कि झूठा मामला है, तो उसको नहीं लेते, पर पीछे से जैसा कुछ हो निपटाना पड़ता है। खान-पान, पहरान भी आपका बड़ा सादा है। प्रातः खाना खाकर पौड़ी चले जाते हैं। सारा दिन वहीं रह अपना कार्य्य करते रहते हैं, सायंकाल को लौटकर घर आ जाते हैं। खेती, ज़िमींदारी अथवा शेष सब सेवा का काम उन की धर्मपत्नी बड़ी चतुरता अथवा दक्षता से निबाहती हैं। घर में भी देवरानियों आदि से बड़े प्रेम से रहती हुई, पं० जी की सेवा चाव से करती रहती हैं।

बर्फ़ानी पहाड़ सामने थे। इससे शीत बड़ी थी। मुलतान से आप रुद्रनाथ की तय्यारी कर आये थे। गरम मोज़े भी साथ लाये थे। स्वामी नारायणहरीजी ने मोज़े पहन लिये। महाराजजी ने देखकर कहा, "यह सामान तो बरफ़ानी स्थान के लिये था। यदि तुम यहाँ ही सर्दी नहीं सहार सकते तो वहाँ क्या करोगे। अच्छा तुम नीचे रह जाना, मैं ही अकेला वहाँ जाऊँगा।" ऐसा उपदेश सुन वे भी सर्दी सहन करने लगे,

मोज़े उतार दिये, इससे उनकी सहन-शक्ति बढ़ गई। स्वामीजी बड़ी शैली से दूसरे का हित करते थे। इस बार ज़ुकाम में बहुत कष्ट हुआ, इसका कारण कुछ और भी था। महाराजजी एक पत्र में, स्वयम्, पौड़ी से लिखते हैं। "इस दफ़ा का नज़ला कुछ भयानक रूप में था। मुलतान में मुझे पहाड़ आने का भय तो होता था; जिससे मैंने स्त्रियों को नहीं रोका था, कि शायद शरीर का पहाड़ में क्या हो जाये, तब इनकी वजह से, यदि कोई कष्ट हो तो सहार लेना ठीक है। जालन्धर में भी, दूर-दूर से लोग आते-रहते थे, इसलिये आराम नहीं मिलता था, जब तक कि रेल गाड़ी में कोटद्वार के लिये नहीं बैठ गया था। परन्तु इस over work (कार्य्याधिक्य) का असर शरीर पर काफ़ी पड़ गया था, यही कारण है कि नजले की शकल में भोगना पड़ा। शरीर काफ़ी कमज़ोर हो गया है, परन्तु अब आराम ही आराम है, इसलिये ठीक हो जायगा। कल और था, आज और है।" मार्च २२ को ऐसी अवस्था थी। शीघ्र ही यहाँ से जाने का विचार था। अपने सेवक के जीवन में कुछ कमज़ोरी आ रही थी, उसको चेतावनी देते हुए, अपने भीतरी भावों को किस नम्रता और शील से प्रकट करते हैं। "जब मैं एकान्त में होता हूँ, तब इस जीवन को निरर्थक समझते हुए यही चित्त में आता रहता है कि प्रभु की गोद में बैठकर शरीर छोड़ दूँ। परन्तु तीव्र वेग नहीं होता। पीछे यह ख़याल आ जाता है, जब तक शरीर ने रहना है, तब तक तो रहे ही गा, इसलिये लोगों की पहुँच में रहूँ, जो अधिकारी होंगे फ़ायदा उठा लेंगे। यह कश-मकश कई साल से चल रही है और इसी पर चलता हुआ कष्ट भी सहारता रहता हूँ। मालूम होता है, यह तेरे अन्न का असर है, क्योंकि तू कष्ट सहार कर कमाता

है, और मेरे को खिलाता है. इसलिये मुझे भी ऐसे ही सूझती है। इसमें शक नहीं कि तेरी ही शक्ति से मेरे जरिये से लोगों का जो कुछ होता है. सो होता है, वरना मुझ जैसे तुच्छ जीव में इतनी हिम्मत कहाँ है। जब कभी तू सत्य के ग्रहण तथा धर्म से खिसकेगा, तभी मैं भी ढोला पड़ जाऊँगा। इसलिये तुझे चितावनी देता रहता हूँ, कि यदि तुझे यह मंजूर है कि मुझसे काम कराये, तब विचार-विवेक पर कमर-चसता खड़ा रहे, इसमें तेरा भी कल्याण है, और लोगों का भी। तू आप ही बुद्धिमान है।" जहाँ सेवक को सुपथ पर दृढ़ रहने का उत्साह दिलाते हैं, वहाँ अपना भला कार्य्य भी उसके कन्धों पर डाल उसकी जिम्मेदारी को और भी बढ़ा देते हैं, मानों दास के बल से प्रभु कार्य्य करते हैं। महाराज तो अनेक युक्तियों से भक्तों की भलाई में तत्पर रहा करते थे। २६ मार्च को पौड़ी से चलकर श्रीनगर पहुँचे। शरीर कमजोर होने के कारण, पं० तारादत्तजी के घोड़े पर चढ़कर यह ८ मील का सफ़र तै किया था। उन्होंने अपना नौकर भी साथ दिया। यहाँ पर भी पण्डितजी की कोठी में ठहरे। यह स्थान शहर के बाहर, गंगा के किनारे है। यह कोठी आपने बनवाई भी इसी लक्ष्य से थी, कि वहाँ, वे रहकर, साधु-संगति अथवा प्रभु-भजन किया करेंगे। यहाँ पर हर शनिवार सायंकाल को पण्डितजी भी पौड़ी से आ जाया करते थे। आदित्यवार को वहीं रहकर सत्संग करते। समय तो बहुत नहीं मिला, इसलिये आप कुछ विशेष लाभ न उठा सके, फिर भी यथा सम्भव प्रति सप्ताह सेवा में रहकर बहुत कुछ आनन्द अथवा स्फूर्ति प्राप्त करते रहे। जब वहीं रहते, तो भोजन आदि का प्रबन्ध वह स्वयं करते थे। अपने साथ नौकर को भी लाया करते। जाते समय प्रति बार २) रु० खर्च के लिये

दे जाते । सब्जी तो उनके बगीचा से मिल जाया करती थी, वहाँ कुछ फल भी थे और जब आप पौड़ी से आते, तो भी काफ़ी साग और फल ले आते थे । बड़े भक्ति-भाव से सेवा में तत्पर रहे । काम आदि दोषों की निवृत्ति के उपाय पूछते रहते थे। बहुत दिन सत्संग किया । पौड़ी में तो, महाराजजी के अस्वस्थ होने अथवा अपने कारोबार में जुटे रहने के कारण से बहुत अवकाश न मिलता था, पर यहाँ श्रीनगर में साप्ताहिक दर्शनों को आते और श्री चरणों में बैठ ज्ञान-ध्यान का प्रसाद पाते रहते थे।

श्रीनगर में भी कई ब्राह्मण, वहां के डाक्टर और एक जैनी सेठजी दर्शन करने आते और सत्संग में बैठकर तृप्त होते रहे। पहाड़ के लोगों में सन्तों से कुछ विशेष उपदेश लेने की इच्छा नहीं होती। वे तो यही इच्छा रखते हैं, कि साधुओं के दर्शन करें अथवा उनकी सेवा करें। सरल सीधे-साधे लोगों की भिक्षा भी निष्काम भाव पूर्ण हुआ करती थी। इसीलिये शुद्ध अन्न का मिलना अधिक सुप्राप्य रहता था।

पं० तारादत्तजी की इच्छा थी कि महाराजजी आस-पास के कुछ महात्माओं के दर्शन करके यह बतलायें कि कौन अच्छे हैं, ताकि पीछे भी वे उनके सत्संग से लाभ उठा सकें। ऐसे एक महात्मा गंगापार टीढ़ी रियासत में रहते थे। यह वैरागी थे। स्थान तो अच्छा था, कुटी के पास पानी बहता था, फलों के कुछ पेड़ भी थे, ग्राम भी कुछ दूरी पर था। पर उस कुटी को देख, वा उसमें ठहर कर महाराजजी का चित्त प्रसन्न नहीं हुआ। वहां से तो लौट आये। उस वैरागी को भी पता चला तो एक दिन श्रीनगर में मिलने आये। बातों से पता लगा कि वह स्थान के लिये राजा की सहायता ले रहे थे। ग्राम वालें

उनसे सन्तुष्ट नहीं थे। वह फलों को भी शहर में बेच देते थे। इससे वह ग्रामीण उनको निकालना चाहते थे। पर उन्होंने राजा को शिकायत कर वह भूमि और कुटिया अपने नाम करा ली। स्वामीजी के पहले ही ऐसे भाव थे, पर अब निश्चय हो गया "कि वे साधू नहीं, गृहस्थी हैं जो स्थान आदि के लिये ऐसा झगड़ा कर रहे हैं।" ऐसा ही आपने पं तारादत्तजी से भी कह दिया।

जब आप देश में थे, तो बा० अयोध्याप्रसाद की इच्छा थी कि वृन्दावन होते जावें। पर एक तो इधर आने की जल्दी थी, दूसरे सामान लिये हुए फिरने से तकलीफ़ का भी विचार था। जब स्वामीजी ने अपनी सूचना भेजी, तो स्वामी तारकानन्दजी को भी पता चला। यह भला इस सुअवसर को कैसे हाथ से जाने देते। शीघ्र ही चल पड़े। वे ३० अप्रैल को यहां पहुँच गये। आपको जैनी मन्दिर में ठहराया गया।

मुलतान निवासी टेकचन्दजी देहली से जालन्धर दर्शन करने गये थे। उनका चित्त बड़ा उदास था। यही चाहते थे कि श्रीसेवा में रहकर जीवन को उच्च करें। छुट्टी नहीं लाये थे। तार द्वारा छुट्टी तो मिल गई, पर रुपया न पा सके। वहीं से ऋण लेने का विचार था, पर गुरुजी ने यही आज्ञा दी कि ऐसा अधीर होना उचित नहीं। जालन्धर से तो देहली लौट गये। पीछे प्रबन्ध करके, महाराजजी के श्रीनगर पहुँचते ही वे वहां आ गये। एक मास से सत्संग कर रहे थे। शरीर शुद्धि करके भजन करते रहे। अब उनका विचार था कि साथ-साथ चलकर बद्रीनारायण के दर्शन करें।

नज़ला के ज़ोर से, दांतों पर असर पड़ता ही है। नज़ला तो बार-बार दिखाई देता रहता था। दांत भी कुछ काल से

कष्ट दे रहे थे। दो दाँत तो कटरा में नाई से उखड़वा डाले थे। १६२५ में जालन्धर रहते हुए एक दाढ़ निकलवा डाली थी। यहाँ पौड़ी में जब नज़ले का आक्रमण हुआ, तो साथ ही दाढ़ में भी दर्द होता रहा। नज़ला कम होने पर दर्द कुछ बना ही रहा। अपनी शारीरिक अथवा मानसिक अवस्था की सूचना देते हुए आप प्रो० सदानन्दजी को लिखते हैं—"जब हम श्रीनगर आये और नज़ला शांत भी था, तब भी दाढ़ ने अपना रंग नहीं बदला था, इस लिये शफ़ाख़ाना जाकर उखड़वा दी। कुछ हिलती तो थी, परन्तु फिर भी मुश्किल से उखड़ी, और ख़ून बहुत आया। इसके ज़खम की वजह से रोटी खा न सकने से तीन दिन तक खिचड़ी ही खाना पड़ा, तब फिर से नज़ला और खाँसी शुरू हो गये। पुनः धोती करके तीन दिन तक जुलाब लिया, जिससे शरीर काफ़ी कमज़ोर हो गया। बाद को बादाम की दूधी बिना दूध के साथ खाना शुरू किया और रोटी भी, तब फिर कुछ ताकत आने लगी। शरीर तो variable quantity (परिवर्तन-शील) है जिसकी degree of variaton uncertain, (परिवर्तन की मात्रा अनिश्चित) है। जो कुछ हो। यात्रा तो हो ही गी, इसने काम अच्छा कर दिया है, आगे को इसका विशेष ख़याल रखने की कोशिश करूंगा। फिर भी इसका भोग ही प्रधान रहेगा। यह जो दूसरों के दुःख को देख कर दुखी होना और उसको दूर करने के लिये प्रयत्नवान होना है, यह सिद्ध करता है कि इस जन्म में परम मुक्ति न होगी। फिर भी जो कुछ होगी दुःख से रहित ही होगी। आगे प्रभुजी आपही सम्भाल लेंगे। आप लोगों का आशीर्वाद चाहिये।" निरभिमानता की भी हद हो गई। जो चित्त की निर्मलता सन्तों का स्वाभाविक गुण होता है, उसको भी त्रुटी मानकर परम मुक्ति

में ही शङ्का उठा रहे हैं। फिर भी अपने चित्त को भली प्रकार जानते हुए, आनन्दपूर्ण अथवा दुख-रहित अवस्था को तो प्राप्त करने का निश्चय दिलाते हैं। जो पूर्ण निष्कामता से ईश्वरी आज्ञा अनुसार सब कष्ट सह प्राणियों के हित में लगे, भला वह क्यों फिर संसार-चक्कर में पड़ेंगे। और यदि प्रभू अपने भक्तों के हृदय में ऐसी करुणा का सागर न उभारते, तो दूसरों को मार्ग सुझाने वाला कौन हो सकता है। पर इतने की भी चाह नहीं। परम शांति के लिये अधीर हो रहे हैं। शरीर कमज़ोर होते हुए भी यात्रा का विचार तो दृढ़ था। मुल्तान से ही ऐसी धारणा को लेकर चले थे। अपने सेवक को अपने भावों से सूचित करते हैं:— "इस साल चलने से पेश्तर मैं नये अभ्यासियों को पुराने के सुपुर्द कर आया था, जिससे पीछे का ख़याल न रहे। इस लिये कठिन यात्रा में जाने से चित्त निश्चिन्त है। यह सब ईश्वर की अनुग्रह तथा तुम सबके आशीर्वाद का नतीजा है, वरना इस तुच्छ जीव में इतनी हिम्मत कहाँ है।" ईश्वर परायणता अथवा स्वाभाविक विनीत भाव को सन्त कभी नहीं छोड़ते।

यहाँ रहते हुए १३ एप्रिल को, दूसरे स्थान पर भी एक महात्माजी को देखने गये, कि जिसका वर्णन आप एक सत्संगी को ऐसा करते हैं:—"कल चार मील पर एक महात्माजी के दर्शन करने गये थे। पं० तारादत्तजी उनकी बहुत स्तुति करते थे। नग्न रहते हैं, एक गुफ़ा में रहते हैं, जोकि बद्रीनाथ के रास्ते में, श्रीनगर से ४ मील पर सुकृता नाम की चट्टी के पास है। विचारवान भी हैं, आयु भी ज़्यादह है, परन्तु शरीर से (आयु का) पता नहीं लगता। पहाड़ तथा मैदान में सफ़र भी बहुत किया हुआ है, परन्तु इतना गहरा विचार फ़िर भी नहीं है, जितना कि तुमको है। ख़ैर फिर भी आज-कल के

दिनों में साधुओं में ऐसे कम मिलते हैं। एक मौनी बाबा हैं, वे विद्वान् भी हैं और त्याग में भी अच्छे हैं। वे मेरी बात को भी समझते थे और मेरे से सहमत थे। वह हर साल बद्रीनाथ की यात्रा को जाया करते हैं। उस वक्त वे भी वहीं पर मौजूद थे। अब वे श्रीनगर से धीरे-धीरे ऊपर को जा रहे हैं। यात्रा क्या है, कालक्षेप करते रहते हैं। वे भी वृद्ध हैं।" यहाँ ज़ुकाम का कुछ आराम रहा, पर फिर दाँत में कुछ कष्ट रहने लगा। अपनी शारीरिक अवस्था की सूचना, २८ एप्रिल को अपने एक परम सेवक को, इस प्रकार देते हैं:—"५, ७ दिन हुए, एक और दाँत श्रीनगर के अर्पण करना पड़ा। परन्तु उस से ख़ून बहुत नहीं निकला। अब तुम्हारे आशीर्वाद से दो body-gaurd, (शरीर-रक्षक) तो हैं ही, वे बेचारे हर वक्त पंगु का ख़याल रखते हैं, परन्तु भोग फिर भी भोगना ही पड़ता है। शरीर को देखकर उदासी होती है, इसका रखना बेगार प्रतीत होती है। परन्तु प्रभु कैसे इसकी रक्षा का प्रबन्ध रखते हैं, इससे हैरानी आती है। यह तुम्हारे संकल्प का प्रभाव है। अब चित्त अधिक उत्साहित है। शरीर में बल भी बढ़ रहा है, और चलता-फिरता भी हूँ, चार या पाँच दिन में कूच करना चाहते हैं। जाने के ख़याल से ख़ुशी होती है, आगे जैसा भोग होगा, भोगते रहेंगे। यह एक विचित्र बात है कि विशेष लाभ की प्रतीति न होते हुए भी कठिनाइयाँ झेलने से चित्त नहीं घबराता। यह भोग की प्रबलता नहीं है तो और क्या कह सकते हैं। अच्छा यार हमारा-तुम्हारा कुछ संयोग था, इसलिये हमारे पीछे तुमको भी कष्ट उठाना ही पड़ता है। बदनामी भी सहारना पड़ती है। तुम उपकारी जीव हो, इसलिये लोक संग्रह के लिये सब कुछ सहारते हो; तुम्हारे

पीछे, तुम्हारे बल से मैं भी तुम्हारी दुम पकड़कर घसीटता चला जाता हूँ। अभी तो मन ठीक है, आगे की ईश्वर जाने। "······इसलिये अब अन्त में चरण-वंदना कर समाप्त करता हूँ। जो कुछ करना हो मृत्यु से पहले ही कर लेना चाहिये। इसलिये यह पत्र लिखकर निश्चिन्त होकर आगे जाऊँगा।" फिर आप एक सत्संगी को भारत देश के निष्काम महात्माओं का महत्व जतलाते हुए लिखते हैं, "पं० तारादत्तजी को उनके किसी मित्र ने एक Type (टाइप) की हुई किताब दी है, जिसमें २४ उपदेश हैं, और प्रत्येक उपदेश के लिये छः सफ़े लिखे गये हैं, उसकी क़ीमत एक सौ रुपया है। Copy-risgt reserved (सर्व अधिकार स्वाधीन) हैं। एक हफ़्ते बाद एक उपदेश क़ीमत से भेजा जाता है। तारादत्तजी की समझ में बहुत जगह नहीं आई। जब मुझसे कई बार कहा, तब मैंने भी दो दिन में उसका पाठ किया, परन्तु नतीजा यह निकला कि author (लेखक) ने यहाँ के अभ्यास के ग्रन्थों से तथा उपनिषदों से चुराकर अपने ढँग से लिखा है, और बाईबल (Bible) से पुष्ट करना चाहा है। जो बात उसने पहले उपदेश में लिखी है, वही बार-बार नये ढंग से प्रत्येक में (repeat) दुहराई है। सौ रुपया क़ीमत सुन सिवाय ठगी के कुछ सार नहीं निकलता।" आज-कल अँगरेजी पढ़े लोगों में साधु-संगति का महत्व कम होता जाता है। पुस्तकें पढ़ने से तथा ऐसे ही अनेक विदेशी अथवा देशी ठगी के स्थानों से आत्म-कल्याण की कामना रखते हैं। अच्छे महात्मा हैं भी कम, पर यह भी दुर्गुण अवश्य है कि जब किसी अच्छे संत के दर्शन हो भी जाते हैं, तो मुफ़्त उपदेश प्राप्त कर उसकी परवाह भी कम करते हैं। जैसा रंग साधु के समीप रहने से चढ़ता है, जैसा

वह मन की चालों को पकड़ कर उसको ठीक करने का उत्साह दिलाते हैं, वैसा किताबें पढ़ने से कम होता है। पुस्तकों के ज्ञान से भी लाभ उठाना ऐसे ही महापुरुष बताते हैं। गीता को अनेक नर-नारी पढ़ते हैं, पर जितना मोह व भीरुता हमारे देश में है, उतना और कहीं नहीं। शरीर अथवा संसार को मिथ्या मान लेने से कल्याण नहीं हो सकता। आत्मा को अमर कह देने से क्या लाभ? उसके उपदेश से तभी लाभ होता है जब जीवन में कुछ परिवर्तन हो। ऐसा परिवर्तन करने का उत्साह महात्मा बुद्ध, संत सियाराम अथवा महात्मा गांधी जैसे व्यक्तियों के सत्संग अथवा उपदेशों से हो सकता है। सत्संग की महिमा अपार है। पुस्तकों अथवा ऐसे written directions (लिखित आदेशों) से भी लाभ होता है, पर जीवन तो मास्टर के चरणों में बैठकर ही सुधर सकता है। इसलिये ऐसे अवसरों की उपेक्षा करना प्राणी की मूढ़ता नहीं तो क्या है। यह उसका दुर्भाग्य है कि अवसर पाकर भी खो दिया जाय।

तेईसवां प्रकरण (तुंगनाथ)

यहाँ से ९ मई को चलकर धीरे-धीरे चमोली पहुँचे। रास्ते में एक चट्टी पर कुली के प्रबन्ध करने में कुछ कष्ट हुआ। पटवारी द्वारा ही ऐसा इन्तिज़ाम होता है। पटवारी की सुस्ती को देखकर स्वामी नारायणहरिजी ज़रा जोश में आ गये। जोश में आकर कहने लगे, "तुम लोग पबलिक को वृथा कष्ट देते हो, बड़ी बुरी तरह पेश आते हो, यदि कोई अफ़सर हो, तो बड़ी

दीनता से उनकी सब प्रकार से नौकरी बजाते, कुली होते हुए भी तुम इनकार कर देते हो"। इस पर पटवारी भी कुछ शोख़ हो गया। फिर पं० तारादत्तजी की चिट्ठी की सहायता से कुली मिल गये। रहने का स्थान भी मिल गया। स्वामीजी ने भी यह सब सुना। बाद में नारायणहरिजी को समझाया, "साधु को किसी से ऐसा बरताव नहीं करना चाहिये। जब भिक्षुक बने, तो नम्रता से काम करना चाहिये। कोई तुम्हारे नौकर तो नहीं। मृदु वाणी से कहा, जो हुआ, तो अच्छा, नहीं तो संतोष से सब सहारना चाहिये। टुकड़ा माँगकर तो पेट पालते हो, पर हुकूमत करना चाहते हो। सूधेपन में ही साधुता है।" इस प्रकार मुमुक्षु के हित के लिये, उसकी त्रुटि को देख उचित ताड़ना भी करते थे। यह विचार तो था ही नहीं कि सेवक रुष्ट होकर चला जावेगा। जो उनकी सेवा में रहा, वह अपने लाभ के लिये रहा, इससे आप निःसंकोच उसको शासित कर सुधार का रास्ता सुझाते। शिष्य तो गुरु-कष्ट को विचार कर के ऐसा करता था, पर गुरु देव ने फिर भी शिष्य के भले पर दृष्टि रक्खी, उसकी मंगल-कामना कर ही दी। यहां से आप दूसरे दिन चल पड़े।

एक और चट्टी में पहुँचे, तो महाराजजी सीधे एक एजेंसी के मकान में चले गये। आप कोई आडम्बर तो रखते नहीं थे। पटवारी ने समझा कि कोई गँवार है। वह कहने लगा कि "यहाँ क्यों आए हो, नीचे चलो।" महाराजजी ने कहा, 'भाई, यात्री हैं, थके हैं, ज़रा बैठने दो।' फिर उसने कहा, "यह स्थान तुम्हारे जैसे आदमियों के लिये नहीं है। नीचे किसी दुकान में जा ठहरो, चलो उठो।" महाराजजी चुपचाप सुनते रहे।

खुंदन तो धरती सहे, वाढ़ सहे वनराय।
कुशब्द तो हरिजन सहे, दूजे सहा न जाय॥

जब बहुत गड़बड़ करने लगा तो नारायणहरिजी ने कहा, "भाई, हमारे कुली भी एजेंसी के हैं, हमको भी यहीं ठहरना होगा। हमारे पास चिट्ठी भी है।" चिट्ठी तो महाराजजी के पास ही थी। पर फिर भी दिखाई नहीं। मनुष्य के नाते ही उससे कहते रहे। फिर नारायणहरिजी के कहने पर, आपने हँस-हँस कर चिट्ठी दिखाई, तब पटवारी साहब बड़ी सभ्यता से बोलने लगे। चारपाई दी, कमरा दिया, क्षमा माँगी। 'भूल हो गई।' महाराजजी ने फिर धीरे से कहा, "चारपाई की जरूरत नहीं, ऐसे ही बैठने में आराम है। इसीसे ही हम संतुष्ट हैं।" आज जो सिर मुंडवा लेता है, अपने आप को क्या नहीं समझता। कुम्भ पर साधुओं के झगड़े तो आम बात हैं। गृहस्थियों को घूरना अथवा शाप की धमकी देनेवाले कम नहीं, पर यहाँ तो 'मैं' मर चुकी थी। 'आपा' ही नहीं रहा, तो किसी को क्या कहें।

एक दूसरी चट्टी पर तारकानन्दजी से कुछ भूल हो गई। दुकानदार बिगड़ पड़ा। बढ़कर गाली देने लगा। क्षमा भी माँगी, पैसा भी देने को कहा, पर फिर भी बुरा ही कहता गया। महाराजजी सब सुनते रहे, मानो कोई सम्बन्ध ही नहीं।

सीतलता तब जानिये, समता रहे समाय।
पक्ष छांड़ै, निर्पक्ष रहै, शब्द न दुष्या जाय॥

समता भाव से देखकर तटस्थ बने रहे। रास्ते में एक अन्य साधु के दर्शन को भी गये। इनका नाम वा पता पं० तारादत्तजी ने बताया था। कुली को तीन मील आगे, एजेंसी में, सामान ले जाकर रहने को कह दिया। एक रात्रि का सामान साथ रख, आप तीनों साथियों को ले गंगा पर गये। दो-ढाई मील की दूरी पर, ग्राम से पौन मील पर, जंगल में, वे महात्मा रहा करते थे। उनका शरीर उड़ीसा का था। बैकुण्ठी बाबा करके

पुकारे जाते थे। अवस्था वृद्ध थी। बालक सम, स्वभाव के सरल थे। एक छोटी कुटिया में पराली डाल रहा करते थे। वैष्णव वैरागी थे, गाँववालों से रसद लेकर भोजन ख़ुद बनाते थे। जाते ही उन्होंने कहा, 'जाओ, यहाँ क्यों आये हो।' 'दर्शनों को आये हैं।' 'अच्छा, अब दर्शन हो गये, चले जाओ।' 'यही रहेंगे, सत्संग करेंगे।' 'सत्संग नहीं होता, गांव में जाकर रहो।' महाराजजी तो डट गये थे और कहा, "हम तो कहीं नहीं जावेंगे, यहाँ ही मैदान में पड़े रहेंगे। जब उन्होंने देखा कि यह पीछा नहीं छोड़ेंगे, तो पास की कुटी में रहने को कहा। लकड़ी, साग आदि से सहायता की। हर प्रकार से आतिथ्य किया। शेष सब बातें करते, पर जब परमार्थ अथवा ईश्वर सम्बन्धी बातें चलतीं तो टाल देते, या बेतुकी बातें कर देते। प्रातःकाल महाराजजी उसकी कुटी पर गये, तो वह बैठा था, यह भी जाकर बैठ गये। कुछ बात तो नहीं की, पर इतना ही कहा, "हम कुछ नहीं जानते, ईश्वर का भजन करना चाहिये।" फिर आपने चलते समय आलू का साग, १) रु०, कुछ इलाइची उनकी भेंट की, जो बड़े निवेदन के पश्चात उन्होंने स्वीकार की। महाराजजी ने कहा, "वैरागी साधुओं के विचार तो कम होता है, इतना भी बहुत है कि त्याग से रहते हैं। दर्शन से चित्त प्रसन्न होता है। कई महात्माओं में तो कुटी का राग ही बढ़ जाता है, बग़ीचा लगा लेते हैं, फिर झगड़ा बढ़ने लगता है, यह तो बड़े संतोष से प्रभु-भक्ति में रहते हैं। स्वामी तारकानन्दजी और टेकचन्दजी को उसी रास्ते जाने की आज्ञा दी और कहा, 'एजेंसी से कुली व सामान लेकर अगले पड़ाव पर चलो. हम इसी रास्ते, गंगा के इधर ही वहाँ से पहुँच जायँगे। इधर से जाते-जाते, महाराजजी को कई दस्त भी हो गये। पेट खाली होने से शरीर कमज़ोर

हो गया, पर फिर भी दृढ़ता से चलते रहे। एक दो बार आपने अपने साथी से कहा भी, 'तुम चलो, मैं पीछे आ जाऊँगा।' पर यह आपको अकेले छोड़ कैसे जा सकते थे। धीरे-धीरे चलते हुए १० मील का सफ़र चार बजे समाप्त हुआ। उधर तारकानन्दजी ने भोजन तो बना रक्खा था, वह भी चकित थे, कि इतनी देर क्यों हुई। इतना कष्ट अथवा कमजोरी होते हुए भी इच्छा के इतने धनी थे कि सब कष्ट सहार कर भी डटे रहते। रात्रि को वहाँ आराम किया, हरड़ आदि के प्रयोग से पेट ठीक हो गया। प्रातःकाल भक्तों ने आपसे कहा भी, कि 'कोई सवारी का बन्दोबस्त कर दिया जावे।' पर आपने न माना और कहा, "अब तो शरीर ठीक है, रात्रि भर आराम भी कर लिया है, कुछ ज़रूरत नहीं प्रतीत होती।"

रास्ते में जहां-जहां संगम आते थे, वहाँ जरूर ठहरते। प्रातःकाल वहाँ संगम पर बैठकर भजन करते। फिर कहते, "जो ग्रन्थों में लिखा है, कि संगम पर बैठकर बड़ी स्थिति होती है, वह ठीक है।" रुद्रप्रयाग, करणप्रयाग, और नन्दप्रयाग सब स्थानों में ऐसा ही करते रहे। इस प्रकार चलते हुए चमोली पहुँचे। वहाँ काली कमली वाले की धर्मशाला में डेरा लगाया। पिछले वर्ष जब इधर आये थे, तो कुछ सामान यहाँ एक चौधरी के पास छोड़े गये थे, वह सब वैसा ही मिल गया।

महाराजजी अब यहाँ कुछ रुक गये। टेकचन्दजी की छुट्टी कम रह गई; अतः वे भी घर जाना चाहते थे। गुरुजी ने समझाया कि 'हमको तो अभी देर है, तुम किसी संग से बद्रीनाथ हो आओ। ऐसा ही हुआ। वह शीघ्रही अन्य यात्रियों के साथ बद्रीनाथ को चले गये।

इनके जाने के बाद स्वामीजी का शरीर फिर बिगड़ गया।

भूख बन्द हो गई, नज़ले ने भी ज़ोर किया। जुलाब लेते रहे। अपनी अवस्था का वर्णन (इस प्रकार) २४-५-२६ के पत्र में अपने सेवक को देते हैं। "चमोली पहुँचने पर मेरी क्षुधा बन्द हो गई, जैसे मुल्तान में हो गई थी और थोड़ा सा भी खाने से चित्त घबराता था। तब मैंने जुलाब लेना शुरू किया और दस दिन तक जारी रक्खा। इस बीच में नज़ला तेज़ और निराले ढंग का हो गया, परन्तु जुलाब जारी रक्खा। अभी तक थोड़े अंश में जारी रहेगा। ज़ुकाम तो हट गया है, अब कुछ भूख भी लगने लगी है। शरीर काफ़ी कृश हो गया है। कल रुद्रनाथजी की यात्रा आरम्भ होगी, आगे जैसा प्रभु को मंजूर होगा होता रहेगा। जिस जिस काम के लिये इच्छा तीव्र है, वह यदि शरीर अधिक न गड़बड़ाया, तो हो ही जायगा। जो दुख भोगना है, वह भी भोगना ही पड़ेगा, इस लिये ईश्वर भरोसे पर चल रहे हैं। शरीर बच जायेगा तब आराम करता रहेगा।" इस प्रकार से आप शरीर को एक भिन्न वस्तु समझते थे। केवल शुभ कामना को पूर्ण करने के लिये आप बड़ी तितिक्षा से तप करते हुए रुद्रनाथ जा रहे थे।

यहाँ पर रहते हुए बजरंगदासजी को कल्पेश्वर से बुला लिया था। वे पारसाल से वहीं रहकर आज्ञा अनुसार तप में लगे हुए थे। जब वे आ गये, तो चमोली से, शीघ्र रुद्रनाथजी की यात्रा को चल दिये। शरीर की तो परवाह थी ही नहीं, तप की भावना तो पूरी होनी चाहिये। टेकचन्दजी भी इस समय तक लौट आये थे। वे तो घर लौट गये, पर महाराजजी एक कुली का प्रबन्ध कर, थोड़े वस्त्र इत्यादि लेकर आगे को चल दिये। चढ़ाई का रास्ता था, उसी दिन ही गोपेश्वर पहुँच गये।

गोपेश्वर से रुद्रनाथ का प्रबन्ध करना था। यहाँ से पहले

तुंगनाथ जाने का विचार हुआ। स्वामी तारकानन्दजी तो पहले वहाँ हो आ चुके थे। इसलिये उनको तो यहीं ठहरने की आज्ञा हुई। आप, दोनों सेवकों को साथ ले, तुंगनाथ को चले। तीन-चार रोज की यात्रा थी। आख़िरी चट्टी से बड़ी चढ़ाई का रास्ता था। पहले भी जब काँगड़ी से माताजी के साथ आये थे, तो लोगों के कहने पर ऊपर नहीं गये थे। गृहस्थी जाते भी कम हैं। बड़ी कठिन चढ़ाई चढ़, बरफ़ानी पहाड़ी पर पहुँचे। यहाँ शिवजी का मन्दिर भी था। सारा दिन यहीं रहकर सायं-काल को लौट आये। वहाँ के पुजारी भी रात को शीत के कारण वहाँ नहीं ठहरते, नीचे ही चले आते हैं। यहाँ से वापस हुए। गोपेश्वर से उधर ही एक चट्टी है, जहाँ से रास्ता रुद्रनाथ को जाता है। लोगों ने यहीं से जाने को कहा। स्वामी तारकानन्दजी को सूचना दे दी। पर वह बीमार हो गये थे। सामान भेज दिया, और कहला भेजा कि 'मैं रुद्रनाथ नहीं जाऊँगा, आप जब वापस आ जावेंगे तो आपके साथ चलूंगा।' इधर इन्होंने भिक्षा से कुछ गेहूँ एकत्र कर उसका आटा बनवा लिया था। फिर दूसरे दिन तारकानन्दजी भी आ गये। उनको दिलासा दे, ३ दिन उन्हीं के लिये ठहर गये। यहाँ पर फ़ौजी सूबेदार बहादुरसिंह से बहुत सहायता मिली। वे बर्मा से छुट्टी पर आये हुए थे। भक्त आदमी थे। वहाँ से कुली वैसे तो नहीं जाते, पर ऐसा किसीने कहा था कि बहादुरसिंहजी की सहा-यता से शायद मिल जावें। पास ही उनका गाँव था। स्वामी नारायणहरीजी उनके घर गये। उन्होंने सब प्रबन्ध कर दिया, और कुछ फल लेकर दर्शन करने भी आए। वे कहने लगे, "वहाँ इस वर्ष बरफ़ बहुत पड़ी है, आपका शरीर भी कमजोर है, वहाँ रहना कठिन है, दर्शन करके लौट आना..ठीक रहेगा,

इतने भोजन का भार आप क्यों ले जा रहे हैं।" महाराजजी ने कहा, "यदि न रह सके तो वापस लौट आयेंगे, पर अभी चित्त में उत्साह बहुत है, देखें कैसा होता है।"

यहाँ से कुली साथ ले, महाराजजी साथियों समेत चल पड़े। चढ़ाई का रास्ता था। जंगल में से जाना पड़ा। केवल पगडंडी थी, सीध रखकर यात्रा करनी पड़ती थी। १४ मील का रास्ता था। दो दिन रास्ते में व्यतीत हुए। पहले दिन तो रास्ता में वर्षा भी होती रही, पर छाते के सहारे चलते ही रहे। रात्रि को एक पहाड़ की आड़ में ठहरे। वहीं रोटी बनाई। नमक और घी के साथ सबने खाई। कुलियों ने एक पेड़ को आग लगा दी जिससे सर्दी से भी रक्षा हुई और जंगली हिंसक पशुओं से भी बचाव हुआ। प्रातःकाल कुली कहने लगे कि "रास्ता बड़ा विकट है, रोटी खाकर चलना चाहिये।" फिर रोटी बनी, इन्होंने तो अभ्यास न होने से थोड़ी ही खाई, शेष सब कुली उड़ा गये। तब वहाँ से चले। ३-४ मील रुद्रनाथ से इधर ही एक बरफ़ानी पहाड़ को पार करना था। महाराजजी तो सबसे वृद्ध अथवा कमज़ोर होते हुए भी आगे ही रहा करते। उतराई में नारायणहरीजी का पैर फिसल पड़ा, वे बरफ़ पर लुढ़कने लगे। तारकानन्दजी ने अपना डंडा गाड़कर उनको अधिक लुढ़कने से रोक दिया। तब वे भी सहारा पा, उठ खड़े हुए। इधर बजरंगदास अभी पीछे थे। यह उनकी प्रतीक्षा करने लगे। इतने में पहाड़ी अपनी भेड़ों को ले आये। यदि वे जानवरों को सर्द स्थान में न ले जावें, तो वह सब मर जावें। उनके निकलने से बरफ़ पर रास्ता बन गया था, उस पर आराम से चलते गये। कहीं बरफ़, कहीं सूखा ऐसे ही रास्ते से चलते रहे। कुछ आगे जाकर महाराजजी गिर पड़े, पर सम्हल कर फिर

चलने लगे। शायद भूखे होने से, आपके पेट में ज़ोर का दर्द हुआ, अमृतधारा के प्रयोग से कुछ आराम हो गया। तब कुछ देर बाद, नारायणहरीजी और बजरंगदासजी भी आ गये। पहाड़ियों के कहने पर जूते उतार कर रुद्रनाथजी को चले। कोई यात्री जूता पहनकर आगे नहीं जाते। शाम को वहाँ पहुँचे। वहाँ शिवजी का मन्दिर था और पुजारी की कुटी भी थी और एक दूसरी कुटी भी फूस की बनी थी। उसके अन्दर एक तीसरी कुटी थी, पर थी वह टूटी हुई। आगे वाली कुटी में ही सब लोग रहने लगे।

चौबीसवां प्रकरण (रुद्रनाथ)

रुद्रनाथ आते ही पुजारी ने डराया कि "यहाँ एक बार एक अँगरेज़ हठ से जूता पहन कर आया था, पीछे उसको भयानक कष्ट हो गया था।" महाराजजी ने कहा, "जूते हम पहन तो नहीं आये, पर साथ बाँध लाये हैं, सो ऐसे ही पड़े रहेंगे।"

सायंकाल को रोटी बनाई और सो गये। प्रातःकाल को बर्फ़ पर बैठकर शौच नहीं उतरता था। पैर इतने सुन्न हो जाते कि उधर ही ध्यान लगा रहता। महाराजजी ने मन्दिर के अन्दर जाकर शिवजी से प्रार्थना की। वापस आकर कहने लगे कि; "मैं आज्ञा ले आया हूँ। हम उनके बच्चे हैं, अब जूते के बिना यहाँ रहना ही कठिन है, तो क्षमा करेंगे।" फिर आप सब जूते पहन कर ही रहते रहे। पुजारी को कुछ बुरा लगता था, पर उसने साधु जान अथवा इन सब की लाचारी और श्रद्धा को देख कुछ नहीं कहा।

वहाँ पर ऐसा नियम रहता था, कि प्रातः उठकर शौच आदि से निवृत्त हो ६ वजे तक सब ध्यान में लगे रहते । फिर रोटी और किसी वनस्पति का पहाड़ी साग बनाते । कभी-कभी दाल भी बनाते । दाल गलती नहीं थी । उसको रात भर भिगो देते, दिन को पकाते, कढ़ी सी बन जाती । दोपहर को आराम करके, तीन सत्संगी तो जंगल से लकड़ी लेने जाते । जाते-जाते वहाँ बेहोश से होने लगते । कुछ ऐसी मूर्छा करने वाली घास आस पास रहती थी कि मुश्किल से वापस लौटते । लकड़ी गीली होती, पर पड़ी-पड़ी सूख जाती थी । वर्षा तो शुरू नहीं हुई थी, पर फिर भी कभी बरफ़ वा ओले पड़ ही जाते थे । फिर संध्या समय भजन करके रोटी बनती, नमक या मीठे से खा लेते । खान-पान की सब सामग्री बड़े संकोच से वर्तते कि बहुत दिन तक चलती रहे । भूख भी सहारते । भजन में चित्त बहुत लगता । यही इच्छा होती कि बैठे ही रहें । बिना परिश्रम चित्त समाहित हो जाता था । महाराजजी प्रति दिन प्रातः समय मन्दिर में जाकर बैठे रहते । मूर्त्ति को स्नान कराते समय ही उसके दर्शन करने से आपका चित्त प्रसन्न होता था । तारकानन्दजी भी प्रायः रोज जाते थे । बजरंगदासजी भी कभी-कभी चले जाते । वहाँ कभी दूध चढ़ता, तो चाय में डालने के लिये दूध मिल जाता था । वैसे केवल पानी में ही चाय बना कर पुजारीजी रोज़ सबको पिलाते थे । पूर्णिमा को भेड़ोंवाले वहाँ दूध चढ़ाने आते थे । बड़ा गाढ़ा दूध होता था । खीर बनती और सब लोग प्रसाद लेते । पुजारीजी, कुछ दूध रख छोड़ते थे, जिससे कई दिन तक चाय में सहायता मिलती रहती । इस प्रकार आप सब बड़ी मस्ती से रहते रहे । यथा नियम स्वामीजी एक दिन मन्दिर में गये तो प्रार्थना की' "हे,

रुद्रनाथजो, आपकी बड़ी कृपा हो, यदि हमने कोई कष्ट शेष भोगना हो तो आप अभी भुगता दें, फिर इसके लिये शरीर न लेना पड़े।" जब वहाँ से आये तो नारायणहरीजी लकड़ी जला रहे थे। लकड़ी मोटी होने के कारण जलती न थी। महाराजजी ने सोचा कि चीर दी जावे। पुजारी की कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी फाड़ने लगे। पत्थर हिला, नीचे लुढ़क गये। रास्ता में एक पत्थर पर पैर अटक गया तो रुक गये। वहाँ से धीरे-धीरे उठकर आप ही ऊपर आये। जब आप ऊपर पहुँचे तो तारकानन्दजो साग बाँट रहे थे, उन्होंने देखा तो मस्तक में चोटों के निशान थे, पर हँस रहे थे। फिर आपने सुनाया कि किस प्रकार लुढ़के। नीचे तो बहुत गहरा था, यही विचार था कि अब शरीर नहीं बचेगा। दृष्टा बन देखते गये। फिर यह भी बताया कि कैसे रुद्रनाथजी ने प्रत्यक्ष में ही फल दिया है। आप बड़े प्रसन्न थे कि अच्छा हुआ, यह भी भोग चुक गया। घी गरम कर हल्दी मिला लगाया गया। फिर ६-७ दिन दर्द भी रहा, पर चित्त में तो आनन्द ही था कि प्रभु ने प्रार्थना स्वीकार कर तुरन्त ही फल दिया है।

उस स्थान में रीछ और बड़े-बड़े लंगूर बहुत थे। दिन में बहुत दिखाई देते थे। शेर भी थे, रात को भेड़ें उठा ले जाते, शोर होता, कुत्ते भौंकते तो पता चलता कि शेर शिकार कर गया है।

थोड़े दिन में रसद का सामान चुकने लगा। पहले तो पुजारी का आसरा करते रहे, पर जब उधर से आशा न देखी तो बजरङ्गदासजी को वैरांगणा चट्टी को भेजा। वहाँ एक साधु सेवी चौधरी बख़तावरसिंह थे। उनका नाम सुना था, जानते नहीं थे। उनको पत्र लिख दिया कि "रसद भेजने की कृपा करें, दाम भी ले लेवें।"

उधर रोला तो पड़ गया था कि एक साधू रुद्रनाथजी में अनुष्ठान करने गये हैं। पहले भी कभी-कभी कोई बाबा सिद्धि के लिये तप करने की इच्छा से जाते, पर २-३ रोज़ में लौट आते। ४-५ दिन में बजरङ्गदासजी आटा, घी, मीठा आदि लेकर वहाँ वापिस पहुँच गये। और साग तो था नहीं, चौधरी ने पियाज़ ही दे दिये थे।

इधर प्रो० सदानन्दजी को भी सारा हाल देते रहते थे। उसी आधार से नन्दलालजी भी वैरांग्णा चट्टी पहुँचे। चौधरी बख़तावरसिंह से सारा हाल मालूम कर लिया। वह भी कुछ रसद का सामान ले यहाँ पहुँचे। यहाँ आकर उन्होंने सुनाया कि धर्मचन्दजी और ला० कर्मचन्द के पिता वस्तीरामजी भी आने वाले हैं। प्रो० सदानन्दजी भी आने का विचार कर रहे थे। तब महाराजजी का विचार हुआ कि नीचे चले जावें, कहीं सब लोग आकर कष्ट न पावें। पुजारी ने यह भी संस्कार डाले थे कि वर्षा से पहिले ही चले जाना चाहिये, नहीं तो फिर ३ मास रुकना ही पड़ेगा।

नन्दलालजी के आने पर स्वामीजी ने बजरंगदासजी को तो कल्पेश्वर जाकर तप करने को भेज दिया; पर उनका चित्त ढीला था। चले तो गये, पर कोई दूसरा स्थान अनुकूल पाकर वहीं ठहर गये।

चौधरी बख़तावरसिंह भी वहीं आये। पास ही अनुसूयाजी पर एक कुटी बनवा आये थे। महाराजजी से वहाँ चलकर रहने के लिये निवेदन करने लगे, इतना भी कहा कि, "महाराज, आप के निमित्त ही कुटी बनाई है, चरण ही छुआ आइये," पर आप तो अब नीचे चले आने का विचार कर चुके थे।

पंचकेदारों में, केदारनाथ, तुंगनाथ, कल्पनाथ रुद्रनाथ और

मध्य महेश्वर, पंच स्थान हैं। रुद्रनाथ की मूर्ति का भी विशेष महत्व कहते हैं। ऐसी कथा आती है कि पुरातनकाल में जब सुर और असुरों की लड़ाई हुई थी, तो सुर बड़े कष्ट में थे, उन्होंने शिवजी से प्रार्थना की, तो आपने यहाँ से ऐसी दृष्टि डाली कि सब असुर भस्म हो गये। वहाँ मन्दिर में एक दो हाथ ऊँचा लिंग है। उस लिंग के सामने ऐसे चिह्न बने हैं, मानो शिवजी टेढ़ी दृष्टि से देख रहे हैं। यहाँ ऐसा भी होता है कि जब-जब शिव मस्तक पर पानी की बूंदें दीखती हैं, वा पानी चूने लगता है, तो पहाड़ में नीचे बहुत वर्षा होती है। जिनमें श्रद्धा है वह ऐसा कहते हैं कि शिवजी को पसीना आता है।

स्वामी तारकानन्दजी और नन्दलालजी को आपने पहले भेज दिया ताकि दूसरों को रोक दें और कुली भेज दें। तब तक रसद भी चुक गई थी, फिर कुली आने पर महाराजजी और स्वामी नारायणहरिजी भी चल दिये। आपका चित्त तो नहीं था, पर जब सेवक नीचे प्रतीक्षा में थे, तो लाचार उतरना ही पड़ा। जब आप बैरांगणा पहुँचे तो वहाँ धर्मचन्दजी, बस्तीरामजी आदि भक्त मिल गये।

बैरांगणा में दो-तीन रोज ठहरे। बख्तावरसिंहजी ने एक दिन भंडारा किया। बड़े सत्कार से सबको खिलाया। महाराजजी भी उसमें शामिल हुए। आपकी आज्ञा लेकर ही वह अपनी भावना को पूर्ण कर तृप्त हुआ। इसके प्रथम भी नन्दलालजी द्वारा शहद-घी और आटा की मिठाई बनवाकर उन्होंने श्री सेवा में भेजी थी।

कई वर्षों से यहाँ कोई साधु इस प्रकार रह नहीं सका। कठिन स्थान में तप करने को तो आप उत्कंठित रहा ही करते थे। किसी विशेष लक्ष्य को ध्यान में रखते ही नहीं थे। ऐसे

स्थानों में रहने से चित्त में प्रसन्नता होती थी। तप क्या, काल-क्षेप करते थे। कष्ट सहना तो आपके मोद-प्रमोद का साधन था। काम तो पूर्ण हो चुका था, अब तप में रह चित्त को प्रसन्न रखना था, अथवा भक्तों में तप की महिमा प्रकट करनी थी। मर्यादा दिखाने के निमित्त मानों सब कुछ कर रहे थे। यह भी जानते थे कि ऐसा करने से कुछ विशेष लाभ नहीं होता था, पर जितने दिन ऐसे स्थानों में रहते, चित्त प्रसन्न रहता और वृत्ति अपने आप ही आत्माकार रहा करती; जीवन-मुक्ति का आनन्द ले रहे थे।

पच्चीसवाँ प्रकरण (सत् पन्थ)

यहाँ से यह सातों यात्री बद्रीनाथ को चले। बिना विघ्न से चलते हुए, बिना किसी कष्ट के वहाँ १० दिन में पहुँच गये। तीन दिन तक तो रावलजी के मेहमान रहे। फिर बाजार में एक पण्डे के मकान में आकर रहने लगे। साधु तो मधुकरी से निर्वाह करते, सायंकाल को बाजार से रोटी लेकर खाते, परन्तु अन्य साथी बाजार से ही खाना मोल लेते थे। यहाँ कशमीर से पं० स्वरूपकृष्ण अपने भाई को साथ ले पहुँचे थे। इनके भाई श्रीकृष्ण कशमीर में १६२४ में महाराजजी से मिले थे। एक महात्मा से कुछ प्राणायाम मार्ग के साधन में लगे थे। इधर अपनी बहन के पास रहते थे। बहनोई का रोजगार छूट जाने से, यह अपनी तनख्वाह बहन को खरच के लिये दे देते, पर इनको साधन के अनुकूल भोजन नहीं मिलता था। इनकी

बहन भी महाराजजी के चरणों में बैठ अभ्यास में लगी थी। तब महाराजजी ने समझाया था कि श्रीकृष्ण के भोजन का विशेष ध्यान रक्खा जाय, नहीं तो हानि होने का भय है। पर संकट के कारण उधर कोई ध्यान नहीं दे सका। पीछे जब इनका दिमाग़ बिगड़ गया तो दवाई होने लगी, पागल-खाने में भी कुछ दिन रहे, पर कुछ न हुआ। फिर श्रीकृष्ण के कहने पर उनके बड़े भाई, जो उनसे पुत्रवत प्यार करते थे, पता पूछते-पूछते उन्हें यहाँ लिवा लाये। महाराजजी से मिलने पर कुछ लाभ तो हुआ। स्वरूपकृष्णजी यह समझ कि अब भाई ठीक हो जावेगा, (छुट्टी भी समाप्त होने लगी थी) वापस लौट गये। इन्हीं के साथ ही धर्मचन्दजी और नन्दलालजी भी लौटे। अब अगस्त का मास था, वर्षा भी जोर से जारी थी। यहाँ से १५-२० मील पर 'सत पन्थ' है। यह वह स्थान है कि जहाँ पर श्रीकृष्णजी की आज्ञा अनुसार पाण्डव तप करने आये थे। महाराजजी का विचार था कि वहाँ १० दिन रहेंगे। दो दिन का रास्ता था। रसद और कुछ खाने को लेकर दो कुलियों के साथ चले। पहला दिन तो अच्छा गुज़र गया। दूसरे दिन कुछ देर से चले। बरफ़ानी रास्ता था। पहाड़ से नीचे उतरे तो अँधेरा हो गया। एक दूसरे को देख भी नहीं सकते थे, आवाज देकर चलते थे। नीचे भी कहीं बरफ़ गली थी, उसका भी बचाव करके चलना था। अँधेरे के कारण एक कुली और एक साथी भटक गये। कुछ पता न चला। पहला कुली रुकता भी न था। इसी कष्ट में थे कि थोड़ा उजाला हुआ, धीरे-धीरे प्रकाश हो गया। एक कुली तो वहाँ कुण्ड पर पहुँच चुका था, दूसरा कुली और साथी भी दूसरी तरफ़ नज़र आने लगे।

उधर वर्षा भी शुरू हो गई थी, भीगते ही रहे। वहाँ जो

गुफ़ा थी, वह सब चूती रहती थीं। इसी प्रकार रात काटी। प्रातः कुण्ड में स्नान किया। जो पक्का भोजन साथ था, उसीको खा लौटने की ठानी। प्रभु का धन्यवाद किया कि पहली रात्रि ही वर्षा हो गई, तो लौट पड़े, नहीं तो पीछे कष्ट भी होता और कुली की सहायता विना रास्ता मिलना मुशकिल हो जाता। दो दिन में वहाँ से लौट आये। अपने दो साथियों को पीछे बद्रीनाथ में छोड़ आये थे। वापस लौटकर पं० श्रीकृष्ण के पण्डे के मकान में ठहरे। भोजन बनाने का भी कुछ प्रबन्ध एक दुकानदार से किया। उससे रसद ले, दुकान के ऊपरवाली रसोई में भोजन बनाते रहे। इस प्रकार कुछ दिन निर्वाह होता रहा।

प्रो॰ लालचन्दजी भी कांगड़ी से आने वाले थे। महाराजजी ने रास्ते का पूरा हाल तो भेज ही दिया था। कुछ दिन पश्चात् एक बङ्गाली महाशय प्रो० विदुभूपणदत्त को साथ ले, पहुँच गये। एक दिन यह दोनों वसुधारा गये। वहाँ स्थान तथा पानी का झरना देखते रहे। इतने में अन्धेरा हो गया। लालचन्दजी यह सोचकर कि दत्तजी चले गये हैं, आवाजें देने के बाद लौट आये। यहाँ पर पता चला, कि वह नहीं आये। खाना खाकर, लैम्प ले, फिर, उनको तलाश करने चले। वहाँ पहुँचकर भी कुछ पता न चला। बहुत चिल्लाया, पर कोई उत्तर न मिला। लाचार वहीं बैठे-बैठे रात काटी। जाड़ा था, कभी ध्यान में रहते, कभी सुकड़ कर सो जाने का यत्न करते, कभी डण्ड पेल-कर गरमाई लाते। रात बीत गई, दिन निकल आया, पर दत्त बाबू न मिले। वापस लौट आये, तो यहां दत्तजी भी पहुँच चुके थे। एक दूसरे को देखकर बड़े चकित थे। दत्तजी ने तो पास एक साधू की कुटी में रात काटी थी। जब आपने अपना सब हाल महराजजी को सुनाया, तो स्वामीजी ने कहा,

"अच्छा हुआ, यह तपो-भूमि है, तुमने तप कर लिया है, इसी में ही लाभ है।"

महाराजजी यहाँ सब सत्संगियों को प्रेम-पूर्वक निष्पक्षता से उचित उपदेश देकर सहायता करते रहे। यहाँ गंगा पर एक मौनी बाबा भी आये हुए थे। बड़े तप से वहाँ रहते थे, कुछ कष्ट में भी थे, महाराजजी ने पता लगाकर उनकी सहायता की। ला० वस्तीरामजी की इच्छा थी कि चान्द्रायण व्रत करेंगे, इस विचार से उनको शीघ्र ही लौट जाने की आज्ञा हुई। दत्तजी तो कहीं और रहा करते थे। महाराजजी, स्वामी नारायण-हरी, स्वामी तारकानन्द, प्रो: लालचन्द और पं० श्रीकृष्ण का भोजन इकट्ठा बनता था। महाराजजी यहाँ प्रायः पहाड़ी अन्न ओगल, फाफड़ा और रामदाना खाते। कभी-कभी दाल-चावल भी खा लेते, माठा भी रोज पीते थे। दाल तो वहाँ गलती नहीं थी, तप्त कुण्ड के जल में बनाने से गल जाया करती। सत-पंथ से लौटने पर कुछ नज़ला हुआ, पर माठा पीने से रुक गया इसीलिये माठा जारी ही रहा।

वहाँ उन दिनों पण्डों और रावलजी के दरम्यान कुछ झगड़ा था। सबने अपनी-अपनी गाथा सुनाई। महाराजजी ने कुछ परामर्श दिया। वह चाहते थे कि आप बीच में पड़कर कुछ फ़ैसला करा दें। पर उनका बढ़ता हुआ वैमनस्य देख, आपने कह दिया कि "हमारे में कुछ सामर्थ्य नहीं, यदि कोई राय पूछो तो जैसी समझ में आयगी, कह देंगे।"

पं० श्रीकृष्ण को काम-काज में लगाये रखते, उसका दिल बहला हुआ था। कभी-कभी बिगड़ भी जाता, पर प्रायः ठीक ही रहता था।

५

निर्वाण काण्ड

पहला प्रकरण (साधक)

पं० देव शर्मा जी श्रीनगर (गढ़वाल में) महाराजजी की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने वालकपन में ही प्रोफ़ेसर सियारामजी को देखा था। पीछे १९१७-१९१८ में जब १३ वीं, १४ वीं श्रेणी में पढ़ते थे, तो इन्हें योग-विद्या सीखने की बड़ी इच्छा हुई। महाराजजी के कनखल में दर्शन कर चुके थे। १९१७-१९१८ में, श्रीयुत गोपालजी से प्रशंसा सुन प्रोफ़ेसर सदानन्दजी द्वारा पत्र भी सेवा में भेजा, पर भाग्यवश उनको मिल ही नहीं सका। इधर १९२५ में आपकी इच्छा थी कि एक वर्ष एकान्त में रहकर योग साधन में रहें। कुछ साधन सीखा भी था। श्रीयुत अच्युत मुनि अथवा ब्र० योगानन्द द्वारा इस मार्ग में प्रवृत्त हुए थे, उसी साधन में जुट जाने का विचार था। प्रोफ़ेसर लालचन्दजी ने आपको प्रेरणा की कि, "सन्त सियारामजी की शरण में बैठने से बहुत लाभ होगा, आप योग में बड़े निपुण तथा दक्ष हैं।" उनकी भक्ति से प्रभावित हो, उनके द्वारा ही

मुलतान में याचना कराई थी। उस प्रार्थना के उत्तर में महाराजजी ने ऐसा लिखा था। "पं० देवशर्माजी को अभ्यास में लगाने से पहिले निम्न लिखित बातें दिल में बहुत खटकती हैं, जिनके लिये शास्त्र के अनुसार उनको पालन करना बहुत आवश्यक है। जब से मैं इस मार्ग में चला हूँ और जब से ईश्वर-अनुग्रह का अनुभव होने लगा है, तब से शास्त्र पर बेहद श्रद्धा हो गई है। जो निष्कपट आर्य्य-समाजी हैं, उन्होंने भी बहुत समाजी रंग धो डाले हैं। (१) मैं वेद-मन्त्रों का ग़लत अर्थ करना पाप समझता हूँ। जब कि किसी पुरुष में इतनी योग्यता न हो कि वह निश्चय रूप से यह कह सके कि जो अर्थ वह कर रहा है, वह बिल्कुल ठीक है, तब तक उसको मन-माना अर्थ नहीं करना चाहिये। यदि किया है, या करता है, तो पाप है। (२) बिना अपने में पूर्ण योग्यता हुए दूसरों को वेद पढ़ाना भी पाप है। (३) जिसको वेदों में श्रद्धा और भक्ति न हों अर्थात् जो अधिकारी न हो उसको पढ़ाना भी पाप है। अब तुम देखते हो कि देवशर्माजी के मार्ग में यह नियम रुकावट डालनेवाले हैं। यदि वह इन बातों पर सहमत हों, तब अभ्यास में लगाने से पहिले प्रथम नियम को तोड़ने का उनको प्रायश्चित्त करना पड़ेगा और आगे को इन नियमों पर दृढ़ रहने के लिये प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी। (४) अभ्यास-काल में जिस स्थान में, मैं उनको कहूँगा, वहाँ पर रहना होगा। (५) गुरुकुल-भूमि में उस काल तक बिलकुल नहीं जाना पड़ेगा। (६) भोजन आदि का प्रबन्ध वहीं अभ्यास स्थान में करना पड़ेगा। (७) जब तक अवस्था दृढ़ न हो जाय, संसर्ग से बचना पड़ेगा। इन सब बातों के होते हुए भी मेरे जैसे तुच्छ जीव में यह सामर्थ्य नहीं है कि मैं वायदा कर सकूं, कि उनको सफलता पर अवश्य

पहुँचा दूंगा। यदि कुछ होगा, तो ईश्वर अनुग्रह और उन्हीं के पुण्य प्रताप और पुरुषार्थ से होगा। इसलिये जो कुछ वह फ़ैसला करें, वह ऊपर की बातों पर पूर्ण ध्यान देकर करें, ताकि पीछे धोखा न हो। जहाँ तक मैं अनुभव करता हूँ, मुझे अपने में कुछ भी शक्ति नहीं प्रतीत होती, फिर मैं कैसे किसी को किसी बात का भरोसा या विश्वास दिला सकता हूँ।" जब यह वृत्तान्त लालचन्दजी द्वारा उनको मिला तो मुलतान में आकर महाराजजी से मिले। प्रायश्चित्त करना निश्चय हुआ, सब आज्ञा को मान लिया। उसी निश्चय के अनुसार इसी वर्ष आषाढ़ में श्रीनगर में आकर पं० तारादत्त की कुटिया में चान्द्रायण व्रत किया था। यद्यपि उन्होंने व्रत तो पूरा कर लिया, पर महाराजजी जैसा चाहते थे वैसा नहीं हो सका। इधर लालचन्दजी ने महाराजजी से आकर कहा कि "देवशर्माजी वहाँ व्रत समाप्त करके आपकी प्रतीक्षा में होंगे।"

इसी भावना से आप ४० दिन तक बद्रिका नगर में रहकर १९ सितम्बर को यहाँ से चल दिये। २९ सितम्बर को श्रीनगर पहुँच गये। यहाँ २०-२२ दिन रहकर देवशर्माजी को सहायता देते रहे। षट्‌क्रियायें भी कराईं और ध्यान की विधी बताई। वे धोती निगलने में अशक्त थे। एक दिन महाराजजी ने अपने सामने धोती करवाई। तो धोती निगली गई, काफ़ी अन्दर चली गई। जब बाहर निकाली तो महाराजजी ने कहा 'मापो'। पर मापने से पहले यह भी कह दिया "मैंने यह सोचा था कि ८ हाथ निगली जानी चाहिये।" जब उन्होंने धोती मापी तो ८ हाथ ही निकली। इधर ध्यान में भी लगे थे। कुछ अन्तर्ज्योति का प्रकाश भी सामने रहता था। महाराजजी का विचार था कि यह प्रकाश सब सिर में समा जाये और प्राण की स्थिती

हो जावे । शर्माजी ८ दिन से यत्न कर रहे थे, पर सफलता न हो रही थी । जब महाराजजी के दो-तीन दिन ही चलने के रहे, एक दिन जैसे ही देवशर्माजी सायंकाल को ध्यान में बैठे, प्रकाश उनके सिर में पहुँच गया। उसी समय महाराजजी वहीं उनके कमरे का दरवाजा खोल अन्दर आ गये और बोले, 'सुनाओ, क्या हाल है ।' उन्होंने कहा, "अभी प्रकाश सिर में पहुँचा है ।" तब आपने कहा, बस, अब तुम हट जाओ, तुम्हें अपने रहने का कमरा खाली करना पड़ेगा, इसलिये, तुम्हें जलदी भजन से उठा दिया है। मैं भी अब कल ही प्रातःकाल चला जाऊँगा। ऐसा विचार हो गया है कि तुम्हें सिर में आज ही प्रकाश हो जाय, मैं ऐसा जोर लगा रहा था।" इस प्रकार आप अपनी शक्ति लगाकर भी साधक को कल्याण में सहायता दिया करते थे। स्वामीजी स्वभावअनुसार शर्माजी से मातृ-तुल्य प्रेम करते थे। उनके रहन-सहन और खाने-पीने की छोटी-छोटी बातों की भी वे चिन्ता रखते थे। उनके निर्वाह के लिये अपनी भिक्षा में से धन भी दिया करते जिससे उनको अपना खर्च कम करना पड़ा। जिस दया और अनुग्रह को आप अपने भक्तों के प्रति दर्शाते वह अन्य स्थानों में कम मिलती है। सन्तों का ऋण कौन उतार सकता है।

यहां रहते हुए, फिर नजले का जोर होगया। दवाई आदि होती रही, पर हालत बिगड़ती गई। तीन रात्रि तक सांस भी खींच कर आता रहा । एक रात को तो बोलना भी बन्द हो गया। इशारों से गर्म पानी मांगा। पानी पीकर कुंजर करण किया, तो एक कफ का रोड़ा सा निकला जिससे कष्ट भी कम हुआ और बोलने लगे । फिर प्रातःकाल धोती भी करी और उलटी भी। बहुत कुछ आराम हुआ। डाक्टर भी आया, पर उसकी दवाई

में रुची नहीं हुई। थोड़ी पीकर फिर बन्द करदी । बड़े से बड़े कष्ट में भी आप सावधान रहते थे; और जब भोग समाप्त हो जाता, तो अपनी ही युक्ति से शरीर को ठीक कर दिया करते थे। द्रष्टा बन सब कुछ नाटक वृत्ति से देखते रहते थे। सब कार्य्यों में किसी दूसरी शक्ति से शासित होकर ही प्रवृत्त होते थे, किसी विषय में आप अपने अहंकार से तो काम लेते ही नहीं थे।

श्री कृष्ण को यहाँ कुछ प्रायश्चित्त कराया। ३ दिन पंचगव्य पिलाये, ३ दिन निराहार कराया । फिर कुछ ध्यान-मार्ग में लगाया । यहाँ से, पं० तारादत्तजी से घोड़ा लेकर, २३ अक्तूबर को रवाना हुए। सीधे दुगड्डा पहुँचे। कोटद्वार, नजीबाबाद होते हुए ३० अक्तूबर को जालन्धर आ गये।

भक्तों के कहने पर आपने अपने शरीर को एक वैद्य को दिखलाया, तो उसने दिमाग़ की कमजोरी बतलाई । उसके कथनानुसार नियम पूर्वक सब काम करने लगे, मिलना-जुलना भी बन्द रखते थे । इससे २५ दिन में पूर्णतया स्वस्थ हो गये, अपनी निगरानी में भोजन आदि का प्रबन्ध करके बड़ी सावधानी से रहते रहे कि जिससे फिर कष्ट न हो जाय । कुछ दिन बाद, बख्शी रामदासजी जम्मू से आये । कपूरथला के सत्संगी भी पहुँचे । लुधियाना से रामदासजी पहली बार दर्शनों को आये। कुछ उपदेश ले चले गये। जालन्धर के ला० दुनीचन्दजी श्रीचरणों में बैठ सत् मार्ग में लगे, यम-नियम के पालन पर जोर दिया, जिज्ञासु ने संयम का व्रत ग्रहण किया, भजन में लगा दिया, अच्छा अनुभव हुआ। वह कहने लगा "महाराजजी दो खरबूजे हाथ में नहीं आते, जो भजन करता हूँ, तो दुकान पर हथौड़ा नहीं चलता, जो दुकान का काम होता है, तो भजन कम करना पड़ता है।" यह भाई, ठठेरे का काम करते हैं।

आहार-व्यवहार कुछ पहले भी अच्छा था, सत्संग में आने से और भी उन्नति हुई। फगवाड़ा से दरियाईलालजी, जो सिटी मैजिस्ट्रेट थे, दर्शनों को आये। आपका व्यवहार शुद्ध था, कुछ साधन पहले भी कर चुके थे, पर पीछे विचार बिलकुल बदल गये थे। महाराजजी को पहले ही जानते थे। द्विविधा में पड़े थे कि भजन करें या नहीं, हृदय में संदेह रहता था। कुछ दिन तक प्रति आदित्यवार को आकर सत्संग करते रहे।

यहाँ पर आर्य्य-समाज के एक उपदेशक आये। उनका सारा हाल सुन महाराजजी ने यही उपदेश दिया, "रुपया लेकर उपदेश देना पाप है।" उसकी गृहिणी भी आई थी। वे दोनों बहुत कुछ प्रतिज्ञा कर गये। महाराजजी ने उपदेश किया था:— "उपदेश में शिक्षा की बातें कहो, खण्डन-मण्डन में न लगो, उपदेश का रुपया न लो, ब्रह्मचर्य्य से रहो।"

धर्मचन्दजी की स्त्री चन्द्रायण व्रत कर चुकी थी। आज्ञा अनुसार दोनों दम्पति मुल्तान से यहाँ आये। देवीजी अनेक उपदेश लेकर पति की सहायक बनीं। यह भी निश्चय हुआ कि ब्रह्मचर्य्य से रहेंगे। पुत्र तो था ही, विधि-पूर्वक व्रत लिया। फिर महाराजजी ने उस देवी को भजन का उपदेश देकर कृतार्थ किया। तबसे वे दोनों अभी तक बड़े-भक्ति भाव से सन्मार्ग में डटे हैं। सतगुरुदेव की सेवा और आशीर्वाद से दृढ़ता आ ही जाती है।

दूसरा प्रकरण (क्षमता)

दिसम्बर के मध्य में धर्मचन्दजी के साथ आप मुलतान पहुँचे। यहाँ पूर्ववत्, भाई तोलाराम की सराय में ही, पं० शिवरामदासजी ने प्रबन्ध करा दिया था, वहीं आकर ठहरे। आपके सुयोग्य सेवक नारायणहरिजी भी साथ ही थे।

सर्दी में बड़े दिन की छुट्टी में लाला सदानन्दजी के मित्र प्रोफ़ैसर दौलतरामजी जम्मू से आये, उन्हें षट क्रियायें करा अभ्यास में लगाया गया, खान-पान भी नियमित किया गया। सत्संग से कृतार्थ हो शीघ्र छुट्टी समाप्त होते चले गये। चकवाल से मा० कल्याणदेव भी थोड़े दिन सत्संग करने आये। जालन्धर से लाला बस्तीरामजी यहाँ कई दिनों तक सेवा में रह लाभ उठाते रहे। बिजनौर से वानप्रस्थी अर्जुनदेवजी आये। अभ्यास की इच्छा प्रगट की। सारा हाल सुन पापों को क्षीण करने के निमित्त चान्द्रायण की आज्ञा हुई। पसोपेश के बाद व्रत शुरू किया, पर २४ दिन बाद घबरा गये, व्रत छोड़ दिया। इस पर महाराजजी ने उनको स्वामी सोमतीर्थजी के पास भेज दिया। वे उन्हीं की प्रेरणा से आये थे। महाराजजी ने उनको पत्र भी दे दिया। 'श्रीपूज्य स्वामीजी महाराज, प्रणाम, आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ, उत्तर में निवेदन है कि श्रीअर्जुनदेवजी को चान्द्रायण व्रत करने को कहा गया था, सो पहले तो उन्होंने पसोपेश किया, पीछे शुरू कर दिया। २४ दिन पीछे व्रत तोड़ दिया, इस पर सबको बड़ी हैरानी हुई। और तरस भी आया कि छः दिन की कसर रहती थी, विघन पड़ गया। तब मैंने आपके पास भेज दिया कि उनके पास जाओ। इन सब

बातों पर विचार करके, जैसे वे उचित समझेंगे, वैसा प्रायश्चित्त करायेंगे। "श्रीअर्जुनदेवजी की सेवा में प्रणाम।" उनकी कमजोरी को देख, उपेक्षा कर गये, पर उनकी हित कामना तो बनी ही रही। भक्त को आदर देना तो उनके स्वभाव में ही था।

महेशदासजी का चित्त भी सत्संग को चाहता था, पर पहली कमज़ोरी के कारण, महाराजजी उदासीन थे। शरण आये को छोड़ते भी कैसे। प्रायश्चित्त की आज्ञा हुई। चान्द्रायण शुरू कर दिया, लेकिन सात-आठ दिन पीछे चित्त इतना घबराया कि घर चले गये। फिर दर्शन करने आये, तो अपनी असमर्थता जताकर क्षमा मांगी। महाराजजी ने उत्साह दिया। "कोई हर्ज नहीं, जो हुआ अच्छा ही होगया। तप थोड़ा भी लाभदायक है। पर व्रत लेकर पूरा न करने से मन की आदत बिगड़ जाती है। आगे को सावधान रहना चाहिये। जब कोई व्रत लें, तो जान जाये तो जाये, पर कदम पीछे न उठाना चाहिये।"

ला० राजारामजी, डेरा-ग़ाज़ीखाँ से, और कोटा से उनके सुपुत्र देवकीनन्दनजी आये। पिता तो सत्संग करते रहे। देवकीनन्दजी ने १९२२ में भी दर्शन किये थे। पर थ्योसोफ़ीकल सोसाईटी का बड़ा शौक़ था। मद्रास इत्यादि अनेक स्थानों में जाया करते थे। पिता से महाराजजी के बारे में बहुत कुछ सुना था। इस बार श्री चरणों में बैठकर भजन में लगे। गुरू आज्ञा में रहकर अभ्यास में आपने जितनी उन्नति थोड़े दिन में की, उतनी इतने साल भटकने से भी न हुई थी। भक्ति बढ़ती गई। ध्यान मार्ग से चले थे। प्रकाश अथवा उसमें अनेकों दर्शन हुए। सत्संग में रह संयम के जीवन का निश्चय कर वापस अपने काम पर चले गये।

कन्हैयालालजी १९२२ से सत्संग करने आते थे। १९२५ से

विशेष लाभ उठाने लगे। यह सज्जन प्रज्ञाचक्षु हैं। कुसंग अथवा कुसंस्कारवश बुरी आदत में फँसे थे। व्रत करने की आज्ञा हुई। समय-समय पर आपने चार चान्द्रायण व्रत किये। एक वार दूध पर और एक वार केवल पानी पर किया। कई वार निराहार भी किया। १२ दिन का अनशन व्रत किया। सत्संग से ढारस तथा उत्साह पा कुसंस्कारों से लड़ते रहे। भजन में भी दिक्षित हुए। अब तो बहुत कुछ कुसंस्कार ढीले हो गये हैं और वे बड़े यत्न से आगे बढ़ने का परिश्रम करते रहते हैं।

डा० उत्तमचन्दजी भी इस वर्ष सन्मार्ग में लगे। घट-शुद्धि पश्चात् ध्यान में लगाये गये। कुवँरभानजी भी शरीर को पवित्रकर ध्यान में लग गये। इनके साथियों को तो अच्छा अनुभव हुआ, पर इनका चित्त सुस्त रहता था। तत्पश्चात् व्रत की आज्ञा हुई। तब व्रत करने पर ध्यान में चित्त लगने लगा। महाराजजी ने सब नये साधकों को आहार-व्यवहार के नियम भी बताये। इस प्रकार आप जिज्ञासुओं की हित साधना में लगे रहे। यह दोनों पहले से ही सत्संग करते चले आते थे, पर अबकी वार दोनों ने विशेष लाभ का सुअवसर प्राप्त किया। इसी वर्ष एक नये भक्त का भी उद्धार हुआ। ला० खुशीरामजी अपने दो भाइयों के साथ लोहे की दुकान करते हैं। सनातन धर्म-सम्मेलन के अवसर पर आपके हृदय में, प्रभु-भक्ति के संस्कार अनायास ही उदय होने लगे। वहीं सन्त सियारामजी का समाचार भी सुना था। पहले तो कभी पता भी न चला था। सत्संग में गये। पहले दिन तो कुछ उत्साह न हुआ। फिर अवसर पाकर जाते रहे। एक दिन दोपहर को जाकर दर्शन किया। पूछने पर प्रभु भक्ति में मुग्ध हो जाने की इच्छा जतलाई। आहार-व्यवहार को शुद्ध करने के नियम बतलाये गये। आहार तो शीघ्र ठीक

कर लिया, पर व्यवहार के सम्बन्ध में कुछ न सूझा कि किस प्रकार भाइयों को कहा अथवा समझाया जाय। बड़े दुःखी रहने लगे। फिर एक दिन महाराजजी ने आप ही कृपा कर बुलाया, तो अपना कष्ट रो कर कहने लगे। दूसरे दिन तीनों भाइयों को वहाँ आने की आज्ञा हुई, भाई भी साथ चले आए। महाराजजी की प्रेरणा से सब ने सत्य व्यवहार पर दृढ़ रहने की प्रतिज्ञा की। महाराजजी ने हवन करा के सब को व्रत में बाँध दिया। अगले दिन आपने खुशीरामजी को भजन में लगाया। कुछ प्रकाश हुआ, ध्यान भी लगा। थोड़े दिन बाद घर में विरोध होने लगा; पर आप डटे रहे। आपके सम्बन्धियों ने एक विधवा बेचारी को भेज कर इन्हें गिराने का प्रयत्न किया। कुछ बहक तो गये, पर बच गये। फिर स्वामीजी ने प्रायश्चित्त रूप से तीन दिन का व्रत कराया। गृहस्थ तो थे ही, पर उधर भी बड़े संयम से रहने लगे। स्त्री ने भी कोई विशेष बाधा न डाली। प्रभु-कृपा तथा गुरु-अनुग्रह से जीवन पलटने लगा। काम-काज में पहले तो लोग रुकावटें डालने लगे। पर फिर सफलता होने लगी। अभी तक सत्य पर आरूढ़ होकर काम चल रहा है, और इन नियमों में रहने से कुछ लाभ ही हुआ है, कारोबार चमक उठा है। विश्वास बढ़ जाने से अधिक ग्राहक मिलने लगे। चित्त भी स्थिर करने की युक्ति आ गई। ईश्वर की दया से विचित्र अनुभव हुए। प्रकाश-समाधि में मग्न रहने लगे। कभी-कभी और भी अधिक आनन्द आता है। १६२७-२८ में भी सत्संग प्राप्त कर अनेक व्यवहार सम्बन्धी अड़चनों को सुलझाते रहे। १६२७ में कुम्भ पर भी दर्शनों को गये। वहाँ मेले में चित्त विक्षिप्त रहने से घबराये। इनके संस्कार थे कि कुम्भ में तो साक्षात् भगवान् आते हैं, यहाँ तो चित्त अधिक लगना

चाहिये। पर गुरूजी ने समाधान कर दिया कि यह भ्रम है। कुम्भ तो अब मेला ही है। एकान्त में ही प्रभु-भजन ठीक होता है। तब से गुरु-मार्ग पर बड़े उत्साह से चल रहे हैं। गुरु-कृपा बड़ी वस्तु है। गोस्वामी गनेशीदत्तजी भी, यहाँ सनातनधर्म कानफ्रेंस में आये थे। शिवरामदासजी द्वारा समय प्राप्त कर महाराजजी से मिलने आये। अवस्था बताई, 'अभ्यास में चित्त तो गुम हो जाता है, पर उससे लौटने पर लक्षण उलटे होते हैं। चित्त उदास और शरीर भारी होता है।' महाराजजी ने कहा, "लक्षण तो अच्छे नहीं। उत्तम अवस्था में तो चित्त प्रसन्न और शरीर हलका होता है। अनेक नाड़ियाँ हैं, पता नहीं प्राण किस नाड़ी में चले जाते हैं। हाँ, यदि सामने बैठ कर अभ्यास करो और वैसी अवस्था हो जावे, तो पता लगे कि क्या कारण है।" फिर उन्होंने पूछा, "गृहस्थी तो नियम तोड़ चुके हैं। उनके वीर्य्य की अधोगति होती है, वह कैसे रुक सकती है।" आपने समझाया, "यह ठीक है, पर आहार के शुद्ध करने, और संयम के नियमों को पालन करने से रुक सकती है। संस्कार हटाने और वैराग्य बढ़ाने से बिलकुल ही रुक जायेगी। पर आहार की गड़बड़ी से यदि वीर्य्य-पात कभी हो भी जावे, तो ऐसा हर्ज भी नहीं। ब्रह्मचारियों को भी ऐसे बिगाड़ से कष्ट हो जाता है। पर बेपरवाह रह कर आहार और व्यवहार को शुद्ध करते जाना चाहिये।" फिर वह अवसर नहीं पा सके कि अपने संशयों को निवारण कर पाते।

भक्त धनीराम, पं० ज्येष्ठानन्द और पं० सदानन्द भी पिछले साल प्राणायाम के मार्ग में लगे थे। इस वर्ष कृपा प्राप्त कर, पं० ज्येष्ठानन्द और सदानन्द वहीं सराय में स्थान ले, पास रह, भजन करते रहे।

पारसाल देवियों को बहुत समय दिया था, इस साल बहुतों की इच्छा थी कि भजन में लगाई जावें। अब जब बहुत झमेला होने लगा, तो महाराजजी ने कड़े नियम लगाये।

जो विधवायें थीं, उनको बाल कटवाने पर कटिबद्ध किया। जो सधवा थीं, उनको अपने पति की आज्ञा प्राप्त करने को कहा। सब को चक्की चलाने व चरखा कातने की प्रतिज्ञा करने पर राज़ी किया। इस प्रकार सादगी और तप के जीवन का प्रचार होने लगा। जो फ़ैशन की ग़ुलाम थीं, वह सादा पहरावा करने लगीं; जिनको चटोरापन था, वह स्वाद पर क़ाबू प्राप्त करने लगीं। जो भटक रही थीं, वह आश्रय पा शान्त रहने लगीं। कई तो इस प्रकार के रहन-सहन में अपने सम्बन्धियों की सहमति प्राप्त न कर सकीं। व्यसनी पुरुषों को भी यह बुरा लगता था। इस प्रकार अपवाद होने लगा। कुछ एक दुष्ट साथ के मकान के कोठे पर से छत पर आ कूदे। ऊपर, गुरुदेव एक देवी को बैठा कर ध्यान में सहायता दे रहे थे। वह ऊँची आवाज़ में गाली देने लगे। नीचे के सत्संगी भी रोला सुन ऊपर पहुँचे। समझा-बुझाकर उनको हटाया कि 'जब कोई भजन में बैठा हो, उस समय शोर करने से उसको बड़ी हानि होने का भय है।' गाली आदि तो आप बड़ी शांति से सुनते रहे। बड़ी मुशकिल से कुछ और उत्पात मचाने का भय दिखा वह चले गये। सायंकाल को जब सब सत्संगी आये, तो आप ने हँसते-हँसते सब कथा सुनाई। आपके भक्त पं० शिवरामदासजी वकील को बुरा लगा। उन्होंने उनको दण्ड दिलाने का निश्चय किया। महाराजजी ने कहा, "इसकी जरूरत नहीं। उनको समझा देना चाहिये जिससे फिर किसी को हानि न पहुँचे।" पर भक्त को कब चैन पड़ता। वह तो अधीर हो रहे थे। दूसरे

दिन प्रातः ही उन्होंने दो बलवान पुरुषों को उन्हें दण्ड देने को भेज दिया। इधर जब धर्मचन्दजी महाराजजी का खाना लाये, तो आपने उनको शिवरामदासजी से यह कहने के लिये भेजा कि "उत्पात करनेवालों को कोई कष्ट न पहुँचे, केवल समझाया जावे।" वहाँ, वह पहले ही दण्ड देनेवालों को भेज चुके थे। धर्मचन्दजी को भागते हुए जाना पड़ा, तब वह वकील साहब को गुरुदेव का संदेशा दे पाये। वह दुष्ट महाराजजी के पास लाये गये। उनको जब सब हाल मालूम हुआ, तो क्षमा-प्रार्थना करने लगे; और कहा कि हम किसी से बहकाये गये थे। इसी भ्रम में भूल हो गई। साधु तो अपने को कष्ट देने-वाले को क्षमा ही करना जानते हैं। यदि दुष्ट अपना गुण नहीं छोड़ते, तो संत अपनी शान्ति को कब छोड़ सकते हैं।

संत न छाड़ै संतई, जे कोटिक मिलें असंत।
चन्दन भुंगा बैठिया, तौ सीतलता न तजंत॥

यहाँ रहते हुए डा० ज्ञानसिंह भी सत्संग को आते रहे। सिद्धि-मार्ग को छोड़ शांति-मार्ग में प्रवृत्त हुए। परम लक्ष्य की साधना में दीक्षित हुए। आपने भी अनेक सन्तों के दर्शन किये थे, पर कहीं भी विषय-वासना से बचने के लिये साधना तथा विधि प्राप्त नहीं कर सके थे। यदि कहीं इस सम्बन्ध में पूछा भी गया, तो उन्होंने बुरा माना और कहा कि "यदि तुम्हारा चित्त विषय में फँसा है, तो यहाँ मत आया करो। जब हृदय पवित्र हो, तब ज्ञान-चर्चा में लगना।" आत्मा-परमात्मा के तो अनेक प्रश्न होते, वेदांत की जटिल समस्यायें समझाते; पर विषयों से छुटकारा पाने की तरकीब कोई नहीं बताता था। महाराजजी के पास यही मुख्य विषय रहा करता था कि किस प्रकार राग से छूट कर मनुष्य प्रभु के चरणों में जा सकता है।

विषयों का यथार्थ बोध ही विषयों के राग से मनुष्य को मुक्त करा सकता है। इस यथार्थ बोध को प्राप्त करने के लिये चित्त को शांत करना आवश्यक है। अन्वेषण-बुद्धि से, गुरु-आज्ञा अनुसार प्रयत्न करने पर ठीक-ठीक बोध प्राप्त हो सकता है।

डा० ज्ञानसिंहजी कई दिन तक श्रीमद्भगवद्गीता की भी कथा कर उसके रहस्यों को पूछते रहे। महाराजजी ने समझाया कि, "गीता को बिना अनुभव के समझना असम्भव है, यह प्रत्यक्षवाद ही है।"

महाराजजीने उन्हें सुझाया कि शास्त्र के अनुसार वैद्य का 'अन्न पीप के बराबर होता है।' व्यवहार को शुद्ध करने को कहा। फिर यागेश्वरजी की कथा सुनाई कि किस प्रकार आपके कहने पर उन्होंने फ़ीस मांगना छोड़ दिया, और ग़रीब अमीर सबके पास जाते। कई दिन कष्ट में भी गुज़ारना पड़ता। देहाती ले जाते पर देते कुछ नहीं थे। फ़सल के समय देहात वाले कुछ अन्न एकत्र कर ले आये। इस प्रकार साल का अनाज तो आने लगा। जो कोई घर कई दिन की दवाई ले जाते, उनसे क़ीमत लेते थे, इससे बाक़ी ख़र्च पूरा करते। इस प्रकार वे दृढ़ता से अपने व्रत पर चलते रहे, अब ईश्वर की कृपा से दानी अपने आप ही रोग शांति के बाद काफ़ी धन देने लगे। यह भी होता कि कहीं आशा होने पर भी न मिलता और कहीं से अनायास अधिक मिल जाता। तब से उनका निश्चय हो गया कि 'भोग प्रबल है, ईश्वर आप ही रक्षा करते हैं।' ऐसी बातों से उत्साहित होकर डा० ज्ञानसिंहजी ने भी फ़ीस न लेने की प्रतिज्ञा कर ली। महाराजजी ने यह भी समझाया कि, "दया भाव से रोगी के दुःख को निवारण करने का यत्न करना चाहिये, अपना भोग ईश्वर पर छोड़ देना ठीक है। जब तुम

दूसरों की सेवा करोगे, तो प्रभु तुम को निराधार नहीं छोड़ेंगे। परमात्मा में विश्वास होना चाहिये। इसमें इस बात की परीक्षा हो जावेगी कि तुम्हारे अन्दर कितनी भक्ति है, जबानी कहने से कुछ नहीं होता।" इस प्रकार आपने उन्हें अनेक बार समझाया कि जिससे उनके संशय बहुत कुछ मिट गये, और उन्होंने क़िस्मत आजमाई की ठान ली। इनके मित्र मेहरचन्द भी सत्संग में आते थे। वृद्ध होने के कारण कोई विशेष साधन तो नहीं किया, पर उनका भक्ति-भाव बढ़ता ही गया। शहर में प्लेग पड़ने से लोग शहर छोड़ने लगे। कुछ कुटुम्ब भाई तोला-राम की सराय में आकर रहना चाहते थे कि जिससे शहर के दूषित वायु-मण्डल से बच सकें। महाराजजी उनके हित को देख स्वयं वहाँ से हट गये और रामझरोखे में कुछ दिन रहते रहे। यहाँ भी गीता का पाठ चलता रहा और महाराजजी भी जहाँ शंका होती वहाँ बड़ी उत्तमता से समझाते। "संसार का यथार्थ बोध प्राप्त कर प्रभु-भक्ति में मस्त रहना चाहिये" यही भगवान के उपदेश का सार है। महाराजजी को जब इस प्रकार स्थान का कष्ट हुआ, तो कई सत्संगियों ने यह निवेदन किया कि यदि आज्ञा हो, तो एक स्थान बनवा दिया जावे, अथवा कहीं कुटी ही बनवा दें। पर आप तो कहीं अटकना ही नहीं चाहते थे, इसको कब स्वीकार करते। आप बड़ी सादगी से रहते, किसी से वृथा कभी धन न लेते। यदि कोई जबरदस्ती दे जाता, तो किसी दूसरे के हित में लगा देते। जो कुछ भेंट सत्संगी ले आते, उसको भी किसी दूसरे अधिकारी साधक को दे देते कि जिससे उसको भजन में सहायता हो जाती। आपका भोजन तो प्रो० सदानन्दजी के यहाँ से आता रहता। जैसी ज़रूरत होती, वैसे ही भोजन मँगवा लिया करते। कपड़ा आदि में भी किसी प्रकार का आड-

म्वर न रहता। जब तक पुराने कपड़े फट कर चीथड़े न हो जाते, न बदलते। रामझरोखे में स्थान थोड़ा था, केवल चार मूर्ति ही यहाँ रह सकीं, शेष को अन्य स्थानों में ठहरना पड़ा। वे चार मूर्ति थीं:—महाराजजी, स्वामी नारायणहरीजी, श्रीकृष्ण और धर्मचन्दजी। यहाँ भी दो तीन सप्ताह तक सत्संग होता रहा। फिर एक रोज दोपहर को तैयार हो गये। कुछ थोड़े सत्संगी तो वहीं थे, वह साथ हो लिये, जिनको पता चलता गया, वह भी स्टेशन पर पहुँच गये। गाड़ी के वक्त तक अनेक भक्त दर्शन करने आये। फ़रवरी के अन्त से पहिले ही जालन्धर पहुँच गये। दो रोज पीछे नारायणहरीजी यहाँ से चल सीधे कनखल चले गये। वह कुम्भ का अवसर था, कई मुलतान-निवासी सेवक वहाँ पहुँचने का विचार कर रहे थे। स्वामीजी ने उनके लिये भी उचित स्थान का प्रबन्ध करने के लिये नारायणहरीजी को आज्ञा दे दी थी। एक सप्ताह तक श्री स्वामी जी जालन्धर रहे। यहाँ मास्टर साधूसिंहजी के पास ठहरे। इधर के भक्त भी दर्शन करने का सुअवसर प्राप्त कर कृतार्थ हुए। यहाँ से आप फिर शीघ्र कनखल पधारे और अपने मित्र पं० योगेश्वरजी के मकान पर ठहरे।

तीसरा प्रकरण (अखण्ड ज्योति)

गुरुकुल कांगड़ी से पं० देवराजजी सेठी और प्रो० लालचन्दजी ने भी निमन्त्रण भेजा हुआ था कि 'यदि मायापुर में या गुरुकुल में रहना हो, तो स्थान का प्रबन्ध हो जावेगा।' मुलतान-

वालों के लिये मायापुर गुरुकुल वाटिका के सामने क्वारटर का प्रबन्ध हो गया। लाला नारायणदास और लाला वस्तीरामजी तो स्वामी नारायणहरीजी के साथ ही आ गये थे। पीछे अप्रैल में मुलतान के सेवक भी वहीं आकर ठहरे।

यहाँ पर महाराजजी की दैनिक चर्य्या ऐसी रहती थी:— प्रातःकाल तीन मील गंगा के किनारे नीचे चले जाते। वहाँ शौच आदि से निवृत्त हो, भजन करते। यहाँ से ६ बजे लौटते। फिर यदि किसी जिज्ञासु को विशेष समय दिया होता, तो उस से बात-चीत करते। ११ बजे भोजन करके आराम करते। २ बजे से फिर सत्संग का समय था। सायंकाल को गुरुकुल के सत्संगी और कनखल के भक्त भी दर्शनों को आया करते, और वार्तालाप होती रहती।

कुम्भ के दिनों में २ बजे से भक्तों को साथ ले महात्माओं के दर्शन करने चलते। अनेकों स्थानों पर गये, सैकड़ों के दर्शन किये, पर आपको केवल ३ साधु कुछ जँचे कि जिनमें त्याग था। शेष तो सब आडम्बर अथवा मतों में फँसे थे। यहाँ पर आपके अनेक शिष्यों ने आकर दर्शन किया। स्वामी सोम-तीर्थजी, स्वामी विशुद्धानन्दजी, स्वामी तारकानन्दजी, स्वामी कृष्णानन्दजी, स्वामी नित्यानन्दजी, स्वामी ब्रह्मानन्दजी, स्वामी आनन्दतीर्थजी, ब्रह्मचारी पद्मनाभजी आदि अनेक सज्जन सत्संग करते रहे।

कई एक साधु इस विचार से आये कि महाराजजी कुण्ड-लिनी जगाने में दक्ष हैं, उनसे सहायता लें; पर आप तो इस अवसर पर अपने आपको छिपाते ही रहे। एक बंगाली साधु स्वामी विवेकानन्दजी ने पहली बार आपके दर्शन किये। उन्होंने सत्संग का अवसर प्राप्त कर, श्रीसेवा में रहकर, कुछ साधन

करने का निश्चय कर लिया। इस प्रकार आप अनेक नर-नारियों को अपने अमृतरूप वचनों से तृप्त करते रहे। इतने बड़े धर्म-मेले में शायद एक ही ज्योति थी जो अखण्ड प्रकाश दे रही थी। पर उस प्रकाश से लाभ उठाने का सुअवसर भाग्यशाली को ही मिलता है। शेष तो सब किसी न किसी राग में फँस जीवन बिता रहे थे। सत्य है, कोई विरला ही परम पद को प्राप्त होता है। धन्य हैं वे जिनको ऐसे प्रकाश में रहने का अवसर मिला; और वे तो विरले हैं कि जिनके नेत्र खुले अथवा जो भ्रम को नाश करने में लग गये।

प्रो० धर्मेन्द्रनाथजी भी यहाँ आये थे। जब गुरुकुल वृन्दावन में पढ़ते थे, तो विचारों में नास्तिक हो रहे थे। महाराजजी का संग पाकर विचारों में पलटा हुआ। पक्के आस्तिक हो गये। और उन दिनों गुरुकुल के पण्डाल में भक्ति पर बड़े रोचक व्याख्यान दे रहे थे। श्रीसेवा में आकर अपनी गृहिणी की प्रशंसा करने लगे कि किस प्रकार वह विद्या पढ़ उनको पढ़ने-लिखने के कार्य्य में सहायक हो रही हैं। महाराजजी ने कहा, मानों चेतावनी ही दे रहे थे,—"यार, अब मौक़ा है कि धोखा मिटा लो, विवाह तो धोखा मिटाने के लिये किया जाता है। बहुत राग भी नहीं करना चाहिये, कल को पता नहीं कि क्या हो जावे।" यह शब्द भविष्य की भी सूचना दे रहे थे। थोड़े दिन बाद ही उस देवी का देहान्त हो गया। धर्मेन्द्रजी मोह के कारण पागल से हो गये। देहरादून में स्वामीजी से मिले। महाराजजी को उन्हें देखकर बड़ा तरस आया कि इतना विद्वान और उपदेशक होते हुए भी मोह की चोट से नहीं बच सका। दुःख निवारण को ही सुख समझ कर राग पैदा हो जाता है। यदि यथार्थ बोध प्राप्त कर सुख की भ्रांति दूर हो जावे, तो लोग मारे-मारे न फिरें

और परमात्मा की ओर लगें कि जहाँ परम शांति प्राप्त हो सकती है। प्रो० जी की शोचनीय अवस्था देखकर आप उनसे कई घण्टों तक वार्तालाप करते रहे, जिससे उन्हें बहुत कुछ शांति मिली। प्रभु के आश्रय के बिना संसार-सागर में डूबते प्राणी को दूसरा सहारा नहीं है। वही निराधारों के आधार हैं, दीनों की टेक हैं और अनाथों के नाथ हैं। गुरुकुल कांगड़ी के उपाध्याय पं० विश्वम्भरनाथजी दर्शनों को आये। उनको अपने एक पुत्र से बड़ा प्रेम था। बिना जाने ही महाराजजीने उन्हें, इसी बात का उपदेश किया कि "पुत्रों से बहुत प्रेम नहीं करना चाहिये। मुसाफिर दृष्टि रखनी चाहिये, अपने आप ही आते हैं, अपने आप ही चले जाते हैं, तो हमारा क्या हुआ। ऐसा विचार रखने से कोई दुःख नहीं होता। पता नहीं कब कौन चल दे।" शायद आप उन्हें चेतावनी ही दे रहे थे। उनका वही प्यारा पुत्र थोड़े दिनों में ही इस असार संसार को छोड़ कर चला गया। उन्हें बड़ा शोक हुआ, फिर महाराजजी का उपदेश याद आया। गुरुदेव के चित्त की अवस्था ऐसी थी कि जो कोई आता, उसकी त्रुटि के अनुसार ही आपको फुरना होती थी। ईश्वर इस प्रकार सन्तों के द्वारा भक्तों का हित कराते रहते हैं।

गुरुकुल कांगड़ी के एक स्नातक ब्रह्मचर्य्य विषय में पूछने आये। अपने चित्त की डावांडोल अवस्था का वर्णन किया। महाराजजी ने अनेक युक्तियों और दृष्टान्तों से समझाया, "स्त्री में सुख तो है नहीं, पर यदि हो भी, तो दुःख अधिक है। कोई व्यापारी घाटे का सौदा नहीं करता। तजरुबा भी महँगा पड़ेगा। तुम्हारा चित्त यदि इस अंश में हट भी गया, तो भी बन्धन से मुक्त नहीं हो सकते। धर्म-शास्त्र फिर अपनी जंजीर में पकड़ कर कर्तव्य कर्म में लगाता है।" उस समय तो वे संयम के

विचारों को ले गये और कुछ दिन तक माता-पिता का विरोध भी सहते रहे।

काशीनाथजी फ़िदा, तेजरामजी, कटरा के शार्दूलानन्दजी, दौले शाहजी, हरिरामजी आदि अनेक सज्जनों को इस अवसर पर स्वामीजी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

मुलतान से चलते समय डा० ज्ञानसिंहजी ने कुछ रुपये भेंट किये। आपकी इच्छा नहीं थी, पर जब उनकी आँखों में आंसू देखे तो रख लिये। आपका विचार था कि १० रु० का नोट होगा, पर था १००) का। यहाँ जब कुम्भ से छुटी मिली, तो आप ने ९०) रु० धर्मचन्दजी को भेज दिये कि यह रुपया डाक्टरजी को लौटा दें। १०) रु० के लिये भी चित्त नहीं था; पर भक्त के भाव को देखकर रख ही लिये। इस प्रकार आपने महान त्याग के व्रत को धारण किया हुआ था। वैसे तो प्रायः एक ही भक्त से खर्च लेते थे, पर आपने दूसरे सेवकों की इच्छा का भी निरादर कभी नहीं किया। आजकल तो संन्यासियों का बैंकों और साहूकारों के यहाँ हिसाब रहता है; पर स्वामीजी हमेशा उतनी सेवा लेते जितनी जरूरत होती। गृहस्थियों की भक्ति का बेजा फ़ायदा उठा कर धन बटोरना उनके लिये असम्भव था। त्याग की तो आप साक्षात मूर्ति थे। आज-कल जबकि रुपया का प्यार इतना बढ़ गया है, अथवा जब रुपया के बिना काम मुशकिल से चलता है, आप सदैव अपने नियम पर अटल वृत्ति से डटे रहे।

यहाँ एक उड़िया स्वामी दर्शन करने आये। वे गाड़ी में नहीं बैठते थे। इच्छा होने पर भी महाराजजी के दर्शन न कर पाये। यत्न तो बहुत किये थे। शताब्दी के उत्सव पर मथुरा गये थे; पर महाराजजी पहले ही चल दिये थे। मधुकरी से

निर्वाह करते थे । एक चादर में रहते । आपने महाराजजी से पूछा कि 'विषयों में सुख नहीं है,' यह समझ में नहीं आता। महाराजजी आपको जंगल में ले गये. ध्यान में बैठने को कहा। फिर समझाया कि विषय में सुख नहीं, तो बाबाजी को बात जँच गई । साधन तो पहले करते ही थे । शेष भ्रम भी मिट गया । इनका विचार था कि संसार 'अस्ति, भाति, प्रिय रूप है ।' महाराजजी ने इन्हें समझाया कि "संसार 'अस्ति भाति' तो है पर प्रिय रूप नहीं है ।" अब अनुभव द्वारा उन्हें भी यही बात ठीक मालूम पड़ने लगी । आपका चित्त बड़ा सूक्ष्म था। सूक्ष्म शरीर इतना उन्नत हो चुका था कि दूसरे के चित्त अथवा शरीर की अवस्था का झट बोध हो जाता था । एक दिन पं० महानन्दजी, मास्टर गोपालजी के साथ दर्शन करने आये। ध्यान की युक्ति पूछी । आपने अपनी उँगली उनके मस्तक की तरफ़ की और कहा कि यहाँ ध्यान लगाओ । पर उँगली अभी माथे से लगी भी नहीं थी, कि आपने छिड़क कर उसे वापस हटा लिया और कहने लगे, 'यार, तुम्हारा शरीर गड़बड़ मालूम होता है ।' तब उन्होंने बताया कि मुझे कुछ बुख़ार सा है ।

एक बार पं० महानन्दजी, डा० राधाकृष्णजी को साथ लिवा आये और कहने लगे कि डाक्टरजी बड़े भक्ति-भाव से प्रेरित होकर श्रीसेवा में आये हैं, अथवा इन्हें बड़ी श्रद्धा है। महाराजजी ने कहा, 'यार, दूर के ढोल सुहावने ।' राधाकृष्णजी के हृदय में ऐसे ही भाव उठ रहे थे । महाराजजी के साधारण कपड़े अथवा रहन-सहन देख उनको भ्रम हो रहा था। आपका निर्मल चित्त इस प्रकार ऋतम्भरा बुद्धि द्वारा विना अनुमान अथवा तर्क के यथार्थ बोध प्राप्त करने का स्वभावी हो चुका था। यह सब कठिन साधन अथवा ईश्वरप्रसाद का फल था।

अर्जुनदेवजी सेठी, स्वामी सोमतीर्थजी के पास रहकर कुछ व्रत इत्यादि कर आये थे। कनखल में श्रीसेवा में आये। उन्हें कुछ क्रियाओं का अभ्यास कराया गया। फिर थोड़ा साधारण रीति से भजन में भी लगाये गये। महाराजजी ने अनेक बातें समझाईं और कहा—"शुद्ध अन्न खाने का यत्न करना चाहिये।"

लाइलपुर से मुलकराजजी भी आये। आज्ञा माँगने पर स्वतन्त्र प्रबन्ध करके रहने का उपदेश हुआ। अपने स्थान पर कुछ एकान्त सेवन करते रहे थे। २०-२५ दिन बाद कुछ ऐसे कुसंस्कार जगे कि वह बड़े घबराये। सारा हाल अपने भाई से कहा। उसने उसकी ऐसी अवस्था देख महाराजजी से सहारा माँगा। इसी विचार से मुलकराजजी यहाँ आए थे। हरिद्वार में दूर रहते थे। सत्संग में आते रहे। महाराजजी ने समझाया, "एकान्त सेवन हानिकारक नहीं, इसमें दबे हुए संस्कार भी उखड़ते हैं। वैसे उनका पता ही नहीं चलता। पता न चलने से उनको नाश करने का यत्न भी नहीं होता है। घबराने की कोई बात नहीं। विचार से सब संस्कारों को छिन्न-भिन्न करते रहना चाहिये।" फिर महाराजजी ने अनेक बार उपदेश देकर समझाया कि "किसी विषय में सुख नहीं है, मनुष्य दुःख को दूर करता रहता है, इसीको सुख मान बैठता है। स्वतन्त्र रहने का यत्न करो। विचार-विवेक का आश्रय लेना चाहिये। सत्संग भी कुछ काल करते रहो।" यहाँ से, जब महाराजजी देहरादून गये, तो वे भी वहीं पहुँचे। स्थान थोड़ा होने से पास तो नहीं रह सके, स्वामी तारकानन्दजी के साथ, महन्त के बगीचे में, ठहरे रहे। थोड़े दिन बाद उनके भाई आये और उनको साथ ले गये।

साधुसिंहजी के पुत्र भगवन्तसिंह कई बार महाराजजी के दर्शन कर चुके थे। एफ़० ए० की परीक्षा पास कर यहाँ सत्संग करने आये। कुछ षट क्रियाओं का अभ्यास भी सीखा। फिर साथ ही देहरादून चलकर सत्संग करते रहे।

बहुत दिनों बाद, स्वामीजी महाराज को उनके गुरु भाई स्वामी बलदेवानन्दजी के भी दर्शन हुए। कुछ वार्तालाप करते रहे। फिर एक दूसरे को आदर सम्मान दे विदा हुए।

इन्हीं दिनों यहाँ एक 'योगी देव' चमत्कारी पुरुष आये थे। उन्होंने कुछ चमत्कार दिखाये। एक दिन श्री दर्शनों को आये और अपनी महिमा अथवा साधन सिद्धियों का बखान करते रहे। महाराजजी को तो रुचि थी नहीं। उन्होंने इतना कहा, "सब प्रकार के लोग होने चाहिये, अच्छा है।" फिर वे गुरुकुल भी बुलाये गये; पर वहाँ वह अपना प्रभाव न डाल सके।

चौथा प्रकरण (ईश्वराधार)

देहरादून से मास्टर गौरीशंकरजी दर्शनों को आये और निवेदन करने लगे, "महाराजजी, कभी कृपा करके मेरे यहाँ भी चलकर रहिये। बहुत दिन से सत्संग नहीं हुआ, मेरा भी घर पवित्र होगा।" आपने कहा, "मेरा भी चित्त कर रहा था कि देहरादून के आस-पास ही कहीं रहूँ।", शुरू जून में आप देहरादून पधारे और करनपुरा में मास्टर गौरीशंकर के मकान में रहे। यहाँ पर भगवन्तसिंहजी के सहपाठी साईंदासजी आज्ञा-अनुसार पहलेही पहुँचे हुए थे। कुछ दिन तो इकट्ठे ही शरीर-शुद्धि

करते रहे, फिर भजन में दीक्षित हुए। दोनों ने ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में अनेक नियम उप-नियम ग्रहण किये। बड़े प्रेम अथवा विस्तार से गुरुजी सब ऊँच-नीच समझा कर दोनों को संयम के व्रत पर दृढ़ करते रहे। खान-पान में भी संयम का उपदेश किया, "ऊट-पटांग खाने से मन, बुद्धि पर बुरा असर पड़ता है, बुद्धि मलीन होने से चित्त बिगड़ जाता है, फिर कुसंस्कार दबा लेते हैं। इसलिये सात्विक अथवा नियमित आहार रहना जरूरी है।"

आपने उन्हें स्वतन्त्रता से निर्वाह करने के लिये उपदेश दिया। खाना पकाने का थोड़ा अभ्यास कराया "माता पिता की सेवा करना धर्म है, उनके आशीर्वाद से कल्याण होता है, पर यदि विवाह में रुचि न हो, तो बन्धन में नहीं पड़ना चाहिये। सब प्रकार के विघ्नों को सहन करते हुए माता-पिता के आगे अपना निश्चय भली-भाँति प्रगट कर, जैसे बने वैसे उन्हें समझा देना ही उचित है।" इस प्रकार दोनों मित्र संयम के पथ पर आरूढ़ होने लगे। बी० ए० की गणित का अभ्यास करते रहे। इसमें भी गुरुदेवजी सहायता देते रहे। फिर साईंदासजी अपने मित्रों के पत्र आने पर चले गये। इधर मास्टर साधु-सिंहजी का स्कूल बन्द हो गया। यह भी सत्संग करने यहाँ चले आये थे और भगवन्तसिंह को घर भेजा, जिससे वह वहां भाइयों की निगरानी कर सके। वे भी पिता की आज्ञा पर जालन्धर लौट गये।

हरिद्वार से शीघ्र ही ला० नारायणदासजी, ला० बस्तीरामजी, स्वामी तारकानन्दजी, मुलकराजजी, और दंडी स्वामी चतुर्भुज आश्रमजी यहाँ आ गये। अपना स्वतन्त्र प्रबन्ध करके रहे। दण्डी स्वामीजी को क्रियायें कराईं। और प्राणायाम करा कर फिर ध्यान

मार्ग में लगाया। चार-पाँच मास सब लोग समय के अनुसार वहीं रहकर सत्संग करते रहे। शाम को सब दर्शन करने आते, उस समय साधुसिंहजी सुखमनीजी की कथा करते थे।

मास्टर गौरीशंकरजी पहले तो मित्र भाव से वर्तते थे। जब इतने लोगों को शरण में आते देखा, तो श्रद्धा बढ़ी। क्षमा मांगी, कि भूल से सखा मान आदर-अनादर का विचार नहीं किया। महाराजजी तो मित्रवत् सब से वर्ताव करते ही थे। अब मास्टरजी पूजा-भाव से आदर करने लगे और कहाः--

"सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम"॥
(४१, ४२), ११

आपने भी मास्टरजी के भाव को देखकर विशेष कृपा की। भजन साधन में अधिक सहायता दे अनुगृहीत किया। उनकी पुत्री लीलावतीजी भी सत्संग करती रहीं। गणित पढ़ने में महाराजजी से सहायता लेती रहीं। उन्होंने अभी गणित लेकर बनारस यूनीवर्सिटी से बी० ए० पास किया है। महाराजजी से भजन भी सीखा। अभी तक ब्रह्मचर्य व्रत से हैं, और विचार यही रहता है कि संयम से जीवन बिताकर देवियों की सेवा में रहना ही अच्छा है। सादगी से रहने का बहुत कुछ अभ्यास भी पड़ गया है। सरलता से रहने का उपदेश पाकर बहुत कुछ लाभ उठाया।

पं० गंगाप्रसादजी एम० ए० टेहरी से आये। अभ्यास सीखने की इच्छा थी। आहार-व्यवहार तो बहुत अच्छा था। आपने उन्हें थोड़ा प्राणायाम करा ध्यान में लगा दिया। कुछ

दिन पास रहकर साधन करते रहे। उनकी मानसिक अथवा शारीरिक अवस्था तो पहले ही बढ़ी थी, विचारशील भी थे, इसी से बहुत कुछ फ़ायदा उठा सके। फिर छुट्टी समाप्त होने पर चले गये। आज्ञा हुई कि सर्दी में कभी मिलना। उनकी बड़ी इच्छा थी कि आप वहीं टेहरी में चलकर रहें। पर यहाँ अनेक सत्संगी आये थे, उनको छोड़ जाना उचित न समझा। गरमी का भी कष्ट सहते रहे।

लुधियाना निवासी रामजीदासजी पहले जालन्धर में मिल चुके थे। यहाँ कुछ दिन रहे। आपने उनको शरीर की सफ़ाई कराई। पर अभी भजन में लगाने में चित्त नहीं होता था। कुछ दिन में उनकी कमर में बड़े जोर का दर्द हुआ। महाराजजी को पता चला तो कहा, "मेरा चित्त भी सुस्त था।" कुछ साधन तो कनखल में इसी साल सीखा था। पर यहाँ कुछ विशेष न सीख पाये। आहार-व्यवहार की शुद्धि अथवा वैराग्य दृढ़ करने के लिये उपदेश दे विदा कर दिया। कनखल में कुछ अनुभव प्राप्त कर संतुष्ट तो थे, पर अब लाचारी से वापस लौटना पड़ा, शरीर को ठीक करने की आज्ञा भी हुई थी, इसलिये वे शरीर की सेवा में लग गये।

मुल्तान से धर्मचन्द्जी, गिरधारीलालजी, पं० ज्येष्ठानन्दजी और पं० सदानन्दजी आये और कई दिन तक सत्संग करते रहे। कुछ देवियाँ भी वहाँ आईं, पर दर्शन कर उसी दिन हरिद्वार लौट गईं।

अर्जुनदेवजी सेठी भी आये हुए थे, और बिजनौर की एक विधवा रईसिन कृष्णाकुमारीजी भी पहली बार सेवा में आईं। यह देवी पहले स्वामी सोमतीर्थजी का कुछ सत्संग कर चुकी थीं। महाराजजी ने उन्हें बहुत तरह समझाया कि भजन में

लगने से पहले, "धन-सम्पत्ति को धर्म कार्य में लगा इस झंझट से छुटकारा प्राप्त कर लो। यम-नियम का पालना बड़ा आवश्यक है। तपमय जीवन बनाओ। तीर्थ-यात्रा करो; खान-पान सादा और संयम से होना चाहिये। ठाठ को छोड़कर सरलता से रहो। स्वतंत्र रहने का अभ्यास करो, नौकरों से बहुत काम न लिया करो। विचार को धारण कर राग अथवा मान का मर्दन करो।" वह दो-तीन दिन रह कर लौट गईं।

फ़ारस्ट दफ़्तर के बा० आनन्दी प्रसाद पार साल, जब महाराजजी बद्रीनाथ को गये थे, मिले थे। स्वामी तारकानन्दजी का सत्संग करते थे। इस वर्ष अवसर पा विशेष लाभ उठाया। प्रभु ने भी कृपाकर सन्मार्ग में प्रवृत्त कर दिया।

झब्बालालजी सर्राफ़ ने किसी महात्मा से प्राणायाम सीखा था। आहार-व्यवहार तो साधन के अनुकूल था, पर कुछ विशेष अनुभव नहीं हुआ था। इसलिये संदेह था। श्रीसेवा में आकर शंका रक्खी। स्वामीजी ने उन्हें एक दिन बुला ध्यान में लगाया। शीघ्रही कुछ उन्नति होने लगी। वे नियम से तो रहते थे। दुकान पर भी ११—१२ बजे जाते। पर इधर घुटने में कुछ दर्द रहने लगा जिससे बैठने में कष्ट होता। दवाई करके कुछ तो आराम हुआ, पर आसन दृढ़ होने में बाधा पड़ने लगी। यथा-तथा डटे रहे।

अर्जुनसिंहजी स्वामी तारकानन्दजी द्वारा पता पाकर सत्संग में आने लगे। स्त्री का देहान्त हो चुका था। चित्त डाँवाडोल था। पर सत्संग से उत्साह पाकर दृढ़ हो गया। दूसरे संयमी संगियों को देख निश्चय कर लिया कि बन्धन में न पड़ेंगे। कुछ जाप आदि में भी लग गये। खान-पान के नियम पूछे, स्वतंत्रता से रहने के लिये बहुत-कुछ उपदेश ग्रहण किये। और भी कई एक

जिज्ञासु सत्संग करने आते थे, कुछ भजन-साधन में भी लगाये गये।

थोड़े दिन पीछे गुरुकुल कांगड़ी से प्रो० लालचन्दजी, प्रो० देवराजजी सेठी, रामरखाजी, पं० महानन्दजी, पं० धर्मदेव और म० गोपालजी आये। एक मकान अलग लेकर रहने लगे। सत्संग करते रहते थे। आपने पं० धर्मदेवजी को इस बार साधन में लगाया। एक रोज़ पं० महानन्दजी सेठ लक्ष्मीचन्दजी को लिवा ले आये। वह कुछ बढ़-चढ़कर बातें करते थे। उनकी बनावट महाराजजी को पसन्द न आई और कहने लगे, "दो घण्टे ध्यान से कुछ नहीं होता, यह सब वृथा है। अपने में तो कुछ सामर्थ्य नहीं। हम तो गृहस्थियों के कुत्ते हैं।" ऐसी दीनता तो सन्त लोग हमेशा से प्रकट करते आये हैं।

एक दिन आप तथा गौरीशंकरजी, ला० नारायणदासजी, साधुसिंहजी, लालचन्दजी, सेठीजी, दण्डी स्वामी चतुर्भुज आश्रम और रामरखाजी सब गुच्छूपानी गये। वहाँ एक बड़े तेज़ पानी का नाला है। उसको पार करते समय सबकी टाँगें डाँवाडोल होने लगीं, पर महाराजजी बड़ी दृढ़ता से उसको पार कर गये। यह देखकर सब लोग बड़े चकित थे। फिर आप टीला के ऊपर बड़ी तेजी से चढ़ने लगे। बाक़ी तो चढ़ने में भी डर खाते थे। पर आप तो ऐसे जा रहे थे, मानो खुली सड़क है। शर्म के मारे सबको हिम्मत आ गई और ऊपर गये। शरीर इतना कमजोर, अवस्था वृद्ध, पर फिर भी मानसिक बल लगा आगे रहा करते थे। चलने में भी बड़े तेजी से चला करते, मानों उड़े जा रहे हैं। जवान और बलवान साथी पीछे पछड़ जाते।

जब सैर करने जाते तो लालचन्दजी को बुला लिया करते। इतने प्रेम से बुलाते कि वह मुग्ध हो जाते। एक दिन उपदेश

दिया, "फ़सल के समय किसान अन्न जमा कर लेता है, जब कमा रहे हो, तो रहने को कुटिया भी बना लो, कुछ रुपया भी जमा कर लो, ताकि जीवन निर्विघ्न समाप्त हो जावे ।" इस प्रकार आप जहाँ परमार्थ का उपदेश देते, वहाँ व्यवहार में भी आराम पाने के साधन बताया करते थे । प्रो० लालचन्दजी के साथ जब आप घूमने जाते, तो कई वनस्पतियों के गुण बताते रहते, मानों प्रकृति-विज्ञान पर व्याख्यान दे रहे हैं । सब प्रकार से आप ज्ञान के भण्डार थे ।

भिन्न-भिन्न जिज्ञासुओं को अपने-अपने रास्ते से अभ्यास में लगाते थे । एक दिन लालचन्दजी ने पूछा, "महाराजजी, आपने अपने गुरूजी से तो एक ही विधि सीखी होगी, फिर आप दूसरों को भिन्न-भिन्न मार्गों से कैसे चलाते हैं ।" आपने कहा, "जब श्रद्धा से कोई मेरे पास आता है, तो मैं अपने आपको ईश्वर के सुपुर्द कर देता हूँ । जैसी प्रेरणा होती है, वैसे रास्ते में मैं उसको चलाता हूँ । उसीसे ही उसको लाभ होता है ।" आपका चित्त तो भगवान की लीला का क्रीड़ा-स्थल था । किसी विशेष विधि, मत, या पंथ का प्रचार तो अभीष्ट नहीं था, क्योंकि आपमें अहंकार लेशमात्र भी नहीं रहा था । प्रभु आदेश के अनुसार दूसरों की हित-साधना करते रहते थे । जैसे प्रभु सुझाते वैसा करते । योग में और ज्ञान में तो आप निपुण थे । परमात्म-देव से ही सब बल तथा ज्ञान प्राप्त करके प्राणियों का भला करते रहते थे ।

एक दिन एक आर्य्य-समाजी भक्त महाराजजी को अपने घर भोजन कराने ले गये । वहाँ भोजन के बाद कुछ संशय निवारण करते रहे । मूर्ति-पूजा और श्राद्ध के सम्बन्ध में पूछने लगे । एक आर्य्य पंडित भी वहाँ बैठे थे, वह कोप में आकर

आप पर आक्षेप करने लगे। जब वितण्डा-विवाद देखा तो आपने चुप धार ली। वे आपस में ही वाद-विवाद करते रहे। कुछ एक आर्य्य आपके भक्त बन गये। शायद अन्य आर्य्य सज्जन आपका अपमान करना चाहते थे, पर आपने सहन-शीलता से ऐसा व्यवहार किया कि वह अवसर ही न पा सके।

धर्मचन्दजी भी यहाँ आए हुए थे, अनेक दिन सत्संग करते रहे। काम पर विजय पाने के नियम-उपनियम समझ शीघ्र लौट गये। काम का जीतना बड़ा दुष्कर है। साधक को बिना सहारे बड़ी मुशकिल पड़ती है, पर कष्ट होने पर जो डटा रहे वह बड़ा शूरवीर है।

देहरादून में आपके एक पुराने सहपाठी महाशय मुकरजी आपसे मिलने आये। उन्होंने पूछा, "मैंने इतने समय में इतने लड़के-लड़कियाँ पैदा किये, पढ़ाये, कई एकों का विवाह किया, मकान बनाया, इतना रुपया जमा किया, तथा कुछ परोपकारार्थ दवाईख़ाना भी खोल दिया है, आप यह बतायें कि आपने इस मार्ग में क्या प्राप्त किया है।" महाराजजी ने कहा, "हम क्या बतायें, हमने क्या किया है। जो कुछ बना बनाया था, उसका भी नाश कर दिया, और दूसरों को भी बिगाड़ने में सहायता दे रहे हैं।"

हम घर जाल्या आपणा, लिया मुराड़ा हाथि।
अब घर जालौं तास का, जे चले हमारे साथि॥

यहाँ तो यह कथा थी। वह कहने लगे कि "यह तो समझ में नहीं आता।" 'बात तो ऐसी ही है।' अविद्या का नाश, अहंकार को मिटाना, ख़ुदी को हटाना, यह कोई ऐसे काम नहीं, जो सांसारिक पुरुषों को जच सकें। आत्मा अथवा परमात्मा तो समीप हैं ही, परदा ही हटाना है, मोह-अज्ञान को दूर करना

है। संस्कारों को छिन्न-भिन्न कर देना है। यही जीवन का लक्ष्य है।

शहर में रहते हुए तो आराम-तलबी होने लगती है। तप अथवा स्वच्छ वायु सेवन के विचार से छुट्टी के दिन सबको जंगल में ले जाते, कभी एक ओर कभी दूसरी ओर। वहीं लकड़ी इकट्ठी होती और खाना बनता। इस प्रकार बड़े तितिक्षा भाव से सारा दिन रहते थे। महाराजजी का यह भी विचार था कि वहाँ अनेक अच्छी-अच्छी तथा सूक्ष्म बातें सूझती हैं, जो जिज्ञासुओं के लिये अति लाभकारी होती हैं। इसलिये भी वहाँ जाकर सत्संग लगाया करते। गौतमबुद्ध का नक़्शा सामने जम जाता। ऐसा अनेक बार हुआ। वह अमूल्य उपदेश कैसे थे, यह वही कह सकते हैं, जिन्होंने उस अवसर से लाभ उठाया है। सहस्र धारा दो बार, और नाला पानी, राजपुरा, श्री तपकेश्वर महादेव, नवादा, चन्द्रमणि और सुन्दरवाला एक-एक बार गये। अपने को तो कष्ट ही रहता था, पर फिर भी भक्तों के हित का विचार कर सब प्रकार से उत्साह देते रहते थे।

यहाँ रहते कुछ दिन खाँसी ज़ुकाम चलता रहा। शेष १६ दाँत रहे थे, कभी कोई, कभी कोई कष्ट देते रहते थे। इसीलिये विचार हुआ कि एक बार सबको उखड़वा दिया जावे, जिससे बार-बार का झगड़ा समाप्त हो जावे। यद्यपि कुछ दाँत हिलते भी नहीं थे, जिनके उखाड़ने से कष्ट का भय स्वाभाविक था, पर जो निश्चय हो जाता, उसको दुःख के भय से कब छोड़ते थे। १० अक्तूबर को ८ दाँत निकलवा दिये, १२ अक्तूबर को शेष ८ निकलवा डाले। मजबूत होने के कारण ख़ून अधिक गया, कई घण्टों तक जारी रहा, दर्द भी ख़ूब रहा। पर दो-एक दिन में कुछ

आराम हो गया। शरीर तो कमज़ोर था ही, अब शेष कसर भी निकल गई। नज़ला तो कभी बढ़ता, लहर की तरह top (चोटी) पर पहुँच फिर कम हो जाता। त्रिकुटे की चाय का सहारा लिया, कभी बनफ़शा पिया, तथा कुछ दिन होम्योपैथिक औषधि भी चलती रही। पर यह सब कष्ट रहते हुए भी जिज्ञासुओं को सब प्रकार समय देते रहे। आप दया से परिपूर्ण थे। अतः दूसरे के दुःख अथवा मोह को देख अधीर हो उठते थे। जैसे बनता, उनका उद्धार करते रहते।

देवशर्माजी श्रीनगर में रहते हुए अभ्यास कर रहे थे। प्रतिज्ञा के अनुसार उनको वहीं रहना ही था। पर मार्च में उन्हें स्वामी सत्यानन्दजी से एक संदेश मिला कि नीचे आकर मिलो। महाराजजी से आज्ञा माँगी, पर किसी कारण से उत्तर की प्रतीक्षा न कर सके। देहरादून पहुँच कर १८ मार्च को उक्त महात्मा से दीक्षा ली। फिर जाकर अभ्यास में लग गये। अपनी अवस्था का समाचार महाराजजी को देते रहे, पर जिस बात में वह संतोष मानकर, परोपकार में लग, निष्काम सेवा करना चाहते थे, उसमें महाराजजी को संदेह था कि वह भ्रम में पड़, अपनी उन्नति को रास्ता में ही छोड़ रहे हैं। अस्तु, इसी विचार से आपने उनको चेतावनी भी दे दी, "जो लोग अपने-आपको कृतकृत्य समझकर पुरुषार्थ त्याग देते हैं और अपने-आपको जीवन-मुक्त समझकर असावधान हो जाते हैं, वे काल पा कर फिर गिरावट महसूस करते हैं। इसलिये, तुमको चाहिये कि सावधानी से रहते हुए वैराग्य को ख़ूब परिपक्व करो, और देखो कि संसार में तुम्हारे मन का किञ्चित मात्र भी लगाव कहाँ प्रतीत होता है। चाहे वह गुरुकुल हो, या खादी का प्रचार हो, या देश की सेवा हो, या वेदों का पठन-पाठन या प्रचार,

या कोई अन्य धर्म-कार्य्य हो । तुम यह भी सोचो कि नीचे उतरो तो क्यों उतरो । पहाड़ में रहो, तो क्यों रहो ? इस प्रश्न के जवाब से राग सिद्ध होता है, या वैराग्य । यह भी देखो कि नीचे देश में जो आजकल जीवन मुक्त देखने में आ रहे हैं, वे हैं तो ऊँच कोटि में, परन्तु मेरी बुद्धि उस अवस्था में नहीं ठहरना चाहती । शायद यह मेरी बुद्धि ही का दोष हो, परन्तु काम तो मुझे इससे ही लेना है, इससे मजबूरी है । अक्सर अभ्यासियों से सुनता हूँ, कि बस अब कार्य्य हो गया, अब कुछ करने को जी नहीं चाहता, परन्तु जब वे असावधान हो जाते हैं, तब थोड़े दिनों में ही रंग बदला हुआ देखा जाता है । इसलिये तुमको इस खतरे से बहुत सावधान रहना चाहिये । तुम स्वामी सत्यानन्दजी से भी राय ले लो और फिर जैसा उचित समझो वैसा करो । पदार्थों की बाबत जैसा उचित समझना वैसा करना । नीचे जरूरत नहीं है । बिलकुल मर जाना चाहिये फिर न मरना पड़े ।" पर शर्माजी को नीचे चले आना ही ठीक प्रतीत हुआ । सितम्बर में वे नीचे आ गये । स्वामीजी महाराज से मिले । तब फिर भी महाराजजी समझाते रहे कि 'धोखे में नहीं पड़ना चाहिये ।' पर मरना है बहुत कठिन । कोई विरला ही उस अवस्था को पहुँचता है । संत ने सत्य कहा हैः—

'जीवित मृतक ह्वै रहे, तजै जगत की आस ।
परिहरि सेवा आपए करै, मति दुख पावै दास ॥'

पर ऐसी अवस्था में वह ही टिक सकता है, जिस पर प्रभु की कृपा हो । अथाह सृष्टि में कहीं न कहीं मन का अटकना हो ही जाता है । जितना भी तप हो जावे, उतना ही भला है ।

जाड़ा आ गया था, मुलतान के सत्संगी भी बुला रहे थे । आपके परम भक्त ने याचना की, "महाराज, आप इस वर्ष

स्त्रियों को कड़े नियम से दूर रक्खें, तो अच्छा है। आपका समय बहुत लेती हैं, विचार न होने से आपकी बातों को कम पकड़ पाती हैं। पीछे सिद्ध बन कर ढोंग भी बनाती हैं। इस वर्ष आपका स्वास्थ्य दाँतों को उखड़वाने से और भी कमज़ोर हो रहा है, इसलिये भी कुछ आराम करना चाहिये। फिर यह सब होते हुए निन्दा मुफ्त में होती है, हम भी इसी फेर में आ जाते हैं। लोग आपके भावों को कम समझते हैं। यह भी भय है कि आपके आदर्श की नक़ल कर दूसरे वृथा अनाचार भी फैला सकते हैं। यदि एक वर्ष आप कड़े नियम से रहेंगे, तो सबका मुख भी बन्द हो जावेगा, आपके शरीर की रक्षा होगी, उत्तम अधिकारी ही लाभ उठा सकेंगे तो अच्छा है। आप तो करुणा-वश दया ही करते हैं, पर हमें दुःख होता है, कि आपको यहाँ बुलवाकर इतने कष्ट में डाल देते हैं, सेवा करना तो दूर रहा। दास तो निवेदन ही कर सकता है, प्रभु की मरज़ी जैसी हो वैसा ही होगा। पर इतनी कृपा अवश्य हो कि आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर शरीर को भी कुछ आराम दें।" ऐसी याचना के उत्तर में आपने लिखाः-"प्रिय······जी, तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ, वृत्त ज्ञात हुये। पिछले साल मैं जैसा चाहता था कि स्त्रियाँ एक ख़ास दिन हफ्ते में आ जाएँ और सब इकट्ठा निपट जाएँ, पीछे यदि किसी को ख़ास जरूरत हुई तब बीच में भी आ गई, सो बात तो चली नहीं। कुछ कारण ऐसे ही बन गये, जिससे मुझे अपने आपको स्वयम् कष्ट में डाल देना पड़ा; परन्तु जिसको सहायता की जरूरत होती थी, उसके साथ दो औरों का आना आवश्यक होता था, इस लिये नियम टूट गया। और राम-झरोखे में यद्यपि सराय की अपेक्षा आराम रहा; परन्तु बेजा भीड़ फिर भी हो ही जाती थी। उस वक्त प्लेग की वजह से लोग

भयभीत थे, इसलिये मैंने कष्ट की परवाह न की और स्त्री पुरुषों से मिलता रहा, जिससे उनको कुछ शांति रहती थी। बदनामी तो स्त्रियों के संग होने से उनके मुआफ़िक हो होगी, पुरुषों के संग से वैसी होगी। केवल तुम्हारा ही अन्न खाने से और प्रकार की बदनामी होती है। सत्संगी भी बुरा मनाते हैं, परन्तु किसी की बात न सुनकर जैसा परमात्मदेव बुद्धि देते हैं, वैसा करता रहता हूँ। बदनामी होते रहना मैं अच्छा समझता हूँ, तुम्हारे में हिम्मत सहारने की न हो, तो मत बुलाओ। यदि तुम्हारे जीते जी मुलतान आना हुआ तो तुम्हारे भरोसे पर आऊँगा। जब तक तुम्हारा अन्न खाता हूँ, तब तक मुलतान आकर नौकरी करने की हिम्मत रहती है। जब तुम बन्द कर दोगे या तुम्हारा शरीर न होगा, तब मैं आशा नहीं करता कि कभी मुलतान आना हो सके, क्योंकि मेरा चित्त दूसरे का अन्न खाने को वहाँ नहीं करता। और न दूसरे के प्रबन्ध में रहना चाहता हूँ, न दूसरा कोई मेरे भावों को ठीक-ठीक समझ ही सकता है। जब तक तुम में हिम्मत है, तभी तक गड़बड़ी है, जब तुम हिम्मत हार जाओगे, तब मेरे में भी बल नहीं रहेगा और अपने ख़्यालात के अनुसार इस शरीर बंधन से शीघ्र मुक्त होने का यत्न करूँगा, क्योंकि मैं अच्छी तरह देख रहा हूँ, जब तक शरीर है, तब तक कुत्ता ही बनना पड़ता है; और ऐसे उदार कोई विरले ही होते हैं, जो उस कुत्ते को पेट भर के टुकड़े दें, कि जो उनके दरवाजे पर बैठकर उनके घरकी रखवाली भी न करे।" जब अपना स्वार्थ न हो, दूसरे बात न समझें, खिलाने-वाले अपनी बदनामी का भय दिखायें, पेट के लिये दीन बनना पड़े, निष्काम दाता मिलना दुर्लभ हो, तो फिर ईश्वर से यही माँग रहती है कि 'अब झगड़ा बन्द कराओ।' स्वामीजी, दिनोदिन इस दीनता को बहुत अनुभव करते जा रहे थे।

—

सूरमा किसी भय से पीछे नहीं हटता। जब हृदय में भगवान ही सब नाच नचवा रहे हैं, तो फिर दूसरों के विचारों को कौन सुनता है। महापुरुष तो बदनामी का स्वागत करते हैं, और प्रभु को धन्यवाद देते हैं कि वे इस प्रकार अहंकार के नाश हो जाने की जाँच कराते रहते हैं।

कई वर्षों से पीठ पर खुजली होती रहती थी। सेठीजी की राय से एक्सरेज़ द्वारा इलाज (Rays exposure) कराया गया। १६ नवम्बर १६२७ को आप कनखल आ गये। यहाँ से फिर भी एक्सरे (Xray) के लिये देहरादून जाना पड़ा। यहाँ अन्तिम बार ला० हरीरामजी गुरुजी के दर्शनों को आये। कई दिन सत्संग करते रहे। दो रोज़ साथ सैर करने गये। एक रोज़ स्वामीजी ने उन्हें १ बजे बुलाया और दोनों नहर के किनारे किनारे दूर तक चले गये। स्वामीजी ने कहा "सब अभ्यासों से वैराग्य ही सबसे बढ़कर है और कल्याण करनेवाला है। इस लिये वैराग्य बढ़ाया करो, अपनी मोटी-मोटी वासनाओं की असलियत पर सोचा करो। चौबीस घण्टे यही बात सोचा करो कि मन कहाँ अटका है"। फिर मुलतान चलने के लिये भी कहा, पर प्लेग की खबर सुनकर मुलतान का विचार छोड़ दिया। गुरुकुल के भक्त रात को वहाँ आ जाते थे। देहरादून में इतने दिन पास रहे, पर फिर भी अघाये नहीं थे। अधिक पास रहने की इच्छा रहती। रात को भी कई एक वहीं सो रहते थे।

स्वामी विशुद्धानन्दजी और स्वामी नित्यानन्द (बानप्रस्थी रल्यारामजी) यहाँ दर्शनों को आये। यह तो पहली बार यहाँ आये थे। भजन सीखने की इच्छा प्रकट की। महाराजजी ने कहा, "मुलतान में आना।" आपने पूछा, "कितना समय।" महाराजजी ने कहा, "समय तो पहले से नहीं कहते, रहना, फिर

देखा जावेगा"। उन्होंने इस बात को मान लिया। नित्यानन्दजी ने कुछ सृष्टि अथवा ईश्वर के सम्बन्ध में पूछा। आपने कहा "कोई प्रश्न समझ में नहीं आता, तो दिल में क्या महसूस होता है"। उन्होंने जवाब दिया, "दूसरे की मदद ली जाती है, अगर हल नहीं होता तो छोड़ दिया जाता है"। इसी बात को स्पष्ट करने के लिये आपने भगवान बुद्ध का दृष्टांत दिया। एक समय उनके परम शिष्य आनन्द ने पूछा—'महाराज, यह सृष्टि कैसे हो गई?' गौतमदेव चुप रहे। यह प्रश्न फिर पूछा, पर वे फिर भी शांत रहे। फिर तीसरी बार पूछा, तब बुद्ध भगवान ने कहा, "जब तुम शिष्य हुए थे, तो क्या मैंने तुमसे प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारे हर एक प्रश्न का उत्तर दूँगा"? महापुरुष व्यर्थ उलझनों में किसी को नहीं डालते। बुद्धि का भी संयम आवश्यक है। जिस विषय से कुछ लाभ नहीं, उधर तवज्जोह क्यों दी जाये? लक्ष्य तो आनन्द प्राप्ति है, दुःख से छूटना है। बुद्ध भगवान ने अपने आपको सर्वज्ञ नहीं कहा। शांति का पथ दर्शाया। चेले अपने स्वार्थ के लिये ऐसी लीला करते हैं, भ्रम फैलाकर अपने गुरु को भी कष्ट में डाल देते हैं।

पांचवां प्रकरण (तितिक्षा)

२०. नवम्बर को हरिद्वार से चलकर आप जालन्धर पहुँचे। यहाँ सरदार साधुसिंहजी के यहाँ ठहरे। दो-तीन दिन में शेष सत्संगी भी यहाँ आ गये। प्रो० लालचन्दजी भी आये। अभी तो कई मास देहरादून में पास ही रहे थे, पर तृप्ति नहीं होती

थी। वे कहते थे—"मुलतान-वासियों में बड़ी श्रद्धा है, महाराजजी इतने दिन मुल्तान ठहरते हैं, पर फिर भी यह दौड़े-दौड़े वहाँ पहुँचते हैं जहाँ श्री महाराजजी रहते हैं, हम तो इनसे भी गये गुजरे हैं।" इसी विचार से वे कई बार समीप रह कृतार्थ होते रहे। यहाँ पर लालचन्दजी तो महाराजजी के पास ठहरे, शेष सज्जनों ने अपना-अपना स्वतन्त्र प्रबन्ध कर लिया।

बस्तीरामजी और नारायणदासजी शंकरपुरी में ठहरे थे। वहाँ पर ठहरे हुए दूसरे साधुओं ने इन्हीं के द्वारा महाराजजी का आगमन सुना, तो दर्शनों को आए। किसी ने एक प्रश्न किया, "क्या वैराग्य के विना भी ब्रह्म प्राप्ति हो सकती है?" आपने कहा, "पहाड़ पर लोग तो चक्कर लगाकर चढ़ते हैं, पर कोई वीर कटशार्ट अर्थात् सीधी पगडंडी पकड़, शेर की तरह झट से पहुँचने का यत्न करते हैं; पर पीठ पर पत्थरों की गठड़ी होने से नीचे गिरते हैं। विषयों में चित्त फँसा होने के कारण सारा परिश्रम निष्फल जाता है। ब्रह्म प्राप्ति नहीं कर सकते। पहले वैराग्य होना जरूरी है।" तब एक दूसरे साधु ने पूछा, "सीधा मार्ग क्या है?" हँसते हुए महाराजजी ने कहा, "बात कोई नई नहीं, आप सब जानते हैं, यथार्थ बोध को प्राप्त करो, उसी पर खड़े हो जाओ, पीतल को सोना मत समझो।"

कई भक्त बैठे थे, स्वामी बस्तीरामजी कुछ फूल लाये। एक फूल उठा कर आपने कहा, "अनुमान से तो यही समझ में आता है, कि सब गुलाबी होगा, पर दूसरी ओर सुफेद है, कितना धोखा है। अनुमान में ऐसा ही रहता है।" तब, स्वामी विशुद्धानन्दजी की ओर देखकर कहने लगे। "इस डण्डी को देखो, कैसी चमकती है, पर हाथ लगाने से खुरदरी मालूम होती है। इसी प्रकार से संसार में बड़ा दुःख है, मनुष्य भ्रम में पड़ अनुमान

के सहारे धोखा खाते रहते हैं। यथार्थ बोध से ही यह मिट सकता है।"

कपूरथला के सत्संगी भी यथा अवसर सेवा में आ लाभ प्राप्त करते रहे। दो देवियाँ भी श्रीसेवा में आईं, उन्होंने उपदेश लिया। आपने दोनों को पति-भक्ति का आदेश दिया कि पति की सेवा और उसको सहायता देने में ही कल्याण है। फिर उन्होंने भजन-उपदेश ग्रहण किया। जालन्धर के भक्त भी श्री चरणों में बैठ अनुगृहीत होते रहे। लुधियाना से रामजीदासजी भी सेवा में पहुँचे। एक (Retired) रीटायर्ड हेडमास्टर पहली बार दर्शनों को आये। कुछ व्यावहारिक कामके कारण साधन में नहीं लग सके। अधिक समय मिलने पर पास रहने की आज्ञा हुई।

फगवाड़े के सिटीमैजिस्ट्रेट (city magistrate) भी मौका पाकर आते रहे; विचार, वैराग्य की बातें होती रहती थीं। ला० हरचरनदास (कपुरथलावाले) प्राणायाम के मार्ग से साधन कर रहे थे। भोजन का उत्तम प्रबन्ध न होने से कुछ विकार हो गया था। फिर ध्यान मार्ग से साधन में लगे। तब उनका कष्ट भी दूर हो गया और भजन में भी अच्छी अवस्था प्राप्त कर ली।

देवराजजी कपूरथले से आये। आपने उन्हें व्यावहारिक त्रुटियों को निवारण करने के लिये प्रायश्चित्त बताया। व्रत आदि से उनका चित्त शुद्ध हुआ। व्यवहार में परिवर्तन आने लगा और भजन में भी उन्नति हुई।

यहाँ एक अन्य माई ने भी अपने पति की आज्ञा पाकर साधन का उपदेश ग्रहण किया। महाराजजी ने पति-आज्ञा में रहने का उपदेश दिया। और यह भी कहा कि "यदि पति कोई ऐसी बात करे जो शास्त्र-प्रतिकूल हो, तो मधुर वाणी से उसे समझा दो और साथही अपना शुभ संकल्प भी करती रहो।"

ऐसे उपदेश पर वह देवी आचरण करती रही। उसके पति मांस आदि खाते थे, वह बना तो दिया करती थी। साथ ही इस दूषण को छोड़ देने की प्रार्थना भी करती रहती थी। धीरे-धीरे उसकी रुचि मांस से हट गई। कभी-कभी यदि शर्म से कहीं खा लेते, तो बीमार पड़ जाते। इस प्रकार उस पुरुष से यह दूषण छूट गये और व्यवहार के अनेक दोष भी, पत्नी के शुद्ध भाव से, धीरे धीरे हट गये। इस प्रकार प्रेम और सेवा के भाव ने विजय प्राप्त कर ली। सत्याग्रह में बड़ा बल है। आपने उस देवी का हृदय इतना पवित्र पाया कि उसकी आध्यात्मिक उन्नति को देखकर आपको कहना पड़ा "जैसा अभ्यास का अनुभव इस देवी को हुआ है, वैसा किसी को नहीं हुआ, इसका चित्त बहुत शुद्ध है"।

मुल्तान जाने के विचार से पहले ही प्रो० सदानन्दजी को कुछ (directions), हिदायतें दे दी थीं, कि ऐसा मकान हो। आपने लिखा था, "मकान ऐसी जगह हो, तो अच्छा होगा, जिसका पड़ोस ऐसों का हो जो मकान के पास ही टट्टी न फिर जावें और उनके अभक्ष्य भोजन की गंध भी न आया करे। (२) मकान बहुत बड़ा न हो, क्योंकि बाहर से यदि कोई आया, तो उसको वहाँ नहीं ठहरना होगा; वर्ना दरवाजा हर वक्त खुला रहता है और हर कस वा नाकस आ जाता है। (३) भोजन हम अपने आप ही पकायेंगे। (४) मकान में, हम दो और एक वहाँ का कोई रह सकेगा और बस, ५) मकान में तुम्हारे ज्ञान (knowledge) के अनुसार कोई घृणित पाप न हुआ हो, इत्यादि, इत्यादि"।

इसी आज्ञा के अनुसार भाई हुक्मचन्दजी की नई सराय ले ली गई। उसमें दो हिस्से थे, एक छोटा, दूसरा बड़ा। महाराजजी

को एकांत रहने का सुभीता था। यह है भी शहर से बाहर। घूमने को शीघ्र स्वच्छ वायु मिल सकती है। पीछे खेत जरा गन्दा था कि जिसको सफ़ा करा कांटे लगवा दिये गये। महाराजजी भी यहाँ से शीघ्र चल दिये और १५ दिसम्बर से पहले मुलतान आ गये।

यहाँ पर धीरे-धीरे सत्संगी भी श्रीचरणों में रहकर लाभ उठाने के लिये एकत्र होते गये। स्वामी विशुद्धानन्द, स्वामी नित्यानन्द (वानप्रस्थी रलाराम), ला० बस्तीराम, अर्जुनदेव (यह पहले ही पहुँच गये थे), यह सब यहां पर कई मास रहते रहे। धर्मचन्दजी, नारायणदासजी, डाक्टर राजाराम, मलिक राजाराम देरहवाले, कन्हैयालालजी, सेठ हुक्मचन्दजी आदि ने वहीं पास ही रहना निश्चय कर लिया ताकि एकांत वास प्राप्त कर, सत्संग भो अधिक कर सकें।

सेठ हुक्मचन्दजी ने बड़ी श्रद्धा से स्थान दिया था। उनकी प्रबल इच्छा थी कि कुछ भजन साधन में लगें। कुछ नियम भी पालन किये। पर कड़े नियमों को पालन करने में असमर्थ होने के कारण बहुत लाभ न उठा सके। महाराजजी भी पहले तो उनको बहुत समय देते रहे, पर फिर उन्हें ढीला होते देख, पुरुषार्थ छोड़ दिया। इधर बड़े दिन की छुट्टी आई, उस अवसर पर कई एक सेवक दर्शनों को आये। कल्याणदेवजी चकवाल से थोड़े दिनों के लिये आये। नन्दलालजी और ला० गोविन्दरामजी भी दर्शन करने आये थे।

कृष्णकुमारजी भी इस अवसर पर कानपुर से आये। मोह में पड़, भोग वश, आपका विवाह सरदार जैसासिंहजी की पुत्री से १६२७ वैशाख में हो गया था। आपका विचार था कि यदि किसी अभ्यास में लगी हुई देवी से सम्बन्ध हो, तो लाभ

होगा। इस देवी के सम्बन्ध में बड़ी प्रशंसा सुनी थी। उनके पिता का भी यह विचार था कि लड़कियों के अविवाहित रखकर बड़ी चिन्ता में पड़ना पड़ता है. उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह करना निश्चय कर लिया था। एक मित्र द्वारा ऐसा संयोग हो गया। वह देवी भी समझती थी कि कृष्णकुमारजी ने सत्संग किया हुआ है, सो कुछ सहारा रहेगा। फिर जब विवाह हो गया, तो दोनों ने शीघ्र ही अनुभव किया कि "विवाह बन्धन है। स्वतन्त्रता के छोड़कर कष्ट ही होता है। फिर काम से प्रेरित जो कर्म हो वह दुःख ही दिलाता है"। माया का मोह बड़ा है, किसी न किसी प्रकार से फंदा डाल पुरुष को फँसा देती है। कबीर साहिब ने सत्य कहा है:—

माया महा ठगनी हम जानी।
केशव के कमला हो बैठी, शिव के भवन भवानी।
योगी के योगिन हो बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्माणी॥
भक्तन के भक्तिन हो बैठी, राजा के घर रानी।
पंडे के देवी हो बैठी, तीरथ में हो पानी॥

जब इस प्रकार दोनों को होश आया, तो कानपुर से श्री सेवा में पत्र भेजा, क्षमा प्रार्थना की, क्योंकि 'दोनों ने ही मोहवश आज्ञा का उल्लंघन किया था,' दर्शन की आज्ञा माँगी; और सहारे के लिये याचना की कि फिर ऊपर उठ सकें। आपने उत्तर दिया, "इस बात की तो खुशी है कि तुमको श्रेष्ठ देवी तुम्हारी सेवा के लिये प्राप्त हो गई, जो कि तुम्हारे इस तप का फल है, जो तुमने प्रथम स्त्री के साथ सहन किया था। परन्तु देवी हो या महा लक्ष्मी, आखिर माया का रूप है; और हाड़, मांस, चाम में कोई विशेषता नहीं देखता; इसलिये बन्धन चाहे सूत की रस्सी का हो, चाहे रेशम की रस्सी का हो, वह बन्धन

ही है । दोनों रस्सियाँ मनुष्य को स्वतन्त्रता पूर्वक चलने से महरूम रखती हैं । तुम इन सब बातों को स्वयम् समझते हो, विशेष लिखना फ़ज़ूल है । स्त्री चाहे देवी हो, चाहे भक्तिन हो, चाहे योगिन हो, वह पुरुष को बन्धन ही प्रतीत होगी । हाँ, जिसको विचार नहीं है, और कामान्ध है, उसकी बात निराली है। जो जीव ऊँचे चढ़कर गिरते हैं, उन पर तरस जरूर आता है, परन्तु लाचारी है, माया अति बली है, प्रभु ही रक्षा करें, तो मनुष्य इसके फंदे से छूटे, वरना बहुत कठिन है । तुमने जो दर्शनों के लिये आज्ञा माँगी है, यह नई बात है, जो पहले कभी नहीं हुई थी । तुमने कौन सा मेरा अपराध किया है, जिससे तुमको संकोच होता है । यदि तुमने सोने की बेड़ियाँ ली हैं, तो अपने ही पैरों में पहनने के लिये हैं, उनसे मेरा क्या बिगड़ता है, जिससे तुम अपने को कसूरवान समझते हो । प्रत्येक पुरुष अपने जीवन को खास ढंग पर चलाने के लिये स्वतन्त्र है, इसमें दूसरे को क्या । यदि तुम नहीं रुक सके, तो दूसरे का क्या बिगड़ा ? यदि लाभ होगा तो तुम्हीं को होगा, यदि हानि हुई तो भी तुम्हारी ही होगी । इसके लिये तुमको बिलकुल ख़याल नहीं करना चाहिये कि मैं तुमसे कभी नाराज़ हूँगा, अलबत्ता गिरावट को देखकर तरस जरूर आता है, परन्तु बेबसी है ।"..

आप शिष्यों की कमज़ोरी की किस उदार भाव से उपेक्षा करते थे। क्षमा तो तब करें, जब क्रोध किया हो । ऐसी क्षमता और सहनशीलता सन्तों को ही शोभा देती है । जहाँ देवी की प्रशंसा करते हैं, वहाँ उपदेश का अवसर पा बड़े करुणामय, हृदय को विदीर्ण करनेवाले, दुःख से भरे अथवा चोट दार शब्दों में चेतावनी भी देते हैं । गिरते को सहारा भला और कौन दे सकता है। यदि सन्तों की दया अपार न हो, तो भटकते प्राणियों

को कौन राह लगाये । महापुरुषों की अगाध कृपा तथा असीम अनुग्रह से ही गिरते उठते जिज्ञासु को हिम्मत आ जाती है। ऐसे प्रभु की सत्संगति पाकर भी जिन्होंने अमूल्य अवसर हाथ से खो दिया, वे सचमुच ही भाग्यहीन हैं । पर माया बड़ी प्रबल है, प्रभु ही उससे रक्षा कर सकते हैं । फिर भी कृपा के सागर गुरुदेव ने ढारस दी, "जब मनुष्य अपने विचार के अनुसार चलने के लिये, कठिनाई झेलने को भी तैयार रहता है, तब प्रभु भी सहायता देते हैं । Man can do what man has done, जो किसी मनुष्य ने कर दिखलाया है, वह दूसरा मनुष्य भी कर सकता है।" उदासी और पश्चात्ताप में पड़ फिर संयम से रहने का विचार हुआ, तो महाराजजी ने आगाह कर दिया, "जब तक पुराना कृष्णकुमार मर न जाय, तब तक इस व्रत पर दृढ़ रहना संभव नहीं है ।" मरने की इच्छा को ले दम्पति श्री चरणों में गये । बहुत प्रकार से समझाया। अनेक साधन और नियम-उपनियम बतलाए, साथ ही यह भी कहा, "यदि वेदकुमारी को एक सन्तान हो जावे तो उसको सहारा रहेगा"। अस्तु कृपालु भगवान् ने बड़ी कृपा कर डूबते प्राणियों को सहारा दे पार होने का मार्ग सुझाया।

इन दिनों में स्वामीजी प्रातः और सायं दोनों समय घूमने जाया करते थे। सायंकाल तो नाले के किनारे दूर-दूर चले जाते वहाँ जंगल में बैठ जाते और शिष्यों को उपदेश देते। प्रश्न उत्तर होते। ऐसा प्रतीत होता कि शाक्य मुनि गोतम भिक्षुओं को उपदेश कर रहे हैं । इस बार तो यही विचार चलता था कि "संसार में दुःख है, सब प्राणी जो कुछ करते हैं, वे दुःख को दूर अथवा कम करने के लिये करते हैं।" अनेक कर्मों की विवेचना करके समझाते और ऐसे उपदेशों से वैराग्य को पुष्ट करते थे।

दो-चार रोज कृष्णकुमारजी को भी साथ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस मण्डली में उन दिनों, प्रो० सदानन्दजी, पं० शिवरामदासजी, जैसासिंहजी, लाला नारायणदासजी, डा० ज्ञानसिंहजी आदि अनेक सज्जन जाया करते थे। दुःख की विवेचना होती रहती थी। एक दिन मोह का प्रसंग चला तो महाराजजी ने कहा, "देखो, जिनको हम अपना कहते हैं, देखना चाहिये कि वास्तव में वह कितने अंश में अपने हैं। विचार से यही पता चलता है कि कभी-कभी हमारी इच्छा-पूर्ति में सहायक हो जाते हैं। इसीसे मन कल्पना कर लेता है कि अपने हैं। यदि हम निष्पक्ष भाव से देखें, तो पता चलता है कि मोह की गुंजाइश ही नहीं।" सायंकाल को बैठक में अँगीठी जला करती, वहीं सब लोग बैठते और श्री गुरूजी उचित उपदेश देते, शंका निवारण करते और प्रश्नों के उत्तर देते रहते थे। दाँत तो मुख में थे ही नहीं। आकृति में भी कुछ भेद पड़ गया था, पर फिर भी शब्द बड़ी सावधानी से निकालते थे।

यहां ही उन दिनों कन्हैयालालजी ने पानी पर चान्द्रायण व्रत किया, छः दिन में घबरा गये, पर महाराजजी ने कुछ ऐसा बल प्राप्त करा दिया कि उनका व्रत निर्विघ्न समाप्त हो गया। एक ठठेरा भी साधन के लिये आया, उसको १२ दिन का अनशन व्रत करने को कहा। व्रत शुरू हुआ। ख़ुशीरामजी अथवा स्वामी नारायणहरिजी को देख-भाल करने की आज्ञा हुई, पर वह छः दिन में घबरा कर व्रत छोड़ बैठे। पीछे जब गुरूजी से उपदेश लेने आये, तो आपने इन्कार कर दिया, और कहा:—"अभी, पहले ही तुम घबरा गये हो, तो पीछे और कठिनाइयों को कैसे झेल सकोगे। तुम पहली परीक्षा में ही फ़ेल हो गये हो, बल प्राप्त करो।"

इन दिनों दोपहर को स्वामी विशुद्धानन्दजी दर्शनों की कथा करते थे। अनेक सत्संगी उसमें जाते। जो कुछ समझ में आता वह सायंकाल को महाराजजी के सामने पेश कर पूछा करते। इस प्रकार अनेकों सूक्ष्म विचार चला करते और जटिल समस्यायें हल होतीं।

इस बार स्त्रियों को अधिकतर आने के लिये मना कर दिया गया था। कई तो महाराजजी के भ्रमणार्थ आते-जाते समय दर्शन कर लेतीं, सराय के फाटक पर इसी प्रतीक्षा में रहतीं। सप्ताह में एक बार आप कोठे पर खड़े हो जाते, तब सब दर्शन कर लेतीं। किसी को विशेष उपदेश की ज़रूरत होती, तो या तो लिख भेजते, या बुलवाकर समझा देते। आम झमेला बहुत कम रहा।

आपने डा० राजारामजी को षट क्रियाओं का अभ्यास करा साधन में सहायता की और काम-क्रोध जीतने के लिये विशेष समझाया। व्यवहार में सरलता के नियम बतलाये, बहुत लाभ हुआ।

खांसी-ज़ुकाम के कारण डाक्टरों की राय से गले का कव्वा कटवाना निश्चय हुआ। पर कैंची ही कुन्द मिली। बड़ी मुशकिल से डाक्टर बाबुरामजी उसको काट पाये, जिससे कष्ट विशेष हुआ। दो-तीन दिन तक तो बड़ा दुःख रहा, पीछे खांसी ज़ुकाम में भी कुछ अच्छा परिवर्तन हुआ।

डा० जयदेव पहले रामझरोखे में दर्शन करने आये थे। उस समय विशेष लाभ नहीं उठा सके थे। उन्होंने दांतों के सम्बन्ध में कहा था कि "कमज़ोर हो गये हैं, कुछ बनवा लिये जावें।" महाराजजी ने कहा, "काम तो चला जाता है, जब सब टूट जावेंगे तो देखा जावेगा।" प्रो० सदानन्दजी और पं० शिवरामदासजी चाहते थे कि लाहौर जाकर अच्छे दांत बनवा लिये

जावें। पर आपने यही कहा कि डा० जयदेवजी ने प्रेम से कहा था, उन्हींसे ही सेवा लेनी चाहिये। फिर वह भी एक दिन आये और उन्होंने अपना प्रस्ताव दुहराया। बड़े परिश्रम और प्रेम से दाँत बनाये गये। खाने के समय उनका प्रयोग कर लेते। पहले तो वह कुछ कष्ट-दायक थे, पर धीरे-धीरे ठीक हो गये। एक दाँत देहरादून में १९२८ में टूट गया, उसकी मरम्मत वहीं करा ली थी। २ माह बाद फिर उसी दाँत को ठीक कराना पड़ा।

डा० जयदेवजी के प्रेम और सेवा-भाव से प्रभावित हो महाराजजी ने उनको भी सन्मार्ग में लगाया। अपने सामने बैठाकर ध्यान कराया। पहले दिन ही कुछ अनुभव हुआ, उनका चित्त लगने लगा। फिर उसी प्रकार अभ्यास करते रहने का आदेश किया। आहार-व्यवहार को अधिक शुद्ध करने का उपदेश देकर कृतार्थ किया। यथा समय, वह फिर भी समय लेकर साधन में विशेष सहायता लेते रहे।

पुराने सत्संगी भी यथा अवसर सेवा में आ सहायता लेते रहे। सायंकाल के सत्संग में बहुत सज्जन लाभ उठाते थे। वैराग्य पर ही विशेष वार्तालाप होती थी। काम, क्रोध आदि विषयों को विजय करने की भी बात-चीत चलती।

बड़े दिन की छुट्टी में भी देवकीनन्दनजी दोबारा क्वेटा से आये, श्रीचरणों में बैठ सहायता ले थोड़े दिन पीछे लौट गये।

अनेक बार, सत्संग में, प्रश्न उत्तर होते थे। महाराजजी ने एक दिन क्रोध के सम्बन्ध में एक कथा कही। 'एक सुनार बहुत दिन किसी महात्मा की संगति में रहा, और सेवा भी करता रहा। जो कुछ दूसरों से कहते, वह सब सुनता रहता था। एक दिन उसने कहा, 'भगवान मुझे कुछ उपदेश दें।' उन्होंने कहा,

'बाजार से दो पैसे की मूली ले आओ।' जब वह जा रहा था, तो दूर से बुलाया, 'अरे, भाई, इधर आना', जब वह आया, तो समझाया कि मूली नर्म और हरी हो। ऐसे कई बार बुला-बुला कर उसको कहा। पर उसे क्रोध न आया। जब मूली ले आया, तो महात्माजी ने पूछा, 'तुमको क्रोध क्यों नहीं आया?' भक्त ने बड़ी निरभिमानता से कहा, 'आपकी दया से क्रोध तो नहीं आया।' तब महात्माजी ने कहा, 'यही हमारा उपदेश है, बिना मान अथवा क्रोध के सब काम किया करो।' इस पर महाराजजी ने कहा, "व्यवहार में मन की जाँच करते हुए इसके विकारों को नाश कर समता-भाव से सब काम करना चाहिये, यही उत्तम अवस्था है।"

लोभ के सम्बन्ध में ऐसा उपदेश दिया—"कमाते हुए, चित्त को धन वैभव से रँगा देना चाहिये, विचार भी करना चाहिये कि अधिक रुपया से कितना लाभ है और कितनी हानि। जो लोग भूखे ही घर से निकलते हैं, वह पीछे जाइदाद की चाह में पड़ मठधारी बनकर गिर जाते हैं।"

एक सज्जन की इच्छा हुई कि महाराजजी उसके घर का भोजन स्वीकार करें। उन्होंने इनकार कर दिया। तब वह बोले 'साधु तो दयालु होते हैं, जैसा निवेदन किया जावे, मान लेते हैं।' इस पर महाराजजी ने कहा, "हाँ, साधु पशु होते हैं, जैसा चाहो, कान से पकड़ कर नचा लो।" तब वह बड़ा शरमिन्दा हुआ और क्षमा माँग कर भोजन करने के लिये फिर याचना की। तब महाराजजी ने कहा, "यदि तुम पाप से बचने की प्रतिज्ञा करो, तो हम तुम्हारा भोजन ग्रहण कर लेंगे।" वह उसको न मान सके। तो आपने भी इनकार कर दिया। इस प्रकार स्वामीजी की दृष्टि प्राणियों के उद्धार पर ही रहती थी।

एक व्यक्ति ने पूछा कि शास्त्र में मांस खाना लिखा है। महाराजजी ने कहा, "हाँ, जो पुरुष हिंसक योनि से आया है, उसको मांस खाने का स्वभाव है, तो झट कैसे छोड़ सकता है। उसको शास्त्र में विश्वास है, तो उसकी विधि से खायेगा। शास्त्र कहता है, शिकार करके खाओ। इसमें कुछ कष्ट भी है, तो धीरे-धीरे समझ में आ जायेगा। शास्त्र में यह भी कहा है कि यज्ञ में विशेष विधि से मार कर खाना चाहिये, इसमें भी बड़ा बन्धन है। इस प्रकार नियमों में रख कर शास्त्र रुचि को हटाना चाहता है। फिर यह भी कहा कि यदि न खाये तो अच्छा है। शास्त्र तो अपनी श्रद्धा को बनाये रखना चाहता है। फिर अपने अनेक बन्धनों की सहायता से पाप से बचाना चाहता है। शास्त्र की मन्शा तो हमें पुण्य की ओर ले जाने को है।"

एक सत्संगी ने कहा, "हम कर्म नहीं करते। ईश्वर ही सब कुछ करता है, चाहे वह कर्म अच्छा हो या बुरा" आपने समझाया—"वह ऐसा नहीं करा सकता। जो राजा अपने नियमों को स्वयम् तोड़ दे, उसका राज नहीं चल सकता। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। यदि ऐसा ही मानते हो, तो दुःख का रोना क्यों रोते रहते हो। पाप छोड़ते नहीं, लोभ में मारे-मारे फिरते हैं, मोह आदि विकारों को जीता नहीं, धर्म ज्ञान कहने लगे, मानों धर्म को तुम्हींने हो समझा है। यह कपट है। कबीर साहब ने सच कहा है, 'गृहस्थी होये कथे ज्ञान, भंग पी कर धरे ध्यान, वैरागी हो कूटे भग, कहत कबीर यह तीनों ठग'; यह ठगी छोड़ो। पहले चित्त को शुद्ध करो, फिर ईश्वर क्या करता है, यह समझ में आवेगा। अपनी कमजोरी से बचने के लिये, ईश्वर पर दोष मत लगाओ।"

इस प्रकार अनेक दिन सत्संग होता रहा। इस बार गरमी

सहारने का विचार था। इसलिये यहां रहते रहे। कुछ दिन वाद भाई हुक्मचन्दजी को स्थान की जरूरत पड़ी, तो आप वैसाखी के वाद ब्रह्म घाट में चले गये। स्वामी नित्यानन्दजी तो लाहौर चले गये। कुछ दिन पश्चात् शेष वाहर के लोग भी अपने अपने स्थान को चल दिये।

संसार में सब प्रकार के लोग हैं। कोई मान चाहते हैं, कोई अपनी इष्ट-पूर्ति में लगे हैं। संत तो सबको समान देखते हैं। जो धर्म-पथ पर आरूढ़ नहीं होते, वह संतों को अच्छे नहीं लगते। धर्म के नाते ही वह मनुष्यों से प्रेम करते हैं; पर काम, मान, मद में रत जन तो इसको कब समझ सकते हैं। अपनी इच्छा पूर्त्ति में वाधा देख, मान हानि को न सहार झट विरोध पर उतारू हो जाते हैं। इस स्थान पर स्त्रियां सब इकट्ठी होकर सत्संग में आती रहती थीं। महाराजजी उनको उपदेश देते और कभी-कभी विनय-पत्रिका की कथा सुनाते। ऐसे ही, एक दिन जब ५० देवियाँ इसी स्थान में एक बड़े कमरे में बैठी कथा सुन रही थीं, तो दो-चार दुष्ट व्यक्तियों ने वाहर से दरवाजा खोलने के लिये कहा। स्वामी नारायणहरीजी ने दरवाजा न खोला, तो वे गाली देने लगे। कुछ देवियों ने भी जाकर उनको फटकारा, "तुम वड़े धर्म-धर्म चिल्लाते हो, तुम्हें शर्म नहीं आती; जो निरपराध महात्माओं को गाली देते हो। हम क्या पाप कर रही हैं, जो तुम ऐसा उत्पात मचाने आये हो। देख नहीं रहे कि सामने कथा हो रही है"। तब वह शरम खा गये। उसी दिन नारायणहरीजी वाजार में पंसारी लालचंदजी से औषधि लेने गये। दो वदमाश वहाँ खड़े थे। एक हलवाई को साथ लेकर आपको गाली देने लगे। आप सब सुनते रहे। फिर जब लालचन्दजी ने पूछा, तो आपने दिन की सारी कथा सुनाई कि "इनके हृदय में

ऐसी भावना हो गई है। उसीके वश हो यह ऐसा कहते हैं, इनका क्या दोष है ?" वह और भी तेज हो गये। शोर होने से कुछ लोग भी वहां जमा हो गये। इतने में एक पढ़े-लिखे सज्जन वहां आये। वह सब हाल सुनकर उन बदमाशों को धमकाने लगे। "तुमको शरम नहीं आती, महात्माओं को गाली देते हो। आज कल के जमाने में स्वामी सियारामजी जैसा कोई सन्त ही नहीं है कि जिसने ऐसी सावधानी से ब्रह्मचर्य को पाला है। देवियां ऐसे महात्मा के पास जाती हैं तो क्या बुरा करतीं हैं। यदि तुमको संदेह है-भी, तो तुम अपनी माँ-बहिनों को क्यों नहीं मना करते। वह किसीको बुलाने जाते हैं ? क्यों वे मारी-मारी फिरती हैं। पाप से डरो, सती-साध्वी देवियों पर कलंक न लगाओ। साधु को सताकर अनर्थ मत करो, ईश्वर से डरो।" तब वह क्षमा मांग चले गये। इधर जब महाराजजी के भक्तों को पता चला, तो वह मालूम करने लगे कि किनकी शरारत है। पता करने पर यही निश्चय हुआ कि सभ्य पढ़े-लिखे आदमियों ने ही मूर्खों को बहका कर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहा था। धर्म के ठेकेदार कोरे पढ़े-लिखे मनुष्य समाज का क्या उद्धार कर सकते हैं, जो इस प्रकार पाप से भय नहीं खाते और झूठ-मूठ महात्माओं और देवियों पर दोषारोपण करने पर तैयार होजाते हैं। पर यहाँ तो दामन पाक था। आप उसी प्रकार अपने अमृतरूपी वचनों से स्त्री-पुरुषों को परमार्थ का उपदेश देते रहे। भय तो वहां हो, जहाँ पाप है। संत तो पाप से हट कर ही निर्भय पद प्राप्त करते हैं। सृष्टि में बड़े-बड़े महापुरुषों का विरोध दुष्ट आदमी किसी न किसी आड़ से करते रहते हैं। महाराजजी भी असली कारण को जानते थे, इसलिये वे अचल रहे।

इस वार आप ऐसा यत्न कर रहे थे कि नई स्त्रियों को पुरानी अभ्यासियों की सहायता से उपदेश दिलाते रहें। आपका लक्ष्य था कि देवियाँ स्वतन्त्र हो जावें, पीछे भटकती न रहें। इस उद्देश्य में आपको बहुत-कुछ सफलता भी प्राप्त हुई।

इस वर्ष ब्रह्मचारी जगन्नाथ, जो डा० जयदेवजी के संग कुछ काम करते थे उनको देख सत्संग में आते रहे, फिर भजन-साधन में भी लगे। पं० हरीदत्तजी स्नातक (गुरुकुल कांगड़ी) मुल्तान छावनी में रहते थे। वे भी सत्संग करते रहे। आप विचारवान तथा शुद्ध व्यवहार के पुरुष थे, अतः साधन में लगाये गये। विचार मार्ग से चले। महाराजजी की सहायता पा मन के विकारों को जीतने में विचार द्वारा परिश्रम करने लगे।

गरमी बढ़ती गई। इन्हीं दिनों, प्रो० कृष्णकुमारजी भी छुट्टियों के कारण यहाँ आये। धर्मपत्नी सहित सेवा में बैठ उत्साह पूर्वक उपदेश लिया। बख़्शी रामदासजी जम्मू से आये और प्रो० सदानन्दजी के पास ठहरे। एक सप्ताह सत्संग करते रहे। अजमेर से देवीदत्तजी गृहिणी सहित दर्शन को आये। प्रो० सदानन्दजी के यहाँ एक सप्ताह रह सत्संग में आते रहे। मा० कल्याणदेवजी स्कूल का काम छोड़कर प्रभु की शरण में आये और गोपाल-घाट में ठहराये गये। १९१७-१८ से बराबर सत्संग करते चले आते थे। अब दृढ़ विचार था कि श्री सेवा में रहकर जीवन को कृतार्थ करें। स्वामीजी गरमी के दिनों में बड़े प्रातः घूमने जाते। दो बार स्नान करते, जौ का दलिया, ठंडे साग अथवा जौ की रोटी खाते। पानी के बजाय अर्क पीते थे कि जिससे गरमी सहारने में सहायता रहती। सायंकाल को आम सत्संग होता, जिसमें अनेक भक्त आकर परमार्थ की

बातें सुनते थे। १९१२ से, १६ वर्षों के बाद गरमी सहारने का मौका मिला था। कुछ सत्संगियों को सहायता देनी थी, इसी विचार से आप जून के अन्त तक ठहरे रहे। सायंकाल को सत्संग में बैठे-बैठे लेट जाते, कहते "लेटने से गरमी कम होती है।" गरमी को रोकने के लिये ठंडी चीजों का प्रयोग करते रहते थे, जिससे नज़ले ने सताना शुरू किया।

छठा प्रकरण (देहरादून)

२४, जून को महाराजजी यहाँ से चल दिये। सायंकाल को सूचना दी कि 'आज रात्रि को जावेंगे।' स्त्रियों को भी किसी प्रकार पता चल गया। छावनी स्टेशन से चले। कई देवियाँ शहर स्टेशन पर पहुँचीं; कोई छावनी पर गईं; मुहर्रम के दिन थे, आँधी भी खूब आई, फिर भी अनेक भक्त जन स्टेशन पर पहुँच गये। ऐसा प्रतीत हुआ कि अन्तिम समय का मेला है। बड़े प्रेम से सबको प्रणाम करते रहे। इस बार पं० शिवरामदासजी की बहुत अनुग्रह पर रेल का किराया उनसे लिया। गरमी के कारण दूसरे दर्जे में सफ़र किया, नहीं तो प्रायः तीसरे या कभी-कभी ड्योढ़े दर्जे में जाया करते थे। इतने भक्त होते हुए भी आपका उन पर वृथा बोझ डालने को चित्त नहीं करता था। आप तो शरीर के निमित्त भी सहायता लेने में संकोच अथवा बड़ी दीनता व दुःख प्रतीत करते थे, और प्रभु से याचना करते रहते कि "अब बहुत बेगार भुगत ली, शरण में ले लो।" जब चलते समय आँधी देखी, तो खुशीरामजी के चित्त

में आया कि ऐसा प्रतीत होता है कि अब फिर शायद मुल्तान को आप के दर्शनों का सौभाग्य नहीं मिलेगा। आँधी आने वाले कष्ट की सूचना दे रही थी कि अब यहाँ अज्ञान की घटा छाई रहेगी। ऐसा ही हुआ।

लाहौर में टेकचन्दजी स्टेशन पर मिलने आये। महाराजजी ने यहीं ठहर कर भोजन किया। कुछ देर Waiting Room वेटिंग रूम में रहे। फिर सायंकाल की गाड़ी से ६-७ बजे जालन्धर पहुँच गये। एक सप्ताह तक साधुसिंहजी के पास रहे। सब सत्संगियों को दर्शन करने का अवसर मिला। कपूरथला, लुधियाना, फगवाड़ा आदि से अनेक भक्त सत्संग करने आये। यहाँ से सीधे देहरादून पहुँचे। भगवन्तसिंह भी साथ चले। रास्ते में लुधियाना के सेवक फिर दर्शनों को आये। हरिद्वार उतरने का विचार भी था, पर जब हरिद्वार पहुँचे, तो बड़ी वर्षा हो रही थी, इससे आगे ही चले गये। सीधे ही महन्त की धर्मशाला में पहुँचे, वहाँ ही क्षेत्र में भोजन किया। यहाँ किसीको सूचना तो थी ही नहीं। वहीं क्षेत्र में स्वामी तारकानन्दजी भी मिल गये। फिर महन्त की आज्ञा और प्रबन्ध से एक दूसरी धर्मशाला में रहने लगे। वहाँ स्थान अच्छा था। कुछ दिन तक एक भक्त के यहाँ से भोजन आता रहा। उसकी बड़ी इच्छा थी कि उसको ऐसी सेवा का अवसर मिले। पीछे झब्बालालजी, और अर्जुनसिंहजी का पता चला, तो उनके घर से भी भोजन बारी-बारी आता रहा। फिर मा० गौरीशंकरजी को भी पता चला। स्थान के प्रबन्ध करने का विचार हुआ। पारसाल के भ्रमण में नवादा स्थान आपको अच्छा लगा था; पर वहाँ पहिले ही कुछ साधु आये हुए थे। फिर झब्बालालजी के द्वारा सेठ लक्ष्मीचन्दजी की आज्ञा ले डालनवाला 'मोहनी-भवन' में रहने का

प्रबन्ध किया गया। १० जुलाई १९२८ को यहाँ आकर डेरा लगा दिया। स्थान अच्छा खुला है, शहर से दूर है, जंगल क़रीब है। भक्तों के रहने के लिये भी यहाँ पर्याप्त स्थान था।

सूचना पाकर सत्संगी भी आने लगे। मा० कल्याणदेवजी स्वामी नित्यानंदजी और लाला नारायणदासजी पहले ही आ गये थे। शहर में एक दूसरी धर्मशाला में रहने लगे थे। यह लोग दो-ढाई बजे इस स्थान पर आकर सत्संग किया करते थे।

श्रीयुत गोपालजी और देवराजजी मसूरी पहुँचे हुए थे। सूचना पाकर शीघ्र आ गये। गोपालजी तो तीन-चार रोज़ श्रीसेवा में रहकर लौट गये। देवराजजी सेठी १ वर्ष की छुट्टी लाये थे, इसी से यहाँ ही स्थान का प्रबन्ध कर स्थिर रूप से रहने लगे। स्वामी विवेकानन्द पारसाल तो अवसर न पा सके थे, इस वर्ष पता पाकर, शीघ्र ही कनखल से यहाँ पहुँचे और सेठीजी के साथ एक कोठड़ी में ठहराये गये। बख़शी रामदासजी हरिद्वार से आये, दो-चार-रोज़ बड़ी कोठी के बरामदे में रहकर लौट गये।

पं० विश्वबन्धुजी ने यद्यपि अनेक बार महाराजजी के दर्शन किये थे, पर वास्तविक लाभ आप इस बार ही उठा पाये, जब कि आपको जुलाई के अन्त में दो-तीन दिन श्रीसेवा में रह-कर सत्संग करने अथवा विशेष लाभ उठाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दो-तीन वर्ष से आपकी चित्त वृत्ति मोह और कर्त्तव्य की समर-भूमि बन रही थी। श्री स्वामी विशुद्धानन्दजी के सप्रेम अनुरोध से वे इस वर्ष ही अभ्यास में प्रवृत्त हुए थे। परन्तु उन्हें शीघ्र ही स्वयं प्रतीत हो गया कि उनका चित्त इस मार्ग पर चलने के लिये स्वतन्त्र न था। आप अपने आपको विशेष आसक्ति से बंधा हुआ प्रतीत करते थे। उसे छोड़ना ठीक प्रतीत

होते हुए भी, छोड़ न पाते थे। दोनता को बुरा अनुभव करते हुए भी अदीन न हो रहे थे।

महाराजजी आपकी कुछ मिश्रित प्रवृत्तियों तथा आपके स्वभावादि से परिचित थे। जब आपने अपनी सारी स्थिति सामने रख दी और मार्ग निर्देश चाहा, तो श्रीगुरुदेव ने बड़ी कृपा की। दूसरे दिन प्रातःकाल महाराजजी ने उन्हें एकांत में श्रीमद्भगवद्गीता के बारहवें अध्याय का पाठ सुनाकर उसके अन्दर रुचि की जागृति के आधार पर आत्म परीक्षा की ओर प्रेरणा की। साथही आपने यह भी उपदेश लिया कि विचार से आत्म निरीक्षण किये बिना अभ्यास में न पड़ें तो अच्छा है। इस प्रकार ४ घण्टे तक लगातार उपदेश ग्रहण करते रहे। महाराजजी ने बड़ी सरलता और सहृदयता से अवस्था अथवा रुचि अनुसार उचित आदेश किया। उस विधि-निषेध से आप के डांवाडोल चित्त में नई फुरना होने लगी, जिससे शीघ्र ही आप धैर्य से अपने कल्याण में लग गये। उस समय पं०जी को विचार ही नहीं था कि आपको शीघ्र ही ऐसे संकेत से लाभ उठाना होगा। शीघ्र ही आप ऐसी परिस्थिति में बँध गये कि जहाँ महाराजजी के सदुपदेश ने परम अमृत का काम किया। उस समय से अब तक जैसा कुछ लाभ आपने श्रीगुरुदेव के दर्शाये पथ पर चलने से प्राप्त किया है, यह पण्डितजी का आचारी हृदय ही जानता है। यद्यपि आपने अभ्यास में रुचि न होने के कारण इस मार्ग में श्री स्वामीजी से कुछ विशेष सहायता नहीं प्राप्त की, परन्तु फिर भी अपनी वर्तमान उन्नत अवस्था के लिये वे बहुत अंश तक स्वामीजी के ऋणी हैं।

स्वामी विशुद्धानन्दजी भी साथ ही आए थे। पाँच रोज पास रहे, फिर किसी तपोभूमि में ठहर एकान्त सेवन की आज्ञा

पा लौट गये । भगवन्तसिंहजी तो गुरु-चरणों में रहते ही थे। देहली से टेकचन्दजी भी आये और एक मास तक समीप रहकर लाभ उठाते रहे।

पं० गंगाप्रसादजी चीफ़ जज टेहरी, इस वर्ष फिर श्रीसेवा में आये। कोठी में रहते रहे। थोड़े दिन सत्संग कर अभ्यास सम्बन्धी बातें पूछ, लौट गये। जब उन्होंने देखा कि सत्संगी कोठी के (Menial quarters) नौकरों के स्थान में रहते हैं, और कोठी ख़ाली पड़ी रहती है, तो वे कोठी के मालिक से मिले और उससे कहा:—'जब कोठी ख़ाली पड़ी है, तो इन सज्जनों को क्यों न रहने को दी जाय।' बाद में वह कोठी भी महाराजजी के प्रबन्ध में आ गई।

टोहाना (पंजाब) से दो व्यक्ति आये हुए थे। दोनों ही भजन-साधन में लगे। एक तो शीघ्र लौट गये, दूसरे खेमचन्दजी, जो कुछ प्रज्ञाचक्षु थे, वहाँ रहते रहे। जब स्वामीजी चित्रकूट चले गये, तो वे भी उनके साथ गये और उनके पास रहकर ८-९ मास तक भजन-साधन में लगे रहे। मुल्तान के बाबा बजरंगदासजी भी यहाँ पहुँच चुके थे।

मुल्तान के अनेक सत्संगी दर्शन अथवा सत्संग करने को आना चाहते थे, धर्मचन्दजी भी छुट्टी प्राप्त कर चुके थे, शीघ्र यहाँ आ गये। कोई २० देवियाँ भी साथ आईं। पहले तो यह स्टेशन के पास धर्मशाला में रहे, फिर एक मकान नारायणहरीजी ने पहले ही ले रक्खा था, उसमें आ ठहरे। परन्तु वह छोटा था, इस लिये एक मकान और लेना पड़ा। साथ ही कुछ देवियों के लड़के भी थे। राधाकृष्ण, शान्तिस्वरूप, नन्दलाल, सदानन्द, लीलाकृष्ण, मदनलाल सब युवक बाल अपनी माताओं के साथ थे। धर्मचन्दजी तो गृहिणी के साथ आये

थे। मुल्तान में इतने दिन सत्संग कर हार-शिंगार से भी आपकी स्त्री ने अपने हृदय को मुक्त कर लिया था। उसी लाभ को स्मरण कर यहाँ दो मास रहते रहे। लेखूरामजी भी अपनी स्त्री के साथ पहुँचे थे। १६२२ से, इनका श्रीसेवा में आना प्रारंभ हुआ था। बिना पूछे, सुनी हुई बातों पर अपने आप ही पुरुषार्थ करते रहे थे। जब सहारे की आवश्यकता पड़ी, तो अपना हाल कहा। उपदेश लिया और विधि पूर्वक भजन-साधन में भी लगे। पहले तो सुने हुए मार्ग से चलते रहे थे, ख़ुश्की होने पर कनखल योगेश्वरजी के पास दवाई लेने गये। वहीं महाराजजी भी पधारे थे। वैद्यजी ने उन्हें स्वामीजी के पास भेज दिया। वहाँ आपने तब इन्हें पथ्य भोजन बतलाया था। मुल्तान में उन्होंने फिर अपनी हालत बतलाई। एक बार धोखे में कुचला खा गये थे। बच तो गये, पर दिमाग़ पर ऐसा असर हुआ कि काम और क्रोध की मात्रा बहुत बढ़ गई थी। सत्संग करते-करते यह विकार शिथिल पड़ते गये। इस लाभ को देख कई बार बाहर भी गृहिणी को संग लेकर श्री सेवा में जाया करते थे। देहरादून में भी दोनों आये। दोनों के स्वभाव में बहुत परिवर्तन हो रहा था। विकार दब रहे थे। एक मास से अधिक सेवा में रहकर अतुल उपदेश ले कृतार्थ होते रहे।

देवियाँ शहर में रहा करती थीं। मुल्तान के सब सज्जन भी वहीं रहते थे। २॥ बजे वे सब सत्संग में आते और सायंकाल से पहले लौट जाते। महाराजजी प्रायः चुपचाप बैठे रहते थे, जब कोई प्रश्न कर बैठता था या कोई देवी कुछ पूछती, तो उचित उपदेश दे समझाया करते थे। आपकी सेवा में बैठने से ही चित्त शांत रहता। सन्तों की समीपता में भी पवित्रता राज्य करती है। उस वायु-मण्डल में रहना ही बड़ा सौभाग्य था।

एक विधवा देवी जो अपनी वहिन के साथ हरिद्वार में आई थी, और पहले मुल्तान में सत्संग करके शृंगार छोड़ साध्वी बन गई थी, देहरादून आई हुई थीं। वह अपने मैके में रहती थी। उसके भाई को बुरा लगा कि वह अकेली स्वामीजी के पास क्यों चली गई। वह शीघ्र क्रोध में भरा हुआ देहरादून आया। उसको लोक-लाज का भय खाये जाता था। धर्मचन्दजी के समझाने पर वह और उसकी वहिन दोनों शहर से महाराजजी के अन्तिम दर्शन करने के लिये आये। इस समय १२ बजे थे। गुरुदेव आराम में थे, उठ बैठे। इतना शांति मय उपदेश दिया कि वह विस्मित हो गया और अपनी वहिन को घर ले जाने का विचार उसने छोड़ दिया। वह जानता था, कि उसकी वहिन विधवा थी, और पहले जहाँ उसको देखकर दुष्टों की कुदृष्टि उस पर रहती थी, वहाँ अव उसके सात्विक भावों के आगे सबका माथा झुक जाता था। ऐसा होते हुए फिर भला वह कैसे वहिन के रास्ते में रोड़ा बनता, उसने आदेश पाकर निश्चय कर लिया कि वह यथा सम्भव उस देवी की सहायता करता रहेगा, ताकि वह सन्मार्ग में बढ़ती जावे और उसको भी पुण्य का अवसर मिलता रहे। साधु-संग से ही साधुता आ सकती है। क्रोध-भय वहाँ कैसे रह सकते हैं, जहाँ अमृत ज्ञान-धारा वहती हो।

फिर कई दिन तक वह देवी वहीं रह सत्संग करती रही, और सितम्बर में शेष माताओं के साथ वापस लौट गई। जितनी देवियाँ महाराजजी के उपदेश से साधन में लगी थीं, उनको चक्की पीसने का भी उपदेश था। मुल्तान से जो देवियाँ वहाँ पहुँची थीं, वह कुछ चक्की का मोटा आटा महाराजजी के लिये लाई थीं। जब तक वे देहरादून रहीं, वहाँ भी चक्की से आटा पीसकर प्रभु-सेवा करती रहीं। स्वामीजी भक्तों को तप में

डालना चाहते थे। दूसरी कोई सेवा भाइयों से ग्रहण नहीं करते थे, इसी प्रकार से ही वह भी सेवा कर अपने आपको धन्य धन्य समझती थीं। इनको आज्ञा थी कि "थोड़ा-बहुत आटा रोज़ पीसा करो।"

गुरु-कुल से प्रति सप्ताह लालचन्दजी और रामरखाजी आ जाया करते। एक दिन रह कर लौट जाते। साधुसिंहजी को जब छुट्टी हुई, तो वे पास ही आकर रहने लगे। उनके सुपुत्र भाइयों को निगरानी के लिये जालन्धर लौट गये। पं० देवशर्माजी भी दो-एक रोज़ के लिये आये और सत्संग कर लौट गये। गोपालजी भी दोबारा मसूरी से आये। महाराजजी के पास रहते हो चित्त पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। इसलिये बिन समीप रहे मानते ही नहीं थे। इसीसे बिना बुलाये, थोड़े दिन के लिये भी भक्त बहुत रुपया ख़र्च करके आते रहते थे। इस बार हरिद्वार तो रुके ही नहीं थे, इसलिये योगेश्वरजी को भी यहाँ ही आकर दर्शन करना पड़ा। वैद्यजी महाराजजी के त्याग-वैराग्य पर मुग्ध थे, इससे उन्हें आपके साथ वार्तालाप करके विचारों की गहराई में पहुँचने का बड़ा आनन्द आता था।

स्वामी विवेकानन्दजी साधन की इच्छा ले यहाँ आये थे। इस आश्रम में आने से पहले उन्होंने कुछ अभ्यास किया था, उसमें कुछ अनुभव भी प्राप्त किया, और एक दिन ऐसे आनन्द की अवस्था प्राप्त की कि उसीको फिर लाने का यत्न करते रहते थे। एकान्त सेवन अथवा विचार में अधिक समय गुज़ारते थे। यहाँ कई दिन तो संकोच में रहे। समय जाते देख कुछ उदास थे। जब आपकी कामना का महाराजजी को स्वामी नारायणहरीजी द्वारा पता चला, तो आपने बड़ी कृपा से बुलाकर

कर सब हाल सुना, शरीर शुद्धि करा साधन में लगाया। बड़े प्रेम से हालत भी पूछते रहे।

छुट्टी मिलने पर रामरखाजी और प्रो० लालचन्दजी भी यहीं आकर रहने लगे। स्वामी नित्यानन्दजी, कल्याणदेवजी, जगन्नाथजी ब्रह्मचारी भी यहाँ आ गये थे, यह सब कोठी में रहने लगे। नारायणदासजी और मुलकराजजी वापस लौट गये। रामरखाजी भी थोड़े दिन सत्संग कर के चले गये।

सेठीजी को शरीर में कुछ रोग था, उसकी कई दवाइयाँ कर चुके थे, एक्सरेज़ X Rays भी कराया, फिर चान्द्रायण व्रत करने का निश्चय हुआ, जिससे मन, शरीर दोनों शुद्ध हो जाँय। जगन्नाथजी ने मुलतान में देखा था कि अनेक नर-नारियों ने व्रत कर अपने पाप काटे थे और भजन-साधन में भी विशेष लाभ पाया था, इसी विचार से उनका चित्त भी चान्द्रायण व्रत करने को इच्छुक था। जगन्नाथजी ने व्रत अमावस्या से किया, और सेठीजी ने पूर्णमासी से शुरू किया। दोनों ने दूध का ही आहार रक्खा। कमरे के अन्दर मौन रहते थे। दिन में कई बार हवन करते थे। लालचन्दजी दूध पानी इत्यादि सब पहुँचाते थे। यदि कोई कष्ट होता, तो वह लिखकर देते, महाराजजी भी लिखकर उत्तर भिजवा दिया करते।

स्वामी नित्यानन्दजी जाने वाले थे। पर कल्याणदेवजी १२ रोज़ का अनशन व्रत करने का विचार कर चुके थे। अतः उनकी सहायता के लिये रुक गये। तीनों ने बड़े तप से अपने व्रत समाप्त किये और अतुल्य लाभ उठाये। सेठीजी ने परिणामवाद की सचाई को अनुभव किया, और यही निश्चयं हुआ कि "वैराग्य ही मुख्य है," अथवा "संसार असार है।"

अर्जुनसिहजो इस वर्ष समीप रहकर अधिक लाभ उठाते

रहे। आहार-व्यवहार और साधन में विशेष सहायता लेकर कृतार्थ होते रहे। स्वामी सोमतीर्थजी भी यहाँ कुछ दिन के लिये आये। उन्होंने उड़िया स्वामी वाली बात पूछी कि "आपने उन्हें किस प्रकार समझाया था कि विषय में सुख नहीं है।" महाराजजी ने कुछ समझाया, पर शरीर ठीक न होने से बात जची न। फिर चलते समय उन्होंने निवेदन किया। "मेरा शरीर अच्छा नहीं है। सम्भव है, दर्शन ही न हों, कृपा रक्खें ताकि मेरा कल्याण हो।" स्वामीजी महाराज मुस्करा कर कहने लगे, "क्या पता है. कि पहले हमारा ही शरीर न रहे"। आखिर यही भविष्य-वाणी ठीक हुई। एक दिन आपने योग दर्शन के कुछ सूत्रों पर ऐसी उत्तम व्याख्या की कि पहले ऐसा कभी सुनने का अवसर स्वामी सोमतीर्थजी को न मिला था। संस्कृत के विद्वान होते हुए भी अनुभव-गम्य बातें तो अनुभवी महापुरुषों से ही समझ सकते थे। फिर वे यहाँ से शीघ्र चले गये। पीछे उड़िया स्वामी वाली बात के लिये फिर पत्र द्वारा पूछा कि "मन, शरीर ठीक न होने के कारण समझा नहीं सका, इससे निवेदन है, यदि पत्र द्वारा समझा दें तो बड़ी अनुग्रह होगी।" आपने बड़ी कृपा करके एक पत्र चित्रकूट से लिखा, उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

चित्रकूट, ज़िला बाँदा,
२४-१-२६

श्रीयुत मान्यवर स्वामी सोमतीर्थजी महाराज को सादर प्रणाम पहुँचे। आपका शुभ समाचार जानकर चित्त प्रसन्न हुआ। जो विषयों में सुखाभाव का तजुर्बा है, वह वृत्ति के रहते हुए ही होता है। केवल विषयों को इन्द्रियों द्वारा निष्पक्षता से देखना मात्र ही काफ़ी है। अनुभव आपही हो जाता है कि सुख है वा नहीं, है तो कितना है। या जो कुछ भी भासता है, वह भी

भ्रम से है, असल में कुछ नहीं प्रतीत होता है। जिसको थोड़ा सा राग विषयों में होता है, उसको तो शीघ्र ही पता लग जाता है कि विषयों में सुख मृगतृष्णा के जल के सदृश है। परन्तु जिसको, अधिक राग होता है, उसको कई दर्जे तप करना पड़ता है, तब बार-बार लखाने पर भ्रम का पता लगता है। उसके बाद मन की विक्षेपता सुगमता से बन्द हो जाती है। इससे अधिक लेख में आना कठिन है—कम से कम मेरे में अधिक लिखने की शक्ति नहीं प्रतीत होती। कई हालतों में देखा है, कि कई बार जचाने पर जाँच आती है।

सियाराम

कृष्णकुमारजी भी कानपुर से कुछ दिन के लिये सत्संग करने आये। सायंकाल को साथ घूमने जाते। अनुकूल उपदेश पाकर बहुत लाभ उठाया। कई दिन बराबर दोपहर पीछे, प्रो० लालचन्दजी श्रीमद्भागवत की कथा किया करते थे। गुरुदेवजी, जहाँ-तहाँ पूछने पर, उचित उत्तर दे समझाते अथवा शंका निवारण करते।

देहरादून के भक्त भी समय-समय पर श्रीसेवा में आ सत्संग करते। जब जरूरत होती, तो एकान्त अवसर प्राप्त कर भजन-साधन में कुछ विशेष सहायता प्राप्त करते रहते थे। सेठ झब्बालालजी, पं० आनन्दीप्रसादजी, बा० गौरीशंकरजी इत्यादि सब लोग आया करते थे। स्वामी तारकानन्दजी भी कुछ काल वहीं ठहरे थे। दर्शनों को आते रहते। कभी-कभी देहरादून की कुछ देवियाँ भी सत्संग करने आया करती थीं। धर्मदेवजी स्नातक भी मन्सूरी से आकर एक दो रोज़ सत्संग में रहे। पीछे मुल्तान से ला० गिरधारीलाल सुनार, उनकी धर्मपत्नी और एक और देवी वहाँ आये, और कुछ दिन रहकर सत्संग से

लाभ उठाते रहे। भजन में भी विशेष सहायता पाकर कृतार्थ हुए।

झब्बालालजी के आग्रह पर सब मण्डली दीवाली में उनके घर पर भोजन करने गई। इसी प्रकार आनन्दीप्रसादजी ने दो-एक बार श्री गुरुदेव अथवा स्वामी नारायणहरी का आतिथ्य किया।

सातवाँ प्रकरण (निर्वाण की चाह)

पहले तो आप का स्वास्थ्य अच्छा रहा। दो बार घूमने जाया करते। दिन को रोटी का आहार रहता, रात्रि को दूध अथवा फल खाया करते थे। फिर जब फल का मौसम निकल गया, तो ऋतु-परिवर्तन होने के कारण थोड़ा ज़ुकाम हो गया, इसलिये रात को आहार बिलकुल बन्द रहा, कभी-कभी आध या एक छटाँक दूध पी लेते थे। जब सर्दी आ गई तो दोनों समय रोटी खाने लगे। कुछ सर्दी सहारने का भी अभ्यास करते रहते थे। रात को कमरा बन्द कर बिना कपड़े सोते थे। अधिक समय शरीर स्वस्थ रहा।

मुल्तान से जब देवियाँ यहाँ आईं, तो पीछे विरोधियों ने मौक़ा पा अनेक प्रकार के अपवाद शुरू किये। दुराग्रह में मग्न लोग यह भी न जान सके कि कितनी देवियाँ अपने पतियों अथवा पुत्रों सहित वहाँ गई हैं। वृथा देवियों अथवा महात्माओं पर कलङ्क लगाते रहे। यह सब कथा भक्तों को बड़ी अप्रिय थी। महाराजजी तो अपार क्षमता दर्शाते रहते थे, पर ऐसी शक्ति न

होते हुए, धर्मचन्द्जी अथवा प्रो० सदानन्द्जी ने सब हाल भेज दिया, जिसके उत्तर में आपने ऐसा लिखा—"प्रिय सदानन्दजी, तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ, मुझे इस बात से हर्ष हुआ कि तुमने अपने हृदय का बोझ उतार दिया। जो बातें तुमने मेरे विषय में सुनी हैं, वह इशारतन मुझे कोई न कोई सुना जाते थे, परन्तु मनीराम अपनी ही धुन में रहता था और रहेगा। मेरा लक्ष्य यह था कि यदि स्त्रियों में से कोई इस योग्य हो जायें जो दूसरों को चला सकें, तब मेरा यह बन्धन हट जायगा; परन्तु इसमें इतनी कठिनाई झेलने पर भी वैसी सफलता न हुई, जैसी कि होनी चाहिये थी, यह समय का प्रभाव है। ख़ैर कुछ तो हो ही गई, और ब्रह्मघाट में मैंने उनसे सहायता लेकर तजुर्बा किया, तो ईश्वर-अनुग्रह तथा तुम्हारे आशीर्वाद से बहुत-कुछ सफलता हुई। इसलिये जो नई स्त्रियाँ आईं, उनको उन्हींके सुपुर्द किया। आगे को भी उनसे कह दिया कि जो नियमों पर चलने वाली स्त्रियाँ भजन करना चाहें उनको तुम्हीं चलाना, यदि कहीं कठिनाई हो और तुम्हरी समझ में न आवे, तो तुमको समझा दूँगा; तुम उनको समझा देना। मेरे पास उनको आने की जरूरत नहीं है। चुनांचि अब जिनको ऐसी जारूरत पड़ती है उनसे सहायता मिलती रहती है। जब जैसा उनका भोग होना होगा होता रहेगा। स्त्रियों तथा पुरुषों से एकान्त में मिलने और उनको अपने दिल का हाल खोलकर कहलाने से मुझे संसार की गति का जो ज्ञान हुआ उससे संसार के विषय में जैसे मेरे विचार थे उनकी सख्त दृढ़ता हुई, और इसके लिये मैं सदैव ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने बड़ी कृपा की कि संसार विषयक जो मन में धोखा था उसको तुम्हारी सहायता से निकाल दिया; और इसी-लिये अपवाद को भी शौक़ से सुनता रहता हूँ। जबसे मुझे यह

निश्चय हो गया है कि कुछ स्त्रियां ऐसी हो गई हैं जो दूसरी स्त्रियों को सहारा दे सकती हैं, तब से चित्त में ऐसा वेग कभी-कभी आता है कि अब शहरों की गन्दी हवा को छोड़कर भविष्य बद्री की तरफ़ कुछ दिन काटूँ, और सर्दी के दिन चित्रकूट के बनों में गुज़ारूँ। यह वेग तब अधिक होता है, जब शरीर में बल होता है, परन्तु पता नहीं ईश्वर को क्या मंजूर है। इसलिये उन्हीं के ऊपर छोड़ देता हूँ। इस साल देहरादून में स्थान अनुकूल होने से अभी तक यहीं जमा हुआ हूँ। मुझे तो तजुर्बा हुआ है, 'खल परिहास मोर हित भाई' इसलिये उनको मैं धन्यवाद देता हूँ जो कि निन्दा करते हैं और मेरी बुद्धि को ठीक रखते हैं, परमात्मा उनका भी भला करें। यहाँ आने से पहले और यहाँ भी मैंने स्त्रियों से कह दिया था कि अब मेरे से उतना कष्ट नहीं सहारा जायगा। जितना कि अब तक सहारता रहा, क्योंकि अभ्यास कराने में चित्त बहुत बन्धन महसूस करता है। इसलिये उनको अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा या दूसरी स्त्रियों से सहायता लेनी पड़ेगी। कभी लाचारी हुई तब मैं सहायता करने वालियों को समझा दूंगा, वे उन्हें समझा देंगी। दर्शनों के लिये जो अब तक वे समय मांगती रहती थीं, अब आगे से बन्द रहेंगे। कभी-कभी संगति को इकट्ठा आने की आज्ञा होगी। वह भी चित्त बड़ी हिम्मत करके गँवारा करेगा, वरना तकलीफ़ ही मालूम होती है। उनके शरीर की बदबू की स्मृति आने पर भी चित्त घबराता है।... वैसे स्त्रियां या पुरुषों से मिलने को चित्त नहीं चाहता। मुलतान में बहुत कम ऐसे पुरुष हैं जिनसे मिलने में चित्त उत्साह-हीन नहीं होता, शेष चाहे सत्संगी भी हैं, तब भी चित्त उनसे हटता है। परन्तु लिहाज़ या किसी ख्याल से मिलना पड़ता है, स्त्रियाँ

भी दो ही तीन होंगे, जिनके द्वारा दूसरों को सहायता पहुँचाने का काम लेने में सफलता हुई है, और उनको पत्र द्वारा सूचना देना-लेना सहार सकता हूँ। लाचारी हो तो दूसरी बात है। जबसे यह तजुर्बा सफल हुआ है, तबसे मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा है कि अब बोझ हलका हो गया है।··पुरुषों को मैं देखता हूँ कि जब व्यवहार शुद्धि की बात आती है, तब पीछे हट जाते हैं। इसलिये उनको भी आगे क्या कहा जाये। मेरा तजुर्बा है कि आज कल (Society) समाज की परिस्थिति ऐसी है कि शायद कोई विरला हो अभ्यास का अधिकारी हो, मैंने कई बार लोगों से कहा है, कि कई व्यक्तियाँ यह कहती हैं कि यदि आप अभ्यास बतायें, तो हम व्यवहार शुद्ध करें, नहीं तो क्यों करें; उनको भी कुछ बता देना पड़ा कि वे पाप से तो बचेंगे; परन्तु वे अधिकारी नहीं हैं। ऐसी अवस्था को देख मेरा चित्त उत्साहित नहीं होता। इसलिये अब स्त्रियों तथा पुरुषों से अलग रहने को चित्त बहुत करता है। आगे जैसा प्रभु को मंजूर हो। और मेरा यह विश्वास है कि जो अधिकारी हैं उनको परमात्म-देव लाभ पहुँचा ही देते हैं, चाहे जिस तरह से हो। तुमको यह ख़ूब ध्यान रखना चाहिये कि संग से लोग कुछ न कुछ कहते ही हैं। किसी का मुँह नहीं बन्द किया जा सकता। अब बताओ लोगों की किस-किस बात का खण्डन करते रहें। इसलिये यही ठीक प्रतीत होता है कि जैसी स्थिति में प्रभु रक्खें उसीमें रहने की कोशिश होनी चाहिये, सब बातें उन्हीं के ऊपर छोड़ देना ठीक मालूम होता है। अपने में तो कोई शक्ति नहीं नज़र आती, फिर दूसरों की हानि लाभ की ज़िम्मेदारी कैसे ली जा सकती है। هرچه بادا باد ما کشتی در آب انداختیم जो होना हो होता रहे, हमने अपनी नाव पानी में डाल दी है,

तुम्हारे में शक्ति सहारने की न हो तो मत सुनो या जैसा तुम्हारे चित्त में आवे वैसा करो। मेरे चित्त में तो बार-बार ऐसा ही आता है कि न तो मुझे शुभ के मण्डन में कोई लाभ प्रतीत होता है और न अपवाद के खण्डन में ही कुछ दीखता है; बल्कि यह एक बेजा चिन्ता प्रतीत होती है। मुझे तो किनाराकशी में ही शान्ति प्रतीत हो रही है। यह तो मैं जानता था कि मेरे साथ सम्बंध होने के कारण तुमको भी बातें सुनकर दुख होता है; परन्तु वैसे तो तुम किसी का बुरा करते ही नहीं, फिर ऐसा दुःख दर्शन तुमको क्यों होना था। इसलिये मैंने सोचा था कि तुम्हारी भी क्षमा-शक्ति कुछ मेरे साथ बढ़ ही जायेगी, कुछ मेरे साथ बेहयाई भी आ जायेगी, ईश्वर जो कुछ करते हैं, अच्छा ही करते हैं।"

स्त्रियों के सम्बन्ध में भी आप ऐसे ही एक पत्र में धर्मचन्दजी को लिखते हैं। "जब से मैंने मुलतान जाना शुरू किया था, तभी से मेरा यह लक्ष्य था कि मैं पुरुषों तथा स्त्रियों में इस बात की जाग्रति करा दूँ कि यदि वे व्यवहार को शुद्ध रखकर आहार सात्विक करें और शरीर को ठीक रक्खें और विषयों से मन को हटा कर अन्तर्मुख करें, तो उनको अपने भीतर के ख़ज़ाने का पता लग सकता है। पुरुष तो सब जगह जाकर सत्संग का लाभ उठा सकते हैं; परन्तु स्त्रियों को ऐसा मौक़ा नहीं मिल सकता। इसलिये मेरा ख्याल था कि कुछ स्त्रियाँ ऐसी हो जायं जो दूसरों को सहारा दे सकें, सो अब इन संकल्पों में बहुत कुछ सफलता हो गई है। अब आगे जैसा प्रभु को मंजूर होगा होता रहेगा, जिनकी सच्ची चाह है वे जान भिड़ाकर कोशिश करेंगे और सफलता को प्राप्त होंगे; परन्तु जिनके मन में विषयों की लालसा है, उनके लिये कठिन है।"

महान पुरुष महान लक्ष्य को लेकर ही अनेकों कष्ट सहते हुए प्रभु-प्रेरणा के अनुसार प्राणियों को सन्मार्ग का उपदेश देते हैं। परमात्मा आप ही उनको सब कष्ट सहारने का अतुल बल प्रदान करते हैं। यदि वह ऐसी कृपा न करें, तो बड़ी कठिनता हो जाये। जितना महान पुरुष होता है, उतना ही उसको समझने में दिक़्क़त पड़ती है, जब ऐसी अवस्था हो, तो भ्रम से विरोध होना कोई बड़ी बात नहीं। पर क्षमता को धारण कर संत भी अचल वृत्ति से अपने कार्य्य में लगे रहते हैं। संसार के मूर्ख लोगों की राय पर चलने से किसका लाभ हुआ, जो वह अपने ईश्वरी कार्य्य को त्यागकर मान-अपमान की चिन्ता में लगे रहें, जब सब कुछ प्रभु के समर्पण कर दिया, तो भला, फिर क्यों किसी चिन्ता में पड़ें। भगवान् भी कृपालु हैं, जब अपना कार्य करा लेते हैं, तो आप ही छुट्टी भी दे देते हैं। जो मालिक का काम ईमानदारी से करता है, उसको आराम का मौक़ा भी आप ही मिल जाता है, ऐसा ही यहाँ भी हुआ।

शहरों से चित्त उपराम हो रहा था, आप लिखते हैं, "मेरे चित्त में शहर-शहर के प्रति वैसा ही भाव है··· · कुछ दिनों से मुलतान की स्मृति होने से शहर में सैकड़ों आदमियों की भीड़ नजर आती है, जो जोश में हैं, परन्तु हाथों में कोई लाठी हथियार का निश्चय नहीं हुआ, इस दृश्य से चित्त घबराता है। लाहौर पोला सा, हृषिकेश से सख़्त घृणा, कनखल हरिद्वार में खलबली। वृन्दाबन बनारस से उदासी होती है, दिल्ली, आगरा, लखनऊ गड़बड़ी, चित्त सम्पूर्ण मैदान से घबराता है— देहरादून से भी उठा हुआ सा रहता है। अमृतसर जालन्धर की स्मृति से भी चित्त सुस्त हो जाता है। ग़रज़ कि शहरों में

जाने को जी नहीं करता । चित्रकूट का घना वन जो बस्ती से बहुत दूर है, वहाँ तो कुछ अच्छा प्रतीत होता है, और सबसे अच्छी केदारनाथ, बद्रीनाथ की भूमि ही लगती है। यहाँ पर भी कुछ-कुछ प्रतीत होती रहती है । इसका जो कुछ नतीजा हो ईश्वर जाने । मेरे चित्त में शहरों की स्मृति से घबराहट होती है। यह कुछ दिनों से बढ़ गई है।" इस प्रकार आपका स्वच्छ और सूक्ष्म चित्त पहाड़ों की शुद्ध वायु में विचरने को कर रहा था, इसीसे पता चलता है कि आप अब छुट्टी पाने के हक़दार हो गये थे । एक दूसरे पत्र में प्रो० सदानन्दजी को लिखते हैं। "मेरा चित्त मिलने को सबसे नहीं करता, कोई ख़ास-ख़ास व्यक्ति हैं जो बात को समझते हैं, उनसे मिलने को तो तय्यार हो जाता है, परन्तु अन्य लोगों से मिलने के लिये संकोच करता है, फिर भी लिहाज़ से या अन्य किसी कारण से मिलना ही पड़ता है। तब मैं यह सोचता हूँ कि यह इसका भोग है। इसलिये प्रभु के ऊपर छोड़ देता हूँ, जैसा उनको मंजूर हो, हो, जो दुःख होना होगा, हो ही गा, भोग लूंगा। यह जो मिलने से चित्त हटता है और हठ करके मिलना पड़ता है, इस शिथिलता से कभी ऐसा ख़याल आता है कि यह साल शरीर का ५५वाँ साल है, संभव है अब पैनशन के योग्य हो जाये, तो एकान्त-वास का आनन्द ले सकें । इन सब बातों का भार प्रभु पर छोड़कर अन्त में तुमको सप्रेम प्रणाम करता हूँ, और तुम्हारी कृपा के लिये हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। उसका फल तुमको परमात्मदेव आप ही देंगे।" फिर लिखते हैं, "हर वक्त प्रभु के सम्मुख रहूँ, ऐसा ही दिल करता है। ऐसी अवस्था में ही शरीर छूटे तो ठीक है, ईश्वर अपनी रक्षा का हाथ सदैव सिर पर रक्खें जिससे माया के चपेट से बचा रहूँ । तुम्हारे से भी यही प्रार्थना है कि यही

आशीर्वाद देते रहो। ईश्वर ही हर समय पथ प्रदर्शक रहें। जो काम जिस तरह से उनको करना मंजूर होवे, वैसा ही करने की प्रेरणा करें, न कराना हो तो फुर्ना ही न हो, मन चुपचाप जीवन व्यतीत करे। यह अभिमान कभी न सतावे कि मैं कभी किसी का कुछ बना सकता हूँ। भला जब मैं अपना ही बनाने में दूसरों के अधीन हूँ तो दूसरों को बनाने का दावा झूठा नहीं तो और क्या है। ऐसे निकम्मे पुरुष को कोई जो कुछ कहे उसकी दृष्टि में सब ठीक ही है। 'जिनकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।' हर एक का दृष्टि कोण निराला ही होता है, फिर बात कैसे बन सकती है, एक मत कहाँ हो सकता है।"

इस प्रकार सब चिन्ता प्रभु पर छोड़, परम संतोष की भावना उठ रही थी। एकान्त-वास की कामना थी। बहुत कष्ट उठाये, भरसक यत्न किया, खूब नौकरी बजाई, अब चित्त विश्राम को चाह रहा था। जन्म जन्मान्तरों से भटकते हुए सीधा रास्ता पा साधु बने थे। उस आत्मप्रसाद को बांटने में भी २० साल बड़ी मेहनत से काम किया था। अब जब ज्योति जगा चुके थे, सोतों को उठा चुके थे, डूबतों को सहारा दे दिया था, भटकतों को मार्ग सुझा दिया था, तो प्रभु आपही परम निर्वाण का रास्ता दिखा रहे थे।

स्वामी नारायणहरीजी सब प्रकार से प्रभु-सेवा में लगे रहे, यथा अवसर सत्संगियों को भी सब प्रकार की सहायता देते रहते। वह कई साल से बवासीर से दुःखी रहते थे। इस वर्ष बड़ा कष्ट रहा। "बवासीर का दौरा १५ दिन तक रहा, और बहुत यत्न करने पर भी बंद न हुआ, उनको किसी ने एक दवाई लगाने को कहा, उसको सात दिन लगाने से मस्सों ने

समूल नष्ट होना था; परन्तु प्रथम ही दिन लगाने से उनको इतना कष्ट हुआ कि उस वक्त को याद करके अब तक मेरा दिल घबरा जाता है, अब बड़ी मुश्किल से एक मास में उसके असर से मुक्ति हुई, हाँ, वह मस्सा जिसपर दवाई लगाई गई थी गल गया; परन्तु आठ-नौ अन्य मस्से शेष हैं उनके (Opera-tion) आप्रेशन के लिये अब वे डाक्टर रामचन्द्रजी के पास बारहबंकी जा रहे हैं, वहाँ से फिर चित्रकूट पहुँचेंगे, २१ नवम्बर को वे बाराबंकी जायेंगे।" इस प्रकार वे तो साथ न जा सकते थे। यहाँ से स्वामी विवेकानन्द, ब्रह्मचारी जगन्नाथजी, सेठी देवराजजी, भक्त खेमचन्दजी, एक मद्रासी ब्रह्मचारी नरसिंहजी, कल्याणदेवजी आदि अनेक सत्संगी भी साथ तय्यार थे। इस प्रकार आपको विचार हुआ, "सोचता था कि इस साल शहरों से छुट्टी ली है, तो बन में अकेले रहने का शायद मौका मिल जाये। परन्तु परमात्मा को कुछ ऐसा मंजूर नहीं मालूम होता, हरी इच्छा बलवान है, उसी में खुशी है" इधर साथी वालों से डर था कि कहीं उधर ले जाने को न कहें। आप लिखते हैं, "चित्रकूट में कुछ विघ्न प्रतीत होता है। वह जन्म-भूमि वालों का है। वे वतन के ले जाने के लिए अवश्य कोशिश करेंगे, अभी तो मेरा चित्त कहीं बस्ती में जाने को नहीं करता, जंगल ही जंगल कर रहा है। इसलिए सर्दियों में तो जाना नहीं होगा, यदि देखूँगा किसी कारण से जाना जरूरी है, तब गरमी आने पर देखा जायगा। जिनको मिलने की बहुत इच्छा होगी वे आपही आकर मिल जायेंगे, इस ख्याल से प्रसन्नता है।"

आठवां प्रकरण (करुणा)

२१ नवम्बर को साथियों समेत, लारी द्वारा, महाराजजी सहारनपुर गये, वहाँ से J. I. P. Express द्वारा झाँसी पहुँचे। फिर सीधे चित्रकूट स्टेशन पर उतर सीतापुर पहुँच गये। थोड़े दिन धर्मशाला में रहे। दो-चार दिन साथियों को लेकर आस-पास के अनेक स्थानों की यात्रा की। जहाँ ठहरे, वहाँ का वर्णन आप इस प्रकार करते हैं। "सीतापुर से चार मील की दूरी पर फटकशिला एक स्थान है, यह वही स्थान है जहाँ पर जयन्त ने सीताजी के चरणों पर चोंच मारी थी और पीछे बहुत दुःख पाया था। स्थान बड़े घने जङ्गल में है, तपोभूमि है, बहुत रमणीक है, सबको अत्यन्त पसन्द आया। एक हफ्ते तक हम लोग दस-दस मील तक के स्थान जहाँ-जहाँ रहने के योग्य कहे जाते थे देखते रहे। परन्तु वहाँ के लोगों की राय और अपनी छान-बीन से वही स्थान सबसे श्रेष्ठ निकला। यह नदी के किनारे पर है और ऊँचाई में है। नदी का जल स्वच्छ और साफ़ है, स्वादिष्ट है, इस स्थान पर नदी बहुत गहरी है, और मन्द-मन्द बहती है। तैरना नहीं हो सकता; क्योंकि यहाँ पर मगर बहुत हैं। किनारे पर नहाने में कोई डर नहीं है। जङ्गल घना है, स्थान ऊँचा होने से दूर तक चारों ओर जङ्गल और पहाड़ नजर आते हैं। चीते बहुत हैं, रात को अगर कोई मवेशी रह जाय, तो खैर नहीं। स्थान के सामने दो सौ या अढ़ाई सौ हाथ लम्बा और ३० हाथ चौड़ा मैदान है, साफ़ है, परन्तु काँटे हैं। यहाँ पर बन्दर बहुत हैं, जो रसोई बनाने के वक़्त सब प्रकार से अपना दाँव-पेंच लगाते हैं। इसलिये उनसे भी बहुत सावधान रहना पड़ता है। चोरों का भी भय है। एक पुरानी धर्मशाला है जो खण्डर हो

गया है, थोड़ी सी छत शेष रह गई है, वह भी चूती है, किवाँड़े तो कहाँ होना था। छत को हम लोगों ने अपने आप मिट्टी डालकर ठीक कर दिया और दरवाजों पर लकड़ी तथा बांस की टट्टियां लगा दी हैं। सर्दी बहुत नहीं है। सीतापुर क़रीब चार मील पर है। जब कभी कुछ चीज़ लेनी होती है तब वहीं जाना पड़ता है। इन सब दिक़तों के होते हुए चित्त सबका बहुत प्रसन्न है, और ऐसी इच्छा होती है कि गरमियों में गरमी अधिक न सताए, तो जब तक जङ्गल में रहना है इसी स्थान में रहें, वरना जाड़े में तो अवश्य ही यहाँ रहें। यह सब इस तपोभूमि का प्रताप है। इस तीर्थभूमि में पाँच व्यक्तियाँ दर्शन करने योग्य हैं। एक सेठ है, दूसरा कलेक्टर है, तीसरे ब्रह्मचारी, चौथे संन्यासी, पाचवें सर्व श्रेष्ठ धारणा वाले मौनीजी हैं। प्रत्येक अपने-अपने रंग में कुछ निराला ही ढंग रखते हैं। पिछले सालों में जो शहर का अनुभव होता रहा वह दुःखदाई तो होता ही था; परन्तु जो पारसाल गन्दगी का अनुभव हुआ, उसकी स्मृति आने से अभी तक दिल कम्पायमान हो जाता है, उस वक्त तो भोग के साथ लड़ाई थी, इसलिये हठ के साथ सब कुछ सहारता रहा। यह स्थान मुर्दा घाट भी है। कोई तो मुर्दों को जला कर, कोई बिना जलाए ही नदी में फेंक देते हैं!"

ऐसे स्थान में महाराजजी रहने लगे। जितना परिश्रम महाराजजी ने इस मकान के ठीक करने में किया, उतना शायद ही किसीने किया हो। सबसे वृद्ध और कमज़ोर होते हुए भी अपने सूक्ष्म शरीर से ऐसा कड़ा कार्य्य करते रहे कि आपके पुरुषार्थ को देखकर आपके सारे युवा साथी शर्म खाते थे। छतों की मिट्टी कूटते, कभी भूमि से मिट्टी खोदते, कभी मिट्टी को ऊपर खैंचते, जङ्गल से लकड़ी काटते और उनको ठीक-ठाक

करके टट्टियाँ और आसन वनाते, इस सव कार्य्य में महाराजजी इंजीनियर, मिस्त्री और वढ़ई आदि सवका कार्य्य करते थे। इस मकान के वनाने में वाज़ार से वहुत कम वस्तुएँ मोल ली होंगी। सारा सामान जंगल से लिया गया। आप स्वतन्त्रता के अवतार थे। हर वक़्त यह ही शिक्षा देते कि स्वतन्त्र रहने के लिये भिक्षु को अपना सारा काम स्वयं करना चाहिए, गृहस्थियों पर बेजा वोझ डालना ठीक नहीं। आराम करने के लिये साधू नहीं वनते, तपोमय जीवन होना चाहिए। यहाँ ही एक छोटी कोठरी में महाराजजी का निवास-स्थान वनाया गया। उसका फाटक नहीं था, शेष सव सत्संगी अभी नीचे मकानों में रहते थे। जंगली जानवरों का भय भी था, इसलिये सवकी यही इच्छा थी कि कुटिया का फाटक पहिले वन जाय। महाराजजी ने वहीं सोना आरम्भ कर दिया था और किसी प्रकार का भय भी नहीं जतलाया। जव सव प्रवन्ध हो चुका, तव आपने अपनी कुटिया के दरवाज़े वनाने की आज्ञा दी। कुटी वहुत छोटी थी, उसके एक तरफ़ महाराजजी का आसन वनाया गया, और वीच में हवन करने के लिये छोटा सा गढ़ा खोदा गया।

यह स्थान महाराजजी की जन्म-भूमि 'साथी' से कोई ३० मील पर है, यहाँ पर अमावास्या के दिन ख़ास मेला होता है। आस-पास के वहुत से लोग यहाँ स्नान और दर्शन करने आते हैं। आपके सम्वन्धी भाई आदि यहाँ दर्शनों को आते रहे। दूसरे किसी सम्वन्धी को नहीं रोका; पर अपने वड़े भाई को एक दिन से अधिक रहने नहीं दिया। जव कारण पूछा तो आपने कहा, "यह मोह करता है, भाई का भाव रखकर आता है, शेष सम्वन्धी रिश्ता के भाव को लेकर नहीं आते, सत्संग के लिये आते हैं।" आपने अपने भाई से कहा कि, "जव तक

हम न कहें, यहाँ लौटकर न आना।" लेकिन उन्होंने परवाह न की, तीन-चार दिन बाद कोई बहाना बनाकर लौट आए। जब महाराजजी ने देखा तो तत्काल चले जाने के लिये कहा। उन्होंने कहा "रात्रि का समय है, लौट जाने में हिंसक पशुओं का भय है।" महाराजजी उन्हें साथ लेकर उदासी अखाड़ा तक पहुँचा आए। पौन मील तक घना जंगल है, रात्रि को अँधेरे में वहाँ से अकेले लौटे, परन्तु मोह के दौरे को किसी प्रकार भी प्रबल न होने दिया।

सर्दी की छुट्टियों में कानपुर से कृष्णकुमारजी और हृदयनारायणजी आये, और गुरुदेवजी बड़ी कृपा करके, सब को साथ ले गुप्त गोदावरी के दर्शनों को गये। चलने में आते और जाते समय सबसे आगे रहे। बड़ी हैरानी थी कि इतने सूक्ष्म और वृद्ध शरीर के साथ इतने तेज़ कैसे चलते थे। आपके युवा साथी पीछे पड़ जाते और बड़ी मुश्किल से कोई एक-दो साथ रहने में समर्थ हो सके। दिन को वहीं स्नान किया, भोजन बनाया, खाया, और थोड़ा सा विश्राम करके सायंकाल को वापस लौट आये। बीस मील की यात्रा के बाद थकना तो स्वाभाविक था; पर फिर भी अवसर पड़ने पर मानसिक बल से ही आप शरीर से काम लिया करते। समय-अनुसार कृष्णकुमारजी एकान्त में प्रभु-सेवा में बैठ अपने अनुकूल अनेक धर्म अथवा परमार्थ सम्बन्धी उपदेश लेते रहे। इन दिनों में महाराजजी का चित्त बहुत शान्त और निर्मल रहता था। घंटो चुप-चाप बैठे रहते। आँखों में बड़ी कोमलता प्रतीत होती, पड़े-पड़े चौंक पड़ते और कहते, "यह संसार क्यों दुःख में पड़ा है, इसका क्या होगा।" ऐसा प्रतीत होता था कि परम आनन्द का अनुभव लेते हुए आप दुःखी संसार के लिये बड़ी करुणा अनुभव कर रहे थे, मानों कृपा का

सागर ही रह-रह कर हृदय में उमड़ पड़ता था। कभी-कभी यह भी कहते, "५५ साल बाद पेंशन मिलती है, अब हमारी ५५ साल की आयु हो गई है, अब तो आराम करने का हक़ है।" इन बातों से ऐसा प्रतीत होता कि अब परम निर्वाण पद की प्राप्ति का समय निकट आ रहा है, पर यह किसी को विचार नहीं था कि वह इतना निकट है।

हृदय नारायणजी का विचार कुछ दिन वहीं रहने का था। एक-दो रात्रि को शास्त्र के सम्बन्ध में वार्त्तालाप करते रहे। महाराजजी ने बड़ी सावधानी से अनेक युक्तियों और दृष्टान्तों द्वारा समझाया कि बिना शास्त्र का सहारा लिए कर्तव्य-अकर्तव्य को जानना असम्भव है। यह बात आजकल के अंगरेजी पढ़े लिखे और कोरे वाचक ज्ञान के भ्रमवाद में पले पुरुषों को शीघ्र समझ में नहीं आ सकती। अनुभवी पुरुष और पवित्र श्रद्धालु भक्त ही इस रहस्य को समझ सकते हैं। हृदयनारायणजी यहाँ रहकर चान्द्रायण व्रत करते रहे, पर अभी एक पक्ष ही गुज़रा था कि आपको अपने पिता की बीमारी के कारण चला जाना पड़ा। इस व्रत से उनको जितना लाभ हुआ, उसे वही जानते हैं।

जयदेवजी विद्यालंकार भी कुछ दिन श्रीसेवा में रहे। चान्द्रायण व्रत करते रहे। व्रत की समाप्ति पर चले गये। स्वामी नित्यानन्दजी भी सत्संग में पहुँचे। कई दिनों तक श्रीसेवा में बैठ अमृत-पान करते रहे। आपका स्वाध्याय तो बहुत है। अनेकों शास्त्र वाक्य आपको कण्ठस्थ हैं; पर उन उपदेशों के रहस्य को तो अनुभवी महात्मा ही बतला सकते हैं। स्वामी कृष्णानन्दजी तो जानकी-कुण्ड में कुटी बना कर रहते थे। इस वर्ष वे भी अनेक बार महाराजजी के स्थान पर जा सत्संग से लाभ उठाते रहे।

इस बार महाराजजी का स्वास्थ्य अच्छा रहा। आप प्रातः-काल सैर को जाते थे और शेष समय अपने स्थान पर रहते थे। दिन को रोटी खाते, रात को कभी दूध और कभी शुनक पर निर्वाह करते थे। यद्यपि सारा दिन सत्संगी आते रहते थे और स्वामीजी उनको उपदेश करते रहते थे, फिर भी शरीर स्वस्थ रहा।

यहां पर स्वामी रामावतारजी आपसे मिले। वे पहिले भी महाराजजी के साथ वृन्दावन, हरिद्वार आदि अनेक स्थानों में रह चुके थे और महाराजजीके महत्त्व को जानते थे। इसलिये जो कोई पढ़ा-लिखा आदमी उधर आता और सत्संग की इच्छा प्रकट करता, तो वे उनको महाराजजी के पास भेज देते। ऐसा ही जब अनेक पुरुषों ने आपको स्वामी रामावतारजी का नाम कहकर उपदेश के लिये कहा, तो महाराजजी एक दिन उनके पास जानकी-कुण्ड में आये और हँसकर कहने लगे, "हम तुमसे अप्रसन्न हो जायेंगे। क्योंकि जो कोई आता है वह यही कहता है कि स्वामी रामावतारजी ने मुझे भेजा है। क्यों मेरा वक्त खराब करते हो। कुछ दिन तो आराम करने दो, इतनी कठोरता तो मुझसे होती नहीं कि कोई आये और मैं न मिलूं।" रामावतारजी ने उत्तर दिया, "स्वामीजी यदि कोई पढ़ा-लिखा यहां आ जाये और वह किसी विद्वान महात्मा की तलाश में हो, तो मैं आपको न बतलाऊँ तो और किसको बतलाऊँ। क्या कोई ऐसा पुरुष जो ढोंगी है और केवल भेष बनाये हुए है, किसी विचारवान पुरुष को सन्तोष दे सकता है।" यह सुन महाराजजी चुप हो गये।

मार्च में मुलतान से कुछ स्त्री और पुरुष दर्शनों को पहुँचे। धर्मचन्दजी नौ दिन की छुट्टी लेकर स्त्री समेत वहाँ पहुँच गये। नारायणदासजी के साथ ९ देवियाँ गई हुई थीं। लेखरामजी

भी गृहिणी को साथ ले वहाँ आये। यह लोग सीतापुर में रहा करते थे। वहाँ से प्रातःकाल फटकशिला पहुँच जाते और सारा दिन सत्संग करते रहते थे। पहले तो कई दिन स्वामीजी सबको साथ ले आस-पास के पवित्र स्थान दिखाते रहे और प्रत्येक स्थान का महत्व भी बताते रहे, पीछे साथ जाकर जो-जो वहाँ प्रसिद्ध महात्मा रहते थे उनके दर्शन कराये। आपका लक्ष्य यही रहा करता था कि जिज्ञासु में सन्त सेवा का भाव बढ़े और इस बात की भी समझ आ जाये कि कौन महात्मा सत्संग के योग्य है।" आपका सर्वदा यही उपदेश रहा करता था, "यथा अवसर महात्माओं का सत्संग करते रहना चाहिये।" यह देवियाँ दिन भर वहीं रहा करती थीं। भोजन भी वहीं बनातीं और सायंकाल को सीतापुर लौट जातीं। इन दिनों महाराजजी के खाने-पीने में बड़ी बेक़ायदगी हो जाती थी, सत्संगियों को बहुत समय दिया करते थे और जब सेवकों ने स्वास्थ्य की ओर ध्यान दिलाया, तो आपने कहा, "अब हम पहाड़ जा रहे हैं, और वहाँ से शीघ्र लौटने का विचार नहीं, इसलिये इनको सब प्रकार से ऊँच-नीच सुझा रहे हैं, जिससे इनके काम में रुकावट न पड़े।" दोपहर को तुलसीकृत रामायण और सांख्यकारिका की कथा हुआ करती थी। रामायण का पाठ ब्रह्मचारी जगन्नाथजी किया करते थे, और उस पर स्वामीजी महाराज जहाँ आवश्यकता होती समझा देते। मास्टर कल्यायणदेवजी सांख्यकारिका पढ़ते थे और महाराजजी उसके गूढ़ रहस्य को समझाते थे। धर्मचन्दजी और लेखूरामजी शीघ्र ही लौट आये; पर लाला नारायणदास और शेष मातायें महाराजजी के चित्रकूट रहने तक वहीं रहती रहीं और दिन भर फटकशिला में रह सत्संग से लाभ उठाया करती थीं।

डाक्टर रामस्वरूपजी कई वर्षों से महाराजजी के दर्शनों का संकल्प कर रहे थे । इस वर्ष समीप जान, गोरखपुर से पांच एप्रिल को यहां पहुँचे । आप कई साल से अभ्यास कर रहे थे और यहां कई दिन अनुभवों के सम्बन्ध में बातें करते रहे। छुट्टी थोड़ी थी, इसलिये लौट जाने का विचार था। आज्ञा-अनुसार तार-द्वारा छुट्टी बढ़वा ली गई। तब महाराजजी ने उचित समय देख डाक्टरजी को विशेष भजन-साधन में प्रवृत्त किया और जंगल में एक स्थान पर लिवा ले गए । वहाँ कुछ पलाश के पत्ते तोड़कर बैठने का आसन बनाया और डाक्टरजी को वहीं बैठकर ध्यान करने के लिए कहा । स्वामीजी तो वहाँ से लौट आए; पर वह बहुत देर तक वहीं साधन करते रहे। रात्रि को छत पर सोते और अर्द्ध रात्रि के पश्चात् डाक्टरजी को पास बुलाकर अनेक प्रकार से परमार्थ विषय में समझाते रहते। एक दिन यह भी कहा, कि "तुम बड़े तंग समय में आए हो, मैं अब शीघ्र ही कैलाश-यात्रा को जा रहा हूँ, और ऐसा प्रतीत होता है कि शरीर अब नहीं रहेगा, इसलिये तुमको अधिक समय देता हूँ। जो कुछ पूछना हो पूछ लो।" यह सुनकर डाक्टर साहिब के आँखों मे आँसू आ गए । तब महाराजजी ने शान्ति दी और कहा कि शोक करना वृथा है, यदि आपको कोई जरूरत पड़े तो प्रोफेसर सदानन्दजी से आपको सहायता मिलती रहेगी।" डाक्टरजी के उत्साह को देखकर स्वामीजी प्रसन्न थे। महाराजजी के विचारों की सूचना, वापस लौटने पर, आपने बाबू कालका-प्रसादजी Assistant of Public Health Direction को दी, और वे तुरन्त ही स्वामीजी के दर्शनार्थ सीतापुर पहुँचे। एक दो दिन रहकर सत्संग करते रहे, और इस सुअवसर को पाकर बड़ी प्रसन्नता और कृतज्ञता प्रगट की।

बाबा तुलसीदासजी फटकशिला में अनेक वर्षों से रहते हैं, और बहुत समय से गायत्री-जाप भी किया करते थे। महाराजजी के सत्संग में बहुत बार गये और उनकी अपार कृपा से गायत्री मन्त्र को सिद्ध करने में शीघ्र ही सफल हुए।

यह तो भली-भाँति स्पष्ट है कि महाराजजी का चित्त अब संसार से बहुत हटा हुआ था, यही विचार होता था कि शहरों से दूर पहाड़ में रहें, इसी विचार को लेकर आप सर्दी सहारने का अभ्यास करते रहते थे। अपने भावों को आप एक पत्र में इस प्रकार लिखते हैं। "गरमी के दिनों में यहाँ से भविष्य बद्री जाने का विचार तो रहता ही था, परन्तु वहाँ रहने के लिये एक धर्म-शाला है जो भविष्य बद्री के ग्राम के पास ही है, इससे दिल कुछ सुस्त सा हो जाता है, ख़ैर जाना तो है ही। यदि कोई ऊपर प्रबन्ध न हो सका तो वही पर कुछ दिन काटने को कोशिश करेंगे। करीब-करीब आठ वर्ष हुए जब मैं ने पण्डित योगेश्वरजी के मकान पर एक ब्रह्मचारी से कैलाश पर्वत की बाबत सुना था, तब से इच्छा रहती थी कि मौक़ा मिले तो वहाँ की यात्रा भी कर आऊँ; परन्तु रास्ते की अत्यन्त कठिनाई, खाद्य पदार्थों के मिलने की कठिनाई, सर्दी बहुत, शरीर की कमजोरी, नजले की हर समय शिकायत, डाढ़ में दांतों का दर्द, और ख़र्च की अधिकता के कारण इरादा मुलतवी कर देता था। पिछली गरमियों में गरमी के कुछ सहारने का तजुर्बा होता ही रहा, परन्तु जाड़े में बहुत से कपड़े लेना पड़ता था, और इसीलिये पहाड़ को जाते व़क्त काफ़ी बोझा हो जाता था। इस वजह से यह इच्छा बनी रहती थी कि किसी प्रकार सर्दी सहारने की भी शक्ति कुछ बढ़ जाये जिससे पहाड़ जाते व़क्त इतना बोझ कपड़ों का न लेना पड़े, तो अच्छा है। चुनांचि इस साल दृढ़ संकल्प था कि इस का भी

तजुर्बा किया जाये। पहले तो मैं सोचता था कि चित्रकूट आकर अभ्यास शुरू करूँगा, परन्तु व्रत वालों के कारण देहरादून में अधिक ठहरना पड़ा, और वहाँ सर्दी शीघ्रता से बढ़ रही थी, यहाँ तक कि मैं कमरा बन्द करके कमीज़ वास्कट पहने हुए ऊपर से एक चादर, दो लोइयां लेकर सोता था, तब भी सर्दी कुछ सताती थी। चूंकि देर होती जाती थी, इसलिये मैंने सोचा कि वहीं से आरंभ कर दूं। नमोनिया के cases (केस) भी सुनने में आते थे। पहिले तो यह ख़याल आया कि थोड़े-थोड़े करके कपड़े कम करना शुरु करूँ, परन्तु इसमें अधिक विलम्ब हो जाने से, यह ठानी कि सब कपड़े पहिले छोड़ कर देखूं। निमोनियाँ का ख्याल तो आया; परन्तु ईश्वर के भरोसे पर घबराया नहीं। इसलिये पहिली रात को सोते समय बिलकुल नग्न हो गया और बिना कुछ ऊपर लिये हुए सोता रहा। नींद थोड़ी सी आई फिर शरीर काँपने लगा। तब मैं वैसा ही नग्न बैठ गया और शरीर के कांपने को देखता रहा। जब ध्यान में हो जाऊँ तब बन्द हो जाये, जब छोड़ दूँ, तब सारा शरीर ज़ोर से कांपने लगे। यह हालत सुबह तक रही। जब बाहर निकलने का समय आया, तब कपड़े पहन लिये। दूसरे दिन फिर वैसे ही सोया और रात वैसे ही गुज़री, ऐसे ही तीसरे दिन गुज़री। चौथे दिन फिर वैसे ही सो गया, परन्तु जब जागा, शरीर काँप रहा था, उठ कर बैठ गया, और चादर ओढ़ ली, तब चैन आ गई, कम्पन बंद हो गई। सुबह को बाहर निकलने के समय कपड़े पहिन लिये। इसी तरह से कई दिन काटे, अब सर्दी अधिक होती जाती थी; परन्तु १२, १३ दिन ऐसे ही बीत गये, फिर चादर ओढ़ कर सोने लगा, तब तो क़ाफ़ी गरमायश मालूम होती थी। रवाना होने से एक दिन पहिले एक लोई भी ली,

तब तो बहुत गरमी प्रतीत होती थी। जब रास्ते में था, तब काफ़ी कपड़े पहन लिये थे। सो गाड़ी में सर्दी तो नहीं लगी, परन्तु अन्य कारणों से फाँसी से ज़ुकाम हो ही गया, और एक रात क़ाफ़ी तेज़ रहा। सीतापुर पहुँचने पर स्थान की देख-भाल में एक हफ़्ता लगा, इसलिये ज़ुकाम बिगड़ गया, तब पीछे सफ़ाई वग़ैरा करके शरीर एक हफ़्ते में ठीक कर पाया, इसमें केवल मूंग की दाल ही पीता रहा। इससे शरीर कमज़ोर हो गया, तब कमीज़ पहने, एक चादर और हल्की लोई लेकर सोता रहा। अब सर्दी भी बढ़ती गई; परन्तु ईश्वर कृपा से इतने ही में गुज़र हो गई। दूसरी लोई लेने का कभी संस्कार भी न फ़ुरा। यहाँ का जलवायु भी अच्छा है, इससे शरीर पहिले से अच्छा है, अब शरीर में शक्ति होने, दाँतों की शिकायत न होने और नज़ले की पहली जैसी शिकायत न होने से फिर संस्कार उठा कि इस साल कैलाश तथा मानसरोवर की यात्रा कर आऊँ। जब मैंने सत्संगियों से ज़िक्र किया, तो वे सबके सब साथ ही चलने को तैयार हो गये, और सब लोग अपने-अपने ख़र्चे के लिये प्रबन्ध कर रहे हैं। एक विचार तो यह आता है कि वहाँ जाकर कोई विशेष लाभ तो होना नहीं है, केवल तपोभूमि का प्रभाव प्रतीत हो जायगा, जैसा कि रुद्रनाथ में था, या अन्य स्थानों में और यहाँ हो रहा है। हाँ स्थान-स्थान में भेद अवश्य होता है, और तकलीफ़ काफ़ी होगी।" इस प्रकार आपने अनेक सत्संगियों के कैलास-यात्रा की सूचना दी और बुलाया भी कि यदि सम्भव हो, तो साथ चलकर तपोभूमि का आनन्द ले आयें! अनेक उत्साही वीर तैयारी करने लगे। मुल्तान से तो कई एक भक्त जाने के लिये बड़े उत्सुक थे।

स्वामीजी महाराज का हृदय कोमल होता चला जाता था।

दिन प्रति दिन आप यह अनुभव कर रहे थे कि आपके महान उपदेशों को समझने में कोई विरला ही समर्थ है। मोक्ष जैसे महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिये जैसा महान पुरुषार्थ चाहिये वैसा कोई विरला ही करने को तैयार है। सब शिष्यों को अपने पैरों पर खड़े होने के लिये बहुत कुछ सुझा दिया था। अब यही विचार था कि जिसको करना होगा, जान भिड़ाकर करेगा। नहीं तो जैसा होना होगा, होता रहेगा। चित्त सब काम से उपराम होता चला जाता था। शरीर का रखना तो कई वर्षों से बेफ़ाइदा प्रतीत हो रहा था। अपना तो लाभ था नहीं, अब यह भी देख रहे थे कि दूसरों को भी जैसा चाहते वैसा लाभ नहीं पहुँचा सकते थे। उच्च उपदेश का कोई विरला ही अधिकारी होता है। पर जब तक शरीर-यात्रा चल रही थी, उसके रक्षणार्थ दूसरों के अधीन होना पड़ता था। यह दीनता आपको बड़ी अखड़ती थी। शुद्ध अन्न का भी विचार रहता था, इस लिये ऐसे पुरुष से ही भिक्षा लेते जो उत्साही हो, परमार्थ में डटा हुआ हो तथा आपके उपदेशों को पूरी तरह से समझता हो और निष्काम भाव से सेवा करता हो। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर प्रो० सदानन्दजी से ही अनेक वर्षों से भिक्षा ग्रहण करते थे। वह भी ऐसे सुअवसर को प्राप्त कर बड़ी श्रद्धा से सेवा करते रहते थे। परन्तु आपको फिर भी यह विचार आया करता था कि बेजा तौर पर गृहस्थों को कष्ट देते हैं। जो रुपया वह इतना कष्ट उठाकर अपने बाल-बच्चों के लिये पैदा करते हैं, उनसे लेना बुरा लगता है। इस बात को तो आप नज़र-अन्दाज़ कर जाते थे कि आपके भक्त ऐसे सुअवसर को पाकर कितने अनुगृहीत होते हैं। यह तो आपकी दयालुता ही थी कि दूसरे के कष्ट को बढ़ा कर देखते और कृपा वश बड़े दुःखी होते। इन्हीं

भावों को आप एक पत्र में यों प्रकट करते हैं। "गृहस्थियों के बाल-बच्चों का हक छीन कर उन पर बेजा बोझ डालने में भी संकोच होता है, और शरम भी आती है, कि जन्म भर तक शरीर-रक्षा का भार लोगों पर तो डालते ही रहना है, फिर ऐसे सैर-सपाटे के लिये बेजा बोझ क्यों डालूं? फिर भी चित्त नहीं मानता; बल्कि इसमें ख़ुशी मानता है। यदि वहीं शरीर छूट गया, तो नीचे छूटने की अपेक्षा प्रसन्नता के साथ छूटेगा, क्योंकि तपोभूमि में रहने और विचरने की श्रद्धा अधिक है और मैदान से चित्त हमेशा उदास ही रहता है। किसी अन्य मुल्क या शहर या बस्ती की इच्छा नहीं फुरती। इन सब बातों को सोच कर मैंने इरादा कर लिया है कि यदि कोई विघ्न जबरदस्त न हुआ तो संकल्प चुका आऊं। भोग बलवान् प्रतीत होता है। रास्ते तो कई हैं, परन्तु अल्मोड़ा के रास्ते से जाने में अधिक सुविधा बतलाते हैं। इस लिये जब यहाँ पर गरमी विशेष पड़ने लगेगी तब शुरू अप्रैल में यहाँ से कूच करके साथी होते हुये पाठशाला की देख-भाल करके अलमोड़ा का रास्ता लेंगे। जब जरूरत पड़ेगी तब तुम्हारे तथा तुम्हारे बाल-बच्चों के हक में से डाकाजनी करके कुछ झपट लेने की हिम्मत करूंगा। आँसू भर आये, अब बंद करता हूँ। रोना आ रहा है। क्षमा करना।"

उसके बाद की अवस्था आप अपने सहृदय भक्त के उत्तर आने पर इस प्रकार लिखते हैं "तुम्हारा पत्र मेरे जैसे कमजोर दिल वाले को हमेशा धैर्य का देनेवाला होता है, वैसा ही अब भी हुआ। पिछला पत्र बंद कर देने के पीछे काफ़ी देर तक आँखों से अश्रुपात होते रहे थे। आखिर मैं लेट गया। कुछ नींद सी आ गई। जागने पर मन को समझाया कि सदानंदजी श्रद्धा और

बहुत निष्काम भाव से देते हैं, उनको तेरी रक्षा करने में ख़ुशी होती है। वे कई बार ऐसा कह चुके हैं और लिख भी चुके हैं, जब तेरे इस भाव का उनको पता लगेगा, तब उनको भी दुःख होगा, जैसा पहले भी कभी-कभी हो चुका है। इस लिये तुझे यह ख़्याल छोड़ देना चाहिये। और यात्रा में कुछ बोझ अपनी पीठ पर रखलेना जिससे भाड़े का खर्च अधिक न पड़ जाय, और तुझे भी याद रहे कि यदि फिर कभी इस तरह की यात्रा की, ऐसा ही बोझ उठाकर चलना पड़ेगा। इसके बाद कुछ शांति हो गई। थोड़ी देर पीछे सत्संगी लोग आ गये। इस नाटक का हाल बिना कहे हुये मैं न रुक सका। उनको भी अफ़सोस हुआ और मुझे समझाने लगे। मास्टर कल्याणदेवजी ने कहा, 'मुझे स्वामी विशुद्धानंदजी से यह ज्ञात हुआ था कि आप हमेशा प्रो० सदानंदजी का ही भोजन करते हैं और किसी से नहीं लेते, इसलिये मेरी हिम्मत कभी कहने को नहीं पड़ी, वरना मेरा चित्त बहुत चाहता है कि मैं भी कुछ सेवा करूँ'। सेठीजी ने भी ऐसा ही कहा। तब मैंने कहा, 'मुलतान में तो मैंने ऐसा ही कड़ा नियम रक्खा है, कि प्रोफ़ेसर जी का ही अन्न खाऊँ, परन्तु बाहिर कभी-कभी अन्य लोगों का भी ले लेता हूँ। मगर तुम्हारा (कल्याणदेवजी का) तथा सेठीजी का अन्न खाने को चित्त नहीं होता। तुमसे एक पैसा भी लेने को चित्त नहीं होता। कारण यह कि तुम्हारा कोष परिमित है। थोड़े दिन में जब खतम हो जायेगा तब तुम भी मेरी तरह कंगाल हो जाओगे। मैं तो वहीं से लेना पसन्द करता हूँ जहाँ आमदनी का सिलसिला जारी हो। अभी तो काम चल ही रहा है पीछे मँगा लूँगा।"

इस प्रकार आप करुणा के आवेश में दूसरों के प्रति बड़ी दया के भाव प्रकट करते थे। सच है, ज्यों-ज्यों वृक्ष में फल

बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों उसकी टहनियाँ झुकती जाती हैं। इसी प्रकार जैसे संत सब प्रकार की चिन्ता से मुक्त होकर प्रभु की शरण में रहने की अधिक भावना रखते हैं, वैसे ही संसार अथवा संसारी पुरुषों के कष्टों को सहारना उनके लिये असम्भव होता जाता है। वे यही चाहते हैं कि शीघ्र ही शरीर की बेजा बेगार से छुटकारा मिले और अनन्त समय के लिये प्रभु की गोद का आश्रय रहे। जब संसार से किसी प्रकार का लाभ न हो, और मान का इतना मर्दन हो चुका हो, कि दूसरों की हित-कामना भी कुछ प्रसन्नता न पैदा करे, अथवा चिन्ता प्रतीत हो, तो स्वतः ही परम पिता परमात्मा की शरण में जाने को चित्त दुःखित रहता है। प्रेमी ही इस पवित्र विरह को समझ सकते हैं। जब हृदय प्रेमवश कोमल हो रहा हो, तो भक्तों के दुःख को देखकर अथवा उसका विचार करके कृपा का आवेश होना बिलकुल स्वाभाविक है।

चित्रकूट में रहते हुए आप कई बार स्वामी रामावतारजी के पास गये। एक दिन जब सायंकाल के समय जानकी-कुंड पहुँचे, तो स्वामी रामावतारजी ने पूछा 'महाराज, ईश्वर ने सृष्टि क्यों बनाई।' आपने कहा 'यदि आप सावधान होकर सुनो तो मैं कहूँगा'। वे सावधान चित्त होकर सुनने लगे। महाराजजी ने समझाया, "सृष्टि में अनेक नियम काम करते दीखते हैं। इसमें जितनी विचित्रता है वह सब मोह में पड़े प्राणियों को अपनी ओर खींचती है। सांसारिक वासनाओं में फँसे जीव जब सृष्टि की सुव्यवस्थता को देखते हैं, तो उसके मालिक की ओर उनका ध्यान अवश्य ही जाता है। इसी प्रकार से विचार करते करते यही सूझता है कि सब कुछ छोड़ उसी प्रभु के ही सन्मुख होना कल्याण का हेतु है। मूढ़ जीवों को रिझाने के

लिये हो अथवा उनके कल्याण के निमित्त प्रभु ने यह सृष्टि बनाई है'।

अप्रैल आ गया था। गर्मी भी बढ़ रही थी और कैलाश जाने का विचार भी दृढ़ होता चला जाता था। जो भी सत्संगी आता उसको कैलाश-यात्रा के सम्बन्ध में सब कुछ सुनाते। और दूर-दूर सब सत्संगियों को भी सूचना दे दी थी। जब कभी गर्मियों के प्रोग्राम पर विचार करते तो कल्याणदेव जी से कहते कि 'कैलाश की यात्रा के सम्बन्ध में याद कराते रहना। याद कराने से विचार दृढ़ होता रहता है। ऐसा न हो कहीं यह भूल जायें।' इस प्रकार विचार दृढ़ होता गया। फिर तय्यारी भी शुरू कर दी और कई स्थानों से कैलाश-यात्रा का नक़शा और अन्य हालात मँगवाये गये।

कभी-कभी ऐसा भी कहा करते थे कि "कैलाश-यात्रा के बाद शून्य ही शून्य नजर आता है। परन्तु फिर भी इस पर विचार तुला हुआ है।" इस दृश्य से समीप प्राप्त होने वाले परम पद का पता चलता है कि जिसमें शीघ्र ही आपने समा जाना था। उसी निर्विशेष, अखंड, एक रस, आनन्दमय, चैतन्य सत्ता का यह दिग्दर्शन था अथवा उसकी सूचना थी।

नवां प्रकरण (कैलास-यात्रा)

२१ अप्रैल को स्वामीजी ने चित्रकूट छोड़ा। अपने तीन साथियों, मास्टर कल्याणदेवजी, ब्रह्मचारी जगन्नाथजी, और स्वामी विवेकानन्दजी को, सीतापुर पहले भेज दिया और स्वयं दस बजे के क़रीब जानकी-कुण्ड पर स्वामी रामावतारजी के पास

पहुँचे। उन दिनों उत्तराखण्ड की पहाड़ियों में बड़ी लू चलती है। प्यास को बुझाने के लिये पानी माँगा। फिर रामावतारजी से कहा 'यहाँ हमारा चित्त बहुत प्रसन्न रहा। आपकी दया से दिन अच्छे बीत गये हैं।' ऐसा कहते-कहते आपकी आँखों में नमी आ गई। दिन-दिन करुणा और कृतज्ञता के भाव बड़े तीव्र होते जाते थे। निर्मलता बढ़ रही थी। स्वामी रामावतारजी आपको आपके चित्त की आग्रह करने के बावजूद भी सीतापुर तक पहुँचा आये और फिर आप उनसे अलमोड़ा आने का वचन लेकर विदा हुए।

यहां से आप अपने जन्मस्थान साथी' को गये। बहुत से भक्त दर्शन कर गये थे; परन्तु फिर भी उन सबकी यही याचना थी कि उधर आकर दर्शन दें तो सब नर-नारी अपनी इच्छा को पूर्ण कर तृप्त होंगे। भक्तों के प्रेम को पूरा करना ही उचित समझा। उत्तरा स्टेशन से 'साथी' को रास्ता जाता है। जब उत्तरा स्टेशन पहुँचे तो वहाँ पर एक सत्संगी मास्टर की बार-बार प्रार्थना-पर वहीं एक दिन रह गये। रात को दो-एक सज्जन दर्शन करने आये। उनमें से एक व्यक्ति बड़ी बेपरवाही से ऐसे प्रश्न करने लगा। 'सुना है आप पहले प्रोफ़सर थे, कब मुलाज़मत छोड़ी, क्यों छोड़ी, क्या विवाह हुआ था, क्या कोई लड़का भी हुआ, कोई लड़का है भी।' ऐसे प्रश्न सुनकर आपके बाक़ी साथी तो हैरान थे और उनका विचार था कि उसको रोक दें, परन्तु महाराजजी सरलता से सब प्रश्नों का उत्तर देते गये। बिलकुल ऐसा ही जैसे एक भोला बालक देता है।

महाराजजी प्रायः वैराग्य और त्याग का उपदेश करते थे। कहने लगे, 'त्याग का अभिमान भी बेमाने है।' यह बात समझ न आई, तो पूछने पर आपने कहा 'दुनिया में हर एक व्यक्ति सुख चाहता है और दुःख से नफ़रत करता है। हर एक व्यक्ति

दुःखदायक पदार्थों को छोड़ता है। इसलिये एक त्यागी अगर दुनियाँ को दुःखदायक समझ कर छोड़ता है, तो उसमें उसकी क्या बहादुरी है? हाँ, अगर सुखदायक समझकर छोड़े, तो और मामला है। लेकिन ऐसा त्यागी कोई नही नज़र आता जो दुनिया को सुखदायक समझकर छोड़े, और न एसा मुमकिन है।"

यहाँ से रवाना होकर फिर आप 'साथी' पहुँचे। आस-पास के सब नर-नारी दर्शन करने आते थे। प्रातः-सायं दरबार लगता था। प्रश्न होते और महाराजजी बड़े प्रेम से उत्तर देकर समझाते रहते।

'साथी' से जैसा कि पहले सूचना दे चुके थे, आप कानपुर पधारे। कृष्णकुमारजी के मकान पर एक सप्ताह तक ठहरे रहे। बाबू हृदयनारायणजी की भक्ति और सज्जनता के कारण उनकी मोटर के सहारे आस-पास के ऐतिहासिक अथवा पुरातन स्थान देख आये। कानपुर से बीस मील के फ़ासले पर एक वृद्ध महात्मा के दर्शन करने को भी गये। आप सायंकाल को कभी-कभी गङ्गाजी के किनारे चले जाते। यहाँ ज़ुकाम फिर सताने लगा और गरमी भी विशेष बढ़ रही थी, इस लिये यहाँ से १० मई को बाराबंकी होते हुए अलमोड़ा चले गये। इन दिनों महाराजजी का चित्त बहुत ही उपराम रहा करता। अनेक प्रसङ्ग छेड़ने पर भी थोड़ा सा उत्तर दे चुप हो जाते। ऐसा प्रतीत होता था कि अब समझाते-समझाते थक गये हैं और कुछ रुचि शेष नहीं रही।

बाराबंकी में डाक्टर रामचन्द्रजी के पास स्वामी नारायणहरीजी पहले ही देहरादून से पहुँचे हुये थे। शरीर कमज़ोर होने के कारण वह शीघ्र आपरेशन के योग्य नहीं थे, इस लिये तब से यहीं रुके रहे। जब शरीर कुछ तकड़ा हो गया तो डाक्टर

रामचन्द्रजी ने क्लोरोफ़ारम देकर तीन वारी में ववासीर के मंस्सों को काट दिया। फिर जब शरीर कमजोर हो गया, तो उसको ठीक करने के लिये वहीं रुकना पड़ा। बारहवंकी में महाराजजी दो-एक दिन रहे, कुछ भगंदर की तकलीफ़ फिर से हो रही थी, इसलिये डाक्टर रामचन्द्रजी को दिखाया। उन्होंने दवाई inject करके काट दिया।

एक दिन सायंकाल को डाक्टर रामचन्द्रजी ने पूछा, "महाराजजी, मेरी पैनशन होने वाली है, बताइये मैं क्या करूँ।" "जो अब करते हो, वही करोगे, और क्या।" "यहाँ से तो छुट्टी मिल जावेगी, यह काम तो नहीं रहेगा।" "पर काम चाहे कोई हो, जिस दृष्टि से अब काम करते हो, वैसा ही होगा। जब तक अभ्यास-भजन आदि के संस्कार पहले से न होंगे, तो कुछ नहीं कर सकते, दृष्टी को बदलना चाहिये। आपको धन का लोभ तो नहीं, यह अच्छा है, पर नाम की इच्छा भी नहीं होनी चाहिये। किसी प्रकार के लाभ का विचार छोड़ दूसरों के हित के लक्ष्य से ही काम होता रहे, तब अच्छा है। धनी लोगों से भी धन की आशा नहीं करनी चाहिये, यदि आशा करोगे, तो निराश होने पर क्रोध आने लगेगा। इससे द्वेष बढ़ता है। द्वेष बढ़ने पर पता नहीं कैसा अनर्थ हो जावे। तुम्हारा काम ही ऐसा है कि यदि द्वेष आ गया, तो पता नहीं कैसा पाप हो जावे। इसलिये सब काम बेपरवाह होकर करना चाहिये। ऐसा होने से फिर गिरावट अथवा पाप का भय नहीं रहता। कर्त्तव्य-बुद्धि से काम करते जाना ही ठीक है। बेनियम भी नहीं होना चाहिये। इससे दूसरों को कष्ट होता है, वह आपको बुरा-भला कहते हैं, काम पर भी क़ाबू नहीं हो सकता, अपने स्वास्थ्य के भी ख़राब होने का भय रहता है। घरवालों को भी

दुःख होता है। हाँ, यदि दूसरे के काम में बेनियमी हो जावे तो लाचारी है, पर अपनी ओर से नियम और समय का पूरा विचार रखना चाहिये। काम कोई हो, भाव शुद्ध होना चाहिये, फिर काम बन जाता है।" तब डाक्टरजी ने कहा, "अब तो मैं आपको नहीं रोकता, परन्तु वहाँ से लौट कर जरूर मेरे पास रहिये; ताकि मैं भी कुछ सत्संग से लाभ उठा सकूं, बहुत दिनों से आपकी सेवा में नहीं बैठा।"

आप वायदा तो करते ही नहीं थे। 'जैसा भोग होगा, वैसा देखा जावेगा।' कह दिया। यहाँ से शीघ्र ही अलमोड़ा चल दिये। ब्रह्मचारी जगन्नाथजी भी आपके साथ थे। यह तो बरेली रुक गये, पर आप स्वामी नारायणहरिजी के साथ १३ मई को अलमोड़ा पहुँचे। यहाँ पर पं० रामदत्त जोशी के मकान में रहे। १६ मई को भगवंतसिंहजी जालन्धर से आये। बाद में स्वामी विवेकानन्दजी और मास्टर कल्याणदेवजी जो कानपुर में अस्वस्थ होने के कारण रुक गये थे, यहाँ पहुँच गये। चूंकि अधिक सत्संगियों के आने की आशा थी, इसलिये स्थान की तलाश करते रहे थे। 'पातालदेवी' का स्थान दो-ढाई मील शहर से दूर है। ऊँचे पर है और पक्का भी था। इसमें तीन कुटियाँ थीं। किसी का दखल भी नहीं था, उजाड़ ही पड़ा था। वहाँ ही बने बनाये मकान में चले गये। जोशीजी की तो इच्छा थी कि उनके पास ही रहें, पर सत्संगियों के आने पर यही उचित समझा कि बाहर चले जावें। धीरे-धीरे अन्य लोग भी आते गये।

यहाँ एक दिन आप स्वामी रामकृष्ण-मिशन के आश्रम में गये। आप वहाँ के वृद्ध महन्त श्री रामास्वामी से मिले। कैलाश-यात्रा के सम्बन्ध में सब हाल पूछते रहे।

उसी दिन एक बङ्गाली माई के आश्रम में भी गये। यह

माई कृष्णजी की भक्ति में मस्त है। कुछ चित्रकारी भी करती है। लखनऊ यूनीवरसिटी के भूतपूर्व प्रो० निकसन भी इन्हीं के यहाँ रहकर प्रभु-भक्ति में मस्त रहते थे। वे महाराजजी से मिले। आपने उनका सारा पूर्व वृत्तान्त पूछा। उनके उत्साह तथा शुद्ध भावों की सराहना की। पर साथ ही नारद मुनि की कथा सुनाकर काम के भय से चेतावनी दे दी। इस प्रकार बातें करते-करते बड़ी देर में लौटे। फिर भी कई बार निकसन साहिब महाराजजी से मिलने आये।

एक दूसरी अमरीकन देवी भी श्री सेवा में आई। सत्संग की बहुत इच्छा करती थी। तिब्बत में रहने वाली अपनी एक सहेली को पत्र लिख दिया कि स्वामीजी को कैलास-यात्रा में सहायता करें, और यदि सम्भव हो तो साथ जाकर सत्संग में रहे, ऐसा सत्संग दुर्लभ है।

कुछ दिनों बाद ब्रह्मचारी जगन्नाथजीजी नैनीताल से होकर वहाँ पहुँचे।

यहाँ आपका प्रोग्राम ऐसा रहा करता था।

प्रातः सायं दोनों समय घूमते। बातें भी कैलास-यात्रा की होती रहतीं। इसी सम्बन्ध में ही सोचते रहते थे। बेल पीते रहते, जिससे सबको कुछ लाभ हुआ। नारायणहरीजी कमजोर थे, उनको उत्साह देते रहते। सबको प्रातःकाल डण्ड करने की आज्ञा हुई, तब सब लोग प्रात काल उठकर डण्ड करते, तेल की मालिश भी होती थी। शरीर को कठिन यात्रा के लिये तैयार करने का ही विचार रहता, परन्तु महाराजजी स्वयं घूमने चले जाते थे। शाम को उत्साही साथियों को साथ ले, आस-पास के कठिन स्थानों पर चढ़ाई-उतराई का अभ्यास कराते थे। आप जिस कार्य को करते उसके लिये पूरी चिन्ता रहती थी। जहां से कहीं पता चलता, सहायता-पत्र

लेते रहे। यह भी सुना कि १६३० में कैलास का कुम्भ है, उस समय जाना अधिक उत्तम है, पर महाराजजी अब विचार कर चुके थे, ढीले न हुए। जब किसी का शरीर ढीला पड़ता, तो उसको उत्साह देते रहते। नीचे से आनेवालों को रास्ते के लिये खाद्य सामग्री ले आने के लिये भी लिखते रहते। मुल्तान के बहुत से प्रेमी तैयार थे। गुरु-सेवा में कैलास-यात्रा करने का बड़ा उत्तम अवसर था। सत्संग और तीर्थ-यात्रा भी, 'एक पंथ दो काज।' ला० धर्मचन्द, डा० ज्ञानसिंह, डा० उत्तमचन्द, मलिक मेहरचन्द, मलिक कुंवरभान, ला० थाउराम, सब सज्जन १७ जून को अलमोड़ा पहुँचे। धर्मचन्दजो के साथ, उनकी धर्म पत्नी और एक अन्य देवो भी पहुँचीं। यहां ला० मोतीराम स्टेशन मास्टर भी अपने परिवार सहित पहले ही पहुँच चुके थे। यह देवियाँ भी उन्हीं के साथ वापस लौट गईं।

यहाँ रहते हुए आपके सत्संग से पं० रामदत्तजी ने विशेष लाभ उठाया, भजन-साधन में प्रवृत्त हुए। पंडितजी की बड़ी बहिन भी महाराजजी के उपदेश से कृतार्थ हुईं। यह देवी कई वर्षों से भजन-साधन में लगी हुई थी। अब सुअवसर पा बहुत कुछ लाभ प्राप्त किया। यहाँ पर पता लगाते-लगाते चकवाल के एक महंत पहुँचे। कुछ साधन करते-करते शरीर रोगी हो गया था, बड़े कष्ट में थे। महाराजजी ने कुछ सरल साधन बताया जिससे कुछ थोड़ा आराम भी होने लगा।

चाँदपुर बिजनौर से चौधरानी कृष्णकुमारी भी वहाँ आई हुई थीं। उनका विचार श्री बद्रीनाथ की यात्रा को जाने का था। महाराजजी से सूचना पाकर दर्शनों को यहाँ पहुँची थीं और इधर से ही श्री बद्रीनाथ जाने का खयाल था। जब इन सबको कैलास जाते देखा, तो उसकी भी साथ चलने में इच्छा

हो आई। कठिन यात्रा के विचार से पहले तो स्वामीजी उसको आज्ञा नहीं देते थे; पर फिर जब देखा कि कुछ बंगाली माइयाँ भी उधर जा रही हैं, आज्ञा दे दी। पर यह कह दिया कि 'जाने से पहले किसी मेजिस्ट्रेट के सामने अपनी वसीयत कर जाओ।' वह इस बात पर भी तय्यार हो गई, और एक दिन में सब काम ठीक-ठाक कर दिया।

इस समय महाराजजी की मानसिक अवस्था जैसी थी वैसी ही अपने एक भक्त को इस प्रकार से लिखते हैं। "शरीर और मन दोनों दुःख देते हैं, और इनसे लाभ कुछ नहीं प्रतीत होता। यदि यह दुःख न दें तब भी कोई काम नहीं निकल सकता। यदि यह चुप रहें, तब निकम्मे से पड़े रहें, तभी ठीक रहता है, परन्तु ऐसा होना असम्भव है। क्या हुआ अगर थोड़ी देर के लिये चुप हो गये। स्थायी तौर पर तो चुप रहते ही नहीं। शरीर-यात्रा के लिये दूसरों के सामने जो दीन होना पड़ता है वह अलग रहा। अब मन में कभी कहीं की इच्छा हो जाती है और कभी कहीं की। यदि इससे पूछा जाये कि इस इच्छा के पूरी होने से क्या लाभ होगा तब कोई जवाब नहीं मिलता। परन्तु कोई न कोई इच्छा इतनी तंग करती है कि निरर्थक सिद्ध होने पर नहीं जाती। ऐसे ही यह कैलास-यात्रा की इच्छा है। .. अच्छा, जैसा प्रभु की मरज़ी होगी, वही होगा। जब तक शरीर है कुछ न कुछ झगड़ा लगा ही रहता है। शरीर छूटने बाद यदि प्रभु बिलकुल शरीर से अलग रक्खें, तो ठीक है, वरना फिर यही दुःख झेलने पड़ेंगे। यदि कैलास-यात्रा के बाद शरीर रह गया और फिर ऐसी कठिनाइयों में पड़ने की इच्छा कभी न पैदा हो, तो ठीक है। 'जेहि बिधि राखैं राम तेहि विधि रहियैं'। अच्छा, जैसे-तैसे शरीर-यात्रा तो पूरी करनी हीं पड़ेगी।" इस प्रकार

बेपरवाही बहुत बढ़ रही थी और सब चिन्ता छोड़ बिलकुल प्रभु के आश्रय ही भोगवश शरीर-यात्रा को पूरा करने जा रहे थे। वे जानते थे कि उधर सर्दी विशेष होती है, दस पड़ाव के बाद खाद्य पदार्थ भी नहीं मिलते, एक मास की सामग्री साथ ले जाना पड़ती है, सोने के लिये मैदान रहता है, इसलिये तम्बू भी साथ ले जाना जरूरी होता है, लूट-मार का भी भय रहता है, यदि तूफ़ान आ गया, बर्फ़ ज़ोर से पड़ गई तब तकलीफ़ की कोई हद नहीं होती। इन सब दिक़्क़तों को बार-बार सुनकर भी आपका मन पीछे नहीं हटता था। यही विचार आता 'इसका भोग ही ऐसा प्रतीत होता है और क्या है।'

जाने से कुछ दिन पहले आपका शरीर बहुत ढीला हो गया। तीन दिन तक शरीर की सफ़ाई करके, दो दिन बिलकुल निराहार रक्खा, तब कुछ दाल का पानी और दो तोले चावल खाये। शरीर की ऐसी अवस्था १६ जून को थी। जो कुछ शक्ति पहले थी उससे अब बहुत थोड़ी रह गई थी; परन्तु जब इतने आदमियों को अपने आधार पर देखा, तो यही सोचा, "यदि मैं न गया तब कोई भी न जा सकेंगे, इसलिये मैंने जान को हथेली पर रख कर तय्यारी कर ली है। मन पीछे हटने को नहीं करता, आगे ही जाने को दृढ़ है। अब जैसा प्रभु को मंज़ूर होगा, होता रहेगा। शरीर को कहीं न कहीं किसी न किसी तरह यात्रा पूरी करते रहना है, जब शरीर-यात्रा ख़तम हो जायेगी तब सब यात्रायें ख़तम हो जायेंगी।" इस प्रकार बड़े उदासीन भाव से आगे जाने की तय्यारी हो रही थी। विघ्न भी अनेक प्रकार के होते रहते; परन्तु फिर भी जाने का विचार दृढ़ ही रहा। स्वामी नारायणहरीजी भी तय्यार हो गये। दो घोड़ों के लिये प्रबन्ध किया गया। जो पार्टी वहाँ जानेवाली थी, वह बड़ी

विचित्र थी। आप इसका वर्णन इस प्रकार देते हैं, "हमारी पार्टी सब सत्संगियों की है, इसमें दो डाक्टर हैं, एक तो कौशिकजी जो पहले गुरुकुल में रहे थे, फिर M. D. पास करके वम्बई में Practice डाक्टरी करते रहे, हरिद्वार से पं० योगेश्वरजी से पता लगाकर यहाँ आ गये हैं। यह Violin का वहुत शौक रखते हैं, एक डाक्टर उत्तमचन्दजी मुलतान से आये हैं और साथही वैद्य ज्ञानसिंहजी भी हैं। भक्त धर्मचन्दजी भक्ति तथा वैराग्य के भजन सुनाने वाले हैं, तुलसीदासजी की विनय पत्रिका साथ है, भगवतसिंह सुखमनी साहिब का पाठ सुनाता है।" आपके साथ ही मास्टर कल्याणदेवजी, ब्रह्मचारी जगन्नाथजी, स्वामी विवेकानन्दजी और नारायणहरीजी भी थे। चौधरानी कृष्णकुमारी और उसका नौकर तैयार हो चुके थे और उसके लिये भी सवारी का प्रबन्ध हो चुका था। उसी पत्र में आप लिखते हैं। "इस विचित्र सम्मेलन को देखकर कितने ही अन्य पुरुषों का जी चलने को हो आता है, पर कोई न कोई विघ्न की वजह से, अवकाश के आभाव से, रुक जाते हैं।'

खर्च के लिये भी प्रवन्ध हो गया था, कई एक सेवकों ने कैलास-यात्रा का विचार सुन अपने आप ही यथा शक्ति सेवा में भेंट भेज दी थी। परन्तु अपने खाने के लिये महाराजजी ने यथा पूर्वक अपने भक्त प्रो० सदानन्दजी को लिखकर कुछ रुपये मँगवा लिये थे।

शरीर तो कमजोर था, परन्तु फिर भी आप ईश्वर भरोसे चलने की तैयारी में लगे हुए थे। ईश्वरपरायणता बढ़ती चली जा रही थी; इन्हीं भावों को आपका एक पत्र बड़ी स्पष्ट रीति से प्रकट करता है। "यह सब ईश्वर की कृपा से नाटक सा प्रतीत हो रहा है—यह शरीर-यात्रा ही नाटक है, मन की लहरें भी

नाटक हैं, और कहाँ तक कहूँ इस व.क्त सब कुछ नाटक प्रतीत हो रहा है, और यह भी साथ ही प्रतीत होरहा है कि यह नाटक फ़जूल है, दुःखदाई है, उसमें सुख का अभाव है—सुख इससे परे है, परन्तु फिर भी भोगवश नाटक देखना ही है। पता नहीं यह सिलसिला कब तक जारी रहेगा। यदि आगे को प्रभू इससे बिलकुल मुक्ति दे देंगे तो ठीक है, वरना ऐसे ही क़ैद फिर भुगतना पड़ेगी। ख़ैर यह बात अपने बस की नहीं है ईश्वराधीन है। इसलिये उन्हीं की मरजी पर छोड़कर विचरना ठीक है। जो पहाड़ी लोग कभी कैलास की यात्रा को जाते हैं। वे सब सम्बन्धियों से मिलकर जाते हैं। कि पता नहीं कि जिन्दा लौटें या न लौटें। ऐसा यहाँ रिवाज है, इससे तुम यात्रा के रास्तों की कठिनाइयों का अन्दाज़ा लगा सकते हो; परन्तु मैंने जब से इरादा पक्का कर लिया है, तब से सब कठिनाइयों को जिनको सुनता रहता हूँ भूला रहता हूँ। केवल यात्रा करना ही एक मात्र सङ्कल्प रहता है, Come what may, we have launched our vessel on the waves. (जो होना हो होता रहे, हमने अपना बेड़ा मँझधार में छोड़ दिया है)। प्राण शेष रहने पर फिर देखा जावेगा।' इसी प्रकार का एक पत्र आपने प्रो० सदानन्दजी को २० जून को लिखा जिसका कुछ हिस्सा ऊपर दे आये हैं, उसके अन्तिम शब्द यह हैं, "जब कभी कोई कैलास की यात्रा को जाता है, तब अपने सब कुटुम्बियों तथा अन्य मित्रों से मिलकर जाता है, इस ख्याल से कि कठिन देश में जाते हैं, पता नहीं फिर लौटना हो वा न हो, इसलिये मैंने भी तुमको यह पत्र लिख दिया है।"

इस प्रकार सब भक्तों को अन्तिम प्रणाम कर और उनके शुभ आशीर्वाद की कामना करते हुये आप अपने साथियों

समेत २३ जून आदित्यवार को प्रातःकाल ६ वजे अलमोड़ा से चल दिये। कुल यात्री सत्तरह थे। चलते समय वर्षा भी हो रही थी। यात्रा करते-करते जब कभी कोई घबरा जाता, तो बड़े प्रेम और मधुर शब्दों से उसको उत्साह देते। और हर एक स्थान पर सबके आराम के लिये स्वयं चिन्तित रहते। बहुत से सत्संगी कठिन यात्रा के अभ्यासी न थे। विघ्न तो चलने से पहले ही हो रहे थे, पर रास्ते में भी उन्होंने पीछा न छोड़ा। पहले दिन ही पैदल चलने वाले तो आगे निकल गये, परन्तु घोड़ों पर जाने वाले तीनों व्यक्ति रास्ता भटक गये। रास्ता जानने वाले पहाड़ी तो साथ ही थे, और उनका काम भी इसी यात्रा में जाने का रहा करता था, वह भी किसी प्रकार से भूल में पड़ गये। शेष तो सब लोग 'बारी चीना' पड़ाव पर पहुँच कर खाना-वाना बनाकर इन्तज़ार करते रहे, परन्तु यह तीनों महाराजजी, स्वामी नारायणहरीजी और चौधरानीजी चार बजे शाम को पहुँचे। सब लोग एक स्थान पर तो नहीं ठहर सकते थे। जैसे-तैसे इधर-उधर ठहर कर रात काटी। दूसरे दिन वहाँ से छः बजे प्रातः चले। दो साधू अलमोड़ा से साथ हुए थे, उनमें से एक रास्ता भटक गया, बहुत दूर जाकर उसको पता चला कि वह कैलास का रास्ता छोड़ आया है। वहाँ से भटकता हुआ रात को बड़ी देर में दूसरे पड़ाव 'धौरा चीना' पर पहुँचा। यहाँ पर भगवन्तसिंहजी को दस्त लग गए और मास्टर कल्याण-देवजी को बवासीर से कष्ट होने लगा। डाक्टर और वैद्य अपनी औषधियों समेत तो साथ ही थे, उनकी राय के अनुसार उचित उपाय करके फिर आगे चलने का ही विचार हुआ। तीसरे दिन ५ बजे प्रातः चल सायंकाल 'गनाई' पहुँचे। महा-राजजी सबको उत्साह देते जाते थे। सब लोग पहाड़ी यात्रा

का अभ्यास न होने के कारण ढीले पड़ने लगे। थकावट के कारण जहाँ पहुँचते, वहाँ चुपचाप जाकर आराम करने लगते। चौथे पड़ाव 'वंरीनाग' पर पहुँचकर महाराजजी ने स्वयं भोजन का कार्य्य आरम्भ कर दिया। स्वामी नारायणहरीजी खाना बनाने लगे और महाराजजी पानी भरने को चले। इससे उत्साहित होकर सुस्ती छोड़, सब लोग हिम्मत करके काम में लग गये। यहाँ से प्रातः ही साढ़े तीन बजे चले, तो रास्ते में चौधरानी कृष्णकुमारीजी घोड़े से गिर गईं। फिर भी बड़े धैर्य्य से कष्ट को सहारती हुई, पुनः सवार हो, आगे चल पड़ीं। ऐसे पाँचवाँ दिन बीत गया। खाने-पीने की साधारण सी सामग्री प्रत्येक पड़ाव पर मिलती रही, पर पदार्थ बहुत पुराने और सड़े गले होते थे। 'थल' से चलकर छठे दिन 'डंडीहाट' में पहुँचे। यहाँ बड़ी चढ़ाई थी और वर्षा भी जबरदस्त थी। इसी कारण से दो-तीन बजे शाम को वहाँ पर पहुँच पाये। थकावट के कारण साथी फिर सुस्त पड़ गये; परन्तु इधर महाराजजी और स्वामी नारायणहरीजी को भूख लग रही थी। भोजन तो बनाना ही था। फिर धीरे-धीरे खाने के लिये सब को इच्छा हो आई। लज्जा के कारण आलस्य को त्याग कर भोजन बनाने में सहायता देने लगे। कष्ट अथवा देर होने से, और स्थान भी अनुकूल न होने से, केवल खिचड़ी ही बना ली गई। रात काटकर प्रातःकाल आगे चल पड़े। सातवें दिन, पैदल चलनेवाले तो दस एक बजे 'असकोट' पहुँच गये। राजा साहिब की धर्मशाला में डेरा लगा दिया। राजा साहिब के नियमों के अनुसार उनके एक कर्मचारी मंडली से सब हाल पूछने आये। हाल तो उनको बता दिया गया कि कितने आदमी हैं, पर सामग्री लेने में संकोच करते थे। राजा ने सामग्री भिजवा दी। स्वामी विवेकानन्दजी

ने यह कहकर 'साधुओं को जो आ जाये, उसको वापिस नहीं करते', सामग्री रख ली। इतने में महाराजजी भी आ गये। रास्ते में वर्षा के कारण भीगते-भीगते देर से पहुँचे। जब महाराजजी से पूछा गया, तब उन्होंने कहा 'जो हमारा भोग है वह पहले ही आ गया है, अब इसको चलने दो।' भोजन बनाया गया, देर हो गई थी, भूख भी बहुत लगी थी, इसलिये सबने डट कर खाया। रात्रि को राजाजी सम्बन्धियों सहित श्री महाराजजी की महिमा सुन, दर्शन करने को आये। कैलास-यात्रा के सम्बन्ध में बातें होती रहीं। राजा साहिब ने कुछ चिट्ठियाँ भी दे दीं, जिससे आगे प्रबन्ध करने में सुभीता रहे। वैसे भी रास्ते में कैसी कैसी Precaution (एहतियात) करनी चाहिये, यह भी बता दिया। रात को ग्यारह बजे सोये। उस रात्रि को महाराजजी को नींद कम आई। धर्मचंदजी दो-तीन बार रात को उठे, तो देखा कि महाराजजी बैठे हैं। डेढ़ बजे, तीन बजे और फिर साढ़े चार बजे जब जब वे उठते रहे, तब तब ही उन्होंने आपको बैठे हुए देखा। पर नींद की मस्ती के कारण वह पूछ नहीं सके। जब वे साढ़े चार बजे उठे, तो चलने का वक़्त था, तब उन्होंने धीरे-धीरे सबको जगाना शुरू किया। जब सब जाग उठे, तो सबने सुस्ती की शिकायत की और कहा कि 'शरीर ढीला है, टांगे सुस्त हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ प्रतिकूल अथवा अधिक खाने से शरीर में गड़बड़ी हो गई है।' इनके उठने से पहले महाराजजी ने धर्मचन्दजी को बुलाया और कहा 'तुमको कुछ कहना है सो दूसरे पड़ाव पर कहेंगे, याद दिला देना।' यहाँ से पैदल चलने वाले तो शीघ्र ही चल दिये, अपना-अपना नाश्ता भी साथ बाँध ले गये। थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही थी। घोड़ेवालों की इच्छा नहीं थी कि वर्षा

में चला जाये। उतराई के रास्ता के कारण वह भय दिलाते थे कि आदमी और घोड़ों के गिर जाने का डर है। पर महाराजजी ने यही कहा, जब वर्षा जरा थोड़ी हो जायेगी तब चलेंगे। ऐसा ही किया गया। सारी उतराई भर घोड़े वाले अपनी नाराजगी का इजहार किसी न किसी आड़ से करते रहे। सवारी के घोड़े तो आगे चले जाते, पर असबाब वाले पीछे रह जाया करते। रास्ते में कभी-कभी वे घास खाने ठहर जाते और कभी तेज चल पड़ते। उतराई का रास्ता था। एक स्थान पर जब महाराजजी का घोड़ा ठहरा हुआ यकायक चल पड़ा, तो थोड़ा असावधान होने के कारण आप लुढ़क गये। पर फिर भी घोड़े को छोड़ा नहीं, भूमि से भी ऊँचे ही रहे, और ऐसे ही लटके हुये कुछ दूर चले गये। घोड़ा तेज जा रहा था, महाराजजी उसी अवस्था में बड़े सावधान हो चुपचाप नाटक देखते रहे। स्वामी नारायणहरीजी ने देखा; पर घोड़े के तेज होने के कारण, न उसको रोक सके और न ही उतर सके। कुछ दूर जाने के बाद जब कुलियों ने यह सब लीला देखी, तो वह दौड़कर आये, घोड़े ठहराये गये और महाराजजी नीचे उतरे। चोट तो नहीं आई थी; क्योंकि आपने सावधानी से अपने आपको धरती से ऊपर सहारे रक्खा था। यहाँ से उतराई अधिक होने के कारण स्वामी नारायणहरीजी भी घोड़े से उतर पड़े। थोड़ी दूर जाकर उतराई समाप्त हो गई, वहाँ एक नदी भूरी गङ्गा नाम की थी। उसका पुल पार करके जरा ठहर गये। इतने में पीछे से भी असबाब वाले कुली और घोड़े पहुँच गये। अब चढ़ाई का रास्ता था, इसलिये फिर चढ़ बैठे। अगले पड़ाव से दो मील उरे कुछ पैदल चलने वाले साथी ठहरे हुए थे, वहाँ पर खेत-वाले से कुछ आड़ू लिये और सबने थोड़े-थोड़े खाये। यहाँ से ही खेत में

से, ओगल और चौलाई का साग, खेत वाले की आज्ञा से इकट्ठा किया गया। फिर आगे चले और ३० जून को एक बजे के क़रीब 'नलवाकोट' पहुँचे।

दसवाँ प्रकरण (परम निर्वाण)

यहाँ पर एक मुसलमान की दूकान थी। वहीं से खाद्य-पदार्थ भी मिलते थे, वह भी सड़े गले। ठहरने का स्थान भी अच्छा नहीं था। साथियों का यही विचार था कि चले ही चलें, और ६ मील की दूरी पर अगले पड़ाव पर जाकर ठहरें। जब महाराजजी आये, तो उनसे पूछा गया। आपने कहा 'अब एक बज चुका है, यदि चलते रहे, तो चार-पाँच बजे पहुँचेंगे, फिर यह भी पता नहीं कि वहाँ स्थान कैसा हो, इसलिये यहाँ ही रहना ठोक है।' यहाँ एक बहुत मैला सा मकान था। उसी में साफ़ कर-करा के रहने का विचार हुआ। वृक्ष के नीचे बाहिर ही भोजन बनाया गया। धर्मचन्दजी थोड़ी देर पीछे नदी पर स्नान करने गये, महाराजजी भी वहाँ पहुँचे थे, और जो बात आपने उनको कहनी थी वह समझा दी। भोजन बनते-बनाते और खाते-पीते सायंकाल हो गई। बहुत से लोग तो उसी स्थान पर सोये; पर स्वामी विवेकानन्दजी जोकि पहले से ही रास्ते में बीमार हो गये थे दुकान के सामने बाहिर ही पड़े रहे। बाक़ी सब उस मकान में थे। सोने से पहले आज्ञानुसार धर्मचन्दजी ईश्वर-विनय का पद गाने को थे कि कोई बात छिड़ गई। इधर बातें करते-करते महाराजजी भी सो गये। रात को ग्यारह बजे

के करीब पहले-पहल उस माईजी को कुछ दस्त आ गये। जब उसने डाक्टर को जगा कर दवाई माँगी, तो महाराजजी भी जाग पड़े। पूछने लगे 'क्या है ?' स्वामी नारायणहरिजी ने सब हाल सुनाया। तब आपने कहा मेरा भी जी मचलाता है।' इतना कहकर बाहिर चले गये। एक दम उल्टी हो गई। उसके बाद डाक्टर उत्तमचन्दजी को भी उल्टी हो गई। दस्त भी होने लगे। छे व्यक्तियों को तो विशेष कष्ट हो गया; महाराजजी, स्वामी नारायणहरिजी, चौधरानी कृष्णकुमारीजी, डाक्टर उत्तमचन्दजी मलिक मेहरचन्दजी, और लाला थाऊरामजी; शेष लोग तो कष्ट से कराहते भी रहे, पर महाराजजी बिलकुल चुपचाप सब कुछ सहते रहे। आपको दस्त दूसरे दिन दोपहर तक बन्द हो गये। जब ऐसी अवस्था देखी तो १ जुलाई को दो बजे के क़रीब भक्त धर्मचन्द और स्वामी विवेकानन्दजी को 'धारचूला' भेजा कि वहाँ से सवारी और डण्डी का प्रबन्ध कर लायें ताकि रोगियों को वहाँ पहुँचाया जाये। यहाँ डाक्टर और वैद्य तो साथ थे, वह कुछ न कुछ जैसी-तैसी औषधि देते रहे। शेष भी थोड़े-बहुत कष्ट में रहे। सिर्फ़ तीन ही बचे थे, कौशकजी, कल्याणदेवजी और स्वामी विवेकानन्दजी। कौशकजी तो फल और दूध पर ही निर्वाह किया करते थे। और इन दोनों ने इस रात कुछ खाया ही नहीं था। स्वामी रामानन्द जो अलमोड़ा से साथ हुये थे, वह भी स्वस्थ रहे। जब उनको पता चला कि दो व्यक्तियाँ धारचूला भेजी गई हैं, तो वे भी अपनी इच्छानुसार सहायता करने के लिये आगे चले गये।

महाराजजी ने प्रातःकाल ही वस्ती और उल्टी कर ली थी, इससे शरीर कुछ शुद्ध हो गया, और दस्त दोपहर को बन्द हो गये। शेष लोग तो औषधि भी खाते रहे, और वहाँ पर खिचड़ी भी

बनाई, परन्तु महाराजजी ने कुछ न खाया और चुप-चाप लेटे रहे, और किसी से किसी प्रकार की बात-चीत नहीं की। आप चुप-चाप लेटे रहते और कभी बेचैनी होती तो उठ बैठते। ऐसा प्रतीत होता था, कि द्रष्टा बन सब नाटक को असंग भाव से देख रहे हैं। यह दिन तो इस तरह से समाप्त हुआ। रात्रि को आपने मुनक्का और इलाइची का पानी लिया। १२ बजे के बाद थोड़ा दूध पिया। सारी रात पेट में कुछ दरद रहा। फिर दिन को मुनक्का व छोटी इलाइची का पानी उबाल कर कई बार लेते रहे। जब कभी औषधि के लिये भक्त पूछते, तो आप इनकार कर देते, और यही कहते कि 'मेरी चिन्ता न करो', और बात-चीत कुछ न करते। फिर दोपहर के बाद दो बजे से महाराजजी की अवस्था कुछ कमज़ोर होने लगी। नाड़ी भी कमज़ोर हो रही थी। जब ऐसी अवस्था देखी, तो सब लोग चिन्तित हुये और विचारने लगे कि क्या किया जाये। दवाई तो लेने से इनकारी ही थे। जब स्वामी नारायणहरिजी से पूछा, तो उन्होंने कहा कि 'अब जबरदस्ती करनी चाहिये।' इतने में डाक्टर उत्तमचन्दजी ने, जो अब कुछ अच्छे हो रहे थे, कहा कि 'injection दे दो।' तब उन्होंने आप ही injection कर दिया, जिससे कुछ नाड़ी में बल आया और शरीर की अवस्था सुधरने लगी। स्वामीजी, इसके बाद, कभी-कभी दूध भी माँगते रहे। इधर जो सज्जन डाण्डी लेने गये थे भटकते हुये देर से तपोबन पहुँचे। वहाँ के अधिष्ठाता स्वामी अनुभवानन्दजी को सब वृत्तान्त सुनाया। उनकी सहायता से दूसरे दिन पचीस कुली और डाण्डी आदि का प्रबन्ध करके २ जुलाई को नौ बजे यह लोग वापस नलवाकोट पहुँचे। रात्रि को ही महाराजजी से सब हाल कहा गया। स्वामी अनुभवानन्दजी की इच्छा थी कि उसी समय चला जाये।

परन्तु महाराजजी ने कहा—'ऐसी कोई बात नहीं है, सब लोग कुछ अच्छे हैं, प्रातःकाल ही चलेंगे।' प्रातःकाल के समय महाराजजी को उठाया गया। शरीर तो कमज़ोर था ही, पर बड़ी सावधानी से कपड़े आदि पहन कर तैयार हो गये। एक ही डाण्डी आई थी, उस पर महाराजजी को बिठाया गया। स्वामी नारायणहरिजी और माई कृष्णाकुमारीजी को चारपाई में उठा कर ले गये। डाक्टर उत्तमचन्दजी और मलिक मेहरचन्दजी को बाँस में कम्बल बाँधकर, उसीमें बैठाकर, उठवा कर चले। ला० थाऊरामजी की अवस्था कुछ अच्छी हो गई थी। महाराजजी तो यहाँ से प्रातःकाल ३ बजे ही चल दिये, शेष सब प्रबन्ध करते-कराते कोई आठ बजे के क़रीब चले। भगवन्तसिंहजी अस्वस्थ थे, पर फिर भी गुरुदेव को अकेला नहीं छोड़ सके। मना करने पर भी साथ तय्यार हो गये, और कुछ मुनक्का का पानी भी साथ ले गये। बहुत बार वे महाराजजी की डाण्डी के साथ-साथ ही गये। शरीर कमज़ोर था, परन्तु उनकी श्रद्धा इतनी थी कि वह रुक ही नहीं सके। सारा रास्ता वह साथ ही रहे कि शायद महाराजजी कोई बात कहें। कई बार पानी माँगा, वह थोड़ा-थोड़ा पानी देते गये। आगे जाकर भगवन्तसिंहजी ने स्वयं दूध पिया, पानी ख़तम हो गया था, थोड़ा दूध ले लिया, फिर दूध पिलाते गये। जिस समय से महाराजजी बीमार हुए थे, उस समय से आप बिलकुल नहीं बोले। सावधान रहते हुए भी, पूछने पर प्रश्नों का उत्तर देते हुए भी आपने और कुछ बात नहीं की। यह बड़ा अस्वाभाविक था। जो लोग महाराजजी की संगति में रह चुके हैं, वह भली प्रकार जानते हैं कि आप अपने रोग-ग्रस्त साथियों की कितनी चिन्ता किया करते थे; परन्तु अब किसी को कुछ पूछा ही नहीं। माई कृष्णाकुमारी

आपके सहारे ही यहाँ आई थीं, भगवंतसिंह के पिताजी ने भी उसको आपके आश्रय पर ही भेजा था, इनके सम्बन्ध में भी कुछ नहीं पूछा। भगवंतसिंहजी तो सारा रास्ता इसीलिये साथ रहे कि महाराजजी कुछ कहेंगे। इस सब शांति से यही परिणाम निकलता है कि महाराजजी इस समय अनुभव कर रहे थे कि उनके शरीर का भोग खतंम होने वाला है। वैसे भी कोई सम्बन्ध तो किसी से महसूस ही नहीं किया करते थे, तो अब भला किसी से कुछ क्या कहते। आप तो प्रभु-आज्ञा को पूर्ण कर रहे थे, और जिस उपरामता, उदासीनता और मुसाफिर-दृष्टि का उपदेश करते रहे, इस समय आप उसीका एक स्वच्छ और निर्मल दृष्टांत दे रहे थे। किसी प्रकार की भी बात आपके हृदय में नहीं फुरी। कहते हैं कि जिस समय शरीर कमजोर होता है, दिमाग़ जवाब दे देता है, तब यदि कोई संस्कार चित्त में दबे हुये हों, तो वह प्रबल होकर कुछ न कुछ कराते रहते हैं; परन्तु यहाँ सावधान रहते हुये भी सब प्रकार से शांत रहे। दस-ग्यारह बजे श्रीमहाराजजी धारचूला स्थान में पहुँचे। यहाँ पर आप श्रीरामकृष्ण मिशन के अस्पताल में ठहराये गये। कुछ बंगाली लोग कैलास को जा रहे थे, उनमें दो बंगाली डाक्टर M. B. B. S. भी थे। स्वामी अनुभवानंदजी की प्रेरणा से अथवा उस बंगाली-पार्टी की सज्जनता के कारण ही कुली और गाड़ी का प्रबन्ध हो पाया था। उन डाक्टरों ने महाराजजी को देखा और कहा, कि 'इस समय कोई विशेष रोग नहीं है, केवल कमजोरी है, शीघ्र दूर हो जायेगी।' वह कुछ दवाई बता कर स्थानीय हस्पताल के डाक्टर के जिम्मे करके चले गये। स्वामी अनुभवानंदजी भी इन्हींके साथ कैलास को जानेवाले थे। उन्होंने महाराजजी से अपनी वापसी तक वहीं

रहने को कहा। महाराजजी ने उत्तर दिया, 'अभी तो यहाँ हैं, फिर जैसा होगा देखा जावेगा।'

पीछे कोई दो बजे के क़रीब आपने बस्ती करने की इच्छा प्रकट की। शरीर-शुद्धि के बाद आपकी नाड़ी फिर छूटने लगी। डाक्टरों ने कुछ ओषधि देना शुरू किया। जब आप जल माँगते तो औषधि मिलाकर जल दिया जाता।

डाक्टर ज्ञानसिंहजी ने इस समय पूछा, 'महाराजजी, गीता सुनाऊँ।' उत्तर मिला, 'बस यार, अब गीता-बीता हो चुकी।' आप तो परम शांति के आधार से कह रहे थे, अथवा अखंड आनंद में मग्न थे, सब प्रकार की वासनायें शान्त हो चुकी थीं, किसी प्रकार का संस्कार उठता ही नहीं था, वृत्ति बिलकुल विलीन हो चुकी थी, आत्म-आनंद के अनुभव करने वाले को किसी बाहिरी आधार की क्या आवश्यकता हो सकती है।

सात बजे से शरीर के गात्र ठंडे होने लगे। फिर जैसा सूझता रहा, वैसा कभी दवाई, कभी injection करते रहे। नौ बजे से आप उठाकर बिठाने के लिये बार-बार कहने लगे; परन्तु हस्पताल के डाक्टर इस बात पर आग्रह करते थे कि उठाकर बैठाने से हानि होगी, बिलकुल न उठाया जाये। एक बार तो आपने बड़े प्रेम के शब्दों में उठाने के लिये कहा, तो धर्मचंदजी ने पूछा—'महाराजजी, आप किस लिये उठना चाहते हैं।' उत्तर मिला—'उठाओ, फिर बताऊँगा।' लघुशंका की इच्छा प्रकट की। बोतल दी गई, पर कुछ हुआ नहीं। फिर लिटा देने को कहा, भक्तजी ने लिटा दिया। फिर आप ने उठाने को कहा, तो डाक्टर के मना करने पर भी उन्होंने उठाकर बिठा दिया। तब आप उठकर बैठ गये, और उठते ही थोड़ा सा आसन जमा लिया। इतने में प्राण ज़ोर-ज़ोर से ऊपर जाने

लगे। इस शब्द को सुन बंगाली डाक्टर दौड़े आये और जबरदस्ती लिटा दिया और कहने लगे, 'कि बिठलाने से मृत्यु को बुलाना है।' थोड़ी देर पीछे आपने फिर उठाने के लिये कहना प्रारम्भ किया, तब बिना डाक्टर के कहे धर्मचंदजी ने महाराजजी को उठा दिया। उनको ऐसा प्रतीत होता था कि महाराजजी बैठकर सुख-पूर्वक प्राणों को छोड़ना चाहते हैं। बैठते ही प्राण ऊपर को संचार करने लगे और बड़ी जोर का शब्द होने लगा। दूसरे कमरे से डाक्टरजी ने यह सुना और फिर दौड़े आये और आते ही जबरदस्ती लिटा दिया। इस समय डाक्टरों की राय तो यही थी कि उठाना नहीं चाहिये, और दवाई भी देते रहना चाहिये। परन्तु ज्ञानसिंहजी कहते थे कि मृत्यु के चिन्ह प्रतीत हो रहे हैं, अब दवाई देने से कुछ लाभ भी नहीं है और वृथा कष्ट होगा। जब आपसे पूछा गया, तो आपने कहा, 'जोर लगाने दो।' भक्तों की यह इच्छा थी कि दवाई नहीं देनी चाहिये और महाराजजी को उठाकर बिठाना चाहिये ताकि सुख-पूर्वक शरीर त्याग कर सकें। कुछ भक्त अस्वस्थ होने के कारण दूर थे। भक्त धर्मचंदजी और ज्ञानसिंहजी और भगवंतसिंहजी की कुछ पेश न गई। ग्यारह बजे तक तो महाराजजी उठाने के लिये कहते रहे, परन्तु पीछे से चुप हो गये। जब तक बोलते भी रहे, तब तक बड़े सरस, मधुर और करुणामय शब्दों से बोलते रहे। कोई उठाता भी नहीं था, बैठे हुये लिटा भी दिया था, पर फिर भी प्रेम से यही कहते रहे 'जरा तो, यार उठाओ ना।' जब डाक्टर ने कहा कि 'इसमें आपकी हानि है, मैं आपका डाक्टर हूँ, जो उचित समझता हूँ कर रहा हूँ।' तो आपने बड़ी शांति-पूर्वक उत्तर दिया—'अच्छा यार।' यह प्रेम-मय शब्द ही आपके हृदय की गम्भीर शांति को

दरशा रहे हैं। जिन्होंने उस मधुर-ध्वनि को सुना वे उन करुणा-पूर्वक शब्दों पर मुग्ध थे। बारह बजे के बाद आप शरीर का भोग समझ, बिलकुल शांत हो गये। धर्मचन्दजी ने पूछा, "महाराजजी कुछ कहना है," "नहीं।" जब किसी से कुछ सम्बन्ध नहीं था, इच्छा सब नाश हो चुकी थी, तो इस समय दूसरा उत्तर कैसे सूझता। तीन बजे तक ऐसे ही चुप-चाप और शांत अवस्था रही। ऐसा प्रतीत होता था कि कुछ बेचैनी हो रही है। सावधान तो रहे, पर कुछ कहा नहीं। शेष इच्छा तो रही नहीं थी, जो बैठ कर शरीर छोड़ने की इच्छा थी उसको भी पूरा न होते देख शरीर का भोग जान मस्त रहे। एकादशी के दिन कृष्णपक्ष, बुधवार और बृहस्पतिवार के बीच वाली रात्रि को, प्रातःकाल के साढ़े तीन बजे ब्रह्म महूर्त्त के समय आपका पंचभौतिक शरीर शांत हो गया। उस समय सब सेवकों ने अन्तिम दर्शन किये और प्रणाम किया। चित्त की वासनायें तो पहले ही विलीन हो चुकी थीं। अब तो सब यात्रायें शरीर-यात्रा के निमित्त ही कर रहे थे, वह भी समाप्त हो गई।

मन मारया ममता मुई, अहं गई सब छूट।
जोगी था सो रम गया, आसन रही विभूत॥

प्रातःकाल जब रोशनी में, भक्तों ने महाराजजी के शरीर को देखा, तो आपके मुख-मंडल पर वैसी ही शांति और प्रसन्नता के चिन्ह थे कि जैसे प्राणों के रहते हुये दिखाई देते थे। चित्त की अन्तिम अवस्था की छाप ज्यों की त्यों लगी हुई थी। दिन होने पर आपके शरीर को जल से स्नान करा कर, धुली हुई गाति बाँध, काली नदी में प्रवाह करने के लिये ले गये। महाराजजी प्रवाह को ही अच्छा समझते थे। वहाँ पर आपका एक चित्र भी लिया गया। और एक चित्र सत्संगियों सहित भी

लिया गया। फिर पत्थर बांध शरीर को काली गंगा के जल में प्रवाह कर दिया।

सब लोगों के हृदय उदास थे, परन्तु जिस गम्भीरता और शांति से महाराजजी ने शरीर को छोड़ा था वैसे ही भाव सबमें विराजमान थे। किसी को किसी प्रकार का वेग नहीं हुआ।

शरीर का जो सुख-दुःख है वह भोग के अधीन है। भावी प्रवल है, जैसा होना था वैसा ही हुआ, परन्तु इस बात का भक्तों के हृदय में खेद अवश्य है कि अन्त समय में आपकी सेवा का कार्य भक्तों की अपेक्षा डाक्टरों के ही अधिक सपुर्द रहा, और महाराज उस शरीर को जिसने आपकी इतनी अच्छी नौकरी बजाई थी वैसे सुख पूर्वक न छोड़ सके जैसाकि आपकी इच्छा थी, और जैसा कि संत लोग छोड़ते हैं। सब लीला को स्मरण करते हुये यही विचार आता है कि प्रारब्ध नहीं टल सकती, और होना वही है जो ईश्वर को मंजूर है। आप स्वयं भी इसी धारणा को ले शांत रहे। इतनी प्रसन्नता अवश्य है कि आपका शरीर उत्तराखंड की पवित्र भूमि में ही छूटा। ऐसी इच्छा को आपने कई बार प्रकट किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि आपका संकल्प ही इस बार अनेक विघ्नों के होते हुये भी आपको वहां ले गया। शरीर के झगड़े से तो आप तंग आ चुके थे, प्रभु की गोद में जाने को लालायित हो रहे थे। इस यात्रा में जाते हुये शरीर तो रास्ते में रह गया, पर आत्मा शिव के अन्दर समा गई। जिस परम शांति का आप उपदेश करते थे उसीको आप जीवन के अंत क्षण तक दर्शाते हुए परम निर्वाण पद को प्राप्त कर गये।

दूसरे दिन मलिक मेहरचंदजी का शरीर छूट गया। वे कहते भी थे 'महाराजजी मेरा शरीर बूढ़ा है, मैं कुछ कर नहीं

सकता, अब तो आप अपनी शरण का ही सहारा देकर पार कर सकते हैं।' जिस वक्त, महाराजजी का शरीर छूट चुका था, तो प्रातःकाल आप भी दर्शनों को आये थे, और बहुत देर चरणों में झुक कर प्रार्थना करते रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि आपकी शुभ कामना पूरी हो गई। आपके पुत्र डाक्टर उत्तम-चंदजी साथ थे, उन्होंने अवसर-अनुकूल शरीर का संस्कार आदि कर दिया।

रोग के कारण शरीर सब का ढीला था। उधर महाराजजी का वियोग; फिर भला कैलास जाने की हिम्मत किसको होती। मुलतान के सत्संगी, भगवंतसिंहजी भी, चौधरानी कृष्णकुमारीजी, दो चार रोज़ बाद प्रबन्ध करके लौट आये। कौशिकजी, स्वामी रामानंद, और एक और साधू दूसरे दिन ही ऊपर चले गये। थोड़े दिन बाद मास्टर कल्याणदेवजी और ब्रह्मचारी जगन्नाथजी कैलास-यात्रा का संकल्प पूरा करने को आगे चल दिये। स्वामी नारायणहरिजी अधिक कमज़ोर होने के कारण वहीं ठहरे रहे। स्वामी विवेकानन्दजी भी वहीं रहे। जो रुपया यात्रा के व्यय के लिये साथ था उसमें से ६०) रुपया रामकृष्ण मिशन की भेंट किया गया, और कुछ उन साधुओं को दिया जो महाराजजी के आश्रय पर कैलास-यात्रा का विचार करके अलमोड़ा से आये थे। स्वामी नारायणहरिजी और स्वामी विवेकानंदजी अक्तूबर के आरम्भ में तपोवन से लौटे। अलमोड़ा होते हुये बरेली पहुँचे और यहाँ से स्वामी विवेकानंदजी तो टोहाना (पंजाब) चले गये और स्वामी नारायणहरिजी लखनऊ होते हुये कानपुर पधारे। इस प्रकार यात्रा समाप्त हुई।

❀ इति ओ३म् ❀

उत्तरार्द्ध

मोक्ष-साधन

अर्थात्

श्री मत्परमहंस योगीराज श्री स्वामी सियारामजी महाराज

के

उपदेशपूर्ण पत्र

ज्ञान सागर

संसार में दुःख ही प्रधान है। यथा विदित सुख केवल दुःख निवृत्ति है, वास्तव में हम दुःख ही का इलाज करते हैं। दुःख के घटते जाने को सुख-प्राप्ति समझ बैठे हैं। दुःख दो प्रकार के हैं। एक वास्तविक, दूसरे मानसिक। एक आधि-दैविक, आधिभौतिक, दूसरे रिवाजी अथवा कल्पित। जो दुःख असली हैं, वह सबको एक सा भुगतना पड़ता है। बालक को, वृद्ध को, मूर्ख को, ज्ञानी को, पुरुष को, स्त्री को, जब तक शरीर है, यह दुःख बना रहेगा। इसका न्यूनाधिक भान व कष्ट अपनी सहन-शक्ति पर है, जो अभ्यास और ब्रह्मचर्य आदि व औषधादि सेवन से प्राप्त होती है। शरीर के रहते-रहते इस दुःख का अभाव असम्भव है, यह अटल है। हाँ, भोग बुद्धि दृढ़ करने से अथवा अन्य कई साधनों से इसकी पीड़ा की मात्रा घट जाती है। इसका अत्यंताभाव शरीर के अत्यन्ताभाव से होता है, शरीर का अत्यंताभाव इसके मूल कारण के अभाव से होता है जिसका विचार आगे दिया है।

दूसरा दुःख मानसिक वा कल्पित होने से इस शरीर ही में नाश्य है, क्योंकि इसका कारण मन का मिथ्या बोध है—जहाँ यथार्थ बोध हुआ, मन के खेल (संकल्प विकल्प-रूप) बन्द हुए, वस्तु ज्यों को त्यों प्रतीत होने लगी। मिथ्या-बोध का आधार मन का अपने खेलों को न बन्द करना है। मन को अनादि काल से आदत पड़ी है, कि अपने व्यवहार में निर्पक्षता से काम नहीं लेता, अपनी ओर से ऊँच-नीच करता रहता है। चलायमान जल में जैसे आभास यथार्थ नहीं होता, ठीक इसी

प्रकार चंचल मन में यथार्थ बोध नहीं हो सकता। राग-द्वेश (अनुकूल-प्रतिकूल) के भाव झट खड़े हो जाते हैं, जो चित्त (अन्तःकरण) को विक्षिप्त करते हैं। ज्ञान इन्द्रियों द्वारा रूप-रस-गन्धादि विपयों की केवल प्रतीती (बोध) होनी चाहिये, यदि मन निर्पक्ष होके देखे। ऐसा न होने से उल्टा बोध होता है जो दुःख का कारण है। विपयों में सुख बुद्धि उल्टा बोध है, यथार्थ-बोध प्राप्त करने के लिये पहले विपयों से सुख-बुद्धि, हरनी चाहिये।

विपयों में सुख नहीं है, इसका अनुभव गुरुगम्य है, जिसके लिये वे सब साधन प्रतिपादन किये जाते हैं, जिनसे मन की मैल धुलती है। मन के मलिन संस्कार जो यथार्थ बोध का नाश कर रहे हैं, यम नियम पालन से मिट जाते हैं; फिर चित्त शुद्ध होता है। शुद्ध व्यवहार, ब्रह्मचर्य्य सेवन, विषय-वासना-त्याग आदि सब इनके अन्तर्गत समझने चाहियें। इधर यह सब बाह्य साधन चलते हैं, उधर साथ हीं अभ्यास अन्तरीय साधन चलता है; जिन से अन्तःकरण के विकारों का नाश होने से—मिथ्या बोध (अविद्या) के नाश होने से वस्तु का स्वरूप प्रगट अनुभवित होता है—सब संशय, दुःख के रूप कट जाते हैं।

तीन दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति ही परम पुरुषार्थ है, वैराग्य और प्रभु भक्ति ही इसके एक मात्र साधन हैं।

(सदानन्दजी)

उपदेश-पूर्ण पत्र

१-पत्र

चित्त स्थिर करने के उपाय

ॐ ६—६—१६१२

श्रीमान जी ! प्रणाम प्रतापगढ़

पत्र आपका मिला हाल मालूम हुआ, पदार्थों के गुणों का ज्ञान शरीर-रक्षा के अतिरिक्त और तो किसी मसरफ़ का नहीं मालूम होता, और जो कुछ धार्मिक या वैराग्य के ग्रन्थों का अवलोकन या सत्संग करना है, वह कर्म-काण्ड की मदद और यथार्थ बोध से, चित्त को उपराम करने के लिये है ; इसलिये ऐसी पुस्तकों का अवलोकन जारी रखना, विरक्त पुरुषों का सत्संग करना, और स्वयं विचार करना वैराग्य के संस्कारों को दृढ़ करता है। मन चूँकि स्थिर नहीं होता, इससे मालूम होता है, कि वैराग्य की कमी है। क्योंकि जहाँ-जहाँ मन फँसा हुआ

होता है। वहीं-वहीं जाता है, उन्हीं व्यवहारों में पड़ता है, परन्तु पुरुषार्थ करते-करते वहाँ से उपराम हो जाता है, तब नहीं जाता। अगर किसी वस्तु को चित्त चाहता है, और हम उसकी प्राप्ति ठीक नहीं समझते, तो हमको उसका संग त्याग करना हठ से उचित है। फिर कुछ अरसे बाद चित्त आपही उसका चिन्तन छोड़ देता है। बिना हठ के कोई काम नहीं हो सकता। विषयों में दोष-दृष्टि विचार और युक्ति से पैदा करना चाहिये, अधिक वार्तालाप से और सामने तजुर्बा करने से पता लग सकता है। आप भजन में रहें सुस्ती की परवा न करें।

२—पत्र

सामाजिक व्यवहार—प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष-वाद, उनका ज्ञान से सम्बन्ध—वैज्ञानिक भाव और यथार्थ बोध—सामाजिक नियम और निज कर्तव्य

❀ ॐ ❀

३०—६—१९१३.

मौनी गुफा, आबू शिखर

श्रीमान् धर्म-मूर्ति संत सेवी आत्म हितकारी भक्त .... को बहुत-बहुत प्रणाम पहुँचे। पत्र आपके आये, हाल जाना।

गया, आप जो लिखते हैं, कि आलस्य, अविश्वास और लोक-लज्जा की वजह से आगे नहीं चल सकते, सो ठीक है। इन सब कारणों में अविश्वास ही मुख्य है, सो उसका छूटना बहुत कठिन है। लोक-लज्जा तो इतना रुकावट नहीं डाल सकती जितना आप समझते होंगे; क्योंकि जिस Society (समाज) में जायें, उसके नियमों के अनुसार चलना ही पड़ता है। इसलिये आपको जिन लोगों के साथ व्यवहार करना पड़ता है यदि आप सचाई और ईमानदारी के साथ उनके नियमों का पालन करते रहेंगे, तो लोक-लज्जा का भय क्या है। अब रही बात अविश्वास की, सो इसमें दो पक्ष हैं:—एक तो अप्रत्यक्षवाद दूसरा प्रत्यक्षवाद। प्रथम पक्ष में केवल शास्त्र ही प्रमाण हैं, क्योंकि कर्म का फल पूरी तौर से इसी जन्म में अनुभव में नहीं आता। कुछ अंश में आता है, कुछ में नहीं, वह आगे मिलेगा। दूसरा पक्ष अनुभव गम्य है और जैसे Science (विज्ञान) की बातें बाक़ायदा तजुर्बा करने से अनुभव में आती हैं, इसी प्रकार नियम अनुसार पुरुषार्थ करने से अनुभव-गम्य बातें भी अनुभव में आती हैं, जैसे hydrogen (एक प्रकार की हवा या गैस) का हवा में जलना या Potassium (पोटैसियम, एक पदार्थ) का पानी में जलना पहले असम्भव मालूम होता है, परन्तु बाक़ायदा तजुर्बा करने से विश्वास हो जाता है; इसी तरह इस पक्ष में भी है। सो पुरुषार्थ आलस्य को छोड़ ही कर हो सकता है। जिस वक्त तजुर्बा करने का जोश आता है, उस वक्त आलस्य आप ही उड़ सकता है। अनुभवगम्य विषय में किसी प्रकार का विश्वास न रखकर यदि इसी curiosity (जान लेने के विचार से) तजुर्बे के तौर पर कुछ काल नियम-पूर्वक कोशिश की जाये कि देखें क्या होता है, तो यदि उसमें कुछ होगा तब वह आप ही विश्वास को बढ़ायेगा,

परन्तु फिर भी यही कहना पड़ता है कि जैसे Science (विज्ञान) के experiments (तजुर्बे) कटि-बद्ध होकर किये जाते हैं, और failure (नाकामयाबी) होने पर भी उनका repetition (दुहराना) जारी रहता है, जब तक कि किसी ख़ास नतीजे पर न पहुँच जायें ; इसी तरह इसका हाल है। यह बात बिना पुरुषार्थ के नहीं हो सकती। बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनमें लोग धोखे से पड़कर दुःख उठाते रहते हैं। यदि इस धोखे को छोड़ने की कोशिश की जाये, तो इसमें न तो लोक-लज्जा का ही भय है और न आलस्य ही विघ्न डाल सकता है ; क्योंकि सिर्फ़ ख्याल हो का तो बदलना होता है। जैसे, कोई काम, लोग नाम के लिये करते हैं, यदि उस काम में लाभ है ; तब तो जैसे और व्यवहार लाभदायक समझ कर किये जाते हैं, ऐसे ही वह काम भी लाभदायक समझ कर करलें। क्योंकि Society (समाज) का नियम ही ऐसा है कि अमुक काम करने से लाभ होता है। यदि वह काम फ़जूल है, अन्त में कोई लाभ नहीं है, तो उसके करने में संकोच किया जायेगा। अगर न बच सके तो थोड़ा ख़र्च करके छुटकारा लें। इस प्रकार से ऐसा व्यवहार बन्धन का कारण नहीं हो सकता। परन्तु, इस बात का ख्याल जरूर रखना चाहिये कि यदि किसी वस्तु या पदवी को ग्रहण करें, तब प्रथम उसके फ़रायज़ को अच्छी प्रकार समझ लें, और देख लें कि आप उन फ़रायजों को पूरी तौर से अदा कर सकेंगे वा नहीं। क्योंकि फ़रायजों को अदा न करने से पाप होता है। जैसे किसी ने विचार किया कि मैं शादी कर लूं, इसमें सुख है, फिर जब वह स्त्री को ग्रहण कर लेगा तब उस पर गृहस्थ आश्रम के फ़रायज़ आ जायेंगे, और उनको अदा न करने से वह पाप का भागी होगा। और यदि उसको थोड़े ही काल में ग्लानी हो गई

और उसने स्त्री को निराधार छोड़ दिया, तब उसको पाप लगेगा और आत्मिक उन्नति में विघ्न होगा। इसी तरह और भी सब बातों को समझ लेना चाहिये। लिखने में इतना नहीं आ सकता जितना परस्पर वार्त्तालाप से होता है। केवल ईशारा मात्र ही लिखा गया है, और आप जैसे विचारशील पुरुष को इशारा ही काफी है। आप इसको दूर तक विचार कर लें, तब अपनी बुद्धि के अनुसार करें।

"मन गाहक से विनती इतनी इक नाहक नहीं ठगाना है।
देख भालकर ठीक बजाकर वस्तु पर दाम लगाना है।"

मुश्कले नेस्त कि आसां न शवद।
मर्द बायद कि हिरासां न शवद॥
सर शमां सा कटाइये, पर दम न मारिये।
मंजल हजार दूर हो, हिम्मत न हारिये॥

३—पत्र

प्रकृति के गुण और मनुष्य का पुरुषार्थ—बनावट बुराई है—भवसागर से पार होने के साधन-दृष्टान्त सहित—सत्संग वा विचार की आवश्यकता—गृहस्थाश्रम जीवन और जीवन-संग्राम (ब्रह्मचर्य्याश्रम के अधिक लाभ)

* ॐ * १२—१०—१६१२

मौनी गुफा, आबू

श्रीमान् धर्ममूर्त्ति सन्तसेवी आत्म-हितकारी भक्त··· ··· ··· ···

को बहुत-बहुत प्रणाम पहुँचे। पत्र आपका मिला, पढ़कर चित्त अति प्रसन्न हुआ। मैं आपकी अवस्था को समझ गया हूँ, और जो कुछ आपने कथन किया है वह यथार्थ है। इसमें यह कहना आवश्यक मालूम होता है कि इन अवस्थाओं (तामसी, राजसी, सात्विकी) के अन्दर तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण पूर्व कर्मानुसार उदय होते रहते हैं और उनमें अपना असर डालते रहते हैं। जैसे केवल तामसी अवस्था वह कहनी चाहिये, जिसमें पूर्ण आलस्य हो, परन्तु गाढ़ निद्रा या निद्रा के अतिरिक्त और कोई हालत नहीं दीखती जिसमें मनुष्य पूरा आलसी हो। वह आलसी होते हुये राजसी और सात्विकी भी नजर आता है, हां, आलस्य प्रधान है। मनुष्य अपने पुरुपार्थ से अवस्थाओं को कुछ-कुछ समय के लिये बदलता भी दीख पड़ता है। इससे सिद्ध होता है, कि पूर्व कर्म अनुसार गुण तो उदय होकर अपना असर जतायेंगे ही, परन्तु मनुष्य लगातार पुरुपार्थ से उनका मुक़ाबला करता हुआ इतना दिलेर बन जाता है कि फिर उनको दबा देता है, और वे उसको गिरा नहीं पाते। यह विपय इतना सूक्ष्म और बड़ा है कि पत्र द्वारा सविस्तर वर्णन नहीं किया जा सकता। इस बात में हम आपके साथ बिलकुल मुत्तफ़िक राय हैं, कि जीवन को artificially (बनावटी तौर से) किसी ख़ास ढंग का बनाने से मनुष्य भवसागर को तर नहीं सकता; बल्कि तरेगा तभी जब उसके अन्दर reality (असलियत) पूर्ण तौर से प्रवेश कर जायेगी। यह बात बिना सत्संग और अभ्यास और विचार के होना बहुत कठिन है। आपका यह कहना 'कि यदि कोई पुरुप गृहस्थ के बन्धनों में पड़कर निकलने का सामर्थ्य नहीं रखता, तो वह अलग रहकर भी बच नहीं सकता; और यदि वह अलग रहकर बचने का सामर्थ्य रखता है, तब उसमें पड़कर

भी वह निकल सकता है,' यह प्रत्येक हालत में ठीक नहीं मालूम होता। जैसा कि नीचे के दृष्टान्त से आपको बहुत कुछ विदित हो जायेगा—एक बड़ा भारी नद है जिसमें बड़े-बड़े मगरमच्छ रहते हैं, और जो आदमी को साबित निगल जा सकते हैं। अब उसके पार जाने के लिये दो तरीक़े हैं—एक तो तैर कर निकल जाना, दूसरा नाव में बैठकर हथियारबन्द मल्लाहों के संग पार होना। अब एक पुरुष जो तैरना बहुत अच्छा जानता है और हौसलेवाला भी है, गरमी के दिन हैं और नद का पानी pleasantly cool (शीतल तथा खुशी देनेवाला) है, वह चाहता है कि तैरकर पार होवें ; ताकि जल के शीतस्पर्श और तैरने का लुत्फ़ हासिल करता हुआ पार जायें, इस ख्याल से वह कमर कसकर दरिया में कूद पड़ा और मौज से तैरता हुआ जा रहा था कि मगरमच्छ उसकी तरफ़ दौड़ने लगे। वह जोर से आवाज़ देता हुआ और पानी में छड़ी पीटता हुआ, उनको हटाता रहा। परन्तु उस घाट में जानवर अधिक और लागू (जो कि कई एक पुरुषों का शिकार कर चुके थे) होने के कारण उसको चैन न मिली, आखिरकार परिश्रम अधिक होने की वजह से वह थक गया और पुरुषार्थ करने से भी रह गया। तब लागू जानवर उसको निगल गये। अब यदि वह नाव में जाता, तो हथियार-बन्द मल्लाह लोग बन्दूक़ के जरिये से जानवरों को दूर ही रखते और वह पुरुष पार हो जाता। ऐसे ही, आसानी उस पुरुष को होती है जोकि बन्धनों से अलग रहकर सत्संग के सहारे सुरक्षित रहकर पार होना चाहता है। और कहते भी हैं, कि विषयों को भोगने से उनकी इच्छा अधिक ही होती है, जैसे कि अग्नि में घी डालने से अग्नि तेज़ ही होती है—हाँ, जहाँ विषयों को विचारयुक्त, सत्संग के सहारे रहते हुये, भोगा जाता है, और

फिर छोड़ने का पुरुषार्थ किया जाता है, वहाँ तो सफलता होती है अर्थात् वासना छूटती है; परन्तु यह बात भी बहुत कठिन है। इसके अतिरिक्त स्त्री अकेली कभी नहीं आती, जब बाल-बच्चे हो जाते हैं, तब पूरा झगड़ा खड़ा होता है, और उनमें रहकर, दुःख भोगने पर यदि उनको निराधार छोड़ दिया जाये तो ठीक नहीं मालूम होता। जैसा कि धर्म-शास्त्र कहता है, कि लड़का के लड़का होने पर विरक्त पुरुष घर छोड़ सकता है, अर्थात् लड़का कमा खाने लायक़ होने पर वह त्याग कर सकता है। अब आज-कल अव्वल तो उमर ही थोड़ी है, दूसरे शादी होने पर मालूम नहीं कि कितने साल पीछे पुत्र हो। यदि पुत्री होती रहीं, तब भी घाटा ही रहा, और पुत्र हो भी गया तो कम से कम २५ वर्ष उसके बाद ठहरना होगा। अब यदि इस बीच में चल बसे, तो जै हरी! और यदि बच गये, तो कुछ तो बुढ़ापे की वजह से, और कुछ गृहस्थ की फ़िकरों से शरीर ही इतना शिथिल हो जाता है कि मोक्ष के लिये उचित पुरुषार्थ होना कठिन हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं, कि भँवर में पड़कर उससे साफ़ निकल आना बहादुरी की बात है, परन्तु dangerous (ख़तरनाक) बहुत है। दूसरे काम-शक्ति का जोर कुछ समय से शुरू होकर कुछ समय तक ही रहता है, फिर अवस्था पाकर आप ही शिथिल हो जाता है। इसलिये थोड़े काल के सुख के लिये महा दुःख-दायी जाल में बहुत सोच-समझ कर पड़ना चाहिये। ना मालूम जाल में पड़कर फिर निकलना हो वा न हो। जब तक जाल से अलग हैं, तब तक इच्छा-चारी विचर सकते हैं, फिर यह बात नहीं रहेगी। और पूर्व जन्मों के संस्कार तो कर्म्मों के अनुसार मौक़ा पाकर उदय होंगे ही। परन्तु धीर पुरुष का काम है, कि विचार के सहारे उनका मुक़ाबला करता रहे और उनका ग़ुलाम

कभी न बने। यदि इत्तिफ़ाक से कभी दब जाये, तो धैर्य धारकर फिर उठे और फिर लड़े। ऐसा करते रहने से स्वयं शक्ति इतनी बढ़ जाती है, कि पुरुष उनको दबा लेता है और स्वराज्य प्राप्त कर लेता है। यही Battle of life (जीवन की लड़ाई) है। इसलिये कहा है कि, "Yield not to temptations, for yielding is sin. Each victory will help you some other to win" (प्रलोभन में न फँसो, फँसावट पाप है, विजय पा लेने से दूसरे प्रलोभनों को जीतने में सहायता मिलती है)। विषय बहुत लम्बा है। संक्षेप से आपके सामने रक्खा गया है, आप खूब विचार कर लें। यदि आपका मन शादी करने को बहुत चाहता है, तो इरादा पक्का करने के पेश्तर यदि आप उचित समझें तो दो-चार रोज़ के लिये, दर्शन अवश्य दें, फिर जैसी मौज हो, वैसी करें—फ़िलहाल आप इतना तो करें कि आपको नेत्र के रूप, और जिह्वा के स्वाद, और त्वचा के स्पर्श की परवाह न रहे, अर्थात् किसी विशेष रूप में, वा स्वाद में, या स्पर्श में आसक्ति न रहे, फिर देखिये क्या नतीजा निकलता है। पत्र बैरँग भेजता हूँ; क्योंकि इस वक्त टिकट नहीं है, कृपा करके क्षमा करना।

४—पत्र

कर्म के विषय में शास्त्र ही प्रमाण हैं। कर्म फ़िलास्फ़ी का सार। संसार सुख-दुख विचार। संसार दुःखमय होने का आशय। गृहस्थ और उदासीनता

ॐ २६—१०—१६१३
मौन्ट आबू

श्रीमान् धर्म मूर्ति संतसेवी आत्म हितकारी भक्त............

को बहुत बहुत प्रणाम पहुँचे। पत्र आपका प्राप्त हुआ, पढ़कर बड़ा आनंद हुआ। आपके धैर्य की जितनी स्तुति की जाये थोड़ी है, परमात्मा आपको सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के लिये बल दें। (१) कर्म के विषय में ठीक ठीक निर्णय करना बहुत कठिन है। जिस बात का तजुर्बा जीतेजी न हो, मरने के पीछे होना हो, उसको कोई पुरुष निश्चय रूप से कैसे कह सकता है। इसीलिये आचार्य लोगों ने इस विषय में शास्त्र ही को प्रमाण माना है। यदि वेद कहता है कि अमुक कर्म ठीक है, तो ठीक है और यदि ठीक नहीं है, तो नहीं है। न्याय-अनुसार न कोई किसी को सुख दे सकता है न दुःख, परन्तु फिर भी कहा जाता है कि यदि कोई पुरुष किसी को सुख वा दुःख देने की नियत से कर्म करता है, तो उसको (कर्त्ता को) उसका फल अवश्य भोगना पड़ेगा, चाहे उसके कर्म से दूसरे को सुख वा दुःख पहुँचे वा न पहुँचे। इसलिये विचारशील पुरुष वेद पर विश्वास करके अपने कर्म को बहुत सोच-समझ कर करते हैं। इतना ही कर्म फ़िलासफ़ी का सार है। इसमें बहुत सी बारीकियाँ निकलती हैं, जिनका जवाब परस्पर वार्त्तालाप से ही ठीक हो सकता है। (२) हमारी दृष्टि से संसार न दुःख रूप है, न सुख रूप है। बहुत कुछ सुख वा दुःख केवल मानसिक है, अर्थात् कल्पित है, यानि धोका है। जो शारीरिक दुःख हैं, वह भी बहुत कुछ अभ्यास पर निर्भर है। जिस क़दर सहन-शक्ति ज्यादह है, उसी क़दर शारीरिक दुःख भी कम मालूम होता है, परन्तु यह कहना कि शारीरिक दुःख बिलकुल नहीं है, अपने

अनुभव से बाहिर है। शारीरिक सुख भी हैं, परन्तु बहुत थोड़ी देर रहने वाले हैं, यानि Transitary or passing (क्षणिक) हैं—दुःख अधिक देर तक ठैरने वाला अनुभव में आता है। विषयिक सुख बहुत क्षणिक हैं। अलबत्ता योग-अभ्यास से जो शारीरिक सुख होता है, वह देर तक रहने वाला है। परन्तु यह सब सांसारिक या प्राकृतिक सुख के अन्तर्गत हैं। और विचित्रता यह है कि, इस सुख के लिये मनुष्य अनेक प्रकार के कर्म करता है और जब ग़लती हो जाती है, तब दुःख अधिक उठाना पड़ता है। यह जो कहते हैं, कि संसार दुःखमय है, इसका आशय हम यही समझते हैं, कि शारीरिक दुःख, सुख के मुक़ाबले में बहुत हैं। जैसे कोई पदार्थ अति गरिष्ट होने पर यदि स्वाद के सुख की वजह से अधिक खा लिये जायें, तो वह सुख केवल तभी तक होता है, जब तक कि वह पदार्थ जिह्वा के नीचे नहीं चला गया, और यह समय आप जानते हैं कि बहुत थोड़ा होता है। परन्तु, यदि उससे पेट में दर्द हो गया, तो वह शूल बहुत देर तक रहती है। दूसरे, मानसिक सुख भी थोड़ी देर का है। और उसकी पूर्त्ति के लिये बहुत दुःख उठाना पड़ता है। और यदि ग़लती हो गई, तो शारीरिक दुःख भी हो जाता है। जैसे कोई असाध्य रोग हो गया, तब जन्म भर तक वह दुःख देता रहता है। सांसारिक सुख वा दुःख, कर्म ही का फल कहा जाता है। इसलिये कर्म बहुत सोच-समझकर करना चाहिये। स्त्री का ग्रहण करना, यह एक बड़ा भारी कर्म है, फिर इस कर्म के करने पर, कर्त्ता के ऊपर वेद जो जो जवाबदेही बतलाता है, वह अवश्य पूरी करना चाहिये; यदि अभिमान से कोई शख़्स पूरी न करे, तो वह बच नहीं सकता। ईश्वरीय नियम बड़े जबरदस्त हैं, वे मनुष्य को फल भोगने के लिये मजबूर कर देते हैं।

(३) अब रही बात beauty (सुन्दरता) और indifference (बेपरवाही) की, सो जैसा आपसे हो सके अपनी बुद्धि अनुसार करते जाइये। जब सत्संग का मौक़ा मिलेगा और आपको तजुर्बा होगा तब, beauty (सुन्दरता) का भी हाल मालूम होगा कि beauty (सुन्दरता) दर असल ऐसे ही है जैसे कि प्रायः लोग समझ रहे हैं, या बात है कुछ और, और मान कुछ और रहे हैं। अभी आपकी अवस्था और है, रहन-सहन का ढंग भी और है। इस लिये इस हालत में जो कुछ आप कह रहे हैं, इस वक़्त के लिये ठीक है। indifference (बेपरवाही) के साथ यदि आप संसारी व्यवहारों को करते रहें, तो बहुत उत्तम है, और यदि आप जन्म भर तक गृहस्थ-आश्रम में रहते हुए यथोचित indifference (बेपरवाही) के साथ व्यवहार करते रहे, तो हम आप को शूरवीर कहेंगे। घर को छोड़ देना बुज़दिलों का काम है; परन्तु राजर्षि जनकजी की तरह शूरवीर कोई विरला ही होता है। इसलिये जिनमें इतनी हिम्मत नहीं है वह मजबूरन घर को छोड़ कर ही, दुनियावी झगड़ों से अलग होकर ही, अपने कर्त्तव्य को पूरा करते हैं। हम इसी क्लास में हैं।

९—पत्र

आसनों का अभ्यास। शारीरिक स्वास्थ्य। विघ्नों के दूर करने के लिये ईश्वर से प्रार्थना।

❀ ॐ ❀ २७—२—१९१४

अजमेर

श्रीमान्‌जी प्रणाम। कृपा पत्र आपका आया, हालात मालूम हुए। पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। जवाब में अरज़ है कि:—

(१) जो-जो आसन जैसे हों करते जायें, धीरे-धीरे आप ही ठीक हो जायेंगे। (२) आसन अभी जल्द दृढ़ नहीं होगा। आप पहले इस बात की कोशिश करें कि आपका शरीर बिलकुल ठीक हो जाये, क़ब्ज वग़ैरा की शिकायत जाती रहे। इसके लिये आप खाने-पीने की इहतियात के अलावह नियम से हर एक काम को ठीक-ठीक वक़्त पर करने की कोशिश ज़रूर करें, और सुबह शाम कुछ चहल क़दमी करते रहें। (३) दीगर बातें जो आप कर रहे हैं वह क़ाबलेतारीफ़ के हैं और उन पर धैर्य्य के साथ लगातार हर वक़्त कोशिश जारी रहे। (४) विघ्नों के दूर करने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करना, उसकी ड्योढ़ी पर बैठना चाहिये, क्योंकि कहते हैं किः—

"द्वार धनी के परि रहे, धक्का धनी का खाय।
कबहूँ धनी निवाज़ हों, जो दर छाड़ न जाय॥"

६—पत्र

काम क्रोधादि वेगों के जीतने के उपाय

ॐ १३—३—१९१४
अजमेर

श्रीमान्‌जी प्रणाम। जो-जो बातें हों उनको धैर्य्य के साथ देखते जायें, और तारीख़वार नोट करते जायें। काम-क्रोध, लोभ-मोह वग़ैरा के वेग उदय होंगे, दब जाँयेगे, फिर उदय होंगे, फिर दबेंगे। आपका काम है, विचार पर खड़े रहने का। जब मोह का हमला अधिक हो, तब मन से उसके दुःखरूपी परिणाम पर ख़ूब ग़ौर करें, और वैराग्य के शब्दों का पाठ और विचार करें। बड़े-बड़े लोग जिन्होंने संसार को तुच्छ

समझा और जो उसकी तरफ़ से बेपरवाह हो गये हैं, उन पर दृष्टि दें। ऐसा लगातार अभ्यास जारी रखने से उन वेगों का जोर आप ही शिथिल हो जायगा; परन्तु यह काम जल्दी का नहीं है; बड़े धैर्य्य का है। राजों को जीतना आसान है, परन्तु इन वेगों का जीतना बहुत कठिन है। इसलिये बार-बार परमात्मा से मदद के लिये प्रार्थना करना चाहिये। नित्य-प्रति उसकी शरण में जाना चाहिये, मदद अवश्य मिलेगी "Knock at the door and it shall be opened unto thee" (दरवाज़ा खट-खटाते जाओ, कभी न कभी जरूर खोला जायगा), मुश्कले नेस्त कि आसां न शवद। मर्द बायद कि हरासां न शवद॥

७—पत्र

समय का महत्व

ॐ १६१४
बरसोड़ा

नोट—पत्र का पहला भाग फटा हुआ है—

बहुत योग्य पुरुष प्रतीत होते हैं और अभ्यास का शौक रखते हैं। श्रद्धालु बहुत हैं इसलिये हम भी कुछ काल तक यहाँ पर ही ठैरेंगे—पं०........जी भी यहाँ आने को कहते थे। आशा है, आप अपने जीवन को उन्नति के मार्ग पर ही लिये जाते होंगे, क्योंकि आप जैसा बुद्धिमान मनुष्य कभी समय को नष्ट नहीं करेगा। जो समय गुजर गया फिर हाथ नहीं आ सकता। जब मौका मिलेगा, तब आपकी इच्छा अनुसार मैं भी आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा। आपको चाहिये कि अपने जीवन को दूसरों के लिये आदर्श बना दें, तब तो आपकी बहादुरी है—

"बीती ताहि विसार दे, आगे की सुधि ले।"
"जो बन आवे सहज में, ताहि में चित्त दे॥"
अब लौं नशानी अब ना नशैहौं,

आपको अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आप स्वयं बुद्धिमान हैं।

८—पत्र

सच्चा क्षत्रियत्व क्या है?
भक्त के कष्ट की चिन्ता।

❀ ॐ ❀ १३—१०—१६१४
बरसोड़ा

श्रीमान धर्म-मूर्त्ति, संत सेवी आत्म हितकारी ‥को प्रणाम! कृपापत्र आया। यह जानकर कि आप तथा‥‥वग़ैरा, धार्मिक तथा आत्मिक उन्नति के मार्ग पर कटिबद्ध होकर चल रहे हैं, चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। परमात्मा आपको सत्य पर चलने और असत्य मार्ग से बचने के लिये बल दें। क्षत्रियत्व यही है कि हमेशा साथ रहने वाले शत्रुओं को मारना चाहिये। तभी मनुष्य को शान्ति प्राप्त हो सकती है। बाहिर के विघ्न आपही हट जाते हैं; या तो जीते जी, या मरने के पीछे; परन्तु अन्दर के विघ्न मरने पर भी साथ जाते हैं, और फिर वे ही बाहिर के विघ्नों को भी पैदा कर देते हैं। इसलिये यदि उनको जीत लिया, तो बाहिर के आप ही जीत गये—"हिम्मत न हारिये, बिसारिये न राम" "क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंक तेहि पामर जाना॥" क्षत्रिय का क्षत्रियत्व यही है कि जो शत्रु उसको सदैव

दुःख देते हैं, उनको जीते। यदि वह उनका ग़ुलाम बना रहा, तो उसको पामर और कायर कहना चाहिये। और आप क्षत्रिय-कुल में जन्म लिये हैं, इसलिये हमको आशा है कि आप बल-पूर्वक अपनी शूरवीरता का परिचय देंगे।.......लिखती हैं, कि कुछ माइयाँ यहाँ आना चाहती हैं। सो आप कृपा करके समझा दें कि यहाँ आने में उनको बड़ी दिक़्क़त होगी, क्योंकि यह स्थान स्टेशन से दूर है, और गाड़ियाँ भी उनको कई बार बदलना पड़ेगा। यदि उनका विचार द्वारका जाने का हो और साथ ही मिलने का हो, तो बात और है। नहीं तो केवल मिलने के लिये आना दिक़्क़त उठाना है, क्योंकि उनको दूसरे ही दिन लौट जाना पड़ेगा। अव्वल तो उनको यहाँ किसी की बोली समझ में नहीं आयेगी, दूसरे वे मेरे पास नहीं ठहर सकेंगी क्योंकि मेरे पास अभ्यासी और सत्संगी लोग रहते हैं, उनका हर्ज होगा। पं०..........जी अजमेर के भी एक हफ़्ते में आने वाले हैं, और एक ब्रह्मचारी—

९—पत्र

विवाह केवल सन्तानोत्पत्ति के निमित्त होता है—विघ्नों से परीक्षा होती है, उत्तीर्ण होने पर बल बढ़ता है—काम क्रोधादि दमन। काम क्रोधादि वेगों को जीतने के उपाय—वेगों को, उदय होनेपर विचार से जीतना—वेगको

उठते ही, विचार से एक दम रोको—शक्तिको विचार, पढ़ाई और धर्म कार्य्य में लगादो—

* ॐ *   २५—२—१६१५

श्रीमानजी प्रणाम-वाकेई, काम आपने बड़ी शूरवीरता का किया है। हर एक अपना २ मतलब सोचता है, इसी तरह आपकी स्त्री भी अपनी ग़रज़ आपसे ज़ाहर करती है। धार्मिक पुरुषों की शादी संतान के लिये होती है, ना कि विषय के लिये। इस लिये, यदि आप की सन्तान हो चुकी है, तो शास्त्र की मन्शा पूरी हो गई। और अगर आगे आपको सन्तान की इच्छा नहीं है, तो आप ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण कर सकते हैं, और इसीसे आपका कल्याण है। आपकी स्त्री मरने के पीछे आपके साथ नहीं जावेगी। मगर धर्म जरूर संग जावेगा। और यह याद रखिये कि जब आप किसी बात के करने के लिये पक्का इरादा कर लेंगे, तब आपको सफलता जरूर होगी, मगर रास्ते में विघ्न भी होते हैं, उनसे घबराना नहीं चाहिये। विघ्नों से मनुष्य का इम्तिहान हुआ करता है। यदि उनमें फ़ेल न हुआ, पास होकर निकल गया, तो पीछे आनंद ही आनंद है। आपको स्त्री का जो कुछ कथन है, या जो कुछ उसका रोना पीटना है, यह सब आपके रास्ते में विघ्न हैं। मगर इससे आपके इरादे की अजमाईश हो जायेगी, कि कितना पक्का है। इस तरह सबको पहले भी होता आया है। और बेड़ा उन्हीं का पार हुआ है जो इनसे अर्थात् विघ्नों से घबराया नहीं। ब्रह्मचर्य्य रखने से कभी किसी को बीमारी नहीं हो सकती, बल्कि उसको न रखने से शरीर को हानि होती है। इतना जरूरी है, कि जो लोग इस व्रतपर चलना

चाहें, उनको अपने आहार और व्यवहार पर बहुत ख़याल रखना चाहिये। और जिन २ मौकों पर आप देखें कि क्रोध पैदा होता है, उनसे घबराये नहीं, बल्कि उनको देखकर क्रोधके रोकने के लिये पहले से तैयार हो जायें। और जिन बातों से गुस्सा पैदा होता है, उनकी तरफ़ से बेपरवाह रहें। अपनी तरफ़ से सन्सारी काम काज करने में कमी न रहे। फिर भी कोई बुरा कहे, तो परवाह न करें। आप जबकि सब चीज छोड़ने का विचार करते हैं, तब पहले पहल यह अभ्यास ज़रूर होना चाहिए, कि दूसरे का कहना अगर अपने लिये नुक़सान देह हो, तो परवाह न रहे, इससे आपका सामर्थ्य धीरे २ आपही बढ़ जायेगा-हैवानी जज़बात को ज़बरन और अन्धाधुन्ध बे अकली से रोकने की जिस क़दर कोशिश की जावे, उसी क़दर यह ज्यादह जोर से तंग करते हैं। इसलिये जहां तक हो सके अकल से काम लिया जाये। उनको शुरू से ही, यानि ख़याल के पैदा होते ही रोक लिया जावे। यह कभी न ख़याल करना चाहिये कि एक दफ़ा तो ख्वाहिश मजकूर की सैरी हासिल करलें, फिर आइंदा के लिये कतई तरक कर देंगे। ऐसा करने से एक दफ़ा नहीं बल्कि कई दफ़ा इस ग़लती में मुबतला होना पड़ेगा, और फिर भी रुकना मुश्किल हो जायेगा, और रोकनेवाली ताकत ईरादा घटती जायेगी। सबसे उमदह असूल यह है कि सख़्त दिल होकर मर्दाना वार पहली मरतबा ही ख्वाहिश उठने पर उसको रोक लिया जावे, और दबा दिया जावे। और इस ख़तरनाक बरबाद करनेवाले नताइज को दिलमें विचार करके अपनी पूरी वा सारी ताकत इरादा के ज़रिये इस पर जोर शोर से हमला करके इसको फ़तह कर लिया जावे। जिसका नतीजा यह होगा कि आयंदा के लिये हौसला वा ताकत ईरादा में और भी मजबूती बढ़ेगी। और तमाम नफ़सानी शहवत

और हैवानी जजबात वग़ैरा को भड़काने वाले ख्याल व असबाब से कतई अलहदगी वा परहेज रक्खा जाये। पहले पहल दिलमें से ही इस ख्याल की जड़ काट दी जानी चाहिए। और इस जड़ में पानी देनेवाले असबाब से कतई जुदा रक्खा जाना चाहिए। बहुत इहतियात वा बाक़ायदगी के साथ दिमाग़ी मेहनत करने से दिली ख्यालात का रुख़ अदना हैवानी ख्वाहीशात वा जजबात की तरफ़ से हटाकर आला किसम की ज़हनी वा इख़लाकी क़वायद को मज़बूत वा क़व्वी करता है, जिससे फिर मज़कूरह बाला रद्दी और कमीना हालतों में मुबतला होने का मौक़ा कम मिलता है। इस ख्याल से बचने की ख़ातर बहुत इहतियात और तवज्जो के साथ अपने दिमाग़ी और ज़हनी कारोबार में ख़ास दिलचस्पी से मसरूफ़ रहना शुरू करें। सिवाय अकली और ज़हनी और इख़लाक़ी मश्क बढ़ने के कोई ताकत उनको इस अदना और कमीना हालत से निकाल नहीं सकती। सीधी सादी गिजा इसके लिये बहुत मुफ़ीद है, जैसे सब्ज़ी, तरकारी, थोड़ा सा दूध, घी, मक्खन और वह भी बहुत एतदाल की हद्तक, यानि जहाँ तक हो सके इस क़दर खाये कि जिससे आपका शिकम हमेशा हलका फुलका रहे। बहुत ठोंसकर मुतलक न खायें, मुख़तलफ़ इकसाम के और रंगा रंगी कई क़िसम के खानों से भी क़तई परहेज़गार रहें। चौबीस घंटों में सिरफ़ एक दफ़ा खाना चाहिए और वह भी बहुत ठोंसकर न हो।

१०—पत्र

भोजन का अभ्यास पर प्रभाव

ॐ ९—४—१९१५
हरिद्वार

श्रीमान् जी प्रणाम। कृपा-पत्र आपका आज प्राप्त हुआ। उत्तर में निवेदन है कि काम ठीक है। अभ्यासियों को विश्व-दर्शन होता है, आपको उदासीन वृत्ति के साथ द्रष्टा बने रहना चाहिये। वृन्दावन में जो पत्र आपका मिला था उससे मालूम होता था कि भोजन छोड़ देने से आपका शरीर कमजोर हो गया है। इसलिये शरीर को ठीक रखने के लिये लिखा था, परन्तु आपने शायद आशय को ठीक-ठीक नहीं समझा। खैर अब अच्छा किया जो भोजन शुरू कर दिया। भोजन ठीक न करने से, ख़ुश्की बढ़ जाने से, बवासीर आदि कोई न कोई बीमारी हो जाना सम्भव है। चलने-फिरने तथा अन्य परिश्रम से बचना चाहिये और अब गरमी अधिक होने से, अजमेर में अभ्यास अधिक करने से हानि पहुँचने की सम्भावना है। हाँ! किसी ठण्ढे स्थान में भोजन आदि का उत्तम प्रबन्ध करके विशेष अभ्यास कर सकते हैं, यदि अग्नि सेवन न करना पड़े। स्वामीजी का प्रणाम। शारीरिक कमज़ोरी दूर करने का यत्न करना चाहिये।

११—पत्र

शुद्ध अन्न की महिमा

ॐ १४—७—१९१५
उत्तर काशी

श्रीमती देवीजी, प्रणाम! हम बहुत आनन्द से हैं, यहाँ पर

खूब वर्षा हो रही है, गंगा जल बहुत ठण्ढा और मीठा है। पहाड़ी लोगों का अन्न इतना शुद्ध प्रतीत होता है कि उनके घरों से रूखे सूखे टुकड़े माँगकर खाने से जैसा चित्त प्रसन्न रहता है वैसा नीचे रईसों के घरों में स्वादिष्ट पदार्थ खाने से नहीं रहता। यहाँ पर कई एक विरक्त महात्मा रहते हैं, कभी-कभी कोई पढ़ी-लिखी माइयाँ भी यहाँ आ कर कुछ काल सत्संग और एकान्त सेवन करती हैं। अजमेर के वकील भी यहाँ आये हुये हैं। नीचे के कई अभ्यासियों की प्रेरणा है कि जाड़े में हम नीचे रहें ताकि वे भी फ़ायदा उठा सकें, क्योंकि रेल-द्वारा नीचे सुगमता से पास आ सकते हैं। तू कहती थी कि ······बहुत इच्छा करती है सो उनसे कह देना कि यदि उनको वैराग्य हो और सच्चे मन से भजन में लगना चाहें, तो कार्तिक में तीन महीने के लिये हमारे पास जहाँ हम ठहरें वहाँ आ जायें, फिर घर जाकर जैसा बतायें वैसा करते रहें। तू कहती थी, अब साधना में मुशकल पड़ेगी, सो हाल लिखना। हिम्मत न छोड़ना, धैर्य्य से सब होता है। हम कुंआर (असोज) में नीचे उतरेंगे। हरिद्वार में तो नहीं ठहरेंगे; परन्तु स्थान का पता······जी को लिख देंगे, और कौन-कौन आने की इच्छा रखते हैं।······जी आदि सबको प्रणाम—
पता—सियाराम, मारफ़त पोस्ट मास्टर, उत्तर काशी, रियासत टिहरी, गढ़वाल—देहरादून से यहाँ चार व पाँच दिन में आते हैं, गंगोत्री यहाँ से तीन दिन में जाते हैं।

१२—पत्र

व्यवहार में साधन

* ॐ * ३—८—१९१५
उत्तरकाशी

श्रीमान ब्रह्मचारीजी महाराज। पत्र आपका कल शाम को प्राप्त हुआ। उत्तर में निवेदन है कि मालूम होता है कि रास्ते में चलने आदि से ख़ुश्की अधिक हो गई, इससे पित्त बढ़ गया होगा, और इसीसे दस्तों की शिकायत हो गई हो गई, अभी अभ्यास में बल न दें, नहीं तो हानि पहुँचेगी, जाड़े में बल दे लीजियेगा, अभी व्यवहार में वृत्ति को ख़ूब पकाइये।

१३—पत्र

नम्रता—शुद्ध अन्न—नामकी इच्छा तुच्छ है

* ॐ * २५—२—१९१५
देहरादून, असोज

श्रीमती देवीजी, प्रणाम। अब हम उत्तरकाशी से चले आये हैं, और रास्ते में हैं। हमारे साथ एक ब्रह्मचारी भी आये हैं, जो कि पांच वर्ष से काशी, अयोध्या, हरिद्वार, ऋषिकेश, बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री की तरफ़ योगियों की तलाश में फिरते रहे हैं, परन्तु अभी तक उनको कोई ऐसे महात्मा नहीं मिले जिन पर उनकी पूरी श्रद्धा होती, इसलिये अब वे हमारे साथ देहरादून आये हैं और वहीं पर वे योग-अभ्यास में लगेंगे, पीछे से कुछ दिन में उत्तर काशी से और साधु लोग भी योग अभ्यास के लिये आनेको कहते थे। कुवांर (असोज) में एक पुरुष पंजाब से आयेंगे और कुछ देहरादून ही के होंगे। इसलिये हम समझते हैं कि अबके जाड़े में उन्हीं महात्माओं की सेवा करें ? आगे जैसी ईश्वर की मरजी होगी वैसा होगा। जिस दिन हम उत्तरकाशी से

चलने वाले थे उससे एक दिन पहले तेरी दूसरी चिट्ठी हमको मिल गई थी, पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। तू ने जो नाज धुनकर तैयार किया है, वह हम इन्हीं अभ्यासियों को खिलायेंगे। और हम भी खायेंगे। जो नाज कुवांर (असोज) में पकेगा उसकी जरूरत नहीं है, क्योंकि धुना हुआ जो नाज है वह उससे अधिक गुण-कारी है, इसलिये जितना तेरे से हो सके प्रसन्नता पूर्वक तैयार करके भेज दे, तेरी यह मेहनत बहुत फलदायक होगी। तेरी पहली चिट्ठी का जवाब हमने भेज दिया है, सो पहुँच गया होगा, उस पर पूरी तौर से चलना। जो तू धर्म पर चलेगी तब तेरा कल्याण होगा, और जो नाम को मरेगी तो कुछ नहीं बनेगा। नीच हृदय के लोग नाम को मरते हैं, परन्तु सज्जन लोग धर्म पर जान देते हैं। जब नाज भेजना, तब अपना हाल भी पंद्रह दिन पीछे से लिखना।

१४-पत्र

शरीर और अभ्यास-स्वपन क्या है।

* ॐ * २५—१०—१९१५

देहरादून

श्रीमान ब्रह्मचारीजी महाराज, प्रणाम। कृपा पत्र आपका प्राप्त हुआ, हाल जाना गया। भाई, शरीर की हालत को ठीक करने में पूरा ध्यान रक्खें। जो अवस्था आपने अभ्यास में प्राप्त की है वह कहीं जा नहीं सकती। शरीर ठीक होने पर, आप सुखपूर्वक अभ्यास में लगे रह सकते हैं, और अवस्था भी जल्द परिपक्व हो जायेगी। आपने जो अपने स्वपन का निर्णय पूछा है, वह प्राण का दबाव जान पड़ता है, तब मनीराम जाग्रत के अनुभव के

अनुसार कुछ न कुछ अनुमान कर लेता है। कभीकभी यह स्वप्नें बिलकुल सही उतरते हैं, कभी आशंक तौर पर सही होते हैं, कभी कुछ प्रयत्न से सिद्ध नहीं होता, शायद पूर्वही संस्कार हों। कृपया अपने हाल से सूचना देते रहें।

१५–पत्र

ॐ १४—२—१६१६
वृन्दावन

माननीय ब्रह्मचारीजी महाराज, प्रणाम। कृपापत्र प्राप्त हुआ, पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। अभी आप अधिक जोर न दें, शरीर की हालत देखकर कार्य्य करें। निश्चय नहीं है कि गरमी कहां व्यतीत होगी, कभी चक्रौते की तरफ़ व्यतीत करने का ख्याल आता है, परन्तु पता नहीं क्या हो।

१६–पत्र

शरीर, भोजन और भजन–वैराग्य की कमी के चिन्ह–सत्संग स्थान और अभ्यास।

ॐ ३०—३—१६१६
वृन्दावन

श्रीयुत् ब्रह्मचारी ·······जी महाराज को अनेकानेक दण्डवत प्रणाम पहुँचे। कृपा-पत्र आपका आया, वृत्त ज्ञात हुये। उत्तर में निवेदन है, कि जहाँ तक मेरा अनुभव है यह बात असम्भव है कि प्राण ब्रह्मांड जाये और खुश्की न हो, अलबत्ता

भोजन का उत्तम प्रवन्ध होने से और सरद स्थान में रहने से दिक़्क़त नहीं होती, और भजन होता जाता है। गरम देश में वैसे ही गरमी अधिक मालूम होती है, और फिर अभ्यासी के लिये तो विशेष रूप से। आप बादाम के साथ कुछ इलायची, सौंफ, कासनी, कबाब-चीनी डालकर पीसछान कर एक या दो दफ़े जिस समय अनुकूल समझें पी लिया करें, दूध की अपेक्षा यह ख़ुश्की को अधिक दूर करेगा। यदि भोजन बहुत कम करें, या बिलकुल न करें, जैसा आपका शरीर अनुकूल समझे, वैसा करें। यदि ऐसा ख़्याल न रक्खेंगे, तो सम्भव है कि आपको कोई बीमारी हो जाये, फिर रोगी रहने से और भी दुखी रहेंगे। (२) मन में अधिक संकल्पों का होना वैराग्य की कमी सिद्ध करता है। जिन बातों से चित्त उपराम होता है, उनका संकल्प नहीं करता। यदि कभी उनका ख़्याल आया भी, तो विचार दृष्टि से आता है, जो कि वैराग्य की पुष्टि करता है, और बन्धन का कारण नहीं होता। ऐसी अवस्था में अवश्य घण्टा दो घण्टा किसी योग्य पुरुष के पास बैठ लेना चाहिये और गीता या उपनिषदों का अर्थ सहित पाठ भी करना चाहिये। जब तक आपको आपकी तबीयत के मुआफ़िक़ पुरुष सत्संग के लिये नहीं मिलता, तब तक वहीं के लोगों के पास कुछ देर बैठ लिया कीजिये। और कुछ वार्त्तालाप किया, कुछ सुना। भ्रमण कुछ ज़्यादह कर लिया। (३) ऐसे पुरुष आपको बहुत कम मिलेंगे जिनका ख़्याल कथन और कर्म एक जैसा हो, इसलिये आपको गुण ले लेना चाहिये, उनके दूषणों की परवाह न कीजिये। यदि यह भी न सम्भव हो, तो जिस किसी को आप उचित समझें, उन्हींके पास समय व्यतीत करें, या उत्तरकाशी चले जायें, जैसा आपका चित्त गवाही दे सोई करें। (४) शास्त्री······जी

की भी चिट्ठियाँ आई हैं, उनका काम तो जोर पर है और भोजन का उत्तम प्रवन्ध होने करके, कुछ शारीरिक अवस्था भी ठीक होने करके ख़ुश्की की शिकायत नहीं हुई। अब गरमी अधिक होने से वह भी कहीं को शीघ्र जाने वाले हैं। (५) यहाँ पर एक साधु आये हुये हैं, वे भी नौजवान हैं, योग की तलाश में कई वर्ष से घूमते रहे; अजमेर से फिर यहाँ आये। ····· ने उनके लिये भी तीस रुपया भेज दिये हैं। महीना भर से वह भी भजन में लगे हैं। अब प्राण ब्रह्मांड में विशेष रूप से पहुँच जाता है। ख़ुश्की बहुत होती थी; परन्तु घी-दूध के अतिरिक्त बादाम का सेवन करने से शान्त रहती है, अब वे भी कहीं ठण्ढे स्थान को जायेंगे—

१७—पत्र

मानसिक दुःख शारीरिक दुःख से अधिक विघ्न कारक हैं—स्वतंत्र विचार और अनुभव पर खड़े होना चाहिये।

※ ॐ ※ २८—८—१६१६
श्रीनगर कश्मीर

मान्यवर ब्रह्मचारी······जी महाराज को सविनय प्रणाम पहुँचे। कृपा पत्र आपके प्राप्त हुये, वृत्त ज्ञात हुआ। आपके शारीरिक दुःख को पढ़कर शोक हुआ, ख़ैर इसकी मुरम्मत तो करनी ही पड़ेगी, और जो कुछ इसमें दुःख होंगे, वे भी सहारना ही पड़ेगा, चाहे रो के सहारे जायें चाहे विचार के साथ, यह मानसिक अवस्था के ऊपर निर्भर है। हमारा अनुभव है कि

शारीरिक दुःख आत्मिक उन्नति में इतना विघ्न नहीं डालता जितना कि मानसिक दुःख डालता है। शारीरिक दुःख जितना होता है उसमें मानसिक न शामिल होने पावे, फिर यदि विचार का सहारा रहे, तो वही दुःख उन्नति में सहायक बन जाता है। आप विद्वान् हैं, स्वयं जान सकते हैं। पारस भाग में भी लिखा है, कि महात्माओं को कोई न कोई दुःख लगा ही रहता है, इससे उनके धैर्य की परीक्षा होती रहती है, और सहन-शक्ति बढ़ती जाती है। मुझे पत्र लिखने में अब कुछ रुचि नहीं मालूम होती, इस वजह से उत्तर देने में देर हुई, जिसके लिये आप कृपा करके क्षमा करेंगे। आप शास्त्रों को पढ़े हुए हैं। महात्माओं का सत्संग भी किये हुए हैं, आपको क्या नहीं मालूम जो बतलाया जाये; परन्तु यदि फिर भी कर्त्तव्य विषय संदिग्ध है, तो आप अकेले बैठकर स्वतंत्रता से बिना किसी शास्त्र या पुरुष के वाक्यों के सहारे के केवल अपने ही अनुभव के बल से विचारिये कि आपको क्या करना चाहिये, और क्यों करना चाहिये, अर्थात् उससे आपका क्या लाभ होगा। आप समझ लीजिये कि यह दृश्यमान् जगत आपके सामने है, आप इसके साथ जिस रीति से लाभ उठा सकें उठाइये। जब तक आप निर्णय न कर सकें, तब तक यही प्रश्न आपके सामने रहना चाहिये। जब हल कर लें तब मेरे को भी इत्तिला दें। उस पर मैं अपनी भी सम्मति दे सकूंगा। जब परस्पर वार्त्तालाप का मौक़ा होगा, तब अधिक कह सकूंगा।

१८—पत्र

दुःख के सर्वथा नाश का उपाय—सांसारिक

तरक्की तथा आत्मिक उन्नति

ॐ २४—५—१९१७
ऋषिकेश

श्रीमानजी, प्रणाम। आप का कृपा पत्र प्राप्त हुआ, पढ़ कर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। उत्तर में निवेदन है, कि देश तथा सोसाइटी की सेवा करना उत्तम बात है। क्योंकि Charity begins at home (भलाई घर से ही शुरू होती है) और यह काम भी मनुष्य को ऊँचे ही को ले जाता है, यदि उसके साथ राग-द्वेष न हो। परन्तु वर्तमान काल के लोगों के प्रवाह में पड़कर राग-द्वेष से बचना बहुत कठिन है, जो बचता है वह बहुत ही शूरवीर है, परन्तु ऐसा कोई निराला ही पुरुष होगा। इसलिये जो विचारशील पुरुष हैं, वे पहले एक रास्ते को आजमा कर, दूसरे को, फिर उससे तीसरे, फिर चौथे रास्ते को ग्रहण करते हैं, कि जिससे दुःख के कारण का नाश हो जाये। वे इस बात की परवाह नहीं करते कि इतर लोग भी दुःख के कारण का नाश करते हैं वा नहीं; क्योंकि वे जानते हैं कि जो दवा का इस्तेमाल करता है वही दुःख से छूटता है, जो नहीं करता वह दुःख में पड़ा रहता है। इसलिये, यदि कोई पुरुष इतनी तीव्र इच्छा रखता है, कि वह शांति के शिखर पर चढ़े बिना दम नहीं मारेगा, तो समझना चाहिये कि वह पहले तथा कुछ इसी जन्म में देख चुका है, कि संसारी प्रवाह में चलने से सुख नहीं हो सकता। वह संसारी तरक्की जिसकी आशा संसारी लोग प्रति क्षण लगाये रहते हैं, कुछ सच्ची तरक्की नहीं समझता। जो लोग ऐसे हुये हैं, उन्होंने दुनयावी ऐश्वर्य को लात मारी है, और आत्मिक उन्नति ही में कल्याण देखा है, और फिर पीछे से

दूसरों को भी इसी सत्मार्ग का उपदेश किया है, जैसे बुद्धदेवजी भर्तृहरिजी, वग़ैरह। यदि आपकी शारीरिक अवस्था इतनी बलवान नहीं है कि ऐसा काम करते हुए, उनके संगदोष के असर से बचकर अपनी आत्मिक उन्नति के लिये समय निकाल सकें, जैसा कि आप लिख रहे हैं, तो पहले आपको केवल इतना ही व्यवहार में शामिल होना चाहिये, जिससे आपके इस उत्तम कार्य में विघ्न न हो। आपकी यदि रुचि हुई, तो फिर पीछे से भी वहाँ जा सकते हैं और सहायता दे सकते हैं। उस वक़्त शायद आप कुछ और ढंग से काम करें। ख़ैर, वह तो पीछे की बात है, इस वक़्त हम भी आपही की राय की पुष्टि करते हैं; क्योंकि आप अपनी हालत को दूसरे की अपेक्षा ज्यादह अच्छी तरह समझते हैं।

१६—पत्र

अभ्यासी का व्यवहार किस प्रकार रहना चाहिये।

ॐ ८—८—१६१७

ऋषिकेश

श्रीमानजी, प्रणाम! आपका पत्र प्राप्त हुआ, हाल जाना गया। यह जान कर चित्त खुश हुआ कि सत्संग से आपको लाभ हुआ, और अपने मन को आप पहले से अधिक बलवान और धैर्यवान पाते हैं; परन्तु यह जानकर कि आपको प्रकट हो जाने में भय बहुत है, संदेह भी होता है कि क्या बलवान और धीरजवान मन की पहचान आपने यही समझी हुई है।

ख़ैर जो कुछ हो, अपनी अवस्था को मनुष्य आपही ठीक समझ सकता है। हमारा मतलब यह नहीं है कि मनुष्य को ख़ामुख़ाँ को ढिंढोरा पीटना चाहिये, कि मैं अमुक कार्य करता हूँ। बल्कि मतलब यही है कि जो काम उसने अपने कल्याण के लिये निश्चित किया हुआ है उसको चुपचाप करता चला जाये। यद्यपि यह बात उसके व्यवहार से आप ही प्रकट होने लगेगी और ताड़ने वाले आप ही ताड़ जायेंगे और इस तरह ज़ाहिर भी हो जायेगी, परन्तु उसको इस प्रकटता का भय नहीं होना चाहिये। यदि प्रकट हो जाने पर कोई पूँछ बैठे, तो झूठ भी नहीं कहना चाहिये, निरभिमानता के साथ जवाब सच्चा ही देना चाहिये, details (बारीक़ी) में कहने की आवश्यकता नहीं है। यदि कोई पूंछे तो साफ़ नर्मी से कह दे कि आप इस विषय में अधिक press (ज़ोर) न करें, मैं विशेष कहना उचित नहीं समझता, मुझे क्षमा करें।

२०—पत्र

आत्मोपदेश का मूल्य नहीं है—ऋतु और भजन—युक्त आहार-व्यवहार अच्छा है—पुरुषार्थ का फल

* ॐ * अगस्त १९१७

ऋषिकेश

नोट—सफा १ से ४ तक फटे हुये हैं।

परन्तु पीछे जब दिमाग़ कमज़ोरी पर आया तब गिर गये, और फिर खूब ही फँसे। आबू में भी आपने प्रतिज्ञा की थी कि

आप कोशिश करेंगे। परन्तु आपने ठीक ढंग पर नहीं किया, या शायद आपको उन बातों की जांच ही न आई हो, इसीलिए आपको सफलता नहीं हुई। या आपने परवाह ही न की हो, क्योंकि उपदेश के लिए आपको कुछ फ़ीस तो देना ही नहीं पड़ती। यदि १००) रुपया कम से कम, एक उपदेश के लिए आपको देना पड़े तो शायद आप अधिक ध्यान दें। सो बात होना ग़ैर मुमकिन है। क्योंकि Paid up (पैसों से ख़रीदा हुआ) उपदेश नहीं हो सकता इसका मोल नहीं हो सकता। लाख रुपया देने पर भी उपदेश न मिलें, और बातों २ में मिल जाये। इसकी फ़ीस केवल जिज्ञासु का हृदय है, और कुछ नहीं है। अब मैं समझता हूँ कि शायद इस दफ़ा आप कुछ अधिक समझे होंगे, यानी मैं आपसे हल्फ़िया प्रतिज्ञा इस बात की चाहता हूँ, कि जैसा मैं कहूँ उसी रीति पर विषयों को भोगो। जिस बात के लिये चित्त चाहता है, उसको करो, जो २ रीति मैं बतलाऊं उन पर चलने के लिए तुम कसर मत रक्खो। प्रथम तुमको ठीक २ रीति की शायद जांच भी न आयेगी; परन्तु जब चलने लगोगे और पाठ सुनाओगे तब पता लग जाया करेगा, कि कहाँ तक जाँच आई है। फिर उसको सही किया जायेगा, फिर आगे इसी तरह रोज़ के करने और बातचीत से आपको रीतियों की जांच आ जायेगी। फिर एक या दो दफ़े ही में आपको अपने मन का पता लग जायेगा, कि विषयों से कुछ उपराम होता जाता है वा नहीं। भजन के लिये अधिक समय देने की आवश्यकता नहीं है। जितना आराम के साथ दे सकोगे उतने ही से काम निकाल लिया जायेगा। जल्दी उठने की आवश्यकता नहीं है। ख़ासकर आज कल तो भजन में ज़ोर देना ही नहीं चाहिए और रात को ख़ूब सोना चाहिए, क्योंकि आलस्य के दिन ही हैं। जाड़े में रात्री बड़ी होने के कारण आप ही सवेरे जाग

आ जाती है। परन्तु फिर भी जितनी सोने की इच्छा हो, उतना सोओ। रहन-सहन, सोना जागना, खाने-पीने का समय ऐसा होना चाहिये कि काम में हरज न हो। इसको हम नहीं छेड़ना चाहते। हमारा लक्ष्य वह है जिसको आप बहुत कठिन समझे हुये हैं, और है भी कठिन, परन्तु पुरुपार्थ का फल भी देखा जाता है। बाक़ायदा पुरुपार्थ करने से कुछ न कुछ सफलता अवश्य होती है, और कठिन बात भी आसान होने लग जाती है। इसलिये पुरुपार्थ से घबराना मरदों का काम नहीं है परन्तु पुरुपार्थ वुद्धि और विचार के साथ होना चाहिये, विचार बिना सत्संग के नहीं प्राप्त होता। ग्रन्थों में नहीं मिल सकता। अब हमारा विचार यहाँ से थोड़े दिन के लिए देहरादून जाने का है, क्योंकि अब यहां का जल-वायु गड़बड़ाने लग गया है। इसलिए आपकी हिम्मत पड़े तो प्रतिज्ञा पत्र को मारफ़त पोस्ट मास्टर... भेजें और यदि आप उस सांड़ की तरह दलदल ही में आनन्द समझते हैं, तो मुबारक है। हम इस विपय में अब कुछ नहीं कहेंगे। कम से कम उत्तर तो शीघ्र भेज देना, क्योंकि अन्य अभ्यासियों को मैंने जाड़े में रहने का स्थान अभी तक नहीं बतलाया।

२१–पत्र

धैर्यवान ही कल्याण पाता है।

ॐ २६—८—१६१७

देहरादून

श्रीमान जी, प्रणाम। आपका २६ अगस्त का कृपा पत्र प्राप्त हुआ, पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। धैर्यवान ही मंजिल पर पहुँचता है। अधैर्यवान और पुरुपार्थहीन के लिये असम्भव है।

इसलिये ईश्वर पर भरोसा रखते हुए कल्याण के मार्ग पर चलते रहने की कोशिश से हटना नहीं चाहिये। महाराज आप ही पार लगा देते हैं।

२२—पत्र

धैर्य

❀ ॐ ❀ ११—६—१६१७
देहरादून

श्रीमान जी, प्रणाम! आपका कृपा पत्र मिला, हाल जाना गया। निवेदन है, कि सब काम धीरज से होता है, इसलिये सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के लिये पुरुषार्थ में कमी नहीं करना चाहिये। जो अपने आश्रित हैं, उनका ख्याल अवश्य रखना चाहिये, उनकी आशीर्वाद से अपना कल्याण जल्द होता है। ईश्वर भी उस पर कृपा करते हैं। जो कुछ मौजूदह हालत में कर सकते हैं उसमें देरी नहीं करना चाहिये।

"काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होयगी, फिर करोगे कब"॥

२३—पत्र

नया मार्ग

❀ ॐ ❀ २६—१२—१७
लाहौर

श्रीमान् जी, प्रणाम। आपका कृपा-पत्र इस वक्त प्राप्त हुआ। हाल जाना गया।, ला०····· जी आ गये हैं····· भी आ

गये हैं। अब वे पिछले दस दिन के तजुर्बे से निर्णय कर चुके हैं, कि जिस मार्ग पर पहले चल रहे थे, उससे यह कहीं बढ़ कर है, और उनको लाभकारी प्रतीत हुआ है। इसलिये अब वे संशय-रहित हो कर ज़ोर के साथ चलना चाहते हैं। कल वे चले जायेंगे।

२४—पत्र

भोजन, व्यवहार और अभ्यास

ॐ ॐ ॐ २१—१—१८

लाहौर

श्रीमानजी, प्रणाम। आपका पत्र आज प्राप्त हुआ। अभी आप घर ही पर यथाशक्ति कोशिश करते जाइये। यदि मुमकिन हो, तो शाम का खाना बिलकुल तर्क कर दीजिये और शाम को भी समय अधिक दीजिये। और दूध की तादाद बढ़ा दीजिये, दूध पीते समय पंद्रह वा बीस बादाम और दस वा पंद्रह मुनक्के, खाकर ऊपर से घी तथा बादाम रोग़न डाला हुआ दूध पी लीजिये। और पंद्रह दिन पीछे अपनी हालत से सूचना दीजिये। उसके बाद जैसा उचित समझा जायेगा लिखा जायेगा; लक्षण जो आपने लिखे हैं, अच्छे हैं। लोगों से व्यवहारिक वार्त्तालाप ज़रूरत से अधिक न करें, और न बहुत मिलें-जुलें। जहाँ तक हो brain energy (दिमाग़ी ताक़त) को Conserve (संग्रह) रक्खें।

२५—पत्र

आचार्य्य से उपदेश प्राप्त करने के लिये

पत्र -व्यवहार नहीं; परन्तु सम्मुख स्थिति आवश्यक है

* ॐ *　　२८—१—१८

लाहौर

6 P. M. (छे बजे शाम)

श्रीमान मुख्य अधिष्ठाता जी महाराज को सविनय प्रणाम। आपका कृपापत्र इस वक्त प्राप्त हुआ, उत्तर में निवेदन है कि आपके पत्र से रोग का कुछ निश्चय नहीं होता और न यहां कोई डायरी या पाकिट बुक रहती है जिसमें जो पत्र आवें, उनका संक्षिप्त सारांश दर्ज कर लिया जावे ताकि आईंदा को उसे देखकर याद कर लिया जाये, कि अमुक पुरुष ने अमुक समय में अमुक बातें लिखी थीं और अपने में इतनी सामर्थ्य भी नहीं है कि दूर से बैठे हुये रोगी के रोग को पहचान जायें, फिर औषधि देना कैसे हो सकता है। पत्रों से भी पूरा २ भाव समझ में नहीं आता। इसलिये बात कभी उलट-पुलट समझ में आ जाती है। मैं समझता हूँ, यह आपके मन की ठठोलियाँ हैं, और वह इस टाल-मटूल से आपको धोखा दे रहा है। यदि आपमें अपने मानसिक रोग के दूर करने की तीव्र इच्छा होती, तो आप दर्शन जरूर देते। जैसे आपने जोरू (स्त्री) की तलाश में आकाश और पाताल एक कर दिया। अब कहिये कोई हाथ लगीं कि नहीं या निराश हो बैठे।

२६—पत्र

ब्रह्मचर्य्य के साधारण नियम

* ॐ * २—२—१८

लाहौर

श्रीमान ब्रह्मचारीजी महाराज को सविनय प्रणाम पहुंचे। आपका कृपा पत्र इस वक्त प्राप्त हुआ। हाल जाना गया। "मन मतंग मानत नहीं जब लग धक्का न खाय।" अच्छा हुआ जो भय से अब तक आप बचे रहे। अब यदि आप दृढ़ संकल्प करेंगे कि मैं इस झगड़े (विवाह) में कदापि नहीं पड़ूंगा, चाहे कितना ही कष्ट क्यों न सहारना पड़े, तो और दाँव-पेचों के साथ जो कि मिलने पर ही बतलाये जा सकते हैं, आशा की जाती है कि आप को ईश्वर-कृपा से जल्द सफलता हो जाये। फ़िलहाल आप मन को कुछ न कुछ शुग़ल दिये रक्खें, बे शुग़ल न रहने दें। यदि मुमकिन हो, तो अभ्यास गोरक्षासन में करें। कुछ मुग्दर वग़ैरा की कसरत भी शुरू कर दें। और यदि तजुर्बे से हानि न कारक न प्रतीत हो तो जारी रक्खें। सुबह वा शाम कुछ हवा खोरी का भी नियम रखें। यदि आपके कोई समय ऐसा ही प्रतीत हो कि मन को शुग़ल नहीं दे सकते, तो उस वक्त कुछ लिखा ही करें। घी-दूध का बहुत ज्यादह सेवन न करें। नौकर का काम है नौकरी बजाना, सो जैसे अपने से बनता है, वैसी नौकरी आपकी आज्ञा अनुसार बजाये जाते हैं। अब मालिक का काम मालिक जाने।

२७—पत्र

अभ्यास

ॐ　　६—२—१८
लाहौर

श्रीमान ब्रह्मचारीजी महाराज, प्रणाम। पिछली दफ़ा आपको यह सूचना देना मैं भूल गया था, कि जब कभी आप आयेंगे तो कुछ दिन ठहरना पड़ेगा; ताकि इलाज का असर देख लिया जाये। कितने दिन तक ठहरना होगा, यह नहीं निश्चय हो सकता। शायद महीना-दो महीना लग जायें। इसलिये सूचनार्थ निवेदन किया है। पता देने की नौकरी जो आपने हमारे ऊपर लगाई थी, वह जवाब-देही हम नहीं ले सकते, उसको हम "जिन ढूँढ़ा तिन पाया" के मिसले पर छोड़ देते हैं।

२८—पत्र

नागरिक और ग्रामीण व्यवहार का भेद—स्पष्ट व्यवहार अभीष्ट है—काम-ज्वर की औषधि विवाह नहीं है।

ॐ　　२०—२—१८
लाहौर

श्रीयुत ब्रह्मचारीजी को बहुत-बहुत प्रणाम पहुँचे। आपका कृपा पत्र प्राप्त हुआ, वृत्त जाना गया। आपने जो प्रथम तथा द्वितीय पत्र में लिखा था, कि आपने अपनी बीमारी की बाबत उत्तरकाशी में जिक्र किया था, और कश्मीर को भी लिखा था, सो सम्भव है, आपने सभ्यता से इशारतन जिक्र किया हो। परन्तु, क्योंकि अपनी जन्मभूमी ग्राम की है और रहना तथा

व्यवहार आदि ज्यादहतर ऐसेही पुरुषों के साथ रहा और रहता है, जिनके साथ बात-चीत स्पष्ट रीति से होती है, और जहाँ सभ्यता वा असभ्यता का ख्याल नहीं रहता, इसलिये कुछ आदत ऐसी हो गई है कि जब तक बात स्पष्ट शब्दों में नहीं कही जाय, अपनी समझ में कम आती है। हमको इस बात का पता सिर्फ पारसाल अप्रैल के महीने में लगा था, जबकि ब्रह्म-चारी ······ जी ने बतलाया था, कि आपने यही निर्णय किया है, कि आपको काम-ज्वर है, इसलिये आप विवाह पक्का करने के लिये ······ आने वाले थे, और वह कहते थे कि आपका यह भी ख्याल है कि हम लोगों को भी यही बीमारी होगी। इस वक्त, उनको हमने सिर्फ इतना तो कहा था कि जब आप ··· आयें तब वे आपसे प्रार्थना करें कि यदि आप उचित समझें तो ऋषिकेश में एक दिन के लिये हमको भी दर्शन दें। सो बात आप तक पहुँची हो या नहीं ? आप जानें। उनसे हमने यह भी कहा था, कि विवाह करने से काम-ज्वर शायद उतर भी जाय; परन्तु बीसों और ज्वर अवश्य चढ़ेंगे जिनसे छुटकारा जन्म-भर नहीं मिलेगा। और जितनी स्वतंत्रता अभी है वह सब छीनी जायेगी। मुझे मालूम होता है कि आपने गरम दवाइयाँ बहुत खाई हैं, क्योंकि आज-कल के वैद्य लोग भस्में बहुत देते हैं, जिनसे शरीर में गरमी बहुत बढ़ जाती है, और तरह-तरह की उपाधियाँ खड़ी हो जाती हैं। खैर, अब आगे के लिये आप सावधान रहें, जहाँ तक हो बहुत गरम औषधियों का सेवन न करें। और जोश में आकर कभी ऐसा कुपथ न कर बैठें, जिससे शरीर रोगी हो जाय। उसको नियम पर चलाइये और नियम का पूरा ख्याल रखिये। दलिया का सेवन भी अच्छा रहेगा। यदि टट्टी खुलकर न आती हो, तो आध सेर या तीन पाव पानी

जो साधारण गरम हो, वस्ती से चढ़ाकर टट्टी हो लिया करें। और हफ्ते या दस दिन में एक दफ़ा ढाई या तीन सेर पानी चढ़ा कर वस्ती कर लिया करें। ज्यादह पानी की वस्ती बहुत नहीं करना चाहिये। बादाम का सेवन यदि ज़रूरत न हो, तो बन्द रक्खें। यदि उचित समझें तो कभी-कभी हालात से सूचना देते रहें और ना उचित समझें तो आपकी मौज; परन्तु जब कभी लिखें, तो सभ्यता-असभ्यता का ख्याल छोड़कर, जो कुछ लिखना हो स्पष्ट शब्दों में लिखें। वह स्वर्ण किस काम का जिसमें कान फटें। ऐसी सभ्यता भी किस काम की जिसमें बात न बने। "दिले नादान को हम समझाये जायेंगे। चरखे-जिगर में दाग़ दिखाये जायेंगे।"

२९—पत्र

योग अभ्यास और स्त्री-संग (दो विरोधी बातें हैं)

ॐ २५—३—१८
लाहौर

श्रीमान् जी, प्रणाम। पत्र आपके आये, हाल जाना गया। थोड़े दिन पीछे पहाड़ जाने का विचार है। इरादा अभी कुछ ऐसा ही है कि आपको सितम्बर के पीछे बुलायें, परन्तु अभी यह अवश्य देखना चाहते हैं कि आप स्त्री-संग से कहाँ तक बच सकते हैं। आप तो कहते थे कि ना मालूम मृत्यु कब आ जाये, क्या अब इस खयाल को भूल गये जो स्त्री-संग कर बैठते हो। अभ्यासी के लिये स्त्री विष है, यदि तुम विष से परहेज नहीं

रख सकते, तो समझ लो कि तुमको योग-सिद्धि होना असम्भव है। स्त्री तुम्हारी कमज़ोरी की वजह से और भी मज़ाक करती होगी, क्योंकि उधर तो अभ्यास का दावा करते हैं और इधर स्त्री का संग भी करते हैं, इससे वह और भी दिलेर हो गई होगी। काम तो तुम शूर-वीरता का करना चाहते हो, और आचार गीदड़ों का सा रखते हो, सँभल जाओ, नहीं तो मारे जाओगे और जन्म को यूं ही खो बैठोगे—

३०—पत्र

धैर्य्य

❀ ॐ ❀ ७—४—१८
वृन्दावन

श्रीमान्‌जी, प्रणाम। पत्र आपका आया, हाल जाना गया— महात्मा तुलसीदासजी कहते हैं:—

'धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपत-काल परखिये चारी॥'

यानी, धीरज धर्म मित्र और स्त्री इनकी आज़माइश जब कोई आपत्ति आती है, तभी होती है, उस वक्त, मनुष्य को पता लग जाता है कि कहाँ तक इसमें धैर्य्य है, और कितना उसमें धार्मिक भाव, और वैराग्य और त्याग है, और इसका मित्र और स्त्री का व्यवहार कैसा है, अगर ऐसे मौक़े में इसने धैर्य्य को क़ायम रक्खा, घबराहट में नहीं हुवा, अगर इत्तिफ़ाक़िया घबराहट आ भी गई, तो विचार से हटा दिया, और मोह के फंदे में नहीं आया, बल्कि जैसा साधारण हालत में रहता था और काम करता था इसी तरह मुसाफ़िर दृष्टि रखते हुये, अपना फ़र्ज़ समझते हुये, आपत्ति,

आफ़त के समय में भी काम करता है, और चेहरे पर मलाल नहीं आने देता, तो समझना चाहिए कि इसका विचार दृढ़ है, और ख़्याल अमल में लाया है। क्योंकि होना तो वही है जैसा जिसकी क़िस्मत में लिखा है। अपनी तरफ़ से कोशिश करना ही है, और बस। मगर पता नहीं कि इस कोशिश का क्या अंजाम, मुवाफ़िक हो या मुख़ालिफ़, यह बात दूसरे के हाथ में है। इसलिये अंजाम की चिन्ता नहीं करना चाहिये। जैसा कि तुलसीदासजी कहते हैं—

'होई वही जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावे शाखा ॥'

"आराम से वे हैं जो हर हाल में खुश हैं।"

३१—पत्र

नौकरी छोड़ने पर विचार

ॐ १७—५—१८

कनखल

श्रीमान्‌जी प्रणाम, कृपापत्र आपका आया, हाल जाना गया। नौकरी छोड़ देना हमारी राय में ठीक नहीं है। जरूरत से ज्यादा यदि आपके पास हो, तो उसको जमा करते जाइये, पीछे वह आपको आराम देगा, क्योंकि उसकी जरूरत, तो आपको रहे ही गी। अभी घण्टा या दो घण्टा, जो कुछ समय आप अभ्यास के लिए दे सकेंगे, वही बहुत होगा। चार वा पाँच माह पीछे मैं आपको विशेष परिश्रम करने के लिए बतलाऊँगा, और उस समय शायद आपको मेरे से मिलना पड़ेगा। इस बीच में व्यवहार करते हुये समदृष्टि को पक्का करते जाइये।

३२—पत्र
धैर्य्य

ॐ २८—६—१८
कटरा

श्रीमान्‌जी, प्रणाम—आपका कृपा पत्र प्राप्त हुआ। हाल जाना गया। निवेदन है कि यह ज़माना सख़्त लड़ाई का है, survival of the fittest (जो बलवान है वही बचता है) के असूल के मुताबिक़, जो धैर्य्य क़ायम रखते हुये युद्ध में डटे रहेंगे, वह ही सफलता को प्राप्त करेंगे। "हारिये न हिम्मत बिसारिये न राम।" "मुश्कले नेस्त कि आसान न शवद।" यह बात आपको मालूम है, कि जो सबक़ याद किया हुआ होता है, अगर वह भूल जाय, तो दोबारा याद करने से आसानी से बेहतर याद हो जाता है, इसी असूल पर आप निश्चय रखिये, कि जिस बात में आप पहले पुरुपार्थ करके कुछ तरक़्क़ी कर चुके हैं, उसमें फिर से ईश्वर के भरोसे पर कोशिश करने से आगे भी बढ़ना है, घटना नहीं होगा। आपके धैर्य्य की हम तारीफ़ करते हैं, जो मौजूदा शरीर का भोग है वह पिछले कर्मों का फल है, वह भी धैर्य्य और बुद्धिमानी से भोगते जाना चाहिए ताकि आइंदा को यह भी झगड़ा बाक़ी न रहे कभी-कभी अपने हालात से आगाह करते रहा करें—आपके धार्मिक जीवन से कितनों को लाभ पहुँचता है, कितनों हिम्मत हारे—बूढ़ों को हिम्मत आ जाती है।

३३—पत्र

विषय भोग अनन्त हैं—जीवन थोड़ा है—इसको यों ही नष्ट नहीं करना चाहिये। स्त्री-संग के सुख की मलीनता।

॥ ॐ ॥ ३—७—१८
कटरा

श्रीमानजी, प्रणाम—आपका कृपा पत्र प्राप्त हुआ, हाल जाना गया। आपका लिखना सत्य है, कि दुनियां में काम कभी खतम नहीं होने वाले हैं, इसलिए इनको परवाह न करना ही श्रेष्ठ है। इसी तरह यह भी मद्देनजर रखना जरूरी है, कि दुनियां के विषय भोग भी कभी खतम नहीं होंगे, बल्कि भोगने से उनकी वासना दिन-दिन अधिक बढ़ती जाती है, और यदि ऐसी वासनाओं के होते हुए शरीर छूट गया तो अगले जन्म में यह फिर इस तरह चक्कर में डालेंगे; और जिन संसारी दुःखों का सामना अभी पड़ रहा है, यही फिर आयेंगे, और फिर नाच नचायेंगे। इसलिये मुमुक्षु को चाहिए कि इनकी तरफ से एक दम से मुंह मोड़ कर मोक्ष-मार्ग पर चले, नहीं तो इस Tug of war (रस्सा कशी) में जीवन नष्ट हो जाता है। सोचने को बात है कि पशु भोग करने के प्रथम मादी की योनी को सूंघता है, तब यदि उचित समझता है तो विषय भोग करता है, नहीं तो छोड़ देता है, परन्तु मनुष्य अपने आपको बड़ा बुद्धिमान समझता हुआ बिना देखे-भाले भोग कर बैठता है। यदि वह भोग के प्रथम स्त्री की योनी को सब इन्द्रियों द्वारा सूंघ तथा देख-भाल ले, तो उसको ज्ञान हो जाय कि वह कैसे घृणित पदार्थ को

ग्रहण कर रहा है और इसलिये उसकी वुद्धि कितनी मलीन है, जो उसको नाभदान नरककुण्ड, दुर्गन्धि के स्थान में गोता लगाने को प्रेरणा करती है। धिक्कार है इस वुद्धि को जो पशुओं की वुद्धि से भी गिरो हुई है। ऐसो अंधाधुन्ध कार्रवाई करने वाले पुरुप का कल्यान होना कैसे संभव है। आप नित्य प्रति सुवह उठकर जवकि आपकी स्त्री ने हाथ-मुँह न धोया हो, उसके मुँह वग़ल तथा योनी सूँघिये, तव आपको असलीयत का पता लग जायेगा—स्त्री का संग विलकुल वन्द होना जरूरी है।

३४—पत्र

स्तुति से बचो।

॥ ॐ ॥ २३—७ १८

कटरा

श्रीमानजी प्रणाम! आपका कृपा पत्र प्राप्त हुआ, हाल जाना गया, अपने मुँह से अपनी स्तुति करना दम्भ है, जव कोई दूसरा आपकी तारीफ़ करे, तव आप उसमें न फँसें। अपनी कमज़ोरियों का ख्याल करें, कि अभी तो यह वात कुछ भी नहीं है, वहुत सी कमी है, जो उनको नहीं मालूम; वल्कि तारीफ़ करने वाले से कह दें कि भाई मैं इस तारीफ़ के लायक़ नहीं हूँ, अपनी कमजोरियों को मैं हो जानता हूँ। जव कोई इरादा हो, तव देख लीजिये; और विचार कर लोजिये कि ऐसा होना चाहिये कि नहीं, अगर ना वाजव हो तो वहीं मन ही में रोक दीजिये, काम करने पर आमादा न हों।

३५—पत्र

महाव्रत, झूठ बोलकर छुट्टी लेना पाप है। साधारण नियम।

॥ ॐ ॥　　७—६—१८
कटरा

श्रीमानजी, आपका पत्र इस वक्त प्राप्त हुआ, हाल जाना गया। भला, आप ऐसे महान् कर्म करने की श्रद्धा करते हैं जिसमें किसीको दुःख न देना, झूंठा व्यवहार न करना, दूसरे का हक न लेना, ब्रह्मचर्य रखना, विषयों से बचना आदि बातों पर पूरी तवज्जो रखना पड़ता है। फिर इन बातों को तोड़ने से आप कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि आपको इस मार्ग में सफलता प्राप्त होगी, आप Private affairs (निज के काम) के नाम पर जितनी छुट्टी मिल सके, उतनी ले सकते हैं। यदि न मिले, तो झूठ बोलकर छुट्टी लेना कदापि ठीक न होगा। यदि आपको Private affairs (निज के काम) पर तीन हफ्ता ही की छुट्टी मिल सके, तो आप उस वक्त लें, जब हम नीचे उतर आयेंगे उस वक्त रास्ते का समय भी बच जायेगा। आप खूब नियम-पूर्वक रहें, ब्रह्मचर्य पूरा रक्खें, ईश्वर पर भरोसा रक्खें, वे आपही सहायता करेंगे। आपको चाहिये कि अभी से भोजन बनाना सीखना शुरू कर दें। दाल, भात, साग बनाना कोई मुश्किल बात नहीं है। थोड़ी-थोड़ी रोटी भी बनाया कीजिये, इससे आपको बहुत स्वतन्त्रता हो जायेगी।

३६—पत्र

संसार दुःख रूप है। फ़रज़ अदा करते जाना ही धर्म्म है। घरेलू झगड़े, तटस्थ रहो।

ॐ ६—११—१८

कटरा

श्रीमान्‌जी, कल आपको पत्र लिख चुका था, परन्तु शाम को ········को देने की याद न रही। तब मैंने सोचा कि इसमें भी कोई मसलिहत होगी। ख़ैर दूसरे दिन भेज देंगे। सो आज दोपहर को आपका दूसरा पत्र भी मिल गया। इसलिए उसके उत्तर में भी कुछ निवेदन कर देना पड़ा। महाराजजी, आपने जो अपने अनुभव से सिद्ध कर लिया है कि गृहस्थ तथा संसार दुःख रूप है यह बड़ी ही ज़बरदस्त बात है।

बुद्ध महाराज आदि ने भी यही निर्णय किया था। क्या करना चाहिये, इस विषय में मिलने पर ठीक तौर से विचार होगा। परन्तु इतना निवेदन कर देना जरूरी है कि आप अपना फ़रज़ अदा करते हुये, तमाशा देखने वाले बनने की कोशिश करें। दूसरों के भोग तथा बुद्धि को पलटना आपके अधीन नहीं है। इसकी रग ईश्वर के हाथ में है। आप सिर्फ़ अपने फ़रज़ के जवाबदेह हैं। सास-बहू के झगड़ों को मिटा देना बहुत कठिन है। दो में से एक भी अक़लमन्द हो, तो निभ जाये। परन्तु जब दोनों तरफ़ से ऐंठ हो, तो मुशकल है। अब यह उनके भोग की बात है कि वे सुख के मार्ग को नहीं निकाल सकतीं। थोड़ा-थोड़ा क़सूर दोनों तरफ़ रहता है, तभी बात नहीं बनतीं। यदि एक तरफ़ भी सहन-शक्ति पूरी हो, तो निभ जाये। इसलिए

आप इस नाटक में अपना Part play (काम पूरा) करते हुए उसको enjoy (तमाशा देखना) करने का अभ्यास डालें, इसीमें आपकी बुद्धिमानी है, और तभी आप निर्दोष रहते हुये कुछ शान्ति से जीवन व्यतीत कर सकेंगे—

"जो जस करे सो तस फल चाखा ।
कर्म प्रधान विश्व रचि राखा ॥"

आपकी बहादुरी इसीमें है कि मानसिक दुःख को न होने दें ।

३७—पत्र

परस्पर प्रेम का आधार आशा है ।

❀ ॐ ❀　　जनवरी १९१९
लाहौर

आशा और निराशा Mutual (परस्पर) होती हैं, अर्थात् जब कि क ... को ख .. से कुछ सुख की आशा होती है तब क, ख के साथ प्रेम करता है और उसके संग रहकर प्रेम का वर्ताव करता है, तब ख भी क के साथ वैसा ही करता है। परन्तु जब ख क से किसी प्रकार का सुख पाने से निराश हो जाता है, तब ख के साथ उसका प्रेम नहीं रहता और न ही उसके संग रहकर प्रेम का वर्ताव कर सकता है। बल्कि उसके संग रहने में उल्टा हानी ही हानी देखता है, तब उससे अलग रहने ही में कल्याण पाता है। तब ख भी क से आप ही निराश हो जाता है, और जिस सुख की आशा से क के साथ प्रेम करता था, उससे निराश होकर क का संग त्यागने को उद्यत होता है। यदि क में किंचित मात्र सुख की आशा ख

से हो और वह ख को विना स्वयं पूर्ण तौर पर निराश हुये विल्कुल निराश करना चाहता है, तो उसको पूरी सफलता होना असंभव है।

३८—पत्र

ईश्वर आधार हो, यम-नियम का पालन करो

ॐ २७-३-१६
लाहौर

श्रीमान्जी प्रणाम! पत्र आपका आया, वृत ज्ञात हुआ। ईश्वर के सहारे पर कमरवस्ता हुये, लगातार पुरुषार्थ में डटे रहिये, यम-नियमों के पालन में ध्यान खूब रखना चाहिये। परमात्मा आप ही सव ठीक कर देंगे।

३९—पत्र

वैराग्य भाव बढ़ाना उत्तम है।

ॐ १२-५-१६
जम्मू

प्रिय……जी नमस्ते। चार-पाँच दिन हुये कि एक कार्ड आपके पत्र के जवाब में मैंने भेजा था। उसमें नमक छोड़ने के लिये दूर-दर्शी के ख्याल से लिखा था। और यह भी कि गरमियों में प्यास न लगे। अपना हाल मानसिक तथा शारीरिक खोलकर लिखें। मनीराम सावधान रहता है कि नहीं। अब बात साधारण सी प्रतीत होने लगी कि नहीं। कैसा भाव रहता है। स्पष्ट लिखि-

येगा। शूरों में बड़ा शूरवीर वही है जो काम को जीत ले। इन्द्रियों के स्वाद से .खूब सावधान रहना। संसार में कैसे-कैसे दुःख हैं, तुम्हारे सामने हो रहे हैं, इन पर दृष्टि रखते हुये वैराग्य को खूब बढ़ाते जाओ। दूसरों के Certificate (मानपत्र) की परवाह न करना; अपने आपको Satisfy (संतुष्ट) करने की कोशिश करते जाना चाहिये, नहीं तो गिर जाने का डर है। चुपचाप अपना काम करते जाओ। जहाँ उचित समझो अपनी स्त्री को भी व्यवहार में मन की ग़लतियाँ दूर करने का उपदेश कर दिया करो। यदि वह परवाह न करे, तो जाने दो, आप ही भुगतेगी।

४०—पत्र

पशु और मनुष्य में भेद—पतिव्रत स्त्री धर्म।

॥ ॐ ॥ १२—५—१६
वैष्णव देवी

श्रीमती देवीजी को बहुत-बहुत प्रणाम पहुँचे। एक पत्र आपकी सेवा में प्रथम भेज चुका हूँ। खाना, पीना, टट्टी जाना, पेशाब करना, सोना जागना, भय करना, विषय भोगना, बच्चे पैदा करना और पालन करना, इतनी बातें पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़े और मनुष्यों में एक जैसी होती हैं। यदि मनुष्य शरीर पाकर इतना ही किया और बस, तो वह पशुओं को बराबर रहा और वह मर कर अधोगति को प्राप्त होगा; परन्तु यदि उसने विचार किया और धर्म को समझा, और दुःख के कारण को नाश किया, थोड़े से सुख के लिये अपने आपको दुःख में न डाला, इन्द्रियों के विषयों की परवाह न की, उनको जीत लिया,

तो उसने देवलोक को जीत लिया। मरने पर उसकी बहुत उत्तम गति होना है, और यहाँ भी सुख रहेगा। राजा धृतराष्ट्र अन्धे थे, इसलिए वे नेत्रों का सुख नहीं ले सकते थे। उनकी स्त्री गांधारी सच्ची पतिव्रता थी, इसलिए उसने भी नेत्रों का सुख लेना छोड़ दिया था, आँखों में पट्टी बाँध रखती थी। बुद्ध महाराज की स्त्री ने जब देखा कि उसके पति ने पलंग पर सोना, नमक, खटाई, मिठाई आदि स्वादिष्ट पदार्थों को छोड़ दिया, तब उसने भी ऐसा ही किया। इन बातों से उसका पति जन्म भर तक उससे प्रसन्न रहा। राज-पाट छोड़ दिया; परन्तु उससे प्रेम नहीं छोड़ा। जो सच्ची पतिव्रता होती हैं, वे उस सुख को नहीं ग्रहण करतीं जिसको पति नहीं ग्रहण करता और उसके साथ-साथ अपना भी सुधार करती जाती हैं, परन्तु जो दिखलावे की पति-व्रता होती हैं, वे मनमाना करती हैं, बल्कि पति के कल्याण के रास्ते में विघ्न रूप से खड़ी हो जाती हैं। इससे वे इस जन्म को गँवाती हैं और परलोक भी बिगाड़ लेती हैं; परन्तु जो सच्ची पतिव्रता होती हैं, वे देवलोक को जीत लेती हैं, यहाँ भी उनका यश होता है और सुखी रहती हैं, मरने पर बहुत उत्तम गति को प्राप्त होती हैं। मनुष्य शरीर बड़ी मुश्कल से मिलता है, फिर मिल कर भी अच्छा संग बहुत दुर्लभ है। आपके धन्य भाग्य हैं, कि आपको ऐसे सज्जन धर्मात्मा पति मिले हैं कि जिनके सदृश कोई हजारों साधुओं में विरला होगा। यदि आपने इनके सत्संग से अपने जन्म को न सुधारा, तो पछताना पड़ेगा, और फिर कुछ नहीं हो सकेगा। इसलिये आप अपने समय को वृथा न गँवायें, उनके साथ अपना भी कल्याण करती जायें और जन्म सफल करें।

४१-पत्र

विषय पर विजय प्राप्त करने के उपाय, वास्तविक योद्धा बनना और निष्पाप धर्माचरण पालन करना।

ॐ १७—६—१६
कटरा

प्रिय......जी। तुम्हारा पत्र आज १७ जून दोपहर को प्राप्त हुआ। उत्तर में निवेदन है, कि तुमको चाहिये कि जिस जिस विषय भोग की इच्छा हो, ख़ूब रज कर भोग लो, क्योंकि यदि शरीर शीघ्र छूट गया, तो हवस बाक़ी रह जायेगी, परन्तु इसके साथ ही "भोगे रोग भयं" अर्थात् भोग में रोग का भय है, इस सिद्धांत का भी ख्याल हर वक्त रखना, नहीं तो कश्मीर-यात्रा ही में खातमा हो जाने का डर है। जो पुरुष किसी दुश्मन से लड़ना चाहता है और दुश्मन के पक्ष के आदमियों को अपनी तरफ़ मिलाकर जीतना चाहता है, उस मूर्ख को जीत से हाथ धोना चाहिये; क्योंकि जब दुश्मन के पक्ष के आदमी दुश्मन ही की तरफ़दारी करनेवाले हैं, तब वे कब फ़तेह होने देंगे। इसी तरह जो पुरुष काम-क्रोध आदि विषयों को नष्ट करना चाहता है, उसे चाहिये कि उनके पक्ष के लड़ने वालों को अपनी सहायता में न रखे, नहीं तो उसका पक्ष निर्बल रहेगा, और धोका खायेगा। जितना पाप का अंश है वह उनके पक्ष का है, और जो पुण्य अर्थात् धर्म का अंश है वह इनके विरुद्ध पक्ष का है। जो पुरुष किंचित मात्र भी पाप से काम लेना चाहता है, उसके

लिये इनको जीतना कठिन वल्कि असम्भव है। परन्तु जो पुरुष अपने हृदय से प्रथम पाप का बीज नाश करता है, केवल धर्म अर्थात् सचाई पर खड़ा होता है। धर्म का लक्षण मनुस्मृति या सोलहवाँ अध्याय गीता में अच्छी तरह निर्णय किया है, वही Sooner or later (शीघ्र तथा देर से) फ़तह पाने की उम्मेद रख सकता है। यदि तुम सफलता चाहते हो, तो तुमको ईश्वर के सामने दृढ़ प्रण करना चाहिये कि बस अब पाप बिलकुल नहीं करूँगा। सचाई से कभी नहीं गिरूँगा, और ईश्वर से सूधे मन से प्रार्थना करो, कि वे तुमको सहायता प्रदान करें। जब तुम धर्म पर आरूढ़ होकर पुरुपार्थ करोगे, तभी सफलता की आशा कर सकते हो। नहीं तो, प्रथम तो तुमको सफलता सी दीखेगी, पीछे फिर पाप से हृदय मलीन हो करके गिर जाओगे, मलीन हृदय में सत्य का प्रकाश कभी नहीं होता। जैसा रुपया रुपये को, magnet, magnet (चुम्बक, चुम्बक) को, खींचता है, वसेही सचाई सचाई को खींचती है, और यथार्थ बोध बढ़ता जाता है। दूसरी बात बड़ी भारी ध्यान में रखने की यह है, कि यदि तुम्हारा आचरण पाप-मिश्रित रहेगा, सचाई से गिरा रहेगा, तो तुमको तुम्हारी स्त्री का श्राप लगेगा, उसकी दुःख की कल्पना से तुमको विघ्न पर विघ्न होंगे जैसे ·····जी को···की तरफ़ से होता था। इस बात पर विश्वास उनको बहुत दिन पीछे हुआ था, तभी से संभले और फिर तरक्की शुरू हुई। तुम्हारी स्त्री अपने लिये रास्ता अब आपही निकाल लेगी। तुमको मन, कर्म, वचन से अपने सुधार की कोशिश, धर्म के सहारे से, करते रहना चाहिये।

४२–पत्र

पुरुषार्थ फल लाता है ।

ॐ　　२१—६—१६

कटरा

श्रीमानजी, प्रणाम । आपका कृपा पत्र वा पुस्तक मिल गये । आपकी सफलता पर वहुत हर्ष हुआ ।

अतिशय रगड़ करे जो कोई ।
अनल प्रगट चंदन ते होई ॥

इस सिद्धांत पर दृष्टि रखते हुये चले चलना चाहिये ।

४३–पत्र

साधारण धर्म-जीवन नियम । साधन का अधिकारी कैसे बनें ।

ॐ　　२२—६—१६

कटरा

श्रीमानजी, आपने ५) जो रिशवत के तौर पर भेजे हैं, वे पहुँच गये । इसकी आवश्यकता नहीं थी, विला जरूरत भी लेने को चित्त राजी नहीं होता । आगे से आप ऐसी तकलीफ़ न करें । आपने पत्र के उत्तर में कुछ नहीं लिखा । इस रिशवत सेकाम नहीं वनने का ; और आपका आना भी वृथा ही होगा । इसलिये आपको चाहिये कि Sincerely (सचाई से) नियमों पर चलें, अग्नि होत्र नित्य करें, क्रोध को रोकें । क्रोध की हालत

में कभी कोई वचन ही न बोलें, शान्त हो जाने पर बोलें। अखंड ब्रह्मचर्य रक्खें, पराई स्त्रियों में मातृ भावना रक्खें। और सामने होने पर, इसी भाव से उनको मन में नमस्कार करें। वेश्या की गाय का दूध ठीक नहीं है। झूठ से परहेज रक्खें, जो प्रतिज्ञा करें उसे अवश्य पूरा करें। नहा-धोकर अग्नि होत्र करके, ईश्वर से प्रार्थना करके, ऊपर लिखी हुई बातों पर चलने के लिये दृढ़ प्रण करें, और परमात्मा से उन पर चलने के लिये बल और बुद्धि मांगें। यदि कभी इन पर ध्यान न रहे, तो मन को दंड दें, उचित समझें तो निराहार का दंड दें, या जैसा उचित समझें।

४४—पत्र

मुमुक्षु को स्त्री विषय उपदेश, संस्कार कैसे दृढ़ हों।

* ॐ * २२—६—१८

कटरा

प्रिय......जी। मुमुक्षु के Thoughts, words and deeds (मन, वचन और कर्म) एक होने चाहियें, इनमें भेद होना ही झूठ या कपट या छल या पाप समझना चाहिए। फिर ऐसे आचरण से मन की मलीनता नहीं जा सकती। तुमने जो व्रत अपनी स्त्री के विषय में लिया है, वह आज-कल के ज़माने में बहुत कठिन है, परन्तु पुरुषार्थ के आगे सब सुगम हो जाता है, यदि पुरुषार्थ सच्चे दिल से और नियम अनुसार किया जावे। उसके पूर्ण करने के लिए जो उपाय तुम कर रहे हो वह काफ़ी नहीं है। और शायद इसी पर चलते हुये बरसों में भी पूरी

सफलता न हो। इसका कारण यह है कि संस्कारों का नाश केवल ख्याली बातों से नहीं होता। जिस तरह से संस्कारों की दृढ़ता होती है, उसी तरह से उनका नाश भी होता है, अर्थात् एक संस्कार के विरुद्ध या नाशक संस्कार के दृढ़ होने से प्रथम नष्ट हो जाता है। इतने से अभी तुम आशय को ठीक शायद न समझे होगे। तुम स्त्री-भाव को नष्ट करके मातृ-भाव स्थापन करना चाहते हो, और ईश्वर से प्रार्थना करके मन में उसके चरणों में मत्था भी टेकते हो। अब मैं पूछता हूँ कि जब .. माई, तुम्हारे सामने आती है, तब भी तुम्हारे दिल में मातृ-भाव आता है कि नहीं? तुम उसको मातृभाव से माता के सदृश address (बुलाया) भी करते हो कि नहीं? और उसके साथ माता का जैसा व्यवहार भी करते हो या नहीं? यदि तुम नहीं करते तो अव्वल तो तुम्हारे हृदय में कपट रहा, जिसको ईश्वर महाराज ही जानते हैं। और वे तुमको इस मखौल का फल भी वैसा ही देंगे। दूसरे तुम······ माई को धोखे में रखते हो। अभी वह तरह तरह की आशायें बाँध रही होगी, और कुछ काल पीछे जब उसकी आशायें पूरी न होंगी, तब उसको निराशा का कैसा दुःख होगा। और उस वक्त शायद वह न सँभल सके, और अपने लिए कोई अच्छा रास्ता न निकाल सके, तब उसका जीवन यों ही नष्ट हो जायेगा। इसलिए तुमको भी इस अंश में वैसा ही करना चाहिए जैसा कि इस मार्ग वालों ने किया है। परमहंस रामकृष्णजी की स्त्री जब उनके पास आई, तब उन्होंने सबके सामने स्पष्ट कह दिया कि जिस रामकृष्ण ने शादी की थी वह मर गया। अब यह तुमको माता समझता है, इस पर उस पतिव्रता ने अपने मन को सावधान करके अपने आप को परमार्थ के मार्ग पर लगा दिया, और बहुत अच्छी

तपस्विनी और ज्ञानवान् हुई। इस वक्त उसकी उमर १८ वर्ष की थी। इसीलिए पुरुपार्थ करके ऐसा वन गई। वड़ी उमर में पुरुपार्थ इतना नहीं हो सकता है। जवानी ही में सव कुछ हो सकता है। यदि यह समय यों ही गुज़र गया, तो वड़ा भारी घाटा रहेगा। इसलिये मैं चाहता हूँ कि यदि तुम्हारी हिम्मत पड़े, तो रामकृष्णजी की तरह मैदान में आ जाओ। युद्ध में चोटें लगती हैं; परन्तु शूरवीर उनसे घवराते नहीं। कायरों का काम युद्ध करना नहीं है। महात्मा गांधी की आत्मा इसी तरह से वलवान हुई है, कि प्रत्येक विपय में उनके Thoughts, Words and Deeds (मन, वचन और कर्म) एक जैसे होते रहे हैं और होते हैं। ऐसा नहीं है, कि मन में कुछ, मुख में कुछ, और कर्म में कुछ और। इस पत्र का उत्तर शीघ्र देना। सर्व काम अपनी हिम्मत देखकर ही करना चाहिये। इतना अवश्य कहना है कि ऊपर लिखित उपाय के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं जिससे संस्कार दृढ़ हों। ख़्याल को व्यवहार में लाने से ही संस्कार दृढ़ होता है।

४९—पत्र

ब्रह्मचर्य्य, मानापमान—गृहस्थी जिज्ञासु को कैसे आचरण करना चाहिये—सन्तोष।

❀ ॐ ❀ २६—६—१६१६

कटरा

श्रीमान्जी, प्रणाम। आपका १५ मई का पत्र प्राप्त हुआ, हाल जाना गया। अब उत्तर में निवेदन है कि "जो से कभी

मिलें तो उसको धैर्य्य दे देना, ढीला न पड़ जाये, नहीं तो गिर जायेगा। थोड़ा-बहुत जितना हो सके भजन नित्य करना चाहिये, चाहे पन्द्रह ही मिनट हो। परन्तु नागा न होने देना। स्त्री के साथ आपकी सफलता जानकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। परन्तु जब आप नरक-कुण्ड में गोता लगाने से घृणा रखते हैं, तब प्राणोत्तेजना कैसे हो जाती है। ख़ैर घृणा को बढ़ाते जाना चाहिये—नमक-मसाला मीठा का त्याग गरमी भर रखना चाहिये। जब कभी उचित समझो सफ़ाई का भी ख़्याल रक्खें। अपनी तरफ़ से बलपूर्वक पुरुषार्थ करना चाहिये। और सफलता के लिये चढ़ाई के समय विशेष कर और साधारण तथा अन्य समय भी नित्य प्रार्थना करना चाहिये। क्योंकि "Heaven helps those who help themselves." (हिम्मते-मरदां मददे-ख़ुदा) तुम तो गृहस्थ छोड़ने का ख़्याल करते थे, फिर पकड़ते क्यों हो। क्या उनकी बातों से तुम्हारे कहीं चोट लगती है? शब्द ही तो हैं; यदि तुम अपनी माता की बातें नहीं सहार सकते, तो पीछे यदि अन्य कोई तुमको कुछ अपशब्द कहेगा तब कैसे सहारोगे। तुमको परमात्मा को धन्यवाद देना चाहिये, कि ऐसे शब्द सहारने के लिये तुमको घर ही में मौक़ा दे दिया है। यदि तुम अभी से अभ्यास न करोगे, तब कब करोगे। नाम की इच्छा ज़बरदस्त होने से पुरुष इन शब्दों को नहीं सहार सकता। तुमको नाम की इच्छा से कार्य्य करने की आदत छोड़ना चाहिये। जहाँ तक हो सके अपनी duty (कर्त्तव्य) बजाये जाओ। तुमको हकूमत की इच्छा है, इसलिये स्त्री की तेज़ी पर रोष आता है। तुम उसको समझा दो और बस। प्रत्येक प्राणी अपनी मरज़ी पर स्वतंत्रता रखता है, इसलिये रोष नहीं करना चाहिये। यदि कोई वाचक आदि दंड देना हो, तो शांत होकर

बनावटी रोष दिखला कर दो। असली रोष नहीं होना चाहिये। तुम यदि पूर्ण शांति को धारण करोगे, तो तुम्हारे संग से उसको भी कुछ शांति आप ही आयेगी, जैसे जल के संग से कमल भी ठंढा हो जाता है, इस में 'एक पंथ दो काज' होंगे। तुमको तो अवश्य अपने लक्ष्य पर रहना चाहिये। दूसरों को जैसा समझ में आवेगा वैसा करेंगे। जिस परमात्मा ने तुम्हारे पालन पोषण और पढ़ाई वग़ैरा का इन्तज़ाम किया, वे ही आगे की ख़बर रखते हैं। तुम बेफ़ायदा को बहुत चिन्ता करते हो, जैसा तुम्हारा प्रारब्ध होगा उसीके अनुसार वे तुमको संसारी सुख दुःख देंगे। जब तक शरीर को रहना है, तब तक इसको भाड़ा अवश्य मिलेगा, नहीं तो ठहर नहीं सकता। इसको, तुमको हर हालत में, जिसमें परमात्मा तुम को रक्खें, ख़ुशी और संतोष के साथ निर्वाह करने का हौसला रखना चाहिये। यह तभी हो सकेगा जब तुम संतोष वृत्ति को धारण करोगे, लोभ में न पड़ कर बड़ा बनने की कोशिश में न रहोगे। "आराम से वे हैं जो हर हाल में ख़ुश हैं" मानसिक दुःख तो माना हुआ, झूठा दुःख है ? फिर झूठ को त्यागने ही में सुख है।

"रूखी सूखी खाय के ठंडा पानी पी।
देख पराई चोपड़ी मत तरसाय जी ॥"

मौका देखकर, पुरुषार्थ, अच्छी तरह, निर्वाह के लिये अवश्य करना चाहिये। परन्तु जैसा कुछ उसका फल हो, उस पर संतोष रखना चाहिये। मन में दुःख न आने पावे, इसीमें आपकी बहादुरी है। आप अब दृढ़ संकल्प करके मन से गृहस्थ आश्रम को त्याग कर दीजिये, तभी आप निर्द्वन्द्व हो सकेंगे। जब आप त्याग देंगे, तब आप क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान नाम, मान आदि की इच्छा को भी समूल नष्ट कर

सकेंगे। और फिर आप गृहस्थ ही में जीवन मुक्ति का आनंद ले सकेंगे। यदि आप अभी ऐसा न करेंगे, और संसारी वासनाएँ, राग, द्वेष, मोह की, आपके अन्दर रही आईं और शरीर छूट गया, तो अगले जन्म में फिर इसी तरह चक्कर काटना होगा। देखिये, कितने दिन में ठीक-ठीक पता इस बात का लगा है, कि असल में किस बात से प्राणी का कल्याण होना है। फिर इस सचाई को समझ कर यदि जोर से न पकड़ा गया, और शरीर छूट गया, तो घाटा ही रहा। केवल जान लेना ही तो काफ़ी नहीं, उस पर व्रत पूर्वक चलने ही से कुछ होगा।

"बहुत बुझायं तुमहिं का कहहूँ। परम चतुर मैं जानत अहहूँ॥"

इसलिये बुद्धिमानों को इशारा ही काफ़ी है। .. ..जी का भी पत्र आ गया है, उन्होंने हिम्मत अच्छी की और जबर्दस्त व्रत ग्रहण किया है, अब वह earnest (कटिबद्ध) हुआ है, अब आशा है कुछ करके दिखलायेगा—progress report (उन्नति का हाल) पंद्रह वा बीस दिन में अवश्य भेजते रहना।

४६—पत्र

पाँच बातें-नित्य प्रति हवन करो।

❀ ॐ ❀ ८—७—१६

कटरा

श्रीमानजी, आपका प्रथम जुलाई का पत्र प्राप्त हुआ। उत्तर में निवेदन है कि मैं बंधन में नहीं रहना चाहता, जब कभी उधर आना होगा या आपही आयेंगे, तब यथोचित भोजन कर ही लूंगा। यदि आपकी बहुत रुचि है, कि कुछ देवें हीं, तो आप आठ

आना महीना दें। परन्तु यह रुपया तब लूंगा, जब आप काम के, क्रोध के, संस्कार नष्ट कर देंगे, और आपके स्वभाव में यह बात दृढ़ हो जायेगी कि कोई बात या कार्य नाम के ख्याल से न करें, बल्कि कर्तव्य समझ कर करें। चाहे लोग उस पर नेक-नामी दें या बदनामी, इससे बेपरवाह रहें; और जिह्वा के स्वाद के ख्याल से कोई पदार्थ न खायें, बल्कि शरीर-रक्षा के उपयोगी समझ कर खायें। झूठ से सख्त परहेज रहे; यह पाँच बातें हैं जो आपके स्वभाव में आ जानी चाहियें। जब तक यह स्वाभाविक न बन जायेंगी, मैं रुपया नहीं ग्रहण करूंगा, और तब तक आप कभी भेजने का ख्याल भी न करें। मेरे में कोई सामर्थ्य नहीं है, कि मैं आपको कुछ बना सकूं। आप अपने पुरुषार्थ तथा ईश्वर-अनुग्रह से ही कुछ बन सकते हैं। इससे आपको यह भी ध्यान में रखना चाहिए, कि ईश्वर का दिखाना मेरे लिये असम्भव है। यदि वे आपही कृपा करें, तो अपने आपको दिखला सकते हैं। मैं केवल साधन बतलाता हूँ, उन पर चलने से वह कभी न कभी अनुग्रह कर देते हैं, ऐसा ही उनका वचन है। सफ़ाई आदि आज-कल नित्य करना अच्छा रहेगा। कार्तिक के पीछे हफ़्ते में दो बार ही काफ़ी होगा, या जैसा शरीर को देखकर उचित हो वैसा करें। हवन के मन्त्र आपको न आते हों तो गायत्री मन्त्र से ही इक्कीस बार अहुति दे दिया करें, उसी के अर्थ पर ध्यान रक्खें। सब सामग्री इकट्ठी कूटकर रख लीजिये, एक आहुति छे माशे की काफ़ी होगी, या कुछ कम हो, घृत अलावा रहे तो बेहतर होगा। सामग्री के तौल के विषय में किसी पंडित से पूछ लें। आर्य समाजी पंडित हो या सनातनी। जिह्वा जैसी है वही ठीक है, उसकी चिन्ता छोड़ दें।

४७—पत्र

कपट से बचो ।

ॐ जुलाई १९१९
कटरा

प्रिय……जी, यह तो मुझे विश्वास है कि आप कपट तथा दम्भ से हमेशा बचते हैं, परन्तु यह ईश्वरीय माया बड़ी कठिन है, और बड़े-बड़े लोग धोखा खा जाते हैं। इसलिये आपके पास…भगवानजी के पत्र भेजता हूँ। मैंने यह पत्र तुम्हारे और …के दिखलाने के लिए रख छोड़े थे, ताकि तुम दोनों भी सावधान रहो।…और तुम दोनों सब एक दूसरे के हालात से वाकफ़ीयत रखते थे, इसलिये मित्र-मंडली में से यदि कोई ग़लती करके हानि उठाये, तो उसको समझकर ख़ूब सावधान रहना चाहिये। यह तो मैं प्रथम ही से · जी को जानता था कि वे संसारी रंग में रंगे हुए थे, परन्तु मेरा उद्देश यह था कि मेरी सहायता से एक दफ़े वे कुछ ऊँचे चढ़कर कुछ अनुभव कर लें, फिर वे उस रंग का फल आप ही देखेंगे, और तब आप ही उस रंग से मुक्त होने की कोशिश करेंगे, सो वैसा ही हुआ। अब मैं समझता हूँ कि वे प्रथम से बहुत कुछ अधिक सचाई पर आ-गये हैं। प्रथम पत्र में जो उन्होंने व्रत लिये हैं वे उन्होंने अपने ही विचार से लिये हैं, मेरे विचार से भिन्न हैं। मैं यह बातें इनके लिए असम्भव समझता हूँ, सो वही हुआ।

४८—पत्र

योग-आसन विधान—योग निद्रा विधान

॥ ॐ ॥ अगस्त १६१६
कटरा

श्रीमान्‌जी प्रणाम। आपके पाँच अगस्त के कृपा पत्र के उत्तर में निवेदन है, कि आसन को ठीक रखने के लिए ठीक-ठीक उपाय का लिखना कठिन है। अलबत्ता पास होने पर कराकर ठीक किया जा सकता है। परन्तु आप स्वयं ऐसी कोशिश करें कि वह अवस्था के आने से प्रथम ही सावधान रहें, और शरीर को सीधा रखने की कोशिश करें। ढीला रहे, पर गिरने न पावे। यदि आपको ठीक जाँच आ जायेगी तब शरीर का ख्याल बिलकुल न रहने पर भी, वह वैसा ही रहेगा। यदि इसकी जाँच न आये और शरीर गिरता ही जाये तो गोरक्षासन में अभ्यास करने का यत्न करें, उसमें शरीर का सीधा रखना सुगम होगा। सम्भव है, प्रथम ही प्रथम आपको दरद होने लगे, परन्तु थोड़े ही दिन में देर तक बैठने का अभ्यास हो जायेगा। यदि इसमें भी सफलता होती न दीखे, तो पद्म-आसन में अभ्यास करें। यदि इसमें भी कठिनाई प्रतीत हो, तो शवासन तो बना बनाया है। जबकि प्राण ब्रह्मांड में चला जाता है, और उसके पीछे गफ़लत सी होती है, वह तामसी निद्रा नहीं है, बल्कि सात्विक योग निद्रा ही समझना चाहिए। परन्तु यदि आप ऐसी अवस्था में ठैर सकें, जिसमें न पूरी गफ़लत है न होश ही है; बल्कि जो अवस्था सोने से प्रथम और जागने के पीछे होती है, उसमें रह सकें तो उत्तम है। अब आज-कल आप क्या शुग़ुल रखते हैं— कोशिश के नतीजे से सूचित करने की कृपा अवश्य करें।

———

४६—पत्र

गुरु-सेवा में रह कर अभ्यास सुगम होता है

※ ॐ ※　　१४—७—१६१५

कटरा

श्रीमान्जी, आपका पत्र प्राप्त हुआ। ऐसा दिल में अक्सर आता रहता है कि आपको घर में अभ्यास कराने में विघ्न है, इसलिये अजमेर आने के लिए उत्साह नहीं होता। अभी एक साधु को जो डाक्टरो पास है, अभ्यास में लगाया हुआ है। उम्मीद है दिवाली तक उससे फ़ारग हो जाऊँ, फिर नीचे उतरने का विचार करूँगा। हरिद्वार तक जाने को दिल करता है। आपके लिये यह बेहतर होगा कि तीन मास की छुट्टी लेकर आप मेरे पास आकर अपने रहने वग़ैरा का माक़ूल प्रबन्ध करके जो कुछ कर सकें कर लें। फिर घर में जाकर करते रहें।

५०—पत्र

विषय-कुपथ रोग है। और उसकी औषधि

※ ॐ ※　　१७—१—२०

जम्मू

मोह सकल व्याधिन कर मूला, जासे उपजत हैं बहु शूला॥

श्रीमान्जी, यह एक निश्चित सिद्धान्त है, जिसको चौपाई के रूप में स्वामी तुलसीदासजी ने वर्णन किया है। आप भी अच्छी तरह कसौटी में रख लें। शारीरिक दुःख, शारीरिक कुपथ्य और मानसिक दुःख, मानसिक कुपथ्य से पैदा होता है।

जो दुःख कुपथ्य से पैदा होता है वह कुपथ्य से अधिक से अधिक तीक्ष्ण होता जाता है, शान्त नहीं हो सकता। उसका प्रथम और अन्तिम इलाज परहेज़ है। आप बुद्धिमान हैं, अपने विचार से इसकी तशरीह करके extent of (मिकदार-परिमाण) कुपथ्य को समझ सकते हैं, पत्र में तशरीह की गुञ्जाईश नहीं है, क्षमा करेंगे। सहायक उपाय यह भी है कि कुपथ्य के कारण जो दोष बढ़ गये हैं, उनको यथाशक्ति निकाल दिया जाये और कड़ा परहेज़ करके नये दोष के पैदा होने में रुकावट डाली जाय? और रहा-सहा दोष बढ़ने न पावे। यह रहा-सहा दोष लगातार परहेज़ से ही जीता जा सकता है।

यदि बलात्कार से कुपथ्य कुछ न कुछ होता ही नजर आवे तो, निकालने तथा नाश का उपाय भी अवश्य होते रहना चाहिए; वरना दोष बढ़कर गिरा देता है। यह बात वही पुरुष कर सकता है जो शत्रु से कभी गाफ़िल नहीं रहता; जो गफ़लत करता है, धोखे में मारा जाता है। आप सब जानते ही हैं। कोई बात छिपी नहीं है। जो पुरुष चोरों की सराय में रहता हुआ गाफ़िल सोवे, वह लूटा ही जाता है; पीछे पश्चात्ताप से क्या बनता है। मेहनत व जां-फ़िशानी से कमाई हुई दौलत एक दम से चली जाती है।

९१–पत्र

अभ्यास के विघ्नों की व्याख्या और शमन-विधि। अभ्यास काल के कुछ नियम।
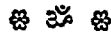
॥ ॐ ॥   २—२—२०

जम्मू

श्रीस्वामीजी महाराज को बहुत-बहुत प्रणाम पहुँचे। आपका कृपा पत्र कल प्राप्त हुआ। उत्तर में निवेदन है, कि आप तो स्वयं जानते हैं, परन्तु याद-दिहानी के तौर पर अरज़ है, कि अभ्यास में उन्नति न होने का कारण सब से श्रेष्ठ, वैराग्य पूरा न होना है। दूसरा, पिछले कर्मों का असर है। तीसरा, भोजन का सात्विक न होना है; यह गुण और कर्म भेद से दो प्रकार का होता है। चौथा कारण, स्थान का सात्विक न होना है। पाँचवां, वर्तमान में व्यवहार सात्विक न होना है:—इनकी तशरीह आप स्वयं विचार सकते हैं, पत्र में गुंजायश नहीं है। अलवत्ता, रही-सही कसर बातचीत तथा अनुभव कराने से मालूम हो सकती है। (१) यदि सुबह को भी शौच से निवृत्त होकर भजन किया जाये तो अच्छा रहेगा। (२) आसनों के पीछे स्वाध्याय शीघ्र नहीं होना चाहिए, इतनी देर अवश्य ठैरना चाहिए कि शरीर असली हालत में आ जाये, सम्भव है आध या पौन घण्टे में ठीक हो जाय। (३) भजन के पीछे कम से कम एक या डेढ़ घण्टा कुछ पठन-पाठन नहीं होना चाहिए; लेटना भी एक घड़ी पीछे होना चाहिए। (४) जब टहल कर शाम को आयें, तब पौन घण्टा ठैर कर भजन में बैठें। (५) सुबह हो या शाम हो, भजन का समय वह उत्तम होगा, जब बायां स्वर पूर्ण तेजी में हो, या दोनों स्वर बराबर हों। (६) शरीर को भाड़ा इतना देना चाहिए कि काम देने में कमज़ोरी न महसूस करे। (७) संसार में दुःख का चिन्तन बिना ग्रन्थों के सहारे से होना चाहिए। (८) इन्द्रियों के विषयों की तह को अपने अनुभव से पहुँचना चाहिए, और अनुभव के आधार पर

पुराने संस्कारों को निर्मूल करना चाहिए। यह बात मैं बहुत कठिन समझता हूँ, बिना अनुभवी पुरुष के सत्संग के ठीक-ठीक निर्णय करना असम्भव सा प्रतीत होता है। परन्तु आप विद्वान तथा बहुत कुछ अनुभवी हैं, और सत्संग भी अच्छे-अच्छे महात्माओं का किया हुआ है, शायद स्वयं निर्णय कर सकें। (६) अभ्यास के पीछे शीघ्र दूध नहीं पीना चाहिए, एक घण्टा ठैर सकें, तो अच्छा है। अभी तो जम्मू में गाड़ी रुकी हुई है, अपना संकल्प कुछ नहीं है, गाड़ी के चलाने वाले के अधीन है, यदि गाड़ी कहीं और जगह को गई, तो···जी से आप पता लगा सकेंगे, वरना अभी तो ठैरी हुई मालूम होती है। कफ़ नष्ट करने के लिए धोती कर्म, अथवा ख़ूब गर्म पानी पीकर वमन कर डालना, पीछे से हरड़ सूंठ के साथ खा लेना अच्छा रहता है।

५२—पत्र

धोखे से बचो।

ॐ ३—२—२०

जम्मू

श्रीमान्‌जी, बादामों की ऐसी आवश्यकता नहीं, इसलिये जल्दी नहीं है।······जी का एक पत्र और जो अभी आया है आपके पास भेजता हूँ, पढ़कर······जी को दे दें, और उनसे कह दें कि तीन बार पढ़कर फाड़कर फेंक दे और इस बात की सूचना मुझे दे दें और बस, अब नहीं भेजूँगा। इतनी आगाही काफ़ी है—

"धोखे दाड़िम के सुआ गयो नारियल खान।
खम खाई पाई सजा फिर लागे पछतान॥
फिर लागे पछतान बुद्धि अपनी को रोयो।
निगुनियन के संग वैठि गुण अपनो खोयो॥
कह गिरधर कविराय कहूँ जे योनी ओखे।
चूँच खटक के टूट सुआ दाड़िम के धोखे—"

५३—पत्र

पुरुषार्थ और धैर्य्य को कभी न छोड़ो।

ॐ १४—२—२०

जम्मू

श्रीमान्‌जी—भोग वलवान होता है। वड़े-वड़े ऋषि-मुनियों की वुद्धि को फेर देता है, फिर भी पुरुपार्थ के साथ लड़ाई होती है। यदि पुरुषार्थ वली हो, तो उसीको फ़तह होती है, इसलिए अभिमान से वचना चाहिए, और आलस्य रहित होकर आगे को प्रत्येक मिनट सावधान रहना चाहिए। अव आगे का टण्टा चुका।

५४—पत्र

अधिकारी के कुछ लक्षण।

ॐ ६—५—२०

कटरा

प्रिय......जी। आपसे हाथ जोड़कर यह प्रार्थना है, कि

आगे को जब किसीको मेरे पास भेजना चाहो, तो भेजने के पेशतर यह जरूर देख लें कि उसको (१) सच्चा वैराग्य है या नहीं। (२) जिह्वा के स्वाद से चित्त हटा हुआ है कि नहीं। (३) उसकी बात पर विश्वास करना चाहिये कि नहीं। (४) पाप से उसको घृणा हो गई है कि नहीं। (५) अपनी सेहत को ठीक रख सकता है कि नहीं, कुपथ्य करके बीमार न हो जाय। (६) तन, मन, धन वा समय को किफ़ायत से खरच करने वाला है कि नहीं। (७) यदि उसने कोई व्रत लिया, तो कष्ट होने पर उसको निभायेगा कि नहीं। (८) कोई काम दिखलावे के साथ न करे। (९) अपने जीवन तथा रहने आदि का प्रवन्ध मेरे ऊपर न डाले। (१०) इरादे का पक्का हो।

५५—पत्र

जिह्वा रस के जीतने की विधि

ॐ १४—५—२०

कटरा

प्रिय ··प्रणाम। तुम्हारा पत्र इस वक्त प्राप्त हुआ। मिशरी वा पंखे मिल गये हैं।···जी को समझा देना कि पाप से खूब बचे, स्वाद का ग़ुलाम न रहे, भोजन बहुत स्वादिष्ट बनाकर न खाये। दस पाँच दिन बिना-नमक मसाला वाली दाल, तथा साग भी खाया करे। सूंठ की फंकी ऊपर से ले ले। घी दाल में न डाले, जितना खाना हो पहिले पाँच व सात काली मिरच खा कर पी ले, फिर खुश्क फुलका, विना नमक मसाला वाली दाल-साग के साथ खाया करे। दूध में मीठा न डाले, जितना मीठा

खाना हो पहिले खा ले, ऊपर से दूध पी ले। ऐसा दस दिन करके छोड़ दे। १५ दिन पीछे फिर १० दिन वैसा ही करे, फिर छोड़ दे, फिर १५ दिन पीछे वैसा ही करता रहे। जब नमक खाने को चित्त करे तब जितना खाना हो उतना पीसकर मुँह में रख ले, और पानी के साथ निगल जाये। पीछे भोजन कर ले। आपके पास मैंने एक कार्ड भेजा था, सो पहुँच गया होगा। ...के पहुँचने की इत्तला बहुत देर में भेजी गई, हालांकि उसको कह दिया था कि...पहुँचते ही सूचना दे। ख़ैर, उसको सत्य पर खड़ा होने का उपदेश देते रहा करें। यहाँ मैंने उसमें यह बड़ी भारी त्रुटि देखी, कि ख़ासकर खान-पान की बाबत जो चीज उसको मना कर दी जाय और वह वायदा भी कर जाये कि उसको कभी न खायेगा, परन्तु पीछे अवश्य खा-पी लेता था, इसी वास्ते उसकी बीमारी भी बढ़ गई। मैं इतने दिन उसके मन की चालों को ही देखता रहा और उसको आगे उपदेश का अधिकारी नहीं पाया।

५६—पत्र

वैराग्य के बिना शान्ती नहीं प्राप्त हो सकती, सच्चा वैराग्य क्या है, उसका विचार और परीक्षा।

❀ ॐ ❀ २१—६—२०

कटरा

श्रीस्वामी...महाराज को सविनय प्रणाम पहुँचे। आपका कृपा पत्र बहुत इन्तज़ारी के बाद प्राप्त हुआ। वृत्त ज्ञात हुये।

आप तो विद्वान् हैं, आप सब जानते हैं, आपको कुछ लिखना केवल स्मरण कराना ही सा है। मेरे समझ में केवल इतना ही आया है कि वैराग्य के बिना शांति नहीं प्राप्त हो सकती। परम शान्ति परम वैराग्य से होगी, दूसरा उपाय नहीं प्रतीत होता। जब शरीर ठीक हो, इन्द्रियाँ बलवान् हों, सब साधन-सम्पन्न हों, और लोगों की प्रेरणा भी हो, उस वक्त यदि संसारी सैर से उपरती हो, तो वह सच्ची उपरती है। परन्तु जब शरीर में बल न रहा, रोग-ग्रस्त हो गया, निकम्मा होकर बैठ गया, उस वक्त की उपरती रोगी की उपरती के समान धोखे की उपरती है। सहारनपुर से अच्छा होते ही अजमेर, फिर आबू रोड, फिर उज्जैन, फिर अजमेर का चक्कर सिद्ध करता है कि मन की रुचि संसार से हटी नहीं है। जिस वक्त सच्चा वैराग्य होगा, तब वेदान्त की एक पंक्ति का स्मरण मात्र काफ़ी होगा, एक या दो पृष्ठ का पाठ तो बहुत ज्यादा मालूम होता है। "भाग्य जो करे, शरीर जैसा रहे, मैं कहीं रहूँ," "दुर्दैव जो करे वह भी करता रहे, वह उसका कार्य्य है, इसकी चिन्ता नहीं", यह वचन बड़े शूर-वीरता के और उस पुरुष के हैं जिसने शरीर को प्रारब्ध पर छोड़ दिया है और स्वयं उससे उपराम है; अर्थात् वह केवल द्रष्टा मात्र अपने आपको समझे हुए हैं। यदि यह स्थिति उस वक्त भी रहे जब कि शरीर स्वस्थ हो, तो ठीक है। परन्तु यदि यह स्थिति तंग होने पर ही है, तो धोखा है। इससे विशेष लाभ नहीं प्रतीत होता, कुछ तो लाभ अवश्य होगा। जब तक समता नहीं आई, तब तक शांति नहीं आती। वैद्य सम्मेलन में शामिल होने में चाह होना परन्तु काँग्रेस में सम्मिलित होने के लिये रुचि न होना, कुछ माने नहीं रखता है। भिन्न-भिन्न मनों की भिन्न-भिन्न रुचियाँ होती हैं। जब तक किसी संसारी व्यापार की रुचि है,

तब तक गड़बड़ ही समझना चाहिए। शरीर तो जैसे-कैसे रहता ही है, और कहीं न कहीं रहता ही है, इसमें आपकी क्या रही, जो आपने कहा, जैसे रहे और कहीं रहे। पिछले जीवन पर दृष्टि दीजिए, तो पता लगेगा कि शरीर को अपनी इच्छानुसार रखने की कोशिश करते हुए भी वह वैसा और उस स्थान पर नहीं रहा? जोराजोरी गड़बड़ भी हो जाया किया, और कहीं का कहीं भी रहता रहा। हाँ, कभी-कभी आपकी इच्छानुसार भी कुछ अंश में रहा, उसको आपने अपना पूर्ण अधिकार मान कर धोखा खाया। खैर, अन्त में धोखा मिट जाय, तो बेहतर है। और मनीराम अपनी वेहयाई (निर्लज्जता) को छोड़ दे, और कल्पित सृष्टि में रमण न करे, तो काम हो गया।

५७—पत्र

दुःख विचार और उसके छूटने का उपाय

* ॐ *　　जुलाई १९२०
कटरा

श्रीमान्जी—पंडित अम्बिकादत्त से जो कि आपके पास से होकर आये हैं मालूम हुआ कि आपका चित्त दुखित रहता है। जब दुःख का कारण उपस्थित होता है, तब दुःख होना स्वाभाविक है। परन्तु धैर्य्यवान को चाहिये कि सृष्टि के नियमों को देखता हुआ धैर्य्य के साथ दुःख को सहारे। जो होनहार है, वह प्रबल है, जिसके जरिये से होना हुआ, हो कर रहता है, यह नियम है। सब संसार में दुःख ही दुःख नजर आ रहा है, फिर क्या किया जाये। ईश्वर की मरजी ऐसी ही है, ऐसी अवस्था

में इसके सिवा कोई उपाय नहीं दीखता, कि घवड़ाना नहीं चाहिये, धैर्य्य रक्खें और शांति के साथ जो उपाय दुःख दूर करने का सूझे उसे करता रहे। समय पाकर दुःख आप ही खातमे को पहुँचेगा, फिर चैन हो जायेगा। विचार और धैर्य्य को कभी नहीं जाने दे। घवराहट और शोक ग्रसित-चित्त ठीक उपाय नहीं सोच सकता, वल्कि उल्टा काम कभी-कभी कर बैठता है, जिससे दुःख अधिक वढ़ जाता है। आपको विशेष क्या समझायें, आप जानते हैं और देखते हैं, कि मनुष्य पुरुपार्थ यानी कोशिश ही कर सकता है, फल उसके हाथ में नहीं है, मिले वा न मिले।

५८—पत्र

अधिकारी बनने के उपाय

❀ ॐ ❀ १२—८—२०

कटरा

प्रिय.. जी! आपका कृपा पत्र, ५) के मनी आर्डर सहित प्राप्त हुआ। आपको प्रथम भी लिखा था, कि जब कभी आवश्यकता होगी तब माँग लेंगे, उस वक्त रुपये भेजें। परन्तु आपने हमारी प्रार्थना पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। आपको लाहौर में समझाया था कि व्यवहार में रहते हुए पुरुष को बहुत कुछ करना है, यदि उसके बुद्धि हो और हिम्मत करके पुरुषार्थ पर डटा रहे। परन्तु मालूम होता है कि आपके पाप का फल का उदय है, इसी वास्ते आपको वह बुद्धि नहीं आती, और आपकी समझ में घटिया बातों की क़दर ज्यादा है। यदि आपको मेरे वचन पर विश्वास नहीं है, तो आप मेरे से क्या फ़ायदा उठा

सकते हैं। क्या आप समझते हैं कि यदि आप तीन मास की छुट्टी लेकर आ जायेंगे, तो मैं जो फ़ीस आपने भेजी है उसके बदले में आपकी नौकरी अवश्य करूँगा। यह ख्याल आपका बिल्कुल ग़लत है। जब तक मेरे चित्त में उत्साह नहीं होगा मैं कुछ नहीं कर सकूंगा। मेरे चित्त में उत्साह तभी हो सकता है, जब आपके दिल में तीव्र वैराग्य होगा। आपको निरन्तर कोशिश करते रहना चाहिए कि आपका मन विषयों से हट जाये, प्रथम इन्द्रियों को बाह्य विषयों से विरक्त करना चाहिए, और मन को नाम-मान-स्तुति से बे परवाह करना चाहिए। कर्तव्य कर्म करते हुये इनसे बे परवाह रहे। कोई कार्य्य नाम-मान या स्तुति के ख्याल से न करना चाहिए, बल्कि कर्तव्य समझ कर ही करे। यदि आप इस बात पर ध्यान नहीं देंगे, तो आपको पीछे पछताना होगा। और आपको यह भी निश्चय रखना चाहिए कि यदि आपमें वैराग्य नहीं होगा, तो जब कभी आयेंगे शायद वापस ही चला जाना पड़ेगा। शरीर का दुर्बल होना, चिन्ता, रोग, ब्रह्मचर्य्य का न होना, भोजन कम कर देना या अधिक परिश्रम से हो जाता है। आप ही जान सकते हैं कि क्या-क्या कारण हैं जिनसे आपका शरीर दुर्बल है। यदि आपको वैराग्य होगा, तब संसारी चिन्ता तो नहीं सतायेगी। बाक़ी के लिए आप जानें।

५६—पत्र

अभ्यासी को पुण्य और पुरुषार्थ बढ़ाते रहना चाहिये।

ॐ १७—६—२०

जम्मू

प्रिय ......आपका पत्र मिला। प्यारे! हमारे में तो कोई सामर्थ्य नहीं है कि किसी का कुछ बना सकें। जो पुरुष कुछ बनते हैं वह अपनी ही कोशिश तथा पुण्य से बनते हैं। आप तो पारसाल बारह दिन लाहौर में पास रहे भी, फिर भी तो हम कुछ न कर सके। इसलिये आपको अपने पुरुषार्थ तथा ईश्वर अनुग्रह पर पूरा भरोसा रखना चाहिये। प्रत्येक पुरुष का पुण्य तथा पुरुषार्थ कुछ विलक्षणता रखता है, इसलिये प्रत्येक शरीर तथा अन्तःकरण में विलक्षणता होती है। हिम्मत नहीं हारना चाहिये, लोगों के साथ तथा स्त्री के साथ मुक़द्दमों का निपटारा करके सम्भव है, आपको भी सावकाश पूरा मिल जाये। फिर भी नहीं कहा जा सकता कि भविष्यत् में क्या क्या देखना है। ब्रह्मचर्य्य पूर्ण रीति पर पालन करते रहें, और शरीर को आहार पूरा दें। स्वामी सत्यप्रकाशजी का सत्संग यथा सम्भव करते रहें, और उनकी सेवा भी करते रहें।

६०—पत्र

अभ्यास के अनुकूल ऋतु और आचार्य्य की अनुकूल रुचि का वर्णन

* ॐ * रविवार—२—१६२१

रियासी

श्रीमान्जी प्रणाम। आपके कृपा का बहुत मशकूर हूँ, सब

चीजें मेंहगा भीवर के हाथ ठीक तौर पर पहुँच गई। जो चीजें नहीं मिल सकीं उनके लिये फ़िकर न करें। जो आ गई हैं, उनसे काम बखूबी चल जायेगा। जिस वक्त और जरूरत होगी, तब आपकी सेवा में अरज़ की जायेगी। अब एक दरख्वास्त और है, जो पेश की जाती है। वह यह है कि महीना डेढ़ से चित्त का झुकाव आपकी तरफ़ ज्यादा मालूम होता है। उसका कारण यह है, कि अब वसन्त ऋतु आने वाली है और उस मौसम में अभ्यास में ज्यादा जोर देने का मौक़ा रहता है। यह तभी हो सकता है कि अभ्यास करने वाला और कराने वाला इतने नज़दीक हों कि रोज़-मर्रह ख़बर ली जा सके, वरना नुक़सान पहुँचने का डर होता है। मैं सरदी भर यहाँ से कहीं जा नहीं सकता। आप द्रूढ़ में कहते थे कि अगर मेरा आना जम्मू न हुआ, तो आपही यहाँ पर दो-तीन माह की रुख़सत लेकर आ जावेंगे। इसलिये अब आपसे मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या आप ऐसा प्रबन्ध कर सकते हैं कि यहाँ आ जावें; और अगर यहाँ आना ठीक न समझें, तो दुरुड़ पर ही आ जावें। वहाँ की आब-हवा और जगह भी यहाँ से ज्यादा उत्तम है। मैं उस मौके पर वहाँ पहुँच जाकर आपके ठैरने का उत्तम प्रबन्ध कर रक्खूं। जिसमें अभ्यास में विघ्न न पड़े। अपनी राय से मुतलेह करें, जिससे मैं अपना आइन्दा का प्रोग्राम सोच लूं। मेरा शरीर आहिस्ता-आहिस्ता ठीक हो रहा है, कमज़ोर बहुत हो जाने के कारण ठीक होने के लिये अरसा लेगा और कोई शिकायत नहीं है। इतना अरज करना ज़रूरी है कि घरमें आपको अभ्यास में ज़ोर से लगाने में विघ्न बहुत हैं। इस वास्ते उसका ख्याल छोड़ दें।

६१–पत्र

अभ्यास-काल में आचार्य्य के समीप स्थिति और स्थान

ॐ ७ फागुन-फरवरी१९२१
रियासी

श्रीमान्‌जी, प्रणाम। आपका कृपापत्र मिला, हाल जाना गया, चित्त खुश हुआ। जिस वक्त अधिक जोर देना होगा, तब अभ्यास के तरीक़े और नीज भोजन और रहन-सहन वग़ैरा में बहुत तबदीली होगी। उस वक्त बहुत निगरानी की जरूरत होगी, इसलिये मुझे पास ही रहना होगा। उस वक्त की जवाब देही को मैं ही समझता हूँ। खैर, ईश्वर महाराज जैसे ठीक समझेंगे वैसा करेंगे। एक मास के बाद जम्मू में गरमी ज्यादा हो जायगी। बेरून अज़ रियासत आप कौन-सा स्थान ठीक समझते हैं। जहाँ कम से कम वैसाख के आख़िर तक सरदी हो। मेरा तजुरबा दुरुड़ का है कि यहाँ वैशाख में भी काफ़ी सरदी रहती है। रुखसत के अभ्यास में यहाँ पर आने में कोई इतराज की बात हो, तो और किसी सरद जगह की तजवीज़ आपही पेश करें, उसका भी विचार कर लिया जाये। एक मास के बाद यहाँ से बिलाशक चल सकते हैं। मैंने तो फ़िलहाल दुरुड़ ही का प्रबन्ध सोचा हुआ है। और अगर आपका आना भी हुआ, तो वहीं कुटिया के पास ही आपका भी प्रबन्ध करना होगा, या कुटिया आपको दे दूँगा, मैं बाहिर छतरा में रहूँगा। वहाँ आने पर ही तय होगा। व्रत तो निराहार और निर्जल रहने का ही था, वह तो ख़तम हो गया। उसके लिये ईश्वर को हज़ार-हज़ार धन्यवाद है, कि उन्होंने

बड़े-बड़े तजुरबे दिखाये, जिनका मुझे पेशतर से गुमान ही न था, और बहुत ही लाभ हुआ, कि मन इस वक्त, हर तरह से रजा हुआ मालूम होता है। अब शरीर को ठीक करने पर दृष्टि है, इसने काम खूब दिया।

६२–पत्र

महाराजजी की शरीर-विषय उदासीनता।

ॐ ७ फाल्गुन-१९२१
रियासी

श्रीमानजी, प्रणाम। आपने जो चीजें भेजी थीं वह सब पहुँच गईं, आपकी कृपा के लिये बहुत मशकूर हूँ। मेरे में सामर्थ्य नहीं, जो कुछ आपका बना सकूं, मगर ईश्वर महाराज आपको फल अवश्य देंगे। मुझे अब इस शरीर से कोई लाभ नहीं प्रतीत होता, इसलिये इसकी रक्षा करना ही सख्त बिगार मालूम होती है। अगरचे आप जैसी आत्मायें खुशी से इसकी रक्षा करने में सहायता देती हैं; मगर मेरा चित्त न तो दूसरों पर इसकी रक्षा का भार डालने से खुश है और न हीं खुद पुरुषार्थ करके रक्षा करना चाहता है। फिर भी लाचार भिक्षा ही माँगनी पड़ती है। माँगना काम मुर्दों का है और देना काम जिन्दों का है। मुर्दा किसी का कुछ नहीं बना सकता। अच्छा, अगर परमात्मा आगे को जिस्म न दें तो ठीक, वरना उनकी मरजी।

६३–पत्र

महाराजजी का एक वृद्ध सुशिक्षित जिज्ञासु को अभ्यास विषय उपदेश–अभ्यास की सफलता ईश्वरानुग्रह और निज पुरुषार्थ पर निर्भर है।

ॐ १६ फाल्गुन २१
रियासी

श्रीमानजी, आपको बारम्बार प्रणाम हो। परसों चीजों के पहुँचने की सूचना दे चुका हूँ। कल आपका पत्र मिला, जिसका जवाब आपकी आज्ञानुसार लिख रहा हूँ। मेरे में कोई सामर्थ्य नहीं है जो मैं किसी का कुछ कर सकूं, मैं तो अभ्यासी की हालत देखकर सिर्फ नियम बतला सकता हूँ, और जरूरत समझ कर नियम भी बतलाना पड़ता है। अभ्यास में तरक्की होना या न होना ये सब अभ्यासी के पुरुपार्थ और ईश्वर अनुग्रह पर मुनहसर है। इसलिये अपने मनको अच्छी तरह से देख लें कि उसकी क्या अवस्था है। आपको मैं कुछ अधिक लिखना ऐसा ही समझता हूँ जैसे सूर्य्य के सामने दीपक ले जाना। क्योंकि, आपने अच्छे से अच्छे महात्माओं का संग किया हुआ है, और गीता भी आपको अच्छी तरह से मालूम है, उससे ज्यादह कोई क्या कह सकता है। इतना मैं जरूर देखता हूँ कि जिस मार्ग पर जवान चल सकते हैं, उस पर बूढ़े नहीं चल सकते ? इसलिये उनको दूसरे मार्ग पर चलाया जाता है, जिससे आराम के साथ चल सकें। आखीर में एक ही स्थान

पर पहुँच जाते हैं। बल्कि यह भी देखा जाता है कि कोई-कोई बूढ़े इतनी जल्दी तरक्की कर गये कि जवान पीछे रह गये। यह सब उनकी श्रद्धा और पुरुषार्थ और ईश्वर की कृपा का नतीजा है। मुझे किसी को अभ्यास में जोर से लगाना सख़्त क़ैद मालूम होती है। और पिछले साल में मैंने कई लोगों को ठीक अधिकारी न समझ कर इनकार कर दिया, जिसका नतीजा यह हुआ कि वे मेरे से बहुत नाराज़ हो गये और निन्दा करने लगे। मगर मैंने निन्दा को अमृत समझ कर उनके लिये क़ैद में पड़ना किसी तरह से स्वीकार नहीं किया। अब तो अभ्यास कराना और भी ज्यादा बंधन मालूम होता है, मगर फिर भी ईश्वरीय प्रेरणा ज़बरदस्त है। जहाँ कहीं उनको फँसाना होगा, वहाँ वे फाँस ही देंगे। और चित्त को उधर ही झुका देंगे। नियमों से आपको कोई घबड़ाने की ज़रूरत नहीं। नियम तो आप सब पालन कर सकेंगे, अगर आपमें इस मार्ग पर चलने की श्रद्धा है। सिर्फ़ तजुर्बा के तौर पर करना चाहिये, अगर नियमों के पालन करने में कमी न की गई, तो एक मास में तजुर्बा हो जायगा, कि आया इस तरीक़े पर चलने से आपका मन कुछ पकड़ा जायेगा, या नहीं। इसलिये आप ख़ूब सोच-समझ कर जैसा फ़ैसला करें, उसकी इतला मेरे को जल्दी दें। यहाँ पर गरमी बढ़ती जाती है। जब तक आपका फ़ैसला न जान लूं, तब तक कहीं जाने का फ़ैसला नहीं कर सकता। चित्त तो यही चाहता है कि स्वतंत्र विचरूं; मगर देखिये ईश्वर को क्या मंजूर है।

६४—पत्र

अभ्यास सम्बन्धी कुछ विशेष बातें ।

❀ ॐ ❀ ५ चैत २१

रियासी

श्रीमानजी प्रणाम। आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ, हाल जाना गया। इस साल समय उलटा-पुलटा चल रहा है, देखिये ईश्वर क्या करते हैं। मौसम को देखकर अभ्यास करना चाहिये। अगर गरमी जियादह मालूम होती हो, तो सुवह को अभ्यास करने के बाद कुछ बादाम डलवा कर, ठंडाई बनवा कर पी लें। बादाम ठंडे पानी में पहले से भिगो दिये जायें और चख कर मीठे डालें, करुवे फैंक दें। अगर इतने पर भी .खुशकी तंग करे, तो अभ्यास कम करें। अभ्यास करने के वक्त बायाँ स्वर हो तो अभ्यास शुरू करना अच्छा रहेगा। अगर बायाँ स्वर न चलता हो, तो किसी तरकीब से बायाँ स्वर कर लिया जावे। अगर आपको और कोई तरकीब न मालूम हो, तो सब से सुगम तरकीब यह है कि दाहिना पासा नीचे और बाँया पासा ऊपर करके लेट जाने से थोड़ी देर में बायाँ स्वर तेज़ हो जायगा। तब बाद को आसन में बैठकर अभ्यास शुरू करें। पीछे अभ्यास के अगर फिर दाहिना स्वर तेज़ हो जाय, तो कुछ मुज़ायिका नहीं। पत्र द्वारा अधिक लिखने में नहीं आ सकता, न समझ में आ सकता है। इसलिये माफ़ करें। अब गरमी बढ़ती जाती है, इसलिये अभ्यास का कमोबेश करना आप अपने तजुर्बे के मुताबिक आप ही ठीक कर लें। जिससे कोई जिस्मानी गड़बड़ी न वाक्या हो।

६५—पत्र

गृहस्थ में ब्रह्मचारी रहना बहादुरी है।

* ॐ *   १६—२—२२

वृन्दावन

श्रीमानजी, प्रणाम। कृपा पत्र आपका मिला, हाल जाना गया। जो व्रत आपने धारण किया है वह वाक़ई शूरवीरता का है, ऐसा करना हर एक आदमी का काम नहीं है। विषय-प्राप्त होते हुए विषय से बचना बहादुरी है। आपका पत्र जो कनखल में आया था, मैंने मास्टर·········जी को दिखलाया था, वह पढ़कर आपकी बहुत तारीफ़ करते थे, और उन्होंने उससे यह उपदेश लिया, कि ख़ुद भी ऐसा ही व्रत धारण करने के लिये हौसला किया। बाबू·········जी सुनकर दंग रह गये। बग़ैर किसी की तबीयत को जाने हुए उसके लिये कुछ कहना बहुत ठीक नहीं मालूम होता। और आप चूंकि अपनी स्त्री के स्वभाव और प्रकृति से वाकिफ़ हैं, इसलिये आपही उसे जैसा उचित समझें समझा दिया करें। जब आपसे मिलने का इत्तफ़ाक होगा, तब इस विषय में बात-चीत हो सकेगी। अभी इतना ही कह सकते हैं, कि अगर मुमकिन हो, तो उसको कह दीजिये कि जितना हो सके, गायत्री मंत्र का जाप करे। भोजन कुछ कम खाये। खटाई-लाल मिर्च से परहेज़ रक्खे। अगर उसको हानि न पहुँचे तो गरम चीज़ों का सेवन कम करे। आपका जाप जैसा है, वैसा ही बिलाशक चलने दीजिये। अभी रदोबदल की जरूरत नहीं है।

६६-पत्र

व्यवहार

* ॐ * ४—६—२२
कटरा

प्रिय, ····जी। पेश्तर तुमको लिख चुका हूँ कि जब जरूरत होगी तब लिखूंगा। अगर कभी तुम जिद से भेज दोगे तो वापस हो जावेगा। धर्मशास्त्र के मुताबिक़ दस फ़ी सदी अपनी आमदनी का गृहस्थी को धर्मार्थ ख़र्च करना चाहिये। इसमें से मैं नहीं लेना चाहता। अगर मुमकिन हो, तो सितम्बर और अकतूबर की रुख़सत लेकर आना। मैं उम्मीद करता हूँ कि आइन्दा को हर एक बात का ख़याल रक्खेंगे।

संन्यास से गृहस्थ में जाना शास्त्र-विरुद्ध है।

६७-पत्र

* ॐ * बुधवार २१—६—२२
कटरा

प्रिय·······जी। तुम्हारा पत्र आया, हाल जाना गया। यह मेरी भी भूल है कि मैं अपने कष्ट की परवाह न करके भी दूसरे की प्रार्थना पर फँसकर इतनी सहायता देने को तैयार हो जाता हूँ, तो फिर वह सँभाल नहीं सकता; जैसे घड़े में अधिक पानी डालने से निकल पड़ता है। ख़ैर, चूँकि मैं तो नेकनीयती से करता हूँ, परमात्मदेव मुझे तो उसके बदले में अच्छा ही फल देते हैं। परन्तु दूसरा जो बनता है और असलीयत को छिपाता

है, वह गिरता ही है। उसकी तरक्की रुकी रहती है। संन्यास से गृहस्थ में जाने के लिए कोई विधि नहीं है, और शास्त्र की दृष्टि में यह इतना बड़ा पाप है, कि किसी प्रायश्चित से उसकी शांति नहीं हो सकती। इसलिए शास्त्र इस विषय में चुप है। एक दिन का उपवास तथा तीन हजार गायत्री का जाप तो कोई माने नहीं रखता। जब मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो गई, और उसको ईश्वरीय दण्ड का भय न रहा, तब वह घर जाने से नहीं रुक सकता। यदि राज-दण्ड होता, तो जरूर डरता। खैर, जो कुछ हुआ सब अच्छा ही है। मेरा दृढ़ विश्वास है, कि जो सच्चे दिल से ईश्वर की शरण में जाता है उसको वे जरूर बन्धन से मुक्त करते हैं। जो लोग संन्यास से गृहस्थ में ले जाते हैं, उनकी बुद्धि पर मुझे अफ़सोस आता है। वे प्रायश्चित्त की Philosophy (तत्त्व) को नहीं समझते।

६८—पत्र

गृहस्थ बिना उलझन के नहीं होता।

ॐ २२—८—२२
कटरा

प्रिय ··· जी, स्वास्थ्य तो ईश्वर-कृपा से इस वक्त, अच्छा है आगे ईश्वर जाने।

"धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपत काल परखियें चारी॥"

वह गृहस्थ ही नहीं जिसमें कुछ न कुछ उलझन न बनी रहे, बिना उलझन के कोई घर खाली शायद ही मिले।

६९—पत्र

संयोग-वियोग, प्रारब्ध है, वही होता है।

ॐ नवम्बर १६२२
जालन्धर

प्रिय,……जी, जो शिकायत है, वह खाने की गड़बड़ी से है। भोजन शरीर के अनुकूल होना चाहिये। तुमको डरना नहीं चाहिये, पिछले कर्मों के मुताबिक़ विघ्न तो होते ही रहते हैं। परवाह नहीं करना चाहिये। संबंधियों का संयोग और वियोग प्रारब्ध के मुताबिक़ होता है, चित्त को कहीं फँसने ना देना बहादुरी है।

७०—पत्र

महाराजजी की ईश्वर-परायणता।

ॐ १—१२—२२
जालन्धर

पूज्य स्वामीजी महाराज, प्रणाम। आपका कृपा पत्र कल शाम को प्राप्त हुआ, पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। औषधि के बारे में आपका विचार श्रेष्ठ है। कल मुलतान जाने का विचार है, आदमी लेने को आया है। पता नहीं, वहाँ कब तक रहना हो। सफ़र करने में तकलीफ़ प्रतीत होती है; परन्तु फिर भी करना ही पड़ता है। मेरा मन बड़ा नीच है, मालूम नहीं कितने काल तक प्रभूजी अभी इस पतित को अपनी शरण में लेने से इन्कार करते रहेंगे। छोटे मुँह बड़ी बातें, शोभा नहीं पातीं। परन्तु

पुरुषार्थ हीनता के कारण अपनी अयोग्यता को देखकर प्रभु के दया-भण्डार से दया-दान के अतिरिक्त और कोई बात इसके कल्याण करने वाली नहीं सूझती। अब जैसा वे उचित समझेंगे करेंगे। अपना वस तो कुछ चलता ही नहीं। आपका हृदय तो शुद्ध है, आपही यदि कृपा करने में हानि न समझें, तो कभी-कभी आशीर्वाद देते रहें।

७१—पत्र

ईश्वर ही दुःख निवारक है।

* ॐ *   ६—१२—२२

जालन्धर

श्रीमती देवीजी, तुम्हारा पत्र कल प्राप्त हुआ। वृत्त ज्ञात हुआ। देवीजी क्या तुम मेरे ᐧ न की नीचता को नहीं जानती? यदि इसमें सामर्थ्य होता तो तेरे को दुःखी क्यों होने देता। भगवान ही सबको कर्मानुसार सुख-दुःख देते हैं। जिन्होंने दुःख दिया है उन्हींसे उसके दूर करने की प्रार्थना करनी चाहिये। यदि तेरे को विश्वास है, तो सच्चे दिल से उनकी शरण में जाओ, तेरे दुःख को आपही निवारण करेंगे।

७२—पत्र

व्यवहार

* ॐ *   १३—५—२३

कटरा

प्रिय ......जी, जो पत्र तुम्हारे पत्र के उत्तर में जालन्धर से

भेजा था, वह तुमको मिला कि नहीं मिला। उस पर तुमने क्या विचार किया। अब तुम्हारी शारीरिक तथा मानसिक अवस्था कैसी है, घर का क्या हाल है।...का क्या हाल है? उसको धैर्य देते रहना, और सलाह देते रहना। स्त्रियों के फंदे में आकर, ढीला पड़कर, गिर न जाये, वर्ना जन्म भर पछताना पड़ेगा। उसको चाहिये कि उसकी स्त्री या अमां हजार विश्वास दिलायें कि वे उसकी आज्ञा पर चलेंगी, परन्तु वह कभी विश्वास न करे। हमेशा सावधान रहे। यदि नामर्दी करेगा, तो पीछे हाथ मींजते रहेगा, और जीवन यूं ही नष्ट करेगा। बाबू लोग केवल resolution (प्रस्ताव) पास करने में कृत-कृत्य हो जाते हैं, अमल की इतनी परवाह नहीं करते, तभी तो ठोकरें खाते रहते हैं।

७३—पत्र

पुरुषार्थ, प्रारब्ध का विचार।

❀ ॐ ❀ ५—६—२३

कटरा

प्रिय ....जी। स्थान का असर अवश्य देखा जाता है। स्त्रियों को बात वे ही सुनते हैं जिनकी बुद्धि उनसे घट होती है। जब प्लेग फैलती है, तब स्थान क्यों छोड़ते हैं। खाने-पीने का परहेज क्यों किया जाता है। जो चाहो सो खाओ, यदि प्रारब्ध में दुःख होगा, तो आयेगा, वर्ना नहीं आयेगा। परन्तु यहाँ पर बे-परवाही नहीं सहार सकते। इसी तरह अन्य चीजों का भी परहेज रखना जरूरी है। पुरुषार्थ से प्रारब्ध प्रबल होगी, तो अपना असर कुछ जरूर जतायेगी, वर्ना दब जायेगी।

७४—पत्र

मृत्यु की तय्यारी पहले ही होनी चाहिये।

ॐ सोमवार १२—६—२३
कटरा

प्रिय ··जी ! तुम्हारा पत्र आया, वृत्त ज्ञात हुये। यार यही गति एक दिन अपनी भी होना है, उस दिन के लिये पहले ही से जो तैयार रहते हैं, वे ही उस वक्त धैर्य्य के साथ कूच करते हैं, वरना अनेक प्रकार की वासनायें मन को व्याकुल कर देती हैं। तुम आप समझदार हो, तुम्हारे लिये यह कथन कोई नई बात नहीं है।

७५—पत्र

पूर्ण वैराग्यवान पर कोई कर्तव्य नहीं है।

ॐ १—६—२३
कटरा

प्रिय····जी तुम्हारा पत्र आया, हाल जाना गया। जो शब्द मेरी बावत माईजी ने लिखाया है, वह बहुत बढ़कर है। उनके मैं बिलकुल योग्य नहीं हूँ। अगर उन शब्दों पर विश्वास करोगे, तो धोका खाओगे। मेरे में सामर्थ्य नहीं कि किसी दूसरे का बेड़ा पार कर सकूँ। तुम्हारी स्त्री अपना बेड़ा आपही पार कर सकती है, अगर वह चाहे। स्त्री का श्राप और पिता के फ़रज़ की बावत तुम बुद्ध भगवान् का जीवन पढ़कर अपना आपही फ़ैसला कर सकते हो।

७६—पत्र

कोरी Philosophy (तर्क) से काम नहीं चलता, अमली जीवन श्रेष्ठ है ।

* ॐ * सोमवार ५—११—२२

जम्मू

" यार, पत्र तो तेरा आ गया, परन्तु तसल्ली देने वाला नहीं है। ख़ैर, तू इसीमें कल्याण समझता होगा। यह बात अभी तक ठीक-ठीक समझ में नहीं आती कि जब शरीर बलवान हो तब तो विषय न दबायें। जब शरीर कमज़ोर हो, तो कमज़ोर करने वाले विषय दबा लें। और ख़ास कर जबकि घर में गड़बड़ी की वजह से मन अशांत हो, तब ऐसा करने को उद्यत हो जाये। जो हो, यदि संस्कार समूल नष्ट न हुआ, तो आगे को फिर यही चक्र तैयार है। कोरी बातों की Philosophy (फ़िलासफ़ी अर्थात् तर्क) से कुछ काम नहीं बनेगा, अमली Philosophy (मूल तत्त्व) ही कार-आमद होगी।

७७—पत्र

ध्यान, जाप और योग निद्रा का परस्पर क्रम।

* ॐ * ७—१२—२३

मुल्तान

प्रिय ···· जी, तुम्हारा पत्र कल प्राप्त हुआ, वृत्त ज्ञात हुआ। ध्यान करते-करते जो निद्रा की सी अवस्था आती है,

वह स्वाभाविक है। इसलिये जब चित्त ध्यान करने को बिलकुल न चाहे और चुप रहना चाहे, शान्त रहना चाहे, तब ध्यान पर ज़ोर मत दो, और उसे चुप रहने दो। जब कुछ देर पीछे चलायमान हो जाये, तब फिर जाप या ध्यान में लगा दो। जब फिर शान्त रहने की अवस्था आये, तब फिर ध्यान बन्द कर दो। जब तुम कृष्ण महाराज से बारम्बार प्रार्थना करोगे, तब वे आप ही तुमसे कहेंगे कि वे तुमसे कब से बात चीत करेंगे। यदि तुम स्वयं ऐसा न कर सकोगे, तो जब मिलना होगा, तब देखा जायगा। हरिद्वार आने का अभी तो कोई संकल्प नहीं है, पीछे की भगवान जाने। स्त्री के विषय में कृष्ण महाराज ही ठीक उपदेश दे सकेंगे—मैं इस बात में कुशल नहीं हूँ।

७८—पत्र

व्रत-पालन में प्राण तक को समर्पण करने को उद्यत रहना चाहिये।

ॐ 　　　१६—१—२४

मुलतान

प्रिय······ जी, पत्र तुम्हारा मिला, वृत्त ज्ञात हुये। चित्त कुछ प्रसन्न हुआ। बहुत प्रसन्न यों नहीं हुआ कि व्रत करके पूर्ण न करने से जो पाप होता है उसका प्रायश्चित्त करना ज़रूरी होता है, यह बात समाज तथा अँगरेजी सभ्यता के लिए कुछ क़दर वाली नहीं। इससे यह बेहतर है कि व्रत लिया ही न जाय, या लेने से पेश्तर सोच-समझ लेना चाहिए, कि लूँ या न लूँ। यदि लाभदायक समझकर इस निर्णय पर पहुँचो कि अवश्य लूँ,

तो ज्ञान जाये तो जाये, लोग तंग करें, तो करें, संसारी हानी हो जाये तो हो जाये, पर व्रत न टूटे। जब-जब लाचार होकर भी व्रत टूटे, तो प्रायश्चित्त करे। वरना इस मख़ौल का नतीजा और भी बुरा होता है। आठ प्रकार के मैथुन से बचना चाहिए। स्त्री की तरफ़ मित्र दृष्टि रक्खे, स्त्री भाव को दूर करके व्यवहार करे। अपनी कमजोरी को हमेशा देखता रहे, और उसके दूर करने के यत्न में लगा रहे। कुछ या विशेष सफलता होने पर अभिमान न आने पावे। दूसरों के छिद्रों पर ज्यादा ध्यान न देता रहे। जरूरत के मुताबिक़ ही देखे, और उनके दूषणों की वजह से उन पर तरस लाये।

७९—पत्र

अभ्यास

※ ॐ ※ २०—२—२४

मुलतान

प्रिय…जी, तुम्हारा पत्र पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। (१) यदि शब्दों को तुम न पढ़ सको, या न पढ़ना चाहो, तो जाने दो, कोई हरज नहीं है। (२) जब कुछ दिन पीछे कृष्ण महाराज तुमसे बात-चीत करेंगे, तब ब्रह्मचर्य्य के विषय में उन्हीं से तय कर लेना।

८०—पत्र

गृहस्थ में रहता हुआ योग के लक्ष्य पर पहुंचना क़रीब-क़रीब असम्भव है।

* ॐ * २—४—२५

जालन्धर

प्रिय•••जी, मुझे अफ़सोस है, कि मैं तुम्हारे उपदेश को सत्य से दूर और स्वार्थ से प्रेरित हुआ समझता हुआ उस पर अमल न कर सका। अफ़सोस इससे हुआ कि तुम्हारी इच्छा को पूर्ण न कर सकने से तुमको दुःख हुआ होगा। जितने गृहस्थी अभ्यासी देखता हूँ सबके सब सख्त बन्धन की शिकायत करते हैं, और योग के लक्ष्य पर चलने को अशक्य हैं। इस वजह से अपने अंतःकरण तथा अनुभव के प्रतिकूल किसीको उपदेश देने से हृदय कम्पायमान होता है। इसलिये आपसे सविनय प्रार्थना है, कि आप मेरी इस कमज़ोरी को यदि उचित समझें, तो क्षमा करें। और आगे को मुझे फिर से कोई ऐसे कठिन कार्य्य के लिए प्रेरित न करें ताकि मुझे फिर न कर सकने पर क्षमा के लिए आपको न कहना पड़े। का हृदय तो अच्छा है, परन्तु अभी धर्म शास्त्र को समझा हुआ नहीं है। वाचक शक्ति विशेष है, विचार शक्ति कम है। उसकी धार्मिक प्रवृत्ति को देखकर चित्त प्रसन्न होता है। उसकी रुचि स्वयं गृहस्थ करने की है, इसलिये उसको रोका नहीं। परन्तु उसके प्रश्न करने पर कि क्या गृहस्थी योगाभ्यास कर सकता है यह कहना पड़ा कि गृहस्थ में रहता हुआ योग के लक्ष्य पर पहुँचना क़रीब-क़रीब असम्भव है। जिनके पहिले जन्मों के जबरदस्त संस्कार हों और नाम मात्र कमी रहती हो, उनके लिए सम्भव है, कुछ कठिनाई न पड़े। इस पर उसने कहा कि वह स्पष्ट कह देगा कि उसकी स्त्री उसके योग-साधन के मार्ग में विघ्न न डाले। तब मैंने कहा कि प्रथम ही से शर्त करा लेने पर और पीछे मित्र भाव से यदि व्यवहार कर सको, तो विशेष बन्धन न होगा, और बहुत-कुछ

साधन कर सकोगे। संयोग का होना तो प्रारब्ध के अनुसार होता है। जिनका मेल होना है वह अवश्य होगा। फिर हम किसी बात के भय से किसीको धोखा देने की कोशिश करके पाप के भागी क्यों बनें।

८१—पत्र

सृष्टि को नाटक की नाईं देखते रहो।

ॐ ५—४—२४
जालन्धर

प्रिय····जी, कल यहाँ से जाने की तैयारी है, जैसा कि तुमको···जी के पत्र से विदित हो गया होगा; क्योंकि तुम सबके दुःख को सुनते हो, इसलिये मैं भी अपना दुःख तुमको सुनाता रहता हूँ। मुलतान से आने पर चार-पाँच दिन पीछे नज़ले के लक्षण प्रतीत होने लगे, आखिरकार जारी हो ही गया। उसका नाटक अब बन्द हो गया है। कश्मीर जाने से चित्त केवल घबराता ही नहीं बल्कि उदासी और बिगाड़ भी प्रतीत होती है, परन्तु फिर भी जा ही रहा हूँ। देखिये क्या बनता है। यह पता नहीं कि ऐसी बिगाड़ कब तक भुगतना पड़ेगी। अच्छा जैसा होना होगा, होता रहेगा। जैसा कुछ किया होगा, वह आगे आ रहा है। तुम्हारे·· जी का क्या हाल रहा, सबकी सेवा करते रहो और सृष्टि का नाटक देखते जाओ। पीछे फिर से देखने की इच्छा शेष न रहने पाये। नहीं तो फिर यही झगड़ा आगे आनकर खड़ा हो जायेगा। यदि बाजीगर की वृत्ति रहे, कि मदारी ने खेल तो दूसरों को दिखला दिया, परन्तु अपने आप उसमें आसक्त न हुआ, उसका लक्ष्य केवल लोगों को प्रसन्न

करके पैसा कमाना होता है। इसी तरह यदि केवल ईश्वर को प्रसन्न करना लक्ष्य हो तो ठीक है, वे आपही सँभालेंगे—

سپردم بتو مایۂ خویش را　تو دانی حساب کم و بیش را

(सुपुरदम बतो माइये-ख्वेश रा। तो दानी हिसावे-कमो-बेश रा ॥)

कृपा-दृष्टि रखना, सब प्रेमियों को यथा योग्य। तुम्हारे चित्त में आये, तो अपना हाल लिखा करना; यदि उचित न समझना या विगार समझना, तो मत लिखना। इस बन्धन से मुक्त हो, इसमें स्वेच्छाचारी रहना।

पत्र—८२

ॐ　　१५—११—२४
जालन्धर

प्रिय ··· ···जी—कठिन व्रत शरद (असु, कार्तिक) या बसंत-ऋतु में करना ठीक होता है···जी के पिताजी भी अब प्रायश्चित्त की महिमा को समझ गये हैं, और उनका भी दृढ़ संकल्प है कि एक चान्द्रायण व्रत वसन्त के प्रारम्भ में जरूर करेंगे। आगे ईश्वर जाने।······जी तथा·········जी ने भी गुरु-कुल में दीप-माला के अवसर पर तीन दिन निराहार व्रत रक्खा और मौन रहे। कमरे में बन्द रहे, और गायत्री का जाप करते रहे। व्रत शास्त्र की विधि से पूरा फलदायक होता है, केवल उपवास तो ऐसा ही है जैसे रोगी का उपवास—

८३—पत्र

व्रत-पालन के नियम।

ॐ २—१२—२४
जालन्धर

प्रिय……जी—तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ—हाल जाना गया, जिस दिन तुमने व्रत आरम्भ किया था तुम्हारा शरीर अयोग्य था, तुम्हारे शरीर को देखकर डर आता था। इसीलिये तुमको फल खिला दिया गया था। अब उसके टूट जाने में कोई आश्चर्य नहीं। व्रत हमेशा शास्त्र-विधि के अनुसार होना चाहिए, तभी फल दायक होता है। शास्त्र की आज्ञा है कि (१) रोगी तथा अयोग्य शरीर को निराहार कदापि नहीं करना चाहिए (२) शास्त्र के आदेशानुसार जाप होना चाहिए (३) व्रत-पूर्ण होने पर हवन-शास्त्र-विधि के अनुसार कराके ब्राह्मण-भोजन और दक्षिणा देना चाहिए। मेरी राय में यदि तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा रहे तो, Xmas (बड़े दिन) में फलाहार करके मौन रहते हुये, जितने दिन हो सके गायत्री का जाप करते रहो। प्रत्येक वार गायत्री के प्रथम और पीछे ऐसे मन्त्र का भी जाप करते जाओ, जिसमें ईश्वर से अपने अपराधों की क्षमा के लिए प्रार्थना हो। इसको सम्पुट कहते हैं। व्रत के समय काल में यम-नियम का पूर्ण रीति पर पालन होना चाहिए। आगे को स्त्री के साथ खासकर, और यथा सम्भव सबसे हँसी करना बिलकुल छोड़ दो।

८४—पत्र

व्रत-भंग में प्रायश्चित्त वा दण्ड। भोग और योग साथ साथ नहीं हो सकते। पुरुष में स्त्री-पन नहीं होना चाहिये।

❀ ॐ ❀ १०—१२—२४
जालन्धर

प्रिय……जी—तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ, वृत्त ज्ञात हुये, तुमसे हवन करा कर दो बातों के लिए कहा गया था—(१) भोजन बिना नमक मसाले का होना चाहिए, यदि कभी नमक या किसी गर्म मसाला हल्दी वग़ैरा की आवश्यकता हो, तो सब मिला कर एक या दो ग्रास में खा लेना चाहिए, (२) ब्रह्मचर्य भङ्ग करने पर जुरमाने के अतिरिक्त तीन दिन उपवास रखना चाहिए, केवल शाम को आध सेर दूध पीना चाहिए। तुमने जुरमाना तो अदा कर दिया, परन्तु उपवास का कुछ ज़िकर भी नहीं किया। दूसरी बात यह है कि तुमने भोजन की बाबत कुछ भी नहीं लिखा कि आया निमक-मसाला छोड़ दिया, या नहीं छोड़ा। यदि अब तक निमक-मसाला न छोड़ा हो, तो पत्र के पढ़ने के बाद फ़ौरन त्याग कर देना चाहिए, साग भाजी को केवल घी में भून सकते हो। आगे को ब्रह्मचर्य्य-भङ्ग होने पर तीन दिन के उपवास के साथ दण्ड देना होगा। यदि ऊपर की बातें पर चलना मंज़ूर नहीं हो, तो अभ्यास करना ही वृथा होगा; क्योंकि भोग और योग साथ ही साथ ईश्वरीय नियम में तो है नहीं? शायद तुम्हारे नियमों में हों तो तुम जानो। पत्र का उत्तर शीघ्र देना। तप के बिना इस मार्ग में उन्नति होना असम्भव है। यदि ऊपर लिखी बातों पर पूरा ध्यान नहीं रक्खोगे, तो जो-कुछ अब तक हुआ है वह भी न रहेगा, आगे चलना तो दूर रहा। तुम्हारी बुद्धि तो बहुत मलीन है, और मन गन्दा है। तुमको अच्छी तरह से समझा दिया था, वस्तू की आँख नाक ज़बान वग़ैरः से परीक्षा करके ग्रहण करना चाहिए, परन्तु तुम तो स्त्री के चरणों के दास हो, तुम्हारे में इतनी भी अक़ल नहीं है, जितनी तुम्हारी

स्त्री में है; न ही उतना हौसला है। फिर तुम परीक्षा के लिए कब तय्यार हो सकते हो। तुम तो स्त्री से काँपते हो, मानो वह तुम को खा जाएगी, क्योंकि तुमने समझ रक्खा है कि तुम स्त्री के दास हो, वह तुम्हारी मालकिन है। तुम कमा-कमा कर उसके चरणों में लाकर रखते जाओ, वह जैसा चाहे वैसा करे। यदि तुम्हारे में स्त्री की ग़ुलामी छोड़ने की हिम्मत नहीं है, तो उसके पैरों पड़ो और अपने कल्याण के लिए हाथ जोड़कर उससे प्रार्थना करो, वह तुम्हें रास्ता दिखलाए। और यदि मर्द बनने की हिम्मत है, तो लँगोट कसकर मैदान में आ जाओ, और ऊपर बताए हुए नियमों पर चलने के लिए कटि-बद्ध हो जाओ। जैसा चित्त हो, वैसा करो।

८९—पत्र

कर्म के विषय में केवल शास्त्र ही प्रमाण हैं।

(व्रत)

❀ ॐ ❀ १५—१२—२४

जालंधर

प्रिय ··· जी, तुमको जो पत्र मैंने लिखा था उसमें शायद तुमको कुछ भ्रांति हो गई हो। इसलिये यह फिर लिखता हूँ। (१) कर्म-काण्ड हमारी बुद्धि से परे है, केवल वेद से जाना जाता है। (२) जितना ज्ञान वेदों का प्राचीन ऋषियों को था आज-कल के लोगों को नहीं है। (३) कर्म के लिये ऋषियों के वाक्यों को ही प्रमाण मानने में हम जवाब-देही से बच सकते हैं। (४) ऐसी अवस्था में जैसा कुछ सुपात्र ब्राह्मण तलाश

करने से मिले, उसीसे काम लेना ठीक है। (५) प्रायश्चित् में जाप ही का विधान है, दूसरे ग्रन्थों की सैर करने के लिये आज्ञा नहीं है। केवल जाप करने में कठिनाई पड़ती है—यही मानसिक दण्ड है।

८६—पत्र

जिह्वा—स्वाद त्यागना तप है।

❀ ॐ ❀   २१—१२—२४
जालंधर

तुम्हारा पत्र मिला। शाबाश, ब्राह्मण-कुल में जन्म लेनेवाले में ही ब्राह्मणत्व-धर्म हो सकता है, वह ही तप कर सकता है। जिह्वा के स्वाद में न फँसना तप है, क्योंकि इससे मन तपता है। तभी तो विना नमक-मसाले के दाल-साग तुमको नहीं भाता। अभी तो तुम मन-भाता भोजन चाहते हो, परन्तु यह कमज़ोरी है। तुम इस 'भाते' में कब तक फँसे रहोगे। तुमको हठ से दाल-साग विना नमक-मसाले के खाकर एक हफ़्ते देखना चाहिये, फिर वैसा ही भाने लगेगा।

८७—पत्र

स्वप्न-दोष दूर करने के उपाय।

❀ ॐ ❀   १—१—२५
जालंधर

प्रिय·····जी। अभ्यासी को झूठी कल्पनाओं से लाभ

नहीं हो सकता। केवल इतनी कल्पना कर लेने से क्रोध आदि शत्रु नहीं जा सकते। हर वक्त उनसे पैदा हुये दूषणों को ध्यान में रखना चाहिये। और व्यवहार में जब क्रोध आदि की वृत्ति उदय हो जाये, तब उसके अधीन होकर नहीं चले; बल्कि मन को फटकार करके और ईश्वर से प्रार्थना करके फ़ौरन उस वृत्ति को नष्ट करना चाहिये। पीछे जब चित्त ठीक हो जाये, तब यथोचित्त बात-चीत या कर्म करें। शत्रु के विरुद्ध चलना पड़ता है, न कि उसके अधीन होकर। स्वप्न-दोष यदि काम के संस्कार के वश हो कर होता है, तो सख्त दूषण है। यदि ऐसा नहीं है, तो कारण का पता लगाना चाहिये कि किसी शारीरिक दोष से है। (१) यदि वीर्य्य पतला होने से हो, तो पुष्टि-कारक पदार्थों का सेवन होना चाहिये, (२) कभी भोजन इतना हो जाता है कि उससे बना हुआ वीर्य्य शरीर में जज्ब नहीं हो सकता, (३) कभी पेशाब लगा हुआ होता है, और उठने में आलस्य होने से पड़े रहते हैं, (४) कभी चित लेटे हुये अधो-वायु रुककर ऊपर को ज़ोर मारती है, (५) कभी प्राणों की गति ऊपर को होती है, और उसमें किसी कारण से रुकावट पड़ जाती है, जैसा एक पासा नीचे किये हुये लेटना, (६) दाहिना पासा ऊपर करके एक या दो बजे के पीछे रात को सोते रहना, इत्यादि अनेक कारण हैं; जिनका ख्याल रखना चाहिये। Complete (पूर्ण) ब्रह्मचारी वही है जो मन-वचन-कर्म से स्त्री के साथ रमण नहीं करता, और न उसके स्वप्न में कभी काम के संस्कार उदय होते हैं।

८८—पत्र

कर्म के विषय में शास्त्र ही प्रमाण हैं। विस्तार पूर्वक व्याख्या।

ॐ ४—१—२५
जालन्धर

प्रिय......जी—तुम्हारा पत्र मिला। हाल जाना गया। कर्म-काण्ड में शास्त्र के पीछे अन्धे की तरह विद्वान् लोग चलते हैं। वहाँ बुद्धि नहीं चलती। जो पुरुष बुद्धि से विचारना चाहता है उसको वेद ढकोंसला ही प्रतीत होते हैं। खैर जाप और मौन का तुमने कुछ प्रत्यक्ष फल तो अनुभव कर ही लिया; परन्तु उसका फल इतना ही नहीं है जितना तुम्हारे अनुभव में आया है। जो फल परोऽक्ष है वहाँ तुम्हारी बुद्धि नहीं पहुँच सकती। पाप और पुण्य अपना फल काल पा कर किस तरह से देते हैं यह मनुष्य की बुद्धि से परे है। केवल शास्त्र के कथन से जाना जाता है। कौन कर्म किस विधि से करना ठीक है, कौन बे ठीक है, यह भी मनुष्य की बुद्धि से परे है, केवल शास्त्र ही निर्णय करता है। इसी लिए भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि कर्तव्य में केवल शास्त्र ही प्रमाण है, वरना गुरुओं के साथ लड़ने के लिए कोई धार्मिक मनुष्य की बुद्धि गवाही नहीं दे सकती।

८९—पत्र

सन्तोष, ईश्वर-न्याय पर अटल विश्वास,

ईश्वर-प्रार्थना, मोह-जाल से बचो। ईश्वर भक्त का उदाहरण।

ॐ ८—२—२५
वृन्दावन
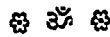
प्रिय ...... बाई जी—तुम्हारा पत्र मिला। कोशिश के फल के लिए ईश्वर पर ही निर्भर रहना चाहिए। यदि सफलता हो गई, तो ठीक है, परन्तु यदि दैववशात सफलता न हो, तो अफ़सोस न करना। क्योंकि जो कुछ प्रभु करते हैं, ठीक ही करते हैं। जीव अपनी कुबुद्धि को उलटा समझकर प्रभु को दोष लगाता है, अपने पापों पर दृष्टि नहीं देता, इसीलिए दुःखी रहता है। जो स्वराज्य वादी थे, वे जानते थे कि हम सरकार के विरुद्ध काम कर रहे हैं, इसलिए सरकार की दी हुई सज़ा को खुशी से क़बूल करके प्रसन्नता से भोग लेते थे। इसी तरह जो धार्मिक आत्मा है, वह ईश्वर पर विश्वास रखता है कि प्रभु न्यायकारी हैं और दयालु भी हैं। जो वह जीव को देते हैं, वह बिना उसके अपराधों के नहीं देते, चाहे वे पूर्व जन्मों के अपराधों के हों चाहे इसी जन्म के। और उसकी दया पर विश्वास रखते हुए बिना शिकायत किये हुए उनसे यह प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु आपने जो दुःख दिया है वह आपने न्याय ही किया है। अब से यह बिनती है कि कृपा करके मुझे बुद्धि-बल तथा धैर्य दीजिये, कि मैं इस दुःख को सहार जाऊँ। यह आपकी मेरे ऊपर बड़ी दयालुता होगी। जो पुरुष सच्चे दिल से ईश्वर से बारम्बार प्रार्थना करता है, तो वे कभी न कभी उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर ही लेते हैं। जितने प्राणधारी हैं, दुःख सबको होता

है। जो धार्मिक तथा धैर्यवान् हैं। वे सहार जाते हैं, जो अधीर हैं वे रोते रहते हैं।

"धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपत काल परखिये चारी॥"

गीता में भगवान् कहते हैं जो सुख-दुःख, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा, हानि-लाभ, इत्यादि द्वन्द्वों को सहारते हैं, वे ही मोक्ष के अधिकारी होते हैं। क्योंकि यह सब जीव के भोग हैं, जो उसके प्रारब्ध-अनुसार होते हैं। इनसे भगना पाप है। जो कुछ आ गया उसको धैर्य्य के साथ भुगत लेना ही धार्मिक पुरुषों को उचित है। अच्छा हुआ जो तेरे को अभी यह दुःख आ गया। अभी वहुत समय है, वह हट जायेगा। आगे को चितावनी रहेगी, कि मोह में अब न फँसे, वरना यदि पीछे कभी होता तो मुश्कल पड़ती।

"मन मतङ्ग मानत नहीं जब लग धक्का न खाय।"

यह मन ऐसा ही है। ठोकर खाकर सीखता है, कुछ हर्ज नहीं। चोट लगी सो लगी। अब आगे को सावधान रहो, और इस पापी मोह को जड़ से उखाड़ दो, तभी हमेशा के लिये दुःख से छुटकारा होगा, नहीं तो फिर गिरायेगा। और चोट देगा।

"देह धरे का दण्ड है सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से मूर्ख भुगते रोय॥"

बड़े-बड़े साधु महात्माओं पर भी दुःख आता है, परन्तु वह इस तरह रोते-पीटते नहीं, वे अपने मन को प्रभु की बन्दगी में लगाये रहते हैं, और इस तरह से समय निकाल देते हैं। फिर भी शाबाश ही है तेरे हृदय को जो तीन-तीन चार-चार दिन तक धैर्य रखती है, कि ईश्वर कृपा करेंगे और अपनी तरफ़ शीघ्र खींच लेंगे। जहाँ-जहाँ भक्तों का मन फँसा होता है, वहाँ-वहाँ से वे किसी न किसी तरह हटा लेते हैं। उनकी महिमा को कोई

समझ नहीं सकता। यहाँ एक बड़े भारी सेठ थे जो कृष्ण महाराजजी के भक्त थे और वृन्दावन वास करते थे। जब उनका जवान लड़का, जो उनके साथ ही यहाँ रहता था, मर गया, तो बड़ी ख़ुशी मनाई और बिरादरी को पीले पत्र भेजे कि मेरे को बहुत आनंद हुआ कि मेरा लड़का वृन्दावन में मरा, वह सीधा स्वर्ग को जायेगा। देखो! भक्तों का हृदय और धैर्य ऐसा होता है।

९०—पत्र

जवानी का समय ही कमाई का समय है। जीवन के कुछ उपयोगी साधारण नियम।

ॐ सितम्बर १९२५
हिमालय

प्रिय ......जी, तूने जो चलते समय जोश दिखलाया था, वह शांत हो गया कि जारी है। जो-जो बातें तेरे को करने के लिये कहा था उनका पालन तुमने कहाँ तक किया। यदि घर में रहते हुये तू इन बातों पर नहीं चल सकता, तो तुझे निश्चय रखना चाहिये कि तू परमार्थ के मार्ग में चलने को अधिकारी ही नहीं है। यह भी तुझे ख़ूब याद रखना चाहिये, कि यदि तू जवानी में इस लड़ाई से घबरा गया, तो बुढ़ापे में कुछ नहीं हो सकेगा। तू अपने पिता ही को देख ले कि जो स्वभाव जवानी में परिपक्व हो गये हैं, वह चाहे कितने ही दूषित हों उनको नहीं बदल सकता। कारण यह है, कि बुढ़ापे में शरीर और मन दोनों कमजोर पड़ जाते हैं, इसलिये परिश्रम नहीं हो सकता। फिर स्वभाव के साथ कैसे लड़ें। तेरे जोश को स्मरण करने से

प्रसन्नता होती है। जो इच्छा तूने अब प्रकट की है, वह बात तेरे विषय में मुझे पहले ही से खटकती रहती थी। परन्तु तेरे को अधिकारी न समझकर रुक जाता था। अब तूने स्वयं अपना रुख़ परमार्थ की तरफ़ किया है। इससे यह पत्र तुझे लिखना पड़ा कि कोशिश में डटे रहना चाहिये। मर्द का पैर आगे को चलता है, चाहे कितना ही धीरे-धीरे चले, परन्तु पीछे को कभी नहीं आता। यदि इस अवस्था में तू कुछ डट गया, तो जीते जी आनन्द भोगेगा, और पीछे भी सुख ही सुख है, बिना तप के कुछ नहीं मिलता। धर्म पर चलने में बड़ी कठि-नाइयों का सामना करना पड़ता है। उनको सहारना यही तप है। जो ब्रह्मचर्य नहीं रख सकता उसके लिये पुरुषार्थ करना कठिन है। यदि तुम्हारी इच्छा पुत्र उत्पन्न करने की हो, तो बेशक ऋत-गामी होओ। महीने में एक बार स्त्री का संग करो, जब वह ऋतु-धर्म से फ़ारिग़ हो जाये, और यदि इच्छा न हो, तो एक संतान हो ही गई है, आगे को अखण्ड ब्रह्मचर्य रक्खो। भोजन शरीर की रक्षा की दृष्टि से खाओ, न कि स्वाद के लिये। पिता की सेवा ख़ूब करो, और स्त्री आदि की रक्षा पर भी ध्यान रक्खो। जो कुछ हो सके, जैसे चित्त में आये, भजन भी करते रहो। यदि समय मिले तो कुछ संस्कृत का अध्ययन भी करते रहो। अपनी अवस्था की सूचना मुलतान के पते से देना। जहाँ-कहीं मैं हूँगा वह आप ही भेज देंगे। अपने पिता को स्वतंत्र करके कह दो कि वह निश्चिंत होकर भजन करें; और तुम अपनी शक्ति-अनुसार उनकी सेवा करो। और हमेशा नम्र और सभ्य व्यवहार रक्खो, तुमको भी पुण्य होगा। स्त्री को भी समझा दो कि वह भी उनकी सेवा करे। यदि तुम स्त्री के ग़ुलाम न रहोगे, तो उससे जैसा चाहोगे, करा सकोगे। यदि उसमें फँस गये, तो वही हाल होगा

जो स्त्री के गुलामों का हाल देख रहे हो कि वे माता पिता को, धर्म को, जवाब दे बैठते हैं, चाहे पीछे नरक ही क्यों न भोगें। तुम अपने हाल से सूचना कभी-कभी देते रहो, परन्तु यह आशा न रखना कि मैं भी तुमको लिखूंगा। मैं यदि जरूरी समझूंगा तो तुमको परमार्थ विषय में लिखूंगा, यदि न समझूंगा तो नहीं लिखूंगा। बाक़ी गाँव-घर का या जिनका उचित समझना हाल लिख देना। यदि तुमको संस्कृत पढ़ने का समय मिले, तो पाठ-शाला में जाकर पढ़ो। पारस-भाग का पाठ थोड़ा बहुत नित्य प्रति करना और उसके उपदेशों पर चलने का यत्न करते रहना। अब हम नीचे उतर रहे हैं।

९१—पत्र

घर में रहते हुये दुःख के कारणों का चिन्तन वा नाश करो।

❀ ॐ ❀ ४—१२—२५

मुलतान

प्रिय…जी, तुम्हारा पत्र मिला, वृत्त ज्ञात हुये। तुमने दफ़्तर वाले…की शारीरिक अवस्था के विषय में कुछ नहीं लिखा। पारसभाग यहीं बाजार में मिल गई; इसलिये भिजवा दी गई है। तुमको चाहिये कि कभी-कभी अपने पिताजी का हाल लेते रहो। यदि उनको किसी चीज की आवश्यकता हो, तो तुमको कष्ट सहार कर भी पहुँचाना चाहिये। एक दिन शरीर तो जाय होगा; परन्तु घर से बाहिर रहते हुये ईश्वर-चिन्तन में जाये, तो श्रेष्ठ है। गृहस्थाश्रम के जो दुःख हैं उनका कारण काम-क्रोधो

आदि हैं। जब तक पुरुष इनका .गुलाम है, तब तक वह दुःखों से नहीं बच सकता। यदि अभी हठ से घर से चल भी दो, तो मरने के पीछे फिर उन्हीं दुःखों में पड़ेगा। क्योंकि जब तक बीज है, वृक्ष होकर फलेगा। इसलिये, घर में रहते हुये, पहले दुःख के कारणों को जड़ से उखाड़ना चाहिये। इनसे लड़ने के लिये मन में बल चाहिये। वह तब तक नहीं प्राप्त होता, जब तक पुरुष पाप से नहीं बचता, और अपने कर्त्तव्य को शास्त्रानुसार नहीं पालन करता, और विषयों की लालसा को विषयों के बीच में रहते हुये नहीं त्यागता। मिट्टी के घरों में दिया-बत्ती की इतनी परवाह न करो, अपने भीतर दीपक जलाओ।

९२—पत्र

वैराग्य तेज़ करो।

❀ ॐ ❀ २०—१२—२५

मुलतान

प्रिय ...जी, तुम्हारा पत्र जालंधर होकर, कल शाम को यहाँ मिला। इस अरसे में वैराग्य को पक्का करते रहो, अगर तुम्हारा वैराग्य तेज़ और पक्का हो गया, तो बाद-अज़ां तुमको कोई संसारी बात नहीं रोक सकती। अभी जो तुमको डर लग रहा है, वह वैराग्य के मज़बूत न होने करके। अच्छे हो जाने के बाद, जब मिलोगे तब कुछ बातें बतलाऊँगा। अगर उन पर अमल कर सके, तो बरसों का काम हफ़्तों में होगा, और अगर हिम्मत न पड़ी, तो लम्बे सफ़र में मजबूर चलना पड़ेगा। जैसी तुम्हारे में हिम्मत होगी, वैसा ही करना ठीक होगा।

९३–पत्र

पदार्थों के सेवन करते रहने से प्रेम हो जाता है।

ॐ १—१—२६
मुलतान

श्रीमान मान्यवर मास्टर······जी महाराज को बहुत-बहुत प्रणाम पहुँचे। कल जो आपने सेव खाते समय कहा था कि बिना Imagine (ख्याल) किये हुए भी सेव खाते आनंद होता है, उसकी बाबत पीछे मुझे कुछ बातें याद आई, इसलिए मैं ने उचित समझा कि आपको लिख दूँ, ताकि आप भी अपने अनुभव से उन पर विचार कर लें। लड़कपन में मैं बाज़ार की मिठाई बहुत खाता था, बिना इसके रहा न जाये। थोड़ी सी नित्य खाता, तब बहुत अच्छी लगती थी। फिर हानिकारक समझ कर छोड़ दी। अब खाते वक्त, चित्त ख़ुश नहीं होता, भूख में तो दो-चार ग्रास तो खा लूँ, फिर खाने को चित्त नहीं करता। उस वक्त कोई ऐसा-वैसा ख़्याल भी नहीं होता, जिसका असर कहा जाय। जब मैं Entrance (दसवीं श्रेणी) में था, तब खटाई और लाल मिरच और निमक बहुत खाता था, दो वर्ष तक यह हालत रही। फिर हानिकारक बतलाई जाने से छोड़ दिया। अब थोड़ी सी भी खटाई या मिर्च दाल या साग में हो, बिना कुछ Imagine (ख्याल) किये हुये तबीयत को बुरा लगता है। दूध में थोड़ा सा मीठा पड़ा हो तो अच्छा लगता है। हमारी माँ को मीठा बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था, गन्ने का रस कभी नहीं पीती थी, दूध में मीठा कभी नहीं डालती थी,

थोड़ा सा निमक मिलाकर खाने से .खुश रहती थी। दाल में अधिक निमक हो तो .खुशी से खाती थी, कम हो (यानी ज़ितना हम लोग खाते हैं) तो उसको ऊपर से डालना पड़ता था। कुछ ग़रीब आदमियों को मैंने देखा कि वे १५ वा २० दिन का घी नहीं खा सकते थे। अगर ताज़ा उसी दिन का हो, तो खा लेना, नहीं तो सूखा खाना। बरमा के लोग घी नहीं खा सकते। कोई फूल मेम लोग बहुत पसन्द करती हैं, हम लोगों को दुर्गन्ध आती है। इससे यह मालूम होता है कि जिन चीज़ों का पुरुष सेवन करता रहता है उनसे उसका प्रेम हो जाता है, और फिर वह उसको अच्छी लगा करती है। ऐसे ही उसकी आदत बन जाती है। बाज़ लोग मूंग की दाल इतनी ना-पसन्द करते हैं कि बीमार होने पर भी नहीं खाते। इन बातों से जो एक और भाव टपकता है वह आपके ऊपर छोड़ता हूँ।

६४—पत्र

महाराज की शास्त्रों में बेहद श्रद्धा—वेदों के पढ़ने-पढ़ाने वा अनुवाद आदि करने के अधिकारी कौन हैं—अभ्यास में सफलता के कारण।

* ॐ *　　　८—१—२६

मुलतान

प्रिय·····जी, तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ। पंडित···· ज़ी को अभ्यास में लगाने के पहिले निम्न-लिखित बातें दिल में बहुत

खटकती हैं, जिनके लिये शास्त्रानुसार उनको पालन करना बहुत आवश्यक है। जबसे मैं इस मार्ग में चला हूँ और जबसे ईश्वर-अनुग्रह का अनुभव होने लगा है, तबसे शास्त्र पर बेहद श्रद्धा हो गई है। जो निष्कपट आर्य्या-समाजी हैं वे भी बहुत समाजी रंग धो डाले हैं। (१) मैं वेद-मंत्रों का ग़लत अर्थ करना पाप समझता हूँ। जबकि किसी पुरुष में इतनी योग्यता न हो कि वह निश्चय रूप से यह कह सके कि जो अर्थ वह कर रहा है वह बिलकुल ठीक है, तब तक उसको मन-माना अर्थ नहीं करना चाहिये। यदि किया है, या करता है, तो पाप है। (२) बिना अपने में पूर्ण योग्यता हुये दूसरों को वेद पढ़ाना भी पाप है। (३) जिसको वेदों में श्रद्धा और भक्ति न हो अर्थात् जो अधिकारी न हो उसको पढ़ाना भी पाप है। अब तुम देखते हो कि ......जी के मार्ग में यह नियम रुकावट डालने वाले हैं। यदि वह इन बातों पर सहमत हों, तब अभ्यास में लगाने से पहिले, प्रथम नियम के तोड़ने का उनको प्रायश्चित्त करना पड़ेगा, और आगे को इन नियमों पर दृढ़ रहने के लिये प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी। (४) अभ्यास-काल में जिस स्थान में मैं उनको कहूँगा वहाँ पर रहना होगा। (५) गुरु-कुल-भूमि में उस काल तक बिल्कुल नहीं जाना पड़ेगा। (६) भोजन आदि का प्रबन्ध वहीं अभ्यास स्थान में करना पड़ेगा। (७) जब तक अवस्था दृढ़ न हो जाय संसर्ग से बचना पड़ेगा। इन सब बातों के होते हुये भी मेरे जैसे तुच्छ जीव में यह सामर्थ्य नहीं है कि मैं वायदा कर सकूं कि उनको सफलता पर अवश्य पहुँचा दूँ। यदि कुछ होगा तो ईश्वर अनुग्रह और उनके पुण्य-प्रताप और पुरुषार्थ से होगा। इसलिये जो कुछ वह फ़ैसला करें, वह ऊपर की बातों पर पूर्ण ध्यान देकर करें ताकि पीछे धोखा न हो। जहाँ तक मैं अनुभव करता

हूँ; मुझे अपने में कुछ भी शक्ति नहीं प्रतीत होती, फिर मैं कैसे किसीको किसी बात का भरोसा या विश्वास दिला सकता हूँ।

९५–पत्र

तप के बिना अभ्यास कुछ नहीं हो सकता।

ॐ २६—२—२६
जालन्धर

प्रिय ···जी, तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ। खैर, तुम सब बातें जानते ही हो, संसार का अनुभव तुमको काफ़ी हो गया है। बिना दोष-दृष्टि के पदार्थों से वैराग्य होना असम्भव है। ईश्वर अपने भक्तों का सुधार विचित्र रीति से करते हैं, तुम्हारे कांटे तो हट गये हैं। तप से रहना चाहिये, हफ़्ते में कम से कम एक दिन निराहार या फलाहार और मौन शक्ति के अनुसार करते रहनां अच्छा रहेगा। तप के बिना कुछ नहीं हो सकता, जिस का जीवन तप का है वही उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। इस साल कई स्त्री और पुरुषों ने चांद्रायण व्रत किया है, आर्य-समाजी और सनातनी हैं।

९६–पत्र

दुःख से मुक्ति का उपाय। महाराजजी के शरीर–यात्रा सम्बन्धी विचार।

ॐ २२—३—२६
पौड़ी
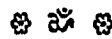
प्रिय····जी, तुम जानते हो कि संसार दुःखमय है और यह जो तीन प्रकार की ईषनाएं हैं, पुत्र की, वित्त की, लोक की, यही दुःख में डालती हैं। जिसका मन इनको अमली तौर पर छोड़ नहीं चुका है, उसको न तो यहाँ सुख है और न आगे को होगा। हाँ, जो विवेकी और धैर्यवान पुरुष इनमें न फँसकर शरीर-यात्रा के लिये कर्म करता रहता है, वह हमेशा के लिये, दुःख से मुक्त हो जाता है। जीते जी तो मानसिक दुःख से छूटा हुआ रहता ही है, परन्तु आगे को शास्त्र कहता है कि वह निर्भय होकर इस शरीर को छोड़ जाता है, और फिर चक्कर में नहीं पड़ता। चलते समय जो तुमने कहा था कि कभी-कभी तुम्हारी भी इच्छा होती है कि एक लड़का हो जाये, यह मैं तुम्हारे में बड़ी भारी कमजोरी और अविवेक देखता हूँ। मेरी समझ में यह नहीं आता कि तुम क्या लाभ समझ कर ऐसी वासना को दिल से नहीं उखाड़ते। स्त्रियों में हो तो हो, वे तो विचार-शून्य हैं, उनको तो नरक स्वर्ग सा भासता है, विचारवान यदि नाम के लिये पुत्र की इच्छा करे, तो महा मूर्ख है। तुम्हारे पिता का नाम तुम्हारी वजह से नहीं हो रहा है, बल्कि उनके गुणों और कर्मों करके हो रहा है। यदि तुम नाम चाहते हो, तो तुम भी वैसा ही करो, 'एक पन्थ दो काज।' यदि नाम की इच्छा नहीं है, लोगों को यह वचन सुन करके···के कोई लड़का नहीं है, शरम नहीं आती या दुःख नहीं होता, तब इच्छा क्यों। यदि स्त्रियों के लिये होती है, तो ईश्वर के ऊपर छोड़ दो। यदि वे उनकी इच्छा पूरी करना चाहेंगे, तब तेरी बुद्धि विषय-भोग की आप ही हो जाएगी, और जो कुछ होना होगा सो होता रहेगा। चार दिन

में श्रीनगर जाएँगे वहाँ कुछ दिन ठहर कर आगे की यात्रा शुरू करेंगे। जब मैं एकान्त में होता हूँ, तब इस जीवन को निरर्थक समझते हुए यही चित्त में आता रहता है, कि प्रभू की गोद में बैठ-कर शरीर छोड़ दूँ, परन्तु तीव्र वेग नहीं होता। पीछे यह ख्याल आ जाता है, जब तक शरीर ने रहना है तब तक रहे हीगा। इसलिए लोगों की पहुँच में रहूँ, जो अधिकारी होंगे फ़ायदा उठा लेंगे। यह कशमकश कई साल से चल रही है, और उसी पर चलता हुआ कष्ट भी सहारता रहता हूँ। मालूम होता है यह तेरे अन्न का असर है; क्योंकि तू कष्ट सहार कर कमाता है और मेरे को खिलाता है। इसलिए मुझे भी ऐसे ही सूझती है। इसमें शक नहीं कि तेरी ही शक्ति से मेरे ज़रिए से लोगों का जो कुछ होता है, सो होता है, वरना मुझ जैसे तुच्छ जीवन में इतनी हिम्मत कहाँ है। जब कभी तू सत्य के ग्रहण तथा धर्म से खिसकेगा, तभी मैं भी ढीला पड़ जाऊँगा। इसलिए तुझे चिता-वनी देता रहता हूँ, कि यदि तुझे यह मंज़ूर है, कि मुझसे काम कराए, तब तू विचार, विवेक पर कमर बस्ता खड़ा रहे, इसमें तेरा भी कल्याण है और लोगों का भी, तू आप ही बुद्धिमान है।

६७—पत्र

असली त्याग मन का त्याग है।

ॐ २३—३—२६
हिमालय

प्रिय······जी, अब तुमको मालूम हो गया कि तुम्हारे छोड़ देने से तुम्हारी स्त्री को कितना दुःख होगा। जो तुमसे भी नहीं

सहारा गया। छोड़ना तो यही है। चाहे मर कर छोड़ो, चाहे जीते हुये छोड़ो। अगर ऐसा हो सके कि मन से उनको त्याग कर, उनके दुःख-सुख में दुःख-सुख न मनाओ, तो उनके साथ रहने में भी कोई हरज नहीं है।

९८—पत्र

माया का छोड़ना अतीव कठिन है।

ॐ २४—३—२६
मुलतान

प्रिय ... जी, तुम्हारा पत्र आया, हाल जाना गया। जब तुम कहते थे कि स्त्री समझ गई है, कि मुझे नहीं रहना, इसलिये उसको इतना अफ़सोस नहीं होगा, इस पर मुझे यक़ीन नहीं आता था, क्योंकि स्त्रियों की बात का विश्वास नहीं होता। ख़ैर अब तुमको भी तजुर्बा हो गया। अपने मन का तजुर्बा हो गया। वैराग्य को मज़बूत करते जाओ, और देखो माया के छोड़ने में वह कैसी रुकावटें डालते हैं। मगर बात इतनी ही है, कि, "हारिये न हिम्मत, बिसारिये न राम।" प्रभूजी आप ही बन्दोबस्त करेंगे।

९९—पत्र

माया-जाल और उससे बचने का उपाय— संसारी इच्छाओं की परम्परा और उनका

परिणाम–बन्धन का कारण मन की वासना है।

॥ ॐ ॥ १४—४—२६
श्रीनगर गढ़वाल

प्रिय······जी, यह जो माया के जाल हैं वे स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म हैं। इतने सूक्ष्म हैं कि मकड़ी के जाले की सूक्ष्मता भी उसके सामने बहुत स्थूल है। और यह जीव इतना कमजोर और अल्पज्ञ है कि उसके लिये प्रथम तो इन सूक्ष्म जालों का पहचानना ही बहुत कठिन है। फिर भी, यदि शास्त्र, गुरु-महात्माओं की कृपा तथा सत्संग से इसको पता भी लग जाये, तब भी उससे बचकर निकल आना और भी कठिन है। क्योंकि जब तक शरीर के साथ सम्बन्ध है, तब तक माया के साथ व्यवहार जारी है। फिर सोचने की बात है, कि रात-दिन दरिया में रहना, सोना, और मगर मच्छ से बचे रहना कितना कठिन है। यह तो तभी हो सकता है, जब मगरमच्छ का पैदा करने वाला उनको मना कर दे। इसलिए सिवाय उसके और दूसरे किसीका भरोसा नहीं प्रतीत होता। उसकी शरण में डालकर उसकी आज्ञा के अनुसार जीवन व्यतीत करते रहने में ही कल्याण दीखता है। अभी तो प्रत्यक्ष में लाभ है, आगे को वेद-शास्त्र कहते हैं कि भला ही होगा। पिछले पत्र में मैंने तुमको विवेक-शून्य इच्छा पर कुछ लिखा था। तुमको माया के सूक्ष्म जाल से सावधान रहना चाहिए। पता नहीं, शरीर कब छूट जाये, और यह माया-जाल का सूक्ष्म तन्तु यदि हृदय में रह गया, आगे को फिर शरीर धारण करना ही पड़ेगा, और जो दुःखमय जीवन अभी है वही फिर मिलेगा। फिर चक्कर काटना

पड़ेगा। बड़ी कठिनता से तो असलियत का पता लगता है, फिर केवल पता लग जाने ही से कुछ नहीं होगा, उसको जोर से पकड़ना पड़ेगा, और व्यवहार करते हुये उस पर दृढ़ता के साथ खड़ा रहना पड़ेगा। यदि डगमगा गया, तो मारा गया। हवा के झोंकों के मुक़ाबले में सचाई की चट्टान पर मज़बूत खड़े रहना शूरवीर का काम है। कायर लोग घबरा कर गिर पड़ते हैं। पीछे पश्चात्ताप करते रहते हैं। और गिरने से जो गहरी चोट लग गई उसका इलाज ही करते-करते जन्म बीत जाता है। ऐसा ही हाल संसारी इच्छा करने वाले का है कि वह इच्छा करके फिर उसकी पूर्ति के सम्बन्ध में ऐसा फँस जाता है, कि जीवन उसी मुसीबत में व्यतीत हो जाता है। वह यह समझता रहता है कि यह थोड़ी सी बात है, यह पूरी हो गई, बस फिर कोई इच्छा नहीं करूँगा। परन्तु, वह यह नहीं समझा कि इच्छा चाहे यदि एक क्यों न हो, वह तो अज्ञान मूलक, और जब तक वह संसारी वासना इसके हृदय में जड़ जमाये हुये है, तब तक अज्ञान को मज़बूत ही कर रही है। इसलिये जो विचारवान विवेकी पुरुष हैं, वे हर समय ऐसी मूर्खता से सावधान रहते हैं। शरीर का भोग बन्धन का कारण नहीं है, मन में जो वासनाओं का आना है जिनकी शरीर रक्षा के लिए कोई जरूरत नहीं है, वे ही बन्धन का कारण होती हैं। जहाँ जहाँ का अन्न-जल शरीर को भोगना है, वहाँ-वहाँ यह ज़रूर जायेगा, और उस सम्बन्ध में जो भोग होगा, वह अवश्य भोगेगा। परन्तु विचारवान् उससे अपनी कुछ भलाई न देखता हुआ, शरीर का भोग समझ कर होने देता है। और जो सुख-दुःख हो गया, उससे भी बे-परवाह रहता है।

१००—पत्र

स्त्री के चरित्र से मुग्ध होना अथवा उसका गुलाम बनना कल्याण-मार्ग में हानिकारक है—अहोभाग्य।

ॐ　　　　१९—४—२९

श्रीनगर गढ़वाल

प्रिय......जी। Henpecked husband (स्त्री के गुलाम) के लिये काम-शक्ति का मुक़ाबला करना असम्भव है। यह तुम्हें निश्चय रखना चाहिये, जब तक तुम स्त्रियों की बातों पर विश्वास करते रहोगे, उनके दास बने रहोगे, उनके चरित्रों के ग़ुलाम बनोगे, तब तक कल्याण होना असम्भव है। स्त्री अपना चरित्र नहीं छोड़ सकती, यह उसका स्वाभाविक गुण है, चाहे पत्नी हो, चाहे माता हो, बहन हो, दादी हो, चाहे चाची हो, भक्तिन हो, चाहे योगिन हो। जब तक उसमें स्त्रियों के भाव विराजमान हैं, वह स्त्री है। तुमको मैंने पारसाल भी कहा था, कि ....से सावधान रहना और अब एक-दो चाचियाँ भी तुम्हारी agency (एजेण्टी) में शामिल हो गई हैं। तुमको सावधान रहना चाहिये, कि जब तक तुम इनके agent (गुमाश्ता) बने रहने में आसक्ति रक्खोगे, तब तक तुमको वे नाच नचायेंगी, और तुम धर्म की आड़ में नाचोगे। परन्तु यह तुम्हारी मूर्खता है और तुमको रसातल को पहुँचायेंगी। मुझे तुम्हारी बद्रीनारायण क्षेत्र की झूँठ अब तक नहीं भूलती। पीछे घर पहुँच कर जो तुमने पत्र लिखा था उसमें भी सचाई की कमी थी। मैंने तुमसे कहा नहीं था, अब तुमको सावधान करने

को लिखता हूँ, कि दिखलावे से मैं ख़ुश नहीं हो सकता। बल्कि शूर-वीरता के कामों से प्रसन्नता होती है। यह बातें तुमको ··· ···जी से सीखना चाहिये, वरना जन्म यूँ ही गँवा दोगे। पहले तो मनुष्य-देह मुश्किल से मिलती है, फिर भारत-खण्ड हो, यह और भी कठिन है, तिस पर श्रेष्ठ-कुल हो, फिर अच्छा जन्म-स्थान हो, फिर विद्या हो, तिस पर भी खाने-पीने की ख़ुश-हाली हो, इतनी सब बातों के होते हुये भी सत्संग मिलना और भी कठिन है। वह प्राप्त होते हुये भी यदि कल्याण के मार्ग का पता लग जाये, यह और भी कठिनता से प्राप्त होता है। उसकी समझ आ जाने पर भी यदि उस पर सावधानी से पुरुष प्रमाद को छोड़कर न चले, तो उसके कल्याण होने में बहुत देर है। जो रोगी कुपथ्य को जानता हुआ न छोड़े, उसका निरोग्य होना असम्भव है। इसलिये तुमको हर वक्त सावधान रहना चाहिये।

---

१०१ पत्र

उपदेश का अधिकारी शुद्ध हृदय पुरुष है।

❁ ॐ ❁ २५—४—२६

श्रीनगर, गढ़वाल

प्रिय······जी, तुम्हारा पत्र कल शाम को मिला, पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। अमेरिका वाले साधारण उपदेश के लिये काफ़ी रुपया लेते हैं, तब जुबानी या पत्र द्वारा उपदेश देते हैं। और अँगरेजी पढ़े हुए बाबू लोग जब उपदेश के लिये ख़र्च करते हैं, तब कुछ फ़ायदा उठाते हैं, परन्तु बिना फ़ीस जो भारत भूमि वाले उपदेश देते हैं, उनसे कोई विचारवान शुद्ध हृदय

वाला ही फ़ायदा उठा सकता है। ख़ैर, तुमको ख्याल रखना चाहिये कि लड़ाई सख्त है, जो सिपाही हर वक्त सावधान नहीं रहता, वह मारा जाता है। उपदेश पर पूरी शक्ति-अनुसार अमल करने ही से तुम उपदेशक को उत्साहित रख सकते हो, दूसरा उपाय नहीं।

---

१०२ पत्र

स्त्री मायारूप है, विवेक विचार में ही सुख है।

॥ ॐ ॥ २८—४—२६

श्रीनगर, गढ़वाल

प्रिय ·····जी, तुम्हारा पत्र कल प्राप्त हुआ। माया जो है, दिखलावा ही है, उसके असल का जब पता लग जाता है, तब इससे चित्त हट जाता है। स्त्री, साक्षात माया का रूप है। उस पर जब तक पुरुष का अंकुश रहता है, तब तक तो कुछ ठीक रहती है, परन्तु जब स्वतन्त्र हो गई, तब अपने रंग को प्रकट करने लगती है। पुरुष भी माया में फँसकर उसके रंग में रँग जाता है। और दिखलावा करके दूसरों को ठगता फिरता है। यह तो होता ही रहता है। जिसकी जैसी स्त्री है, वैसा वह करता रहता है।

"कर्म प्रधान विश्व रच राखा, जो जस करे सो तस फल चाखा"

इस दुनियाँ में दो ही प्रकार के लोग सुख से रह सकते हैं, एक तो वे, जो दुनिया की बातों को बिल्कुल समझते ही नहीं, बिल्कुल अनभिज्ञ हैं, दूसरे, वे जो समझते हैं परन्तु बिल्कुल

परवाह नहीं करते। विचार-विवेक के आधार पर अपनी यात्रा पूरी करते हैं, बिच बिचवां वाले गड़बड़ी में रहते हैं। इसलिये बल पूर्वक कोशिश करना चाहिये, कि परले किनारे पर पहुँचकर विवेक पर ठहरे, वरना चक्की के दो पाटों के बीच में पड़े रहने से पिसते ही रहना पड़ेगा, और चकना-चूर होते रहना पड़ेगा।

"बहुत बुझाय तुम्हें का कहौं, परम चतुर मैं जानन अहौं।"

इसलिये अब अन्त में चर...न्वन्दना करके समाप्त करता हूँ। जो कुछ करना हो मृत्यु से पहिले ही कर लेना चाहिये, इस लिये यह पत्र लिखकर, निश्चिंत होकर आगे जाऊँगा।

१०३—पत्र

अभ्यास

* ॐ * ५—८—२६

श्री बद्रीनाथ पुरी

प्रिय ·····जी, तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ, चित्त प्रसन्न हुआ। जब प्राणों की विशेष तेजी हो जाती है, तब जो अवस्था तुमने लिखी है हो जाती है, इसलिये डर की कोई बात नहीं है। सन्ध्या कराते समय लड़कों को कह दो, कि वे मन्त्र उच्चारण करें और तुम सुनते जाओ। फ़र्ज़ है कि संध्या है, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता। खैर, जो कुछ हो रसम-अदाई तो अवश्य है। जब पढ़ाते समय जवान बन्द होने लगती है, तब कुछ सैकण्ड के वास्ते रुक जाना चाहिये, तब अवस्था ठीक हो जायगी। यदि पढ़ाते समय तेज़ न बोला जाय, तो अच्छा रहेगा। मौक़े मौक़े पर जवान को कुछ सैकन्ड के लिये आराम देते

जाओ, तो गड़बड़ न होगी। परन्तु यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये, कि जब प्राण की गति ऊपर को विशेष रूप में हो, तब जरूर ठैर जाय, तो शीघ्र अवस्था ठीक हो जायगी।...... जी ने श्रीनगर में प्रायश्चित्त के तौर पर चान्द्रायण व्रत आरम्भ कर दिया होगा, जैसा कि उनके पत्र से विदित होता है।

१०४-पत्र

संसारी सुख क्षणिक है, परमार्थ का सुख अनन्त है।

ॐ २७-२-२७

जालन्धर

प्यारी पुत्री,..... तुम्हारा पत्र मिला, पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। जो स्वयं हिम्मत करते हैं परमात्मा उनको आप ही सहायता देते हैं। दूसरों को जवाब देते समय तुमको इतना ख्याल रखना चाहिये कि तुमको क्रोध न आये। दूसरे जो कुछ भला-बुरा कहें, शान्ति से सुन लो और नम्रतापूर्वक उचित उत्तर देकर चुपचाप उनकी बातें सुनते रहो। नदी का वेग बरसात में थोड़े दिन रहता है, फिर शान्त हो जाता है। इसी तरह लोगों का शोर थोड़े दिन रहकर शान्त हो जायगा, फिर साधारण सी बात हो जायगी। जो क्षणिक संसारी सुख है, वह प्रथम सुख सा भासता है, पीछे बहुत दुःख उठाना पड़ता है। जो परमार्थ का सुख है, उसके पहले कुछ दिन कठिनाई प्रतीत होती है, पीछे अनन्त सुख होता है।

१०५—पत्र

बाहर के सुख तभी तक अच्छे लगते हैं, जब तक भीतर के नहीं मिले ।

॥ ॐ ॥ १३—३—२७
कनखल

प्यारी पुत्री,……तेरा पत्र पढ़कर हाल मालूम हुआ। बिना तप के यह सब बातें नहीं हो सकतीं। यह जो तू सबकी बातें अपने कल्याण के लिये सहार रही है, और संसार को लात मार रही है, यह बड़ा भारी तप है। जिनको भीतर सुख का पता नहीं है, वे तो बाहर ही भटकते रहते हैं, और नरक जीते-जी भोगते रहते हैं, परन्तु इसमें उनका कोई कसूर नहीं है, क्योंकि उनके भीतर के कपाट तो बंद हैं, इसलिये जैसा उनको सूझ रहा है, वैसा कह रहे हैं। तुझे अपने तजुर्बे पर चलना चाहिये।

१०६—पत्र

जब तक पूर्ण वैराग्य न हो गृहस्थ को छोड़ने में पाप लगता है।

॥ ॐ ॥ २०—४—२७
कनखल

प्रिय……जी, स्वामी……जी का पत्र तुम्हारे पत्र के साथ ही प्राप्त हुआ। उनको कह देना कि जालन्धर जब… आया

था, तब उसने मुझसे कुछ घर छोड़ने के विषय में बात-चीत नहीं की और न इसके पेशतर कभी किया है। मुझे नहीं पता कि उसको यह ख्याल कब से पैदा हुआ है। स्वामीजी को कह देना कि जब तक ·····मुझसे स्वयम् इस विषय में ज़िक्र न करें, मैं उसको कुछ नहीं कह सकता। जब तक पूर्ण वैराग्य न हो, गृहस्थ के छोड़ने में पाप लगेगा, चाहे कोई हो। स्वामीजी जो तीन ऋणों पर ज़ोर देते हैं, उसमें मैं वहीं तक सहमत हूँ जब तक वैराग्य नहीं हुआ। जब तीव्र वैराग्य हो गया, तब सब ऋण चुक गये। स्वामीजी को चाहिये कि पण्डित ·····जी को कहें कि शास्त्रानुसार अब उनको वाणप्रस्थ-आश्रम में जाना चाहिये, वृद्ध हो जाने पर भी संसारी वासनाओं के कीड़े बने हुये हैं। जब तक वे स्वयम् शास्त्र के अनुसार न चलेंगे, तब तक उनके कथन का असर सन्तान पर कैसे पड़ सकता है। तुमको कुसंग से अवश्य बचना चाहिये, चाहे संस्कृत पढ़ सको या न पढ़ सको। संस्कृत न पढ़ने से इतनी हानि नहीं पहुँच सकती, जितनी तुम्हारे ख्यालात के विरुद्ध पुरुष का संग करने से—नहीं तो पीछे बहुत पछताना पड़ेगा। आगे को जब कभी शरीर में गड़बड़ी देखो, तो सफ़ाई करके जो दवा उचित हो फ़ौरन कर दिया। अभ्यास भी कम कर दिया, नाम मात्र कर दिया, जब शरीर ठीक हो जाय तब जितना उचित समझो, उतना करो। शारीरिक गड़बड़ी की हालत में उस मौक़े के अनुसार भोजन करो। पीछे जैसा नियम है, वैसा करो। गरमी के दिनों में अभ्यास कम करना चाहिये। शाम को यदि गरमी प्रतीत हो, तो केवल हाजिरी देकर बन्द कर दो। सवेरे-सवेरे जितना आराम से कर सको, उतना करो जिससे शरीर में कोई गड़बड़ी न हो, वरना गाड़ी रुक जायेगी, पीछे दुरुस्त होना कठिन हो जायगा।

१०७—पत्र

वैराग्य बढ़ने से अभ्यास बढ़ता है।

❀ ॐ ❀ अप्रैल १६२७

कनखल

कुम्भ तक यहीं पर रहने का विचार है,····· तथा·········
आदि सबको कुशल देना। मनुष्य की गति कर्मानुसार ही होती है। इसलिये यथा शक्ति वैराग्य बढ़ाते जाना चाहिये, और पाप से बचना चाहिये, धर्म-कर्म जितना हो सके करते रहना चाहिये।

१०८—पत्र

भगवान भक्तों के रक्षक हैं। परीक्षा लेते हैं, परीक्षा से बल बढ़ता है।

❀ ॐ ❀ ७—६—२७

देहरादून

श्रीमती देवीजी। तुम्हारा पत्र मिला, हाल जाना गया। भगवान कहते हैं, जो संसार को लात मारकर मेरी शरण में आता है, उसकी जरूरतों को मैं आप ही पूर्ण करता हूँ, और उसकी रक्षा मैं आप ही करता हूँ, और कराता हूँ। इसलिए तुमको ईश्वर पर पूर्ण भरोसा रखना चाहिए। परमेश्वर तो हमेशा हैं, वे ही तो असल रक्षक हैं। जिसका हृदय शुद्ध है उसकी रक्षा परमात्मा आप ही करते हैं, और ऐसे ही सत्संग प्राप्त करा देते हैं। जिनका पिछला पुण्य अधिक है, उनको मुक्ता-

बला कम करना पड़ता है। और जिनका कुछ कम है, उनको कुछ अधिक मुक़ाबला करना पड़ता है; परन्तु परीक्षा होती ज़रूर है। प्रह्लाद, ध्रुव, मीराबाई, आदि सब की परीक्षा हुई है, और अब भी होती रहती है। जितनी ही कठिन परीक्षा में जीव पास होकर निकलता है, उतनी ही उसकी उन्नति अधिक होती है, और ईश्वर का प्यारा बनता है। और जल्दी ही इस आवागमन रूपी बन्धन से मुक्त होकर भगवान की गोद में पहुँचता है।

१०६—पत्र

स्त्रियों को उपयोगी उपदेश।

ॐ १२—६—२७
देहरादून

पूज्य ब्रह्मचारिणीजी। तुमको पिछला पत्र मिल गया होगा। देवीजी यह तुमको भली प्रकार ध्यान रखना चाहिये कि संसार में जितना ही मूल्यवान् पदार्थ होता है, उसकी प्राप्ति के लिये उतना ही परिश्रम करना पड़ता है। मुफ़्त में कोई चीज़ नहीं मिलती। जिन्होंने पहले जन्म में किसी बात के लिए बहुत परिश्रम कर लिया है, उनको इस जन्म में कम करना पड़ता है, जिन्होंने पहिले नहीं किया उनको अब करना पड़ता है। ईश्वरीय नियम ऐसे ही हैं। पार्वतीजी को देखो, उन्होंने महादेवजी के लिए कठिन तप किया। अब तुम ईश्वर-परायण होना चाहती हो, इसलिए तुम्हारे सामने भी कठिनाइयाँ आयेंगी, और उस परीक्षा से तुमको घबराना नहीं चाहिए। चाहे प्राण जायें, तो जाओ, जैसे पार्वतीजी की प्रतिज्ञा थी, कि—

"कोटि जन्म लग रगर हमारी। वरूँ शंभु न तु रहूँ कुंवारी ॥"

तुम भी क्षत्रिय घराने की राज-कुमारी हो। मीरां-बाई की तरह तथा पार्वतीजी की तरह अपने प्रण पर कमर कसे हुये खड़ी रहो। प्राण जायें पर प्रण न जाये। क्योंकि शरीर को तो छूटना ही है, अब न छूटा कुछ काल पीछे छूटा, जब कभी छूटे ईश्वर-परायण होते हुए छूटेगा, तब उन्हींके पास जायेगी, और जल्दी इस नरक रूपी शरीर से छुट्टी मिलेगी। तुमको धैर्य्य नहीं छोड़ना चाहिए। यह दोनों हाथ में लड्डू हैं, यदि जीती रही तो देवी बन के पुजेगी और कुल के लिए दीपक होगी, नहीं तो सीधे भगवान के पास जायेगी, और जल्दी संसारी दुःखों से मुक्त हो जायेगी। क्षत्रिय कुमारिनी जो प्रण करती हैं उसको पूर्ण करके छोड़ती हैं। प्राण जायें तो जायें; परन्तु प्रण को त्याग कर कुल को कलंक नहीं लगाती। धर्म और धैर्य्य की परीक्षा कठिनाई के समय होती है।

११०—पत्र

प्राणाभ्यास और ऋतम्भरा प्रज्ञा—वैराग्य एक मात्र साधन है—असावधानी से गिर जाने का भय है।

❀ ॐ ❀ २१—६—२७

देहरादून

प्रिय ·····जी, तुम्हारा पत्र अभी प्राप्त हुआ, पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। जो सफलता हुई है वह बहुत ठीक है, परन्तु उस

विषय में सूक्ष्म विचार मिलने ही पर हो सकता है। अभी इतना मैं जरूर आगाह करना चाहता हूँ। अकसर अभ्यासियों को प्राण के नशे की वजह से भी ऐसी अवस्था आती है, और जब प्राण की तेजी होती है, तब वह अवस्था दिन-रात बहुत दिनों तक क़ायम रहती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा भी इसी अवस्था में बढ़ती है। अर्थात् जो फ़ुरना होता है, वह पूरा होकर रहता है। फ़ुरना अकस्मात् होता है। परन्तु जो लोग यहीं पर अपने-आपको कृत्य-कृत्य समझ कर पुरुषार्थ त्याग देते हैं और अपने-आपको जीवन-मुक्त समझ कर असावधान हो जाते हैं, वे काल पाकर फिर गिरावट महसूस करते हैं, इसलिये तुमको चाहिये कि सावधानी से रहते हुये वैराग्य को ख़ूब परिपक्व करो। और देखो कि संसार में तुम्हारे मनका किंचित-मात्र भी लगाव कहाँ प्रतीत होता है। गुरु-कुल हो, या खादी का प्रचार हो, या देश की सेवा हो, या वेदों का पठन-पाठन या प्रचार, या कोई अन्य धर्म-कार्य्य हो, तुम यह भी सोचो कि नीचे उतरो तो क्यों उतरो, पहाड़ में रहो तो क्यों? इस प्रश्न के जवाब से राग सिद्ध होता है या वैराग्य, यह भी देखो। नीचे देश में जो आज-कल जीवन-मुक्त देखने में आ रहे हैं, वे हैं तो ऊँच कोटी में, परन्तु मेरी बुद्धि उस अवस्था में नहीं ठैरना चाहती। शायद यह मेरी बुद्धि ही का दोष हो, परन्तु काम तो मुझे उससे ही लेना है। इससे मजबूरी है। अकसर अभ्यासियों से सुनता हूँ कि बस अब कार्य्य हो गया, अब कुछ करने को जी नहीं चाहता। परन्तु जब वे असावधान हो जाते हैं, तब थोड़े दिनों में ही रंग बदला हुआ देखा जाता है। इसलिये तुमको इस ख़तरे से बहुत सावधान होना चाहिये। बिल्कुल मर जाना चाहिये, फिर न मरना पड़े।

१११-पत्र

स्त्री-मात्र माया का रूप है।

* ॐ * २७—७—२७

देहरादून

प्रिय ' '''जी, आज बहुत अरसे के बाद तुम्हारा कृपा पत्र प्राप्त हुआ। जो हिदायतें तुमने लिखी हैं उनके लिये कृतज्ञ हूँ। इस बात की तो ख़ुशी है कि तुमको एक श्रेष्ठ देवी तुम्हारी सेवा के लिये प्राप्त हो गई है, जो कि तुम्हारे उस तप का फल है जो तुमने प्रथम स्त्री के साथ सहन किया था। परन्तु देवी हो या महालक्ष्मी, आख़िर माया का रूप है। और हाड-मांस-चाम में मैं कोई विशेषता नहीं देखता। इसलिये बंधन चाहे सूत की रस्सी का हो, चाहे रेशम की रस्सो का हो, वह बंधन ही है। दोनों रस्सियाँ मनुष्य को स्वतंत्रता से चलने से महरूम रखती हैं। तुम इन सब बातों को स्वयं समझते हो, विशेष लिखना फ़जूल है। स्त्री चाहे देवी हो, चाहे भक्तिन हो, चाहे योगिन हो, वह पुरुष को बंधन ही प्रतीत होगी। हाँ जिसको विचार नहीं है और कामांध है, उसकी बात निराली है। जो जीव ऊँचे चढ़ कर गिरते हैं, उन पर तरस ज़रूर आता है, परन्तु लाचारी है। माया अति बली है, प्रभु ही रक्षा करें, तो मनुष्य इसके फंदे से छूटे, वर्ना बहुत कठिन है।

११२-पत्र

ब्रह्मचर्य-ब्रत-धारी को सर्वदा सावधान रहना चाहिये, असावधानी से हानि होती है।

❀ ॐ ❀ २६—७—२७

देहरादून

प्रिय····जी, तुम्हारा पत्र अभी प्राप्त हुआ, हाल जाना गया। तुमने काफ़ी मुक़ाबला किया, यद्यपि ठीक तौर से नहीं किया। जब तक माया अपने छल से मनुष्य की बुद्धि को न विचलित कर दे, तब तक वह गिर नहीं सकता। उल्टी का अभ्यास ऐसा होना चाहिये, कि चाहे गरम पानी हो, चाहे ठंडा हो, चाहे कुछ भी न हो, परन्तु उल्टी कर सको। क्योंकि उसका तत्कालिक प्रभाव होता है। जितना ही तुम साधारण हालत में असावधानी करोगे और अपने ख्यालात के ठीक रखने में प्रमाद करोगे उतना ही गिरने की सम्भावना अधिक है। मैंने तुमसे कहा था, कि स्त्री से या किसीसे इस विषय में मखोल करना ही हानिकारक है। लड़ाई सख्त है, गाफ़िल का काम नहीं है कि जय प्राप्त कर सके।

११३—पत्र

व्यवहार।

❀ ॐ ❀ २४—६—२७

देहरादून

प्यारी देवी जी, तुम्हारा पत्र मिला, हाल जाना गया। मालूम होता है अभी तेरे में इतनी नम्रता नहीं आई कि तेरे वर्ताव या वार्त्तालाप से दूसरे को क्रोध न आये। तेरे लिये यह अच्छा नहीं है। यदि·· में यह दूषण हो, तो वह बच्चा है; परन्तु तुझे नम्र होना चाहिये और हमेशा प्रेम का वर्ताव रखना

चाहिये। यह नहीं अभिमान आये कि तू बड़ी है और ''छोटा है। तेरी माता को भी चाहिये कि नम्रता और प्रेम से बच्चों को कहे तब' ' ' 'कभी गुस्सा नहीं करेगा।

११४–पत्र

संसार कैसे दुःखमय है।

ॐ ३०—६—२७

देहरादून

प्रिय''' ''जी, जो आता है, मेरे पास दुःखी ही आता है, उसके दुःख को दूर करने की शक्ति तो मेरे में नहीं है, परन्तु दुःखी जरूर हो जाता हूँ, रोक नहीं सकता। यह मेरी कमजोरी है। जो सुखी है, वह क्यों आयेगा, उसको किसीकी क्या परवाह है। जहां कहीं जाता हूँ दुःख की घटनायें सामने आती ही रहती हैं। संसार इनसे भरा हुआ है। मैं अपना दुःख उस वक्त भूल जाता हूँ। इतने दिन वार्त्तालाप के बाद, तर्क शिरोमणि की समझ में यह मुश्किल से आई कि लोग प्रायः दुःख-निवृत्ति को ही Positive (वास्तविक) सुख समझ लेते हैं। और धोखे में रहते हैं। परन्तु जो सूक्ष्म विचार विषयों की बाबत है वह समझ में अभी नहीं आ सकते। इसलिये, मैंने उधर की छेड़-छाड़ ही नहीं की। अब बताओ क्या करूं। दुःख के सिवाय तो कोई चर्चा ही नहीं मालूम होता—अख़बारों में दुःख के सिवाय कोई बात ही नहीं मिलती। पुस्तकें जितनी मिलती हैं दुःख ही के वर्णन में समाप्त हो जाती हैं।

११५—पत्र

काम के संस्कारों को जीतना ।

ॐ २४—१०—२७
देहरादून

प्रिय····जी, तुम्हारा हाल पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ, तुमने ठीक वैसा ही तप किया जैसा कि एक धार्मिक पुरुष को योग्य है। तजुर्बा करते समय यह देखना है, कि जिस वस्तु को भोगते हो वह कैसी है। जब उसके घृणा के संस्कार दृढ़ हो गये, यानी उसका ख्याल आते ही साथ ही घृणा भी आये, तब तजुर्बा बंद कर देना चाहिये। तुम यह मत समझो, कि तजुर्बा करते-करते उत्तेजना कम होती जाती हुई, हमेशा के लिये बंद हो जायेगी। नहीं, कुछ काल पीछे फिर होने लगेगी। इसलिये संस्कार दृढ़ हो जाने पर हठ से उस व्यवहार को रोकना चाहिये। बार-बार मन को समझाना चाहिये, कि जिस बात की तू इच्छा करता है, देख वह कैसी है। और तुझको पीछे कितना नुक़सान उठाना पड़ता है, इत्यादि। ऐसा चिंतन करना और जागृत में कभी स्त्री से हँसी भी न करना, ताकि काम के भावों को सिंचाई न मिले, न दूसरों से कभी ऐसी बातें सुनना। जो इनकी निन्दा करते हैं, उन्हींका संग करना या अकेले रहना। और वैराग्य की पुस्तकों को विचारना; ख़ासकर योग वाशिष्ठ का वैराग प्रकरण देखते रहना चाहिये। पढ़ना कम, मनन अधिक करना। इस तरह से कुछ काल पीछे चेष्टा शांत हो जायेगी। खाने-पीने की सावधानी हमेशा रखना।

———

११६—पत्र

जीवन के उपयोगी कुछ साधारण नियम ।

* ॐ * २५—३—२८

मुलतान

मन में ध्यान-शक्ति को बढ़ाना चाहिये । ध्यान ही में सब बातें पूर्ण कर सकती हैं । भक्त लोग ध्यान ही में भगवान की गोद में खेलते हैं, इत्यादि । इधर-उधर बिना जरूरत न जाओ, बिना जरूरत न बोलो, बिना जरूरत न देखो, न हँसो, अपने घर में बैठी रहो । कुछ न कुछ काम में लगाये रहो । कुछ काम न हो, तो चरखा कातो, परन्तु बिना प्रयोजन इधर-उधर मारे-मारे फिरने से मन-चंचल रहता है, और दुःख देता है । कथा वार्ता सुनने भी तब जाओ, जब तुम कथा न कर सको । कथा अपने मन को सुनाओ और उस पर अमल करो । जैसी हालत में प्रभु रक्खें, वैसी हालत में संतोष के साथ निर्वाह करना सीखो । शिकायत न करो, शिकायत करने से मन कमजोर हो जाता है । इस हालत में धैर्य्य के साथ निर्वाह करने का यत्न करते रहो, तो मन आप ही ठीक हो जायेगा ।

११७—पत्र

प्रतिज्ञा व्रत पालनेवाला और निष्पाप जीवन व्यतीत करनेवाला ही ईश्वर को प्यारा है ।

ॐ ॐ ॐ २८—३—२८

मुलतान

मैं तुम लोगों के व्यवहार से ख़ुश नहीं हूँ, तुम लोगों को मैंने हमेशा कहा कि हृदय को पवित्र रक्खो, छल-कपट न करो, बहानाबाजी न करो, परन्तु बहुत सी वैसी ही हैं जो इन बातों की परवाह नहीं करतीं। प्रतिज्ञा को परवाह न करना वे पाप नहीं समझतीं, बस अब भजन सीख लिया, अभी तक कल्याण हो गया। उनको इस बात का ख़्याल ही नहीं कि प्रतिज्ञा को तोड़ने से कितना पाप लगता है। उस पाप की वजह से न यहाँ सुख हो सकता है न परलोक में मिल सकता है, और न भजन में तरक़्क़ी ही हो सकती है, और उलटे विघ्न ही होंगे। जो पाप को नहीं छोड़ता, और भजन करता है, उसके भजन की क़दर भगवान् के दरबार में नहीं होती। जो पाप से बचता है, धर्म पर खड़ा रहता है, वही भगवान को प्यारा है। पहले पाप से घृणा होना चाहिये, पीछे स्वाद से बेपरवाह होना चाहिये, ऐसी चीज़ें खाना चाहिये जो शरीर और मन दोनों को लाभकारी हों, और भजन में विघ्न न डालें। प्रतिज्ञा वह हो जो पत्थर पर लकीर की तरह हो। पहले सोच-समझ कर प्रतिज्ञा करो, फिर करके पूरा करो, जिससे तुम्हारी बात पर लोगों को विश्वास हो, और तुम्हारे मन की शक्ति बढ़ती चली जाय। तुम्हारा स्वभाव ऐसा होना चाहिये, जो लोगों को प्रसन्न करने वाला हो, ऐसा न हो कि तुम दूसरों को देखकर जलो, और लड़ती रहो। तुम्हारा अच्छा स्वभाव होगा, तभी तुम्हारा कल्याण होगा, और तुम्हारे बाल-बच्चों और मिलने वालों पर अच्छा असर पड़ेगा।

११८-पत्र

निष्पाप जीवन के नियम-विस्तार सहित।

※ ॐ ※ ३०—३—२८

मुलतान

१. अहिंसा—मन-वचन कर्म से किसीको दुःख न देना, परन्तु अपनी जान-माल और धर्म की रक्षा के लिये शास्त्र-अनुसार यदि किसीको दुःख पहुँच जाये तो दोष नहीं है, या दूसरे की भलाई करने में या उसको या दूसरे को शास्त्र के अनुसार दुःख पहुँचे, तब भी दोष नहीं है।

२. सत्य—जैसा दिल में भाव हो, वैसा ही करना तथा कहना। भाव प्रकट करने में स्पष्ट शब्द बोलना चाहिये। यदि दूसरे को हानि पहुँचाने के लिये झूठ बोला जाये, तो बहुत ही दोष लगता है, परन्तु, यदि अपने जान-माल-धर्म की रक्षा के लिये बोला जाये, तो थोड़ा या बहुत कम दोष लगता है।

३. चोरी—किसी का हक़ लेना या छिपा कर या चालाकी से, ज़बरदस्ती से लेना चोरी कहाती है।

४. ब्रह्मचर्य—मन वचन कर्म से पर पुरुष (या स्त्री) या किसी पुरुष (वा स्त्री) के संग की इच्छा न करना।

५. विषयों—अर्थात् रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, किसी की इच्छा न करना।

६. भोजन—धार्मिक कमाई का होना चाहिये और रस वाला (शरीर के रसों को बनाने वाला) चिकना, हृदय को हितकारी, निरोग रखने वाला, आयु-बल और बुद्धि को बढ़ाने वाला, होना चाहिये। खट्टा, चटपटा, तीक्ष्ण, कसैला, रूखा,

कड़ुवा, बहुत नमकीन और गरम नहीं होना चाहिये। जो हृदय को जलन पैदा करे, वह भी नहीं होना चाहिये। और अपवित्र, दुर्गन्धित, देर से रक्खा हुआ बासी तथा भारी भोजन नहीं करना चाहिये।

७. व्यवहार—में मन को पवित्र रखना चाहिये। मन सरल रहे, छल-कपट ईर्षा-द्वेष क्रोध आदि से बचना चाहिये।

८. शरीर की शुद्धि—शरीर के निरोग रखने के लिये जितनी जिस समय आवश्यकता समझी जाये, उतनी ही होनी चाहिये।

९. संसारी उद्योग—या कोई धर्म काम करने पर जितना या जैसा नतीजा हो, उस पर संतोप करना चाहिये।

१०. सुख-दुःख—मान-अपमान, स्तुति-निन्दा, नेकनामी बद-नामी, हानि-लाभ में हर्ष-शोक नहीं करना चाहिये, बल्कि उस समय विचार करना चाहिये कि यह मेरे पिछले कर्मानुसार जैसा कुछ मेरा भोग था वैसे ही वह मेरे सामने आ गया, दूसरा केवल, भोग सिद्ध होने में, साधन-मात्र है।

११. पढ़ने के लिये कोई धर्म-पुस्तक, जिससे भक्ति, धर्म तथा वैराग्य बढ़े, होना चाहिये।

१२. धर्म-कर्म—करते हुये, किसीका उपकार करते हुये, ईश्वर से या संसार से बदले की इच्छा नहीं करनी चाहिये। जिस तरह वह हमारा कल्याण समझेंगे वैसे वह आप ही करेंगे। हमको उन पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखते हुये उनकी रज़ा में राज़ी रहना चाहिये।

११९–पत्र

अन्य पुरुषों से व्यवहार की रीति।

* ॐ * ३१—३—२८

मुलतान

मित्र ······जी, तुम्हारा पत्र मिला, हाल जाना गया। इसमें शक नहीं कि पं०······जी ने तुमको कहा कि तुम उसको पुत्र की तरह समझो और तुमने भी अपनी तरफ़ से वैसा ही समझने और बर्ताव रखने की हत्तुलवसा (यथाशक्ति) कोशिश की, मगर इन्सान से यह गलती हो जाती है कि वह दूसरे से इतने ज्यादह नेक सलूक की उम्मीद बना लेता है, जितना दूसरा नहीं कर सकता। और जब उसकी उम्मीद पूरी नहीं होती, तब बुरा मनाता है। ऐसा ही हाल तुम्हारे साथ हुआ कि तुमने तो अपनी तरफ़ से काफ़ी नेक-नियती का सलूक किया मगर ··के पैमाने में कम बैठा, इसलिये वह मायूस होकर अलग हो गया। अब जब तुम्हारा दिल साफ़ है और अपनी तरफ़ से तुमने कोशिश नेक सलूक की काफ़ी की और तिस पर भी अगर दूसरे को तसल्ली न हुई, तो परवाह नहीं करना चाहिये। कोई पुरुष सबको ख़ुश नहीं कर सकता, वह सिर्फ़ ईश्वर के सामने साफ़ दिल रह सकता है। ईश्वर उसको उसके सलूक का समर (फल) जरूर देंगे। इस जन्म में जो हानि-लाभ, संयोग और वियोग, सुख और दुःख हो रहा है वह पिछले जन्मों के कर्मों के मुताबिक़ हो रहा है। इसलिये तुमको ईश्वर के न्याय पर सब्र करना चाहिये। जब कभी किसी के साथ कोई काम करना चाहो, तब उसके साथ साफ़ तौर पर शरतें तै कर लो। और बाद अज़ाँ अपने दिल को साफ़ रखते हुये, ईश्वर को हाजर-नाजर समझते हुये काम करते जाओ। इतने पर अगर दूसरा संतुष्ट न हो, तो तुम्हारा कोई क़सूर नहीं है। तुमको पश्चात्ताप करने को कोई जरूरत नहीं है। तुमको तुम्हारे कर्म का फल वक़्त आने पर

ईश्वर जरूर देंगे। हर एक आदमी अपने ख्यालात और वचन और कर्म में आजाद है। जैसे तुम आजादी के ख्वाहान् हो, उसी तरह दूसरा भी है। इसीलिये अगर वह अलहदा रहना पसंद करता है, तो तुमको बुरा नहीं मनाना चाहिये, बल्कि तुमको ख़ुश होना चाहिये कि तुमने उसको इस क़ाबिल कर दिया है कि वह अब अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है। और जब तुम जानते हो कि तुम्हारा दिल इन्साफ़ से भरा हुआ है, तब अलहदगी की वजह खास जानने की भी जरूरत नहीं है। इसकी भी चिन्ता बिल्कुल छोड़ देनी चाहिये। कोई अपनेसे ख़ुश हो जाता है, कोई नाराज हो जाता है, सबकी मरजी के मुताबिक़ तुम्हारा रविया (वर्ताव) नहीं हो सकता। इसलिये दिल को साफ़ रक्खे हुये, ईश्वर को हाजिर-नाजिर समझते हुये, काम करते रहो और मस्त रहो। इसी में कल्याण है। दिल साफ़ रहो, हिसाब साफ़ के मसले को हमेशा सामने रक्खो।

१२०—पत्र

स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य रखकर जीवन सफल करें।

* ॐ * १—४—२६

मुलतान

वैराग्य शतक में जो स्त्रियों के शरीर की तथा उनके स्वभाव की निन्दा लिखी है वह संसारी स्त्रियों के विषय में है, जो अपने आपको सजा कर तेल-फुलेल लगा कर पुरुषों को मोहित करती हैं। देवियों के विषय में नहीं है। निन्दा का तात्पर्य यह है कि पुरुष स्त्रियों में न फँसकर ब्रह्मचर्य रक्खें और अपना जीवन सफल

करें। यही उपदेश स्त्रियों के लिये है कि पुरुषों का शरीर घृणित है, उसमें न फँसकर ब्रह्मचारिणी रहें और जीवन सफल करें। उपदेश का असर उन्हीं स्त्री पुरुषों पर होता है जिनका हृदय पवित्र है।

१२१—पत्र

संसार संयोग-वियोगशील है, इससे बे परवाह हो कर संतोष में रहो।

❀ ॐ ❀ ४—४—२८

मुलतान

संसार की यही गति है। संयोग और वियोग होता रहता है। जो मूर्ख है वह रोता है; जिसको कुछ समझ है, वह संसार से चित्त को हटाकर, प्रभू के चरणों में लगाता है। तेरे को अभ्यास में जो तरक्की नहीं होती, उसका कारण यही है कि तेरे दिल में भगवान के लिये प्रेम नहीं है। तेरा तो चित्त वहम में फँसा हुआ है, फिर चित्त को शान्ति कैसे आवे। तेरे लिये यही अच्छा है; कि तू भी वहीं चली जाओ। उसके साथ तू भी प्राण त्याग देना। क्योंकि संसार में तेरा जीवन-आधार तो वह ही है। तू उसके विना कैसे जिन्दा रह सकती है। जिसका मुख प्रभू की तरफ़ होता है, जो भगवान को अपना जीवन-आधार समझता है, वह सम्वन्धियों और साथियों के वियोग में दुःखी नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि प्रभू उसकी रक्षा करने वाले हमेशा उसके दिल में विराजमान हैं। वह जिससे चाहते हैं उसकी रक्षा कराते हैं।

१२२-पत्र

मृत्यु अथवा वियोग होना अवश्य है, इस के दुःख से बचने के उपाय।

ॐ ८—४—२८

मुलतान

जीव का कल्याण वैराग्य से होता है, सो उसकी तरफ़ तो कोशिश नहीं होती, इधर-उधर भटकती रहती है। धन्यवाद की जरूरत नहीं है। तेरे माता-पिता या अन्य सम्बंधी मर गए, पति मर गए, उनको तू क्यों नहीं याद करती। एक दूसरे के मरने के लिये तब रोवे जब आप न मरना हो। जिसके घर में आग लगी हो, वह दूसरे के घर की आग बुझाने के लिये कब जा सकता है। पहिले तो अपने ही घर की आग बुझावेगा। और यदि अपने घर की चिंता छोड़कर दूसरे के घर की आग बुझाने जाता है, तो वह मूर्ख है, पीछे रोएगा; जब मकान जल जाएगा, और रहने को जगह न मिलेगी। जीव पैदा होता है, थोड़े दिन ठहरता है, फिर चल देता है। मुसाफ़िर की तरह जो इस सृष्टि के नियम पर ध्यान रखता है, वह किसीसे विशेष प्रेम नहीं करता। तू तो कहती है, छै मास में तेरी मृत्यू होगी, फिर सहेली की याद कुछ सहायता न करेगी। इधर तू प्राणायाम करना चाहती है, उधर तेरा चित्त संसार में फँसा हुआ है, जिसके वियोग को तू सहार नहीं सकती। इस लिए तू रज कर संसार से प्रेम कर ले। जब काफ़ी ठोकर खावेगी, तब आप ही छोड़ेगी।

१२३—पत्र

एक विदुषी स्त्री को चान्द्रायण व्रत का उपदेश। चान्द्रायण व्रत के नियम; विशेष रूप से व्याख्या।

ॐ १०—४—२८
मुलतान

श्रीमती पूज्य,……जी, आपके पत्र के उत्तर में निवेदन है, कि इस वक्त, और पहिले से भी चित्त में आपके विषय में यही फुरना होता रहा है, कि आपके पिछले कर्मों का विघ्न प्रबल है। यह व्रत शास्त्र में पिछले पापों को नाश करके, हृदय को शुद्ध करके, बलवान करने वाले कहे गये हैं। और सब मुनि परम श्रद्धा से करते चले आये हैं। इसलिये अपने कल्याण के लिये निश्चिन्त होकर, निर्विघ्न स्थान में रहकर करना अच्छा रहेगा। आपको बारह चांद्रायण लगातार करने के लिये फुरना होती है। इसलिये स्थान ऐसा होना चाहिये जहाँ पर गरमी न सताये, और सर्दी भी सर्दियों में अधिक न सताये। क्योंकि बारह मास लगातार व्रत में रहने से स्थान नहीं छोड़ना चाहिये। यदि कोई चांद्रायण कभी किया, कोई कभी किया, इस तरह से बारह पूरे किये, तो जो फल लक्ष्य में है उसके मिलने में संदेह है। अतः खूब सोच-समझकर करना है। (१) चाहे पूर्णमासी से आरम्भ करें, चाहे अमावस्या से, ग्रास चन्द्रकला के अनुसार होना चाहिए। (२) ग्रास इतना बड़ा नहीं होना चाहिये जैसा कि पिछली दफ़ा लिया था। जैसे स्वाभाविक तौर पर ग्रास ग्रसा जाता है वैसा होना चाहिये, उद्देश अधिक खिलाने का न हो,

बल्कि कष्ट सहारना लक्ष्य समझा जाये। (३) भोजन नियत समय पर होना चाहिये। (४) भोजन काल के वक़्त जो तिथि वर्तमान हो, उसके अनुसार ग्रासों की संख्या होनी चाहिये। यह पंचांग को देखकर पहिले ही काग़ज में मास-मास का ब्योरा लिख लेना चाहिये। (५) यह व्रत साल भर का समझना चाहिये। इसलिये इसको आरम्भ करने का संकल्प एक दफ़ा लेकर वह फिर तिथियों के अनुसार चलता रहेगा। (६) यह ध्यान रहे कि यह व्रत अभ्यास के लक्ष्य से ही इस तरह पर रक्खा गया है। इसलिये यदि इस लक्ष्य की पूर्त्ति के लिये चिन्तित होओ, तो ऐसा ही करना चाहिये। (७) काफ़ी संसारी ऐश्वर्य भोग लिया है, अब यदि हिम्मत हो, तो शेष जीवन प्रभु के चरणों में व्यतीत करती हुई समाप्त कर दो। यदि अभी संसारी सुखों से तृप्ति नहीं हुई, तब जैसी इच्छा हो वैसी करो। अन्तिम प्रार्थना यह है कि त्रिया-चरित्र को अब तो त्यागने ही से कल्याण होगा।

नोट—व्रत में केवल जाप रहेगा, या संसार में दुःखों का विचार, या प्रभु से प्रार्थना, जैसी दिल से फ़ुरे। कोई पुस्तक का पढ़ना, सुनना नहीं रहेगा, न दिल बहलाव के लिये वेद मंत्रों की व्याख्या ही रहेगी। मानसिक, वाचिक, कायिक, तीनों प्रकार के पापों का नाश के लिये होता है, इसलिये तीनों को दण्ड पहुँचता है। जो दण्ड से घबड़ाता है, वह पाप को नाश नहीं कर सकता। अधूरे व्रत का अधूरा ही फल मिलता है।

१२४—पत्र

क्या उपदेश अवश्य ब्राह्मण ही से लेना

चाहिये ? विस्तृत विचार–मानुष शरीर चाहे ब्राह्मण का हो चाहे अन्य व्यक्ति का सब एकसा, एक प्रकार के परमाणुओं का बना हुआ है। नाम भेद अवश्य है।

ॐ अप्रैल १६२८
मुलतान

यदि ब्राह्मण संन्यासी मिले, तो भी श्रेष्ठ है, वरना दूसरे वर्ण से भी उपदेश लेना शास्त्रों में देखा जाता है। जैसे व्यासजी ने अपने पुत्र शुकदेव जी को राजा जनक के पास उपदेश लेने के लिए भेजा था। उपनिषदों में लिखा है, कि ब्रह्म ऋषि लोग एक क्षत्रिय राजा के पास जाकर ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण किये हुये साल भर तक रहे थे, परीक्षा ले लेने के पीछे, राजा ने उनको ब्रह्म विद्या विषय के प्रश्नों का उत्तर दिया, और उपदेश दिया। मनुस्मृति में लिखा है कि ब्राह्मण के अभाव में क्षत्रिय से भी वेद पढ़ ले। दास का शरीर क्षत्रिय वर्ण कुल का है, और खास वेद-शास्त्र पढ़ा भी नहीं है, बिल्कुल मूर्ख है। परन्तु पण्डित…… जी पण्डित……जी, पण्डित……जी, पण्डित……जी, शास्त्री आदि सब लोग दास पर कृपा करते हैं, और यद्यपि दास इस योग्य तो नहीं है, परन्तु उनकी श्रद्धा ऐसे है कि वे दास पर गुरु-भक्ति रखते हैं। इससे भी मैं समझता हूँ कि उपदेश लेने के लिए वर्ण की क़ैद नहीं प्रतीत होती। जैसे किसी ने कहा है।

"उत्तम विद्या लीजिए यदपि नीच पै होय,
परो अपावन ठौर में कंचन तजत न कोय ॥"

परन्तु यह अवश्य है, कि जब तक पवित्र स्थान में सोना मिल सके तो गंदी जगह का सोना क्यों लें। इसलिए प्रथम तो ब्राह्मण ही संन्यासी मिले, तो श्रेष्ठ होगा। उसी से उपदेश लेना चाहिये। परन्तु यदि दुर्भाग्य वश ऐसा न हो सका, तो दूसरे वर्ण वाले से भी उपदेश ले लेना। क्योंकि यदि जीवन विना उपदेश लिये ही चला गया, तो घाटा ही रहा। हाँ, यह अवश्य होना चाहिये कि जिसको गुरू बनाना है वह भगवान श्रीरामचन्द्रजी महाराज का दास अवश्य हो, क्योंकि कहा है कि—

"जाके प्रिय न राम-वैदेही।
सो छाड़िये कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही।"

पहिले शरीर से विरक्त होना है। जो शरीर माता-पिता से मिला है, जिसके लिये ब्राह्मणपने का अभिमान है, वह कैसा है। जितने छिद्र हैं, सबसे गन्दगी निकलती है, भीतर चर्वी मांस-लहू और हड्डियाँ हैं, जब तक दिल में गंद रहे तब तक विरक्त होना बहुत दूर है। जीव तो कर्मानुसार सब योनियों में भ्रमण करता है, अब घूमता घूमता ब्राह्मण शरीर के वीर्य में पहुँचकर ब्राह्मणी के गर्भाशय में जाकर, उसके गंदे ख़ून से मिलकर, स्थूल शरीर धारी हुआ, तब उस स्थूल शरीर की वजह से ब्राह्मण कहलाता है। कभी इसका स्थूल शरीर हाथी का होता है। वह तो एक रस है, सब योनियों में घूमता है। योनी के संवाद से उसका वह नाम हो जाता है। जैसे एक आदमी भी जब रसोई का काम करता है वह रसोईया कहलाता है, जब सोने का काम करता है, तब सुनार कहलाता है, इत्यादि। ऐसा ही जीवात्मा का हाल है। वैसे शरीर सब गन्दे हैं। तुम्हारा शरीर ब्राह्मण का है, परन्तु वैसे दुर्गंधि से भरा हुआ है, जैसे औरों का। इसलिये पहले इस मूर्खता को छोड़ना चाहिये कि

गन्दे शरीर का अभिमान न करे, पीछे बिरादरी का झगड़ा मुकाये। परन्तु, घर छोड़कर फिर आगे जाकर नई बिरादरी में न फँसे। नये बहन, भाई, माता, पिता न बनावे। वर्ना, फँसा का फँसा ही रहा। गुरु बहिन, गुरु भाई, इत्यादि नई बिरादरी से बचे।

१२९—पत्र

पतिव्रता स्त्री का जीवन-निर्वाह और व्यवहार कैसा होता है।

ॐ अप्रैल १६२८
मुलतान

संसारी व्यवहार शरीर-यात्रा के लिये ऊपर भाव से करना चाहिये। दिल प्रभू की तरफ़ लगा रहे, शरीर-रक्षा के ख़याल से काम करते रहे और संसार में दुःख देखते रहे, तब ऐसा व्यवहार बन्धन का कारण नहीं हो सकता। जो पतिव्रता स्त्री होती है, उसके एक ही पती होता है, उसीसे उसका प्रेम होता है, औरों के साथ भी वह ऊपर मन से व्यवहार निर्वाह-मात्र करती है, परन्तु दिल अपने स्वामी में होता है, और जो कुछ दूसरे लोगों के साथ व्यवहार करती है, वह अपने स्वामी की आज्ञा से करती है। जहाँ स्वामी की आज्ञा न हो, वहाँ नहीं करती, इसीलिये उसका मन दूसरी जगह नहीं फँसता, और न वह कभी गिरती है। जो आवाज़ आती है, वह ठीक है। परन्तु कभी-कभी अपना संस्कार भी अन्दर ही गूँज कर आवाज़ पैदा कर देता है। चाहे कुछ हो, सब ठीक है, तुमको कहीं न कहीं तो

रहना है, जहाँ प्रभू रक्खें, वहीं सन्तोष से जीवन व्यतीत करो। शिकायत करना, मानों प्रभू के न्याय से असन्तुष्ट होना है, सो ठीक नहीं है। रक्षा करने वाले प्रभु ही होते हैं। परन्तु वे किसी न किसी को निमित्त बना देते हैं, और उनके जरिये से रक्षा कराते हैं।

१२६—पत्र

स्त्री के जीवन की साधारण धार्मिक बातों का उपदेश।

ॐ अप्रैल १९२८
मुलतान

... जी, तेरा धैर्य्य सराहनीय है, हमेशा नम्रता-पूर्वक बात करना चाहिये। मर्यादा से बाहिर न होना चाहिये। सब बात हानि-लाभ को सोच-विचार कर होना चाहिये। एक दम से हठ भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि कभी-कभी बहुत हठ करने से काम बिगड़ जाता है। इसलिये मौका देख कर, सब काम करना चाहिये, मन को लक्ष्य पर हमेशा रक्खो। ऊपर से व्यवहार लोक-कुल के अनुसार करते रहो।

१२७—पत्र

कर्म—फल ईश्वराधीन है।

ॐ अप्रैल १९२८
मुलतान

......जी, कर्म के फल में सब जीव पराधीन हैं। पाप का

फल सबको भोगना ही पड़ता है। मूर्खता से, अभिमान से, जीव मन-मानी कर डालता है, पीछे रोता है।

१२८—पत्र

साधारण स्त्री-जीवन

नियम, अभ्यास और गर्भिणी स्त्री।

ॐ १५—५—२८

मुलतान

तू अपना कर्तव्य पालन करती रह और जैसा कुछ हो, जिस तरह से हो, उसको देखती रहो। अपनी इच्छा छोड़ दे, कि मैं ऐसा करूँ या ऐसा हो, या वैसा हो, सब प्रभु पर छोड़ दे? जैसा उनकी इच्छा हो वैसा हो, तू उसमें सन्तुष्ट रह। इसी तरह व्यवहार करती हुई, तू अपना काम-काज धर्म-पूर्वक ईश्वर की आज्ञानुसार करती रहो, और फिर जैसा कुछ ईश्वर को मंजूर होगा वैसा होता रहेगा। उसमें सबर कर, जैसी तेरी प्रारब्ध होगी, वैसी ही भगवान करेंगे। इसलिए होनहार को भगवान् के ऊपर छोड़कर सन्तुष्ट रहने से भगवान् प्रसन्न होंगे, और तेरा चित्त भी शान्त रहेगा। ऐसा ही भजन में भी वृत्ति रखना चाहिये। अपना काम करते रहे, फिर जो कुछ हुआ उसको प्रभु की मरजी, वैसे ही समझ कर सन्तुष्ट रहो। इससे तेरा अधिकार बढ़ जायेगा। फिर प्रभु आपही जैसा उचित समझेंगे करते जायेंगे। सोकर भजन करने में कुछ हर्ज नहीं है, करो। परन्तु यदि कभी नींद आ जाये, तो घबड़ाना नहीं, जब नींद खुल जाय, और समय हो, तब फिर लेटे-लेटे ध्यान करो। आठ या दस

मुनक्के, शाम को, ठण्ढे पानी में, मिट्टी के बरतन में, आध पाव पानी में, या तीन छटाक पानी में, भिगो दो, जब अभ्यास से उठो तब वे मुनक्के, खाकर, उन्हींका पानी पी लो, तो दिल को ताक़त भी होगी, और प्यास को भी बुझायेंगे। परन्तु अभ्यास के बाद शरीर को ठीक कर लो, तब पीना चाहिये। गर्भवती स्त्री को बहुत अभ्यास नहीं करना चाहिये, क्योंकि उससे एक तो शरीर को नुक़सान होता है, दूसरा, गर्भ को हानि पहुँचती है, तीसरी बात यह है कि बहुत अभ्यास करने से शरीर कमज़ोर होता जायगा, तब तुझे सम्भव है, कष्ट अधिक हो, जो और गर्भों में नहीं हुआ हो। शरीर और गर्भ की रक्षा अवश्य करना चाहिये। यदि गर्भ की रक्षा की परवाह न की जाय तो पाप लगेगा, और शरीर की रक्षा न रक्खेगी तो पीछे अभ्यास बन्द हो जायेगा।

१२६—पत्र

विषय-सुख और काम-ज्वर से हानि, काम पर विजय।

ॐ २०—७—२८
देहरादून

प्रिय···जी, तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ, हाल जाना गया। तुमको पहले ही समझाया था, कि परीक्षा देने से पहिले विद्यार्थी को पढ़ाई अच्छी तरह ठीक कर लेनी चाहिये। परन्तु, तुम इस बात पर ध्यान किये बिना कठिन और सूक्ष्म परीक्षक के अर्पण कर देते हो, सो फ़ेल तो होना ही हुआ। पहिले तुम इतने काल

तक साधन करो, कि तुम्हारा मन विषयों में तथा भोजन के स्वाद में कभी राग न प्रकट करे। और फिर अपने मन को देखते रहो, कि कभी किसी युवा स्त्री को देखकर विकार को प्राप्त होता है या नहीं। जब विषयों से उपराम रहने लगे, स्त्रियों से उदासीन रहे, स्वप्न में भी कभी स्त्री में सुख न मानें, तब समझो कि कुछ हुआ। इसके पहिले मूर्खताई में फँसे रहोगे, काम-संस्कार को कभी नहीं नष्ट कर सकोगे। तुम्हारे जैसे मूर्खों को स्त्रियाँ बन्दर की तरह नचाती हैं, और अपनी चतुराई समझते हुए, शौक़ से नाचते हैं, और समझते हैं कि हम कुछ तरक़्क़ी कर रहे हैं। यह तजुर्बा क्या है? यह पाप है। उसका फल गिरावट अवश्य होता है। जिस चीज़ को तुमने सैकड़ों बार देख लिया, छू लिया, और अक़्ल न आई, तो अब कैसे आएगी। जब स्त्री को स्पर्श करने पर उत्तेजना हो गई, तब गिरावट तो हो गई, आगे क्या कर सकोगे, इस लिये उत्तेजना को मौक़ा ही मत दो, वरना पछताओगे। इससे हड्डी का दरद कभी नहीं जाएगा, वीर्य-दोष पैदा हो जायेगा।

१३०—पत्र

अनुभव को पुष्ट करना चाहिये।

❀ ॐ ❀ १०—६—२८

देहरादून

श्रीमानजी, प्रणाम। अब मुझे इस बात से संतोष है, कि आप सच्चाई को पकड़ने के लिये कमर-कसता हैं। अपने अनुभव से ग़लत फ़हमी को दूर करना है, इसलिये अनुभव को पुष्ट करने में काफ़ी कोशिश जारी रहनी चाहिये। सत्य समझ

पर खड़ा रहना चाहिये, और व्यवहार करते वक्त देख लेना चाहिये, कि सत्य समझ के आधार पर व्यवहार है या नहीं। यह जरूर मन से कहते रहना चाहिये और बल्कि ललकार देना चाहिये कि भाई शरीर का पता नहीं कब चल दे, इसलिये जो कुछ तू इस दुनिया से लाभ उठा सकता है और सुख ले सकता है, वह ले ले, वर्ना पीछे पश्चात्ताप रहेगा। मगर, यह जरूर ख्याल रहे कि लाभ और सुख असली हो, सिरफ़ माना हुआ न हो, वर्ना ठगा जायेगा। मेरे को भी कभी-कभी आशीर्वाद देते रहें और यह फ़रमाते रहें। अगर मैं कभी जवाब न दे सकूँ, तो परवाह न करें। अगर अजीब ग़रीब सिद्धियाँ न मिल सकीं, तो न सही, मगर सचाई के संस्कार लेकर जरूर जाना चाहिये, पीछे और बातों को देख लिया जायेगा।

१३१—पत्र

स्त्री-जीवन साधारण नियम।

ॐ　　　　२७—६—२६

देहरादून

श्रीमती……जी, तुम लोग समय तो बहुत लेती हो, परन्तु करके कुछ भी नहीं दिखाया। मुझे तकलीफ़ भी दी, और नियमों पर चलने की प्रतिज्ञायें भी कीं, परन्तु फिर भी पूरा करके नहीं दिखलाती हो। न तो शरीर ही को ठीक रखती हो, न मन ही, व्यवहार में ठीक रहता है। इसीलिये सहन-शीलता भी दृढ़ नहीं होती, लड़ना-झगड़ना छूटता ही नहीं। तब फिर तुम्हारे लिये इतना बन्धन क्यों सहारा जाय। तुम अपने दर्शनों की इच्छा को पूरी करने के लिये सबको बन्धन में डाल देती हो, परन्तु

दर्शनों का फल क्या हुआ ? यदि, तुम्हारी मानसिक शक्ति न बढ़ी, और मनकी पवित्रता न हुई। भजन करने वालों की थोड़ी सी त्रुटि भी बहुत समझना चाहिये। इसलिये मैंने अब यह नतीजा निकाला है, कि तुम लोगों के लिए बेजा कष्ट सहारना फ़ज़ूल है। तुम लोगों के स्वभाव तथा आचरण में यदि अन्य स्त्रियों की अपेक्षा विशेषता न पाई गई, तो क्या बना ? अपने चरित्र को धार्मिक रखते हुए, और पाप से बचते हुए, यदि तुम्हारे में दूसरों के बचन सहारने की शक्ति न पैदा हुई, तो क्या बना ? जिसका हृदय धर्म से भरा हुआ नहीं है, और पाप से घृणा नहीं है, और सहन-शील नहीं है, तब उसको व्रत और भजन से क्या लाभ हुआ ? उसको न यहाँ सुख मिल सकता है, न परलोक में सुख मिलेगा। तुम लोगों ने अब तक आज्ञा पर चलना ही नहीं सीखा। यदि कष्ट सहारने के लिये तुम्हारा मन सब प्रकार से तैयार है, तब शरीर तथा मनको ठीक रखने के लिये जैसे कहा गया है वैसे करो और सहन-शक्ति को दृढ़ करो। ज़माना देखकर व्यवहार ठीक रखना चाहिये।

१३२—पत्र

आधुनिक सामाजिक अवस्था। व्यवहार शुद्धि के बिना अभ्यास के कुछ माने ही नहीं। अभ्यास के अधिकारी बनने के साधन—भजन और व्यवहार शुद्धि का घनिष्ट सम्बन्ध।

* ॐ * ६—१०—२८

देहरादून

प्रिय ......जी, तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ। पहिले मैं थोड़ा सा कठिनाइयों का दर्शन कराके पीछे तुम्हारे पत्र पर अपनी राय लिखूँगा। (१) आज-कल सामाजिक अवस्था ऐसी विगड़ी हुई है कि लोगों का ध्यान व्यवहार-शुद्धि की तरफ़ बहुत कम है, इसलिए जब कोई अभ्यास के लिए आता है, तब पहिले व्यवहार-शुद्धि के लिये कहना पड़ता है। इसमें इतनी अड़चनें पेश आती हैं, कि जिनके हल करने में बहुत मग़ज़-मारी करना पड़ता है। (२) कोई-कोई तो व्यवहार-शुद्धि की वात सुनकर ही हट जाते हैं, और कोई-कोई करने के लिये कहते हैं; परन्तु जब उनसे बाक़ायदा प्रतिज्ञा करने को कहा जाता है, तब इनकार कर देते हैं। ऐसे कोई विरला ही निकलते हैं, जो सब प्रकार से दृढ़ हों। (३) अब यदि किसीने व्यवहार-शुद्धि के लिये आगे की प्रतिज्ञा कर भी ली, तो जो घृणित आचरण उसने पहले रक्खा है, उसके लिये प्रायश्चित्त कराना जरूरी कहा जाता है। यह सुनकर भी कई घबरा जाते हैं। और यदि प्रायश्चित्त करने के लिये हिम्मत की, तो कोई-कोई तो कठिनाइयाँ पड़ने पर बीच ही में छोड़ देते हैं, और पीछे आकर अभ्यास के लिये तकाज़ा करते हैं। परन्तु जब उचित न समझकर उनको जवाब दे दिया जाता है, कि अभी अधिकारी नहीं हो, तब वे शत्रु बन जाते हैं। (४) जो प्रायश्चित्त करके व्यवहार-शुद्धि पर कटिवद्ध रहना चाहते हैं, उनके सम्बन्धी उनको रुकावटें डाल देते हैं। और मेरे पर गालियों की वर्षा करते रहते हैं, कि इसने हमारे बच्चों या पतियों को बिगाड़ दिया; हमारा घर नाश कर दिया, इत्यादि। (५) अब जो लोग इतनी हिम्मत करके उपदेश पर

चलने के लिये कटिबद्ध हैं, उनके युद्ध में उन्हें समयोचित सहायता देना ही पड़ता है। (६) कई एक व्यक्तियाँ ऐसी आती हैं जो भक्त कहलाती हैं, और क्योंकि साधु लोगों की सेवा वे करते रहते हैं इसलिये वे भी उनको काफ़ी प्रशंसा करके भक्त की उपाधि प्रदान कर देते हैं। जब उनका व्यवहार देखा जाता है; तब घृणा आती है। इसलिये उनको भी ऊपर लिखी हुई बातें कही जाती हैं, जिनसे वे अपनी मान-हानि समझकर चले जाते हैं, और विरुद्ध हो जाते हैं। (७) शहर के लोग प्रायः स्त्रियों से दबे रहते हैं, इसलिये यदि उनकी स्त्रियाँ न चाहें, तो उनको खान-पान ठीक रखने में बड़ी कठिनाइयाँ पड़ती हैं, यह भी एक ज़बरदस्त विघ्न पड़ता है। यदि इस विघ्न को वे सहार भी जायें, तो पीछे स्त्रियों की तरफ़ से ऐसी धमकी मिलती है, कि वे भय खाकर छोड़ बैठते हैं। एक मास्टर की बाबत मुझे पता है कि उसकी बहुत अच्छी अवस्था हो गई थी, परन्तु स्त्री ने जब धमकी दी, तब अभ्यास बिलकुल छोड़ देना पड़ा, और फिर मेरे पास कभी नहीं आया। (८) अब स्त्रियों का हाल सुनो, उनको व्यवहार-शुद्धि की बातें समझाने में पुरुषों की अपेक्षा अधिक परिश्रम पड़ता है, क्योंकि जो त्रुटियाँ हैं, वे उनके स्वाभाविक गुण हैं, इसलिये वे उनको दोष ही नहीं समझतीं इसलिये बहुत तो हिम्मत हार जाती हैं, परन्तु जो हिम्मत करती भी हैं, तो अड़चनें पेश आती हैं। यदि कोई इन अड़चनों में जैसे-तैसे निर्वाह करने की हिम्मत कर भी लेती हैं, तब सम्बन्धियों की तरफ़ से खाने-पीने में रुकावटें होती हैं। इसमें सफलता प्राप्त करने में काफ़ी युद्ध होता है। ऐसी बहुत कम भाग्यवान् होती हैं, जिनको इस अंश में स्वतंत्रता हो। इन सब तकलीफ़ों के होते हुए भी; मैं यह सोचता था कि एक दफ़े मैं

स्त्री-पुरुषों को जगा दूँ, कि बिना व्यवहार-शुद्धि के जीव का कल्याण नहीं हो सकता, और उसके बिना भजन के कुछ माने नहीं, और न वह भजन का अधिकारी ही है। और यह भी, कि जो लोग व्यवहार शुद्ध करते हुये भजन करेंगे, तब भजन में तरक्क़ी होगी। परन्तु, यदि खान-पान को या व्यवहार की त्रुटि होगी, तब विघ्न अवश्य होंगे। सो अब कई एक को यह पता लग गया है, इसलिये अब मन ढीला पड़ गया। अभी तक अधिकारी बनाने के लिये भी कोशिश करना क़बूल कर लेता था, अब यह हिम्मत नहीं रही, अब अधिकारी बन-कर जो आयेंगे, वे ही लाभ उठा सकेंगे। मेरा यह निश्चय है कि जो श्रद्धालु हैं और अधिकारी हैं, उन पर प्रभु अपने न्याय-अनुसार कृपा करते ही हैं। और उनको कहीं न कहीं से लाभ पहुँचा ही देते हैं। इसलिये उनकी कृपा पर विश्वास रक्खे हुये अधिकारी बनने की कोशिश प्रत्येक जीव को करते रहना चाहिये। एक बात यह भी देखने में आती है, कि जो लोग पहले बाक़ायदा प्रतिज्ञा सच्चरित्र की करके भजन में लग भी जाते हैं, वे पीछे व्यवहार में त्रुटि कर देते हैं, और जब भजन में विघ्न हुआ तब फिर आकर तंग करते हैं। जब उनको शरमिन्दा किया जाता है कि व्यवहार में त्रुटि क्यों हुई, तब बातें बनाकर फिर से ठीक रखने की प्रतिज्ञा करते हैं।

१३३—पत्र

शुद्ध व्यवहार और विषय-वासना-त्याग से भीतर के ख़ज़ाने का पता लग सकता है।

ॐ १२—११—२८

देहरादून

प्रिय ·· जी, तुम्हारा पत्र आया, हाल जाना गया। जबसे मैंने मुलतान जाना शुरू किया था, तभी से मेरा यह लक्ष्य था, कि मैं पुरुषों तथा स्त्रियों में इस बात की जागृति करा दूँ, कि यदि वे व्यवहार को शुद्ध रखकर आहार सात्विक करें, और शरीर को ठीक रक्खें, और विषयों से मन को हटा कर अन्तर्मुख करें, तो उनको अपने भीतर के ख़ज़ाने का पता लग सकता है। सो अब इन संकल्पों में बहुत कुछ सफलता हो गई है। अब आगे जैसा प्रभू को मंज़ूर होगा होता रहेगा, जिनकी सच्ची चाह है, वे जान भिड़ाकर कोशिश करेंगे, और सफलता को प्राप्त होंगे। परन्तु जिनके मन में विषयों की लालसा है, उनके लिये कठिन है, तुमको इन्द्रियों के विषयों से बहुत सावधान रहना चाहिये, इसमें तुम बहुत असावधानी कर जाते हो, सैर करना विषय-सेवन नहीं तो और क्या है?

१२४—पत्र

दुष्टों की निन्दा में भलाई है।

ॐ २१—११—२८

देहरादून

प्यारी पुत्री, तेरा पत्र मिला। तेरे उच्च भावों को पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। जो दुष्ट लोग हैं, वे अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकते, क्योंकि उनको उसीमें सुख प्रतीत होता है, चाहे पीछे उनको उसका बुरा फल भोगना पड़े। परन्तु, पीछे की

वे परवाह नहीं करते, वे तो अभी जिससे सुख मिले वही करते हैं, परन्तु, जो ईश्वर-भक्त हैं, वे उनकी दुष्टता से बुरा नहीं मानते। क्योंकि कहा है—

"खल परिहास मोर हित भाई।"

महात्मा तुलसीदासजी कहते हैं—दुष्टों के हँसने से और मेरी बुराई करने से मेरा भला है। इसलिये उन्होंने रामायण की रचना करते हुये दुष्टों को भी प्रणाम ही किया है।

१३५—पत्र

रूप-रस आदि के विषयों का यथार्थ बोध, दृष्टा बनने के साधन।

※ ॐ ※   १५—१२—२८

चित्रकूट

प्रिय ······जी, तुम्हारा पत्र मिला, हाल जाना गया। तुममें यह शक्ति होनी चाहिये, कि तुम केवल रूप ही देखो, अपनी तरफ़ से कुछ नमक-मिर्च न मिलाओ, अर्थात् उसकी कोमलता-स्वाद या सुगन्ध या मधुर शब्द वग़ैरा की कोई कल्पना मन में न आने पावे, इन सब कल्पनाओं को रोककर केवल दृष्टा बन कर देखो, जो कुछ उस रूप का असर तुम्हारे अन्दर होना होगा वह आप ही होगा। तब तुम आप ही फ़ैसला कर सकोगे, कि वह सुन्दरता तुमको कहाँ तक और कब तक अच्छी लगती है। यदि कल्पनाओं को एक दम से न रोक सको, तो पहले मन को तैयार कर लो, और शरीर तथा मन को बिलकुल ढीला कर लो, फिर ढीले मन से उसपर दृष्टि डालकर देखो। ऐसा अभ्यास

प्रत्येक पदार्थ पर करते रहो, तो तुमको अभ्यास आसानी से हो जायेगा, और फिर जहाँ तुमको गड़बड़ी प्रतीत होती है; वहाँ भी जल्दी मन ठीक तौर से देख सकेगा। तुम्हारा मन आने को हो, जब चाहो आ सकते हो। ऊपर लिखे अनुसार तजुर्बा करते जाओ। अभ्यास से जब उठते हो, तब भी प्राप्त वस्तुओं पर उसी वक्त तजुर्बा करो, और मन में उस वक्त के संस्कार दृढ़ करो, जो आगे को काम आयेंगे। अभ्यास में जो तुम्हारा अनुभव है, वह प्रशंसनीय है। यदि नियम-बद्ध होकर नित्य प्रति करते रहोगे, तो तुम्हारा मन बहुत जल्द अन्तर्मुख होने का आदी हो जायेगा, और फिर तुम देखोगे कि जिस सुख को धोखे से बाहर के पदार्थों में तलाश करते हो वह तुम्हारे अन्दर ही है।

१३६—पत्र

विषय पर विजय पाना धैर्यवान योधा का काम है।

॥ ॐ ॥ २३—१२—२८

चित्रकूट

प्रिय····जी, जो घोड़ा करोड़ों वर्ष का बिगड़ा हुआ है, और स्वतंत्र है, मतवाला है, बेपरवाह है, उसको क़ाबू करना बड़े शूरवीर का काम है। तुम धन्य हो, जो उसके साथ युद्ध करने की हिम्मत रखते हो। युद्ध में बहादुर लोग चोटों की परवाह नहीं करते, और यदि लड़ाई देर तक लड़ना पड़े, तो अधीर नहीं होते। इसलिये कहा है, धृति, क्षमा, इत्यादि धर्म के लक्षण हैं, उनका पालन करने वाला ही अंत में कल्याण पद

को प्राप्त होता है। इसलिये यदि मन के साथ लड़ाई करते हुए, उसको अच्छी तरह न भी दबा पाया, तो कोई बात नहीं; कुछ न कुछ तो उसकी तेजी कम होती ही जाती है। परंतु लड़ाई के अन्य नियमों का पालन किये बिना चिरस्थायी सफलता प्राप्त करना असम्भव है। इसलिये, अन्य नियमों पर भी वैसा ही चढ़ाई रखना चाहिये। कुछ काल पीछे जब अभ्यास हो जायेगा, तब स्वभाव बन जायेगा और कोई कठिनाई न प्रतीत होगी, जैसा कि अन्य कामों में हुआ करता है। ख़ुशी की बात है, तुम सबका स्वास्थ्य अच्छा है।

१३७—पत्र

माता-पिता आदि के ऋण। शरीर क्या बतलाता है। माता क्या बतलाती है। स्त्री क्या बतलाती है। सन्तान क्या बतलाती है।

❀ ॐ ❀ १—१—२६.

चित्रकूट

प्यारे……जी, मैंने जो पिछले पत्र में उदारता का ज़िकर किया था, उस वक्त ही मुझे खटकी थी कि यह सब जगह नहीं घटती। फिर मैंने सोचा, दूसरे में संशोधन हो जाएगा। बहुत जगहों में वह कृतज्ञता का रूप धारण करती है, जैसे माता ने तुमको पालन-पोषण करने का बहुत कष्ट उठाया है, तुमको पढ़ाया, शादी करा दी, इत्यादि। लड़कपन में उसने तुम्हारे सब नाज़ व नख़रे सहे, अपने को कष्ट दिया, परन्तु तुमको कष्ट नहीं होने दिया। अब जो तुम उसकी बातें सहार कर भी

उसकी सेवा करते हो, यह थोड़ा सा ऋण चुका रहे हो, पूरी तौर से तो चुकाना कठिन है। जब तुमने विवाह किया, तो स्त्री ने तुम्हारी काम-चेष्टा की पूर्ति की ; जिससे तुमको शान्ति हुई, और तुम्हारा घर-बार का सब प्रकार से इन्तजाम करती है। इसलिए उसकी रक्षा करना तुम्हारा धर्म हुआ। जब तक बच्चे नहीं होते, तो लोग कहते हैं कि इसका विवाह हुए इतने दिन हो गये, अभी तक कोई बच्चा नहीं हुआ, इनमें कोई दोष तो नहीं है। सो, जब बच्चे हो जाते हैं, तब मर्दानगी का Certificate (प्रमाणपत्र) तो मिल जाता है, परन्तु उसके बदले में बच्चों के पालन-पोषण का भार भी अपने ऊपर आ जाता है, जिसका उठाना अपना कर्तव्य होता है। इन सबके लिए रुपये की जरूरत है, इसलिए officer (अफ़सर) की हुकूमत सहारने का बोझ भी झेलना ही पड़ता है। यह सब बातें यह जताती हैं कि पूर्व जन्म में तुम्हारे अन्दर विषय-सुख की लालसा थी, इसलिए शरीर को चाहते थे, क्योंकि शरीर ही द्वारा इच्छित संसारी सुख भोगा जा सकता है, इसलिए माता के गर्भ में आना पड़ा। माता यह बतलाती है कि यदि तुमको फिर भी शरीर की इच्छा रही, तो मेरे गर्भ में आना पड़ेगा, और मैं पालन-पोषण करके तुमको अपना ऋणी करूँगी, जो मेरे जन्म भर तक तुमको चुकाते रहना पड़ेगा। स्त्री यह बतलाती है, कि यदि तुम्हारे में काम-चेष्टा रही, तो तुमको फिर से शरीर धारण करके मेरे साथ विवाह करना पड़ेगा और अपनी इच्छा को पूरा करने के लिए मेरी जिन्दगी भर मेरे पालन-पोषण का भार अपने ऊपर लेना पड़ेगा। बच्चे कहते हैं कि यदि तुम लोगों की परवाह करते हो और नाम की इच्छा रखते हो और लोगों के Certificate (प्रमाणपत्र) की परवाह करते हो, तो फिर से जन्म लेकर

तुमको हमें पैदा करना पड़ेगा, और हमारी रक्षा का भार अपने ऊपर लेना पड़ेगा। जब माता-स्त्री और बच्चे तुमको ऐसा उपदेश दे रहे हैं, तब वे तुम्हारे गुरू हैं; और गुरू की सहारना और सेवा करना उत्तम शिष्य का धर्म है। बस यह तुम्हारी कृतज्ञता है जो तुम उनकी सहारते हुए उनकी सेवा करते रहते हो। इसमें सन्देह नहीं कि लड़ाई से भागना कायरपना है और कायर आदमी जब चोटों को नहीं सहार सकता, तभी मैदान छोड़कर भागता है। परन्तु जिसमें इतनी शक्ति हो, कि चोटें पर चोटें खाये और मैदान में बैठा हुआ सहारता रहे, वह शूर-वीर है या कायर है? कायर तो हमारे जैसे हैं, जो चोटों से घबड़ा कर, मैदान छोड़ कर, भाग आये। ऐसे कायरों की रक्षा यदि तुम्हारे जैसे शूरवीर न करें, तो बस सफ़ाई हो जाय।...... जी को भी व्याह-बन्धन प्रतीत होने लगा है, पहिले तो बड़े ख़ुश थे, परन्तु अब पता लग गया कि स्त्री है ही बन्धन-रूप—

१३८—पत्र

एक भक्तिन स्त्री की रोमांचक कथा—ईश्वर परायण होकर रहने का उपदेश—समर्पण में सन्तोष है।

* ॐ * १—१—२६

चित्रकूट

प्यारी......., आज-कल हम लोग जंगल में उस स्थान पर रहते हैं, जहाँ पर श्रीरामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजी ने बास किया था। यहाँ एक सेठ है; और उसका छोटा भाई है;

वे दोनों इन्दौर के रहने वाले हैं। उनको भगवान् की भक्ति में प्रेम बहुत है। वे घर-बार छोड़कर तेरह वर्ष से यहाँ तीर्थ में रहकर भजन कर रहे हैं। उनके साथ, उनकी स्त्रियाँ भी बाल-बच्चों को छोड़कर उन्हीं के साथ रहती थीं, और ठाकुरजी की पूजा-आरती आदि स्वयं करती थीं। एक दिन छोटे सेठ की स्त्री ठाकुरजी की आरती कर रही थी कि उसकी साड़ी को आग लग गई, उसने आरती करना नहीं छोड़ा, और न किसीको आवाज दी। क्योंकि, उसने अपना शरीर ठाकुरजी के अर्पण कर दिया था, और उन्हींकी आरती कर रही थी, इसलिये जब तक आरती पूर्ण हुई, तब तक उसका सारा शरीर जल गया। पीछे लोगों को बतलाया, परन्तु अब क्या हो सकता था। वह तो पूरी तरह जल चुकी थी, उसने भगवान् का ध्यान करते हुये ही अपने शरीर को त्याग दिया। एक राजकुमारी है, जिनका व्याह माता-पिता ने तो कर दिया था; परन्तु उनको ईश्वर-भक्ति में रुचि बहुत थी, इसलिये जल्दी ही अपने पति का दूसरा व्याह करा कर, आप यहाँ आकर भजन में लग गई। अब तो उनकी निभ गई। अब वृद्धावस्था को पहुँच गई है, परन्तु, देखने से बहुत तेजस्वी और तपस्विनी और शान्त मालूम होती है। तूने भी तो अपने आपको भगवान् के अर्पण किया हुआ है। फिर जिस तरह उनकी मरजी होगी, वे रक्खेंगे। तुझे उस हालत में संतोष रखना चाहिये, वे ही तेरे सम्बन्धियों के हृदय में प्रेरणा करके तेरी रक्षा करा रहे हैं। जो उपाय उनके हृदय में वे प्रेरणा करेंगे, उसी उपाय से वे तेरी रक्षा करेंगे। तुझे यही समझना चाहिये कि जो कुछ हो रहा है, वह परमात्मा की प्रेरणा से हो रहा है, इसलिये उसमें सन्तुष्ट रहना चाहिये; असन्तुष्ट नहीं होना चाहिये। असन्तुष्ट होना यह सिद्ध करता है, कि तूने पूरी

तौर से अपने आपको भगवान् के अर्पण नहीं किया; अभी तूने अपना दिल दुनियाँ को भी दे रक्खा है। भगवान् की भक्ति और प्रेम की बात केवल मुख से कहने की नहीं है करने की है। जो करता है, वही भगवान् को पहुँचता है। सिर्फ़ कहने, कहने वाला कभी नहीं पहुँचता। मैंने तेरे लिये दो देवियों का हाल लिखा है। ऐसे ही अन्य भी हैं, जो घर के आराम और सुख को छोड़कर ईश्वर-भक्ती में लगी हुई हैं। तेरे पर तो ईश्वर की बड़ी कृपा है, जो तेरे सम्बन्धी ख़ुशी से तुझे भजन के लिये आज्ञा देते हैं और सब प्रकार से तेरी रक्षा करते हैं।

१३६—पत्र

शिष्य को गुरु-प्रसन्नता, गुरु की शुभ आज्ञा पालन करने से प्राप्त करनी चाहिये।

ॐ ८—१—२१

फटकशिला, चित्रकूट

श्रीमती ......जी, तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ, हाल जाना गया। सद्गुरु जो होते हैं, उनकी किसीको उपदेश करने में अपनी कोई ग़रज़ नहीं होती, जिनको कुछ होती है, वे सद्गुरु नहीं कहला सकते। सच्चे सद्गुरु केवल शिष्य के कल्याणार्थ उपदेश देते हैं। ऐसों का नाराज़ हो जाना अपने में बहुत मलीनता सिद्ध करता है। इसलिए उस मलीनता को धो डालने ही से वे सन्तुष्ट हो सकते हैं, और उसीमें तुम्हारा कल्याण है। जब तक वह मलीनता हृदय में विराजमान रहेगी, कल्याण-पद दूर रहेगा। अतः जो उपाय वे कृपा करके बतलायें, उस पर तन-मन से

चलना चाहिए। वह शिष्य ही क्या, जो गुरु को सन्तुष्ट न रक्खे, यदि इतनी हिम्मत नहीं है, तो कुछ नहीं कर सकता। अपने अवगुणों को हटाना चाहिए।

१४०—पत्र

व्रत-प्रशंसा।

ॐ १४—१—२६

चित्रकूट

प्रिय ··· जी, तुम्हारे पत्र का हाल जानकर प्रसन्नता हुई। तुम्हारी भेजी हुई इलायची सब मण्डली में प्रसाद के तौर बाँटी गई। तुमको चाहिए, कि जब तक खोटे संस्कार नष्ट न हो जायें, तब तक प्रति मास ऐसा व्रत करते रहो। यदि १२ दिन का निराहार न हो सके, तो ७ ही दिन का कर लो या पाँच दिन का या तीन दिन का। जैसी सामर्थ्य देखो, वैसा कर लिया करो।

····जी ने जो कृपा करके रामायण ले दी थी, उसका पारायण आरम्भ है। सब लोग बड़े चाह से लाभ उठा रहे हैं, और उस पर बड़े गहरे विचार सूझते हैं। कथा जंगल की है, इसलिए इस स्थान में बहुत ठीक जचती है।

१४१—पत्र

मृत्यु-भय हर समय रखना चाहिये। 'मैं रक्षा, पालन-पोषण करने वाला हूँ', यह अभिमान वृथा है।

ॐ १७—१—२६

चित्रकूट

श्रीमती ... जी, तुम्हारी इच्छानुसार, पत्र का उत्तर तुम्हारे पत्र के मिलते ही पर लिख रहा हूँ। क्या तू जानती है, कि तेरी आयु बहुत लम्बी है, जो वृद्धावस्था आने पर भी तेरे शरीर को हृष्ट-पुष्ट और नीरोग रक्खेगी। यदि इस बात का निश्चय नहीं है, तब ढील डालना तू कैसे सहार सकती है। भगवान् की भक्ती वही कर सकता है, जिसको हर समय मृत्यु का भय लगा हुआ है। जो मृत्यु से बे-ख़बर है, वह संसारी धन्धों में फँसा रहता है और टाल-मटोल करता रहता है। बिना सत्संग के भक्ती होना असम्भव है, संसारी लोगों की संगति कुसंग है। तुझे पं० ...जी ने भी लिखा था, परन्तु तेरा तो कहना कुछ और है, करना कुछ और है। याद रक्खो, यह सब सम्बन्धी या तो तुझे छोड़ जायेंगे, या तू इनको छोड़ जायगी, फिर बचे हुओं को कौन संभालेगा। जिस परमात्मा ने पैदा किया है, वह रक्षा नहीं करेगा? तुझे इतना अभिमान हो गया है कि तू सबकी रक्षा करने वाली अपनेको समझती है। जब तेरा चित्त संसारी झगड़ों में फँसा है, तब भजन में कैसे लग सकता है? वह तो हर समय उन्हीं संसारी बातों का चिंतन करेगा, जिनमें खिंचित है। यदि तेरा रहना हर समय ऐसी स्त्रियों के बीच में रहे, जो सिवाय प्रभु की भक्ति के और कुछ संसारी धन्धों का चिन्तन ही नहीं करतीं, तब तू देखे कि तेरा चित्त कितनी जल्दी पल्टा खाता है। परन्तु ऐसा करे कौन, चित्त में तीव्र इच्छा तो है ही नहीं। दूसरे के कहने से कभी देखा-देखी हो गई, तो वह काम नहीं दे सकती। अच्छा, मेरी तुच्छ बुद्धि में जैसा आता है कह देता हूँ।

मैं तुम सबको देवियाँ समझकर प्रणाम करता हूँ जिससे तुम सबके आशीर्वाद से मेरा भी कल्याण हो जाय।

१४२—पत्र

उपनिषद की शिक्षा का अधिकारी कौन है?

ॐ

चित्रकूट

प्रिय…जी, इसमें शक नहीं कि उपनिषदों की शिक्षा बहुत अनमोल है। उसका ठीक-ठीक समझ में आना बहुत मुशकिल है। इसलिये बाज़ लोग अधिकारी न होने से उल्टा-पुल्टा समझकर हानि भी उठाते हैं। इनका अधिकारी वही है जिसको संसार से वैराग्य है, तपस्वी है और आत्मदर्शी है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से मुक्त है।…जहाँ तक तुम अमल में ला सको और अमल करके अनुभव कर सको, वहीं तक ग्रहण करो, बाक़ी की अभी परवाह न करो, वरना नुक़सान होना मुमकिन है।

१४३—पत्र

ईश्वर-परायणता और उसकी विधि, ईश्वरार्पण।

ॐ १७—१—२६

चित्रकूट

……जी, आज-कल बहुत सी स्त्रियाँ जो थोड़ी सी भाषा

पढ़ी हुई होती हैं, वे वेदान्तियों के संग से या कोई छोटी-मोटी वेदान्त की पुस्तक पढ़कर या सुनकर तर्क में पड़ जाती हैं कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आई हूँ, कहाँ को जाऊँगी, इत्यादि। परन्तु जिससे जीव का कल्याण है, उससे दूर रहती हैं। उन्हीं ही तर्कों में जीवन व्यतीत कर देती हैं, और बनता कुछ नहीं। ईश्वर-भक्ति तो उनसे होना ही कहाँ ? परन्तु जो प्राणी अपने आपको आँख बन्द करके ईश्वर की गोद में डाल देता है और संसार की तरफ़ पीठ करके हर समय भगवान् का खयाल रखता है, उसका सुधार प्रभु आपही कर देते हैं। जैसे बच्चा जो बोल नहीं सकता, परन्तु माता के सिवा किसीको नहीं जानता, उसीसे ही प्रेम करता है, और सब जरूरी पदार्थों की आशा माता ही से रखता है, तब चाहे वह अपने मतलब को प्रकट करने की शक्ति नहीं भी रखता, परन्तु माता उसके आशय को समझ जाती है। और जो कुछ उसके लिये जरूरी है, आपही लाकर दे देती है। यही हाल प्रभु का है, उनको कहने की जरूरत नहीं है। सिर्फ़ उनकी गोद में अपने-आपको डाल देना है। सब काम वे आपही ठीक कर लेते हैं। यदि कभी दुःख हो, तो घबराना नहीं चाहिये। क्योंकि माता बच्चों को कभी-कभी कड़ुवी दवाई भी पिलाकर आराम कर देती हैं। हाँ, लगन सच्ची होनी चाहिये; दूसरों के दिखलाने के लिये भी नहीं, नाम के लिये भी नहीं। संसार की तरफ़ पीठ और प्रभु की तरफ़ हमेशा मुख रक्खें। बस इतना ही काफ़ी है। सब सत्संगिनियों को प्रणाम कहना, और मेरे को भी सब आशीर्वाद दें।

१४४—पत्र

विषय सुख और अनुभव विधि।

ॐ २४—१—२९

चित्रकूट

श्रीयुत माननीय स्वामी····जी महाराज को सादर प्रणाम पहुँचे। आपका शुभ समाचार जानकर चित्त प्रसन्न हुआ, जो विषयों में सुख-अभाव का तजुर्बा है, वह वृत्ति के रहते हुए ही होता है, केवल विषयों को इंद्रियों-द्वारा निर्पक्षता से देखना मात्र ही काफ़ी है, अनुभव आप ही हो जाता है कि सुख है वा नहीं, है तो कितना है, या जो कुछ भी भासता है वह भी भ्रम से है। असल में कुछ नहीं प्रतीत होता है, जिसको थोड़ा सा राग विषयों में होता है, उसको तो शीघ्र ही पता लग जाता है कि विषय-सुख मृग-तृष्णा के जल के सदृश्य है, परन्तु जिसको अधिक राग होता है उसको कई दरजे तै करना पड़ता है। जो बार-बार लखाने पर भ्रम का पता लगता है, उसके बाद मन की विक्षेपता सुगमता से बन्द हो जाती है। इससे अधिक लेख में आना कठिन है, कम से कम मेरे में अधिक लिखने की शक्ति नहीं प्रतीत होती। कई हालतों में देखा कि कई बार जँचाने पर जाँच आती है।

१४५—पत्र

साधारण उपयोगी नियम।

रविवार फ़रवरी
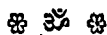
ॐ प्रथम सप्ताह १९२९

चित्रकूट

प्रिय···जी, तुम्हारे कार्ड आने से पहिले मैं तुमको कार्ड में सावधान रहने के लिये लिख चुका हूँ। क्योंकि मेरे चित्त में कुछ ऐसा ही तुम्हारे प्रति भान होता था। भोजन तथा संग का

ख्याल रखना बहुत ज़रूरी है। लगातार दो-तीन दिन तक निराहार कर दो, सफ़ाई जारी रक्खो, किसी स्त्री से हँसी-मख़ौल कभी न हो, न किसी स्त्री के चेहरे को देखो। जब बात करने की ज़रूरत हो तब चरणों पर दृष्टि रखकर मन में प्रणाम कर दो। तुम असावधान रहते हो, इसीलिये ठोकर खा जाते हो। शत्रु के नगर में रहते हो, जो हर समय शत्रु से सावधान नहीं रहता उसको बचना मुशकिल है। ···जी से उपाय पूछ लो। स्त्री का व्रत समाप्त होने पर भी अलग ही रहो। केवल एक चादर में सोओ और जब सर्दी से नींद खुल जाय, तब चादर ओढ़कर बैठ जाओ। नींद आये तब बैठे-बैठे सो लो; फिर लेटकर बिलकुल न सोवो। भोजन बिना नमक-मसाले का खाओ। मीठा किसी तरह न खाओ। ऐसा दीर्घ-काल तक जारी रक्खो। तुममें यह मूर्खता है कि जब थोड़े दिन हो गये, और देख लिया कि अब शिकायत नहीं है तब ढीले पड़ जाते हो।

१४६-पत्र

विधवा का धैर्य।

ॐ फ़रवरी १६२६
चित्रकूट

प्रिय······जी, तुम्हारा पत्र आया, हाल जाना गया। भोग बलवान है। अब···को चाहिये कि वह अपने मन को समझाये कि प्रारब्ध अटल है, जो कुछ होना था सो हो गया। इतनी अच्छी बात है और प्रभु की दया है जो वह अपनी रक्षा के लिये किसी के अधीन नहीं है, और पीछे कोई बन्धन भी नहीं है। इसी-

लिये यदि वह चाहे तो शरीर को ठीक रखते हुये ईश्वर-परायण हो जाये और संसारी सम्बन्ध शरीर-यात्रा पूरी करने मात्र रक्खे। जैसे विधवा तपस्विनी को रहना चाहिये वैसा रहे। उसने जो रोना-धोना बन्द कर रक्खा, यह बहुत अच्छा किया। वह ···· से बढ़ गई, क्योंकि ···· को तो सहारा देना पड़ता था, और उसने अपने भरोसे पर किया, इसलिये उसकी हिम्मत और धैर्य्य सराहनीय है। नित्य-प्रति अच्छी स्त्रियों की संगति करती रहे। जो वस्तु बहुत आराम से मिलती है, उसकी क़दर कम होती है; जो परिश्रम से मिलती है, उसका स्वाद तथा प्रभाव विलक्षण होता है। इससे उसको चाहिये, परिश्रम करके सत्संग प्राप्त करती रहे। और मन को संसार की असारता तथा संसार में आसक्त रहने से दुःख होना दिखलाती रहे। दूसरी चिट्ठी ··· व्रतवाली को दे देना। सबको प्रणाम कह देना।

१४७—पत्र

भजन-विधि।

ॐ फ़रवरी १६१६
चित्रकूट

प्यारी ········की भौजाई को कहना कि अभी माला ही के द्वारा भजन करती रहे। जब कभी माला फेरते-फेरते चित्त ऐसा हो जाये कि माला फेरने को न करे, वैसा ही भजन को करे। तब माला बन्द करके बिना माला के मन से करती रहे। जब कुछ देर पीछे संकल्प आने लगें और बन्द न हों, तब फिर माला ही का फेरना इसी तरह करती रहे। देवियों का हाल

लिखने का मतलब यह था, कि तुम लोगों को पता रहे कि सच्ची ईश्वर-भक्ति किसको कहते हैं। दिखलावे की भक्ति से कुछ नहीं बनता।

१४८—पत्र

ईश्वरार्पण में सन्तोष।

❀ ॐ ❀   फ़रवरी १९२९
चित्रकूट

मेरे में तो कोई शक्ति नहीं है, प्रभु से प्रार्थना करना चाहिये, वे जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं। अपनेको ऐसा बनाना चाहिये कि जिस तरह जिस हालत में प्रभु रक्खें, उसमें सन्तोष करो। तभी वे भी प्रसन्न होते हैं।

१४९—पत्र

ईश्वर-भक्त के लक्षण।

❀ ॐ ❀   १२—२—२९
चित्रकूट

प्यारे……जी, तुम्हारा धैर्य्य, उत्साह तथा भगवद्भक्ति को देखकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। जो भगवान् के प्रेमी हैं, वे इस सिद्धान्त को कि—

"कर्मण्येव अधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन,"

ध्यान में रक्खे हुये कर्त्तव्य बुद्धि से जो कर्म सामने आ गया करते रहते हैं। और यह जानते हुये कि—

"हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश, विधि हाथ,"

कर्म के परिणाम से बेपरवाह रहते हैं। वे केवल प्रभु की रज़ा पर राज़ी रहते हैं। जिस-जिस बात के लिये चित्त में आती है, जैसे विद्या-धन, तपो-धन, शारीरिक बल, धनादि के लिये कर्त्तव्य बुद्धि से कोशिश करते हैं; परन्तु उस कोशिश का जो कुछ और जितना कुछ परिणाम हो, उस पर सन्तुष्ट रहते हैं। क्योंकि वे भली-भाँति जानते हैं, कि होना वही तथा उतना ही है, जितना प्रभु को मंज़ूर है। इसलिये फल का भार प्रभु पर छोड़कर कर्त्तव्य का पालन यथा-शक्ति करते हुये वे बेपरवाह रहते हैं और खुश रहते हैं। अनुकूल या प्रतिकूल फल पर हर्ष या शोक नहीं मनाते। यही धारणा कल्याणकारी है। गीता के द्वितीय अध्याय के पिछले १८ श्लोक भी ध्यान में रखने के योग्य हैं।

१५०—पत्र

काम-चेष्टा, संयम। युद्ध-काल में सावधानी की आवश्यकता।

❀ ॐ ❀ १५—२—२६

चित्रकूट

प्यारे……जी, तुम्हारा पत्र आया, हाल जाना गया, निवेदन है कि ऋतु भी अपना असर जताती है, और तुम्हारा भोजन भी सहायक है। गाजर वग़ैरा बल-कारक अवश्य हैं, परन्तु काम-चेष्टा को बढ़ाने वाली भी हैं। हाँ जिसके अन्दर यह चेष्टा न हो, उसको कोई हानि नहीं पहुँचा सकती। अब तुमने तीन

दिन निराहार करके शरीर को कमजोर कर दिया, चेष्टा भी दब गई। पीछे कमजोरी को दूर करने के ख़्याल से यदि तुमने फिर बहुत पुष्टिकारक पदार्थों को सेवन करके पुष्टि की तब फिर वही शिकायत शुरू हो जाना सम्भव है। इसलिये भोजन का ख्याल अवश्य रखना। शरीर थोड़ा सा कमजोर रहा, तब कोई हर्ज नहीं। व्रत, सफ़ाई, संग, ख्यालात तथा भोजन को सावधानी रक्खे हुये ही शान्ति की आशा हो सकती है। हर समय सावधानी रखना चाहिये। बाहिर के शत्रु से बचने का उपाय करके पुरुष निश्चिन्त हो सकता है, परन्तु जो शत्रु घर के भीतर ही रहने वाला है, उससे तो हर समय प्रति क्षण सावधान रहना पड़ेगा, जब कभी ग़ाफ़िल होगे, वह धर दबायेगा।

१५१–पत्र

कुछ व्रतियों के वर्णन। ईश्वरार्पण और ईश्वर प्रार्थना।

❀ ॐ ❀ १७—२—२६
चित्रकूट

प्यारे ... जी, तुम्हारा पत्र आया, हाल जाना गया। यह साल शुरू से ही कड़ा रहा है, और अभी तक कड़ा चला ही जाता है। देहरादून में जो व्रत करने वाले थे उनको काफ़ी कठिनाइयों का मुक़ाबला करना पड़ता था, जो पहले कभी तजुर्बे में नहीं आया था। अभ्यासियों को बहुत परिश्रम करने पर थोड़ी सफलता होती रही, अलबत्ता यहाँ आने पर कुछ

विशेषता अवश्य हुई। परन्तु इतनी नहीं कि जितनी होनी चाहिये। यहाँ भी एक शख्स ने चान्द्रायण आरम्भ किया, वह पहले तो बहुत घबराता था, परन्तु उसकी दृढ़ इच्छा देखकर उसको सब प्रकार से धैर्य्य तथा उत्साह दिलाया गया। इससे उसको १५ दिन बड़े आराम से गुज़र गये और उसका धैर्य्य तथा उत्साह चौगुना हो गया, परन्तु पीछे उसके पिता की बीमारी का पत्र आया और दो दिन बाद तार आ गया जिससे उसके चित्त में बड़ी उद्विग्नता हो गई, और व्रत छोड़कर जाना पड़ा। अब एक और ब्रह्मचारी वैसा ही चान्द्रायण कर रहा है। उसको भी कुछ विघ्न उपस्थित हुआ है; परन्तु यह इतना प्रबल नहीं प्रतीत होता जैसा कि पहले को था। मेरे साथ जैसी-जैसी बीतती है उसमें प्रभु ही हर समय रक्षा करते हैं। देहरादून में जो नाटक हुआ था वह बहुत ख़तरनाक था और प्रभु ने अपनी रक्षा का हाथ सदैव मेरे सर पर रक्खा और मुझे बचा रक्खा। यहाँ आने पर सम्बन्धियों का कुछ डर था; परन्तु प्रभुजी ने यहाँ भी रक्षा की, अब ··· जब तुम मिलोगे और कहोगे तो तुमको उचित समझकर बतला दूँगा। उससे तुमको यह लाभ होगा कि तुम ब्रह्मचारी हो, संभव है ऐसी घटना कभी तुम्हारे सामने भी उपस्थित हो, तो तुम ईश्वर भरोसे पर अपनी रक्षा कर सकोगे। गृहस्थ के झगड़ों को भी नहीं समझ सकते। प्रभु की माया बड़ी विचित्र है, मुझे तो इससे बहुत लाभ हुआ है, और मैं ईश्वर को जितना धन्यवाद दूँ, थोड़ा है। प्रभु मेरे चित्त को सदैव इसी स्थिति में रक्खें, यही मेरी विनती है। तुमको इस समय क्या करना चाहिये, तुम आपही सोच लो ··· ईश्वर पर भरोसा रक्खे हुए, काम करते रहो। जिस प्रभु ने तुमको मृत्यु के मुख से निकाला है, वही आगे भी ख़तरों से

बचायेंगे। प्रभु की लीला अपरम्पार है, उनके कल्याण करने के रास्ते निराले हैं, मनुष्य की बुद्धि नहीं पहुँचती।

१५२-पत्र

साधारण उपदेश

॥ ॐ ॥ १७—४—२६
चित्रकूट

प्रिय ··· जो, तुम्हारा पत्र आया, हाल जाना गया, तुम्हारा लगातार पुरुषार्थ काबिल तारीफ़ है, मगर बेक़ायदे पुरुषार्थ मुश्किल से मनजल मक़सूद पर पहुँचायेगा। काम, क्रोध, लोभ, मोह वग़ैरा के जीतने के उपाय पारस भाग में दिये हैं। जिन बातों से गिरावट हो जाती है, और तुम्हारे तजुर्बे में वे बातें आ चुकी हैं, उनसे बल-पूर्वक बचना चाहिये। जो जान-बूझ कर खड्ढे में गिरेगा, उसको कोई नहीं बचा सकता। बालक भी तो ऐसा नहीं करते, तुम मर्द हो; मर्द बनकर रहो। "हिम्मते-मरदां, मददे-ख़ुदा"। जमीनदारी के झगड़े तुमने अच्छी तरह समझ लिया है, सब काम सोच-समझकर करना चाहिये। क्योंकि आम तौर पर ज़मीनदार लोग जमींदारी में बहुत झगड़ा बतलाते हैं, शान्ति वहाँ भी मुश्किल है। खैर, तुम दोनों पासे विचार कर लेना।

१५३—पत्र

विवाह विषय में विचार, ब्रह्मचर्य्य तप।

卐 ॐ 卐 १५—५—२६
अलमोड़ा

प्रिय......तुम्हारा पत्र मिला, हाल जाना गया। प्यारे ! भोग बलवान् है, जो दुःख है, वह पाप ही का फल कहा जाता है, इसको जड़ से उखाड़ने के लिये धर्म का सहारा मुख्य है, इलाज दूसरे दरजे में है, वरना, अपना फल देकर ही खतम होता है। व्याह करना ऐसा पाप नहीं है कि व्याह करने वाले को अगले जन्म में उसकी वजह से नरक भोगना पड़े, परन्तु ऐसा अवश्य है कि जीते जी नरक भोगना पड़ता है। हाँ, जो लोग काम से रात-दिन व्यथित रहते हैं, और कोई उपाय उनको इस व्यथा के दूर करने का प्राप्त नहीं होता, तब व्याह से इस व्यथा से थोड़ी देर के लिये Relief (छुटकारा) हो जाता है, परन्तु उसका परिणाम जन्म-क़ैद भुगतना ही पड़ता है। एक व्यथा को शान्ति दी, दूसरी व्यथा जन्म भर की ख़रीद ली। तुम्हारे धन्य भाग हैं जो तुम अभी से चेत गये हो और ब्रह्मचर्य्य-रूपी महान् तप पर आरूढ़ हो। सन्तोप के विना जोव को सुख नहीं मिलता। सब रास्ते प्रभु को जाते हैं, किसी एक पर आरूढ़ होकर चलते रहने से जोव पहुँच जाता है। परन्तु जो एक पर स्थिर नहीं रहता, बन्दर की तरह कभी किसी शाखा पर कभी किसी शाखा पर जाता है, उसके लिये ख़तरा है।

१५४—पत्र

ब्रह्मचारी को उपदेश।

ॐ २४—५—२६

अलमोड़ा

प्रिय जी, कल तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ, हाल जाना गया।

"माया महा ठगनी हम जानी।
केशव के कमला हो बैठी, शिव के भवन भवानी।
योगी के योगिन हो बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्माणी।
भक्तन के भक्तिन हो बैठी, राजा के घर रानी।
पण्डे के देवी हो बैठी, तीरथ में हो पानी।"

कबीरदास की इस वानी को कभी-कभी विचार कर लेना चाहिये, और स्त्री-मात्र से प्रेम नहीं करना चाहिये। खासकर ब्रह्मचारियों को धोखा हो सकता है। ······ भोग बलवान् है, जो आ पड़ता है सहारना ही पड़ता है। ······ Mental Training (मानसिक शिक्षा) ऐसी होनी चाहिये कि जिस हालत में रहना पड़े, निर्वाह कर जाय। जब काम हो, तो काम करे, न हो, तो घबराये नहीं। तुमको संसार की गति की बाबत विचार करने का अच्छा मौक़ा है। सबको गुरू बनाते रहना चाहिये, और देखते रहो कि संसार-चक्र कितना प्रबल है, कि लोग भाग-भाग कर फिर उसी में फँसते हैं। ······ संसार में फँसे लोगों का वाचक वैराग्य होता है, जो अकेला है, वही फक्कड़ रह सकता है, जिसके ऊपर कई व्यक्तियों के जीवन का भार है, वह नाचता ही रहेगा, और बोझा ही ढोता रहेगा।

१५६—पत्र

जीतेजी मरना ही मरना है—स्त्री-जीवन के धर्म-नियम—ईर्षा बुरी है।

* ॐ * २४—५—२८
अलमोड़ा

प्यारी · ·· देवी, तेरी स्मृति चित्त को प्रसन्न करती है, परन्तु जब तक तू ज़िन्दा है सबको तेरी चिन्ता है; यदि तू मर जाये, तो सबकी चिन्ता हट जाये, और मैं भी तेरी तरफ़ से निश्चिन्त हो जाऊँगा। इसलिये तुझे दिल-व-जान से मर जाने की कोशिश करनी चाहिये। मुझको ख़ुशी तब होगी, जब तू मर जायेगी। जब तू मुझे सूचना देगी कि अब तू बिल्कुल मर गई है, अब दम शेष नहीं रहा, तभी तू अपने कुल को उज्ज्वल कर देगी, और अपने सम्बन्धियों के पुरुषार्थ को सफल कर देगी। ईश्वर अनुग्रह से अब काम-चेष्टा का भय तो मुझे नहीं रहा, परन्तु क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान ईर्षा आदि का भय है, कि यह कहीं तेरे को गिरा न दें, और विघ्न डाल कर तेरी गाड़ी बीच ही में न रहने दें। इसलिये तुझे जान भिड़ाकर इन शत्रुओं को नाश करने की कोशिश करते रहना चाहिये। तुझे नाम या बड़ाई का लोभ नहीं होना चाहिये, कोई काम नाम या बड़ाई के लिये नहीं करना चाहिये। अपने से बड़े या छोटे कोई भी तेरे को कभी कटु वचन कहें, या तेरी निन्दा करें, तो तुझे क्षत्रिनी देवी की तरह सहारना चाहिये। सम्बन्धियों को मुसाफ़र-दृष्टि से देखना चाहिये, किसीके संयोग या वियोग में हर्ष-शोक नहीं होना चाहिए। अपने को दूसरी स्त्रियों या पुरुषों से कुछ उच्च देखकर अभिमान नहीं आना चाहिये। मीराबाई तथा साधबाई को देखना चाहिये कि क्षत्रिनी देवियों की तरह उन्होंने कैसे-कैसे कष्ट सहारे और जीते जी मर कर रहीं, जिससे उनके जीवन को बड़े-बड़े विद्वान् साधु महात्मा आदर्श बनाते हैं। दूसरों में यदि कोई गुण अपने से अधिक देखो, तो ख़ुश होना चाहिये। ईर्षा कभी न आये

यदि कोई लोग कभी किसीकी झूठी स्तुति भी करें, तब भी तुमको जलना नहीं चाहिये। दुनियाँ में ऐसा होता ही रहता है, सच्ची स्तुति तो बहुत कम होती है। जो दुनियाँ में फँसे हुये हैं, वह झूठी स्तुति करते और कराते रहते हैं। तुमको इन बातों से बेपरवाह रहना चाहिये। मैं आशा करता हूँ, कि अब तू मर कर मुझे दर्शन देगी। दूसरे अन्य अधिकारियों को यथा-शक्ति सहायता देते रहना।

१५६-पत्र

योग-निद्रा विधान।

* ॐ * २५—५—२६

अलमोड़ा

नींद दो प्रकार की होती है, एक तो तामसी नींद जो कि सबको आती है दूसरी सात्विकी नींद जो केवल भजन करने वालों को आती है। तामसी नींद के पहिले मन और शरीर दोनों सुस्त होते हैं, और शरीर भारी होता है, प्राण नीचे को होते हैं, जैसा कि सब लोग अनुभव करते हैं। सात्विकी नींद के पहिले शरीर तथा मन दोनों हलके होते हैं, प्राण ऊपर को जाते हैं, जिससे सिर भर कर भारी हो जाता है। फिर मन दब जाता है, ध्यान बन्द करके चुप हो जाता है। इसको दैवी नींद भी कहते हैं और योग-निद्रा भी कहते हैं। सात्विकी निद्रा तो बड़े भाग्य से मिलती है।

१५७—पत्र

संसार में दुःख ही प्रधान है—शरीर अथवा मन से कुछ लाभ नहीं, यदि दुःख न हो। शरीर ही दुःख का कारण है।

दुःख Philosophy, शरीर-यात्रा विधान।

* ॐ * २७—५—२६

अलमोड़ा

प्रिय ... जी—क्योंकि तुम मेरा हाल जानने के लिए उत्सुक रहते हो, इसलिए लिखता हूँ, कि शरीर और मन दोनों दुःख देते हैं, और इनसे लाभ कुछ नहीं प्रतीत होता। यदि यह दुःख न दें, तब भी कोई काम नहीं निकल सकता, यदि यह चुप रहें, तब निकम्मे से पड़े रहें, तब भी ठीक रहता है। परन्तु ऐसा होना असम्भव है। क्या हुआ जो थोड़ी देर के लिए चुप हो गये। स्थायी तौर पर चुप रहते ही नहीं। शरीर के लिए पहिले तो अनुकूल स्थान ही नहीं मिलता, यदि कभी दैव संयोग से कुछ अनुकूलता हो भी गई, तब भोजन का प्रबन्ध कठिनता से होता है। उसमें भी यह दिक्कत, कि अनुकूल पदार्थ का मिलना कठिन हो जाता है। यदि कुछ अनुकूल मिल भी गये, तब लकड़ी की कठिनाई आ पड़ती है। यदि उसका भी कुछ बन्दोबस्त हो गया, तब भोजन बनाने में बड़ी दिक्कत होती है। यदि बाहिर बनायें तो धुआँ से बचते हैं, परन्तु हवा तंग करती है। यदि भीतर बनायें तो धुआँ तंग करता है। खैर, ज्यों-त्यों करके जब भोजन तैयार हो गया, तब खाने की कठिनाई मालूम होती है।

जावड़ों से कुछ काम चलता है; परन्तु यदि कभी जावड़ा निकम्मा हो गया, तव और भी कठिनाई हो जाती है। अव यदि जावड़े, ठीक भी हुये, तव यह पता लगाना कठिन है, कि कितना भोजन अन्दर डालें, जो ठीक ठीक पच जाये। इसमें प्रायः धोखा हो जाता है, फिर उसका फल दुःख खड़ा हो जाता है। यदि कुछ सँभल कर खाया भी गया, तव पचाने की फ़िक्र होती है, उसके लिए फिरना-टुरना पड़ता है। यदि कभी वर्षा या अन्य कारण से फिरने-टुरने का मौक़ा न मिला, तव दूसरे दिन भूख में फ़रक़ पड़ता है। यदि फिरने-टुरने का मौक़ा मिला भी, तव नित्य प्रति उतना ही सफ़र हो, यह कठिन है। किसी न किसी वजह से रास्ते में हेर-फेर हो जाने से सफ़र में कमी-वेशी हो ही जाती है, जिससे आगे को क्षुधा लगने में कमी-वेशी हो जाती है। अव वनाने वाला भोजन वनाते समय कैसे जाने कि कितनी भूख लगेगी। फिर सुवह को शौच जाने का वन्धन अलग है। वस्ती के विना सुगमता से शौच नहीं आता। यह सव वातें होने पर यदि निद्रा ठीक-ठीक न आये, तव भी मुश्किल है। शरीर-यात्रा के लिए दूसरों के सामने जो दीन होना पड़ता है, वह अलग रहा। अव मन में कभी कहीं को इच्छा हो जाती है, कभी कहीं को। यदि उससे पूछा जाये कि इस इच्छा के पूरी होने से क्या लाभ होगा, तव कोई जवाव नहीं मिलता। परन्तु कोई कोई इच्छा इतनी तंग करती है कि निरर्थक सिद्ध होने पर भी नहीं जाती। ऐसे ही यह कैलाश-यात्रा की इच्छा है। अच्छा जैसा प्रभु की मरज़ी होगी वही होगा। जव तक शरीर है कुछ न कुछ झगड़ा लगा ही रहना है। शरीर छूटने के वाद यदि प्रभु विलकुल शरीर से अलग रक्खें, तो ठीक है; वरना फिर यही दुःख झेलने पड़ेंगे। तुमने तो इसकी रक्षा के लिये काफ़ी यत्न किया है, और करते

रहते हो, और शायद तुम्हारे शुभ संकल्प की सहायता से ही यह गाड़ी जैसे-तैसे चल रही हो। परन्तु इसमें कोई शक्ति नहीं प्रतीत होती, कि किसीका कुछ बना सके। चाहे ज़बानी जमा-खर्च भले ही कर ले। अच्छा, प्रभुजी तुमको आप ही तुम्हारे परिश्रम का फल देंगे, और दूसरा कोई तो नज़र नहीं आता। यदि कैलाश-यात्रा के बाद शरीर रह गया और फिर ऐसी कठिनाइयों में पड़ने की इच्छा कभी न पैदा हो तो ठीक है—

"जेहि विधि राखैं राम तेहि विधि रहिये।"

अच्छा, जैसे-तैसे शरीर-यात्रा तो पूरी करना ही पड़ेगी। कठिनाइयों का कोई अन्त नहीं है, तुम विचारवान् हो, तुम समझ सकते हो। हर एक के समझ में आना भी बहुत कठिन है। प्रायः लोग दुःख-निवृत्ति की अवस्था में गुज़रने पर जो relief (आराम) मालूम होता है, उसी सुख में फँसे रहते हैं, और कोई-कोई तो दुःख को ही सुख समझ बैठते हैं, और उसीमें मस्त रहते हैं। परन्तु जो समझते हैं कि यह सब धोखा है, Positive (वास्तविक) सुख ही नहीं मिलता, उनको तो जीवन क़ैद प्रतीत होता है। जो इस बात को अनुभव नहीं करते वे भले ही ठीक-ठीक समझने वालों को बुरा भला कहें, परन्तु उनका इससे कुछ नहीं बिगड़ता। उनकी दृष्टि में जो कुछ संसार का भान हो रहा है वह सब बेफ़ायदा ही है, न भान हो तभी ठीक है, फिर इससे अधिक दूसरों की रायज़नी क्या हानि पहुँचा सकती है। मैं समझता हूँ कि निन्दा करने वाले बड़ा उपकार करते हैं। निन्दा चाहे झूठी वा सच्ची यदि सच्ची हुई तो उद्धार करती है, यदि झूठी हुई तो संसार की गति को सिद्ध करती है। हर हालत में फँसने से बचाती है। इसलिए जो निन्दा करते हैं, वे धन्यवाद के पात्र हैं। परमात्मा उनका भला करेंगे जो विचारवानों के उपकार का

साधन बनते हैं। तुमको यह पढ़कर कुछ नई बात तो नहीं मालूम होगी, क्योंकि तुम पहले ही से सब कुछ समझते हो। परन्तु कुछ कुछ तुम्हारे ख्यालात की पुष्टि ही होगी। इतना ही सही अधिक क्या लिखूँ।　　　दया का पात्र—सियाराम।

१५८—पत्र

कुसंग से अकेला ही भला है।
भजन का फल मनोनिग्रह है।

* ॐ *　　　३०—५—२६

अलमोड़ा

क्षमा तथा धर्म की परीक्षा ऐसे ही मौक़े पर होती है। यदि ऐसे मौक़े में, मन में धैर्य्य, क्षमा तथा धर्म को न छोड़े, तो बहादुरी है। अन्त में सत्य को जय होती है, परन्तु उस वक़्त तुमको अभिमान न आना चाहिये। भेष-धारी साधु तो बहुत हैं, परंतु दिल से साधु कम मिलते हैं। जो असल साधु हैं, उनके दर्शन करने से चित्त प्रसन्न होता है। और जिनको सत्संग की लगन है, उनका हृदय महात्माओं से बार-बार मिलने से उत्साहित होता है। यदि एक बार किसीके दर्शन करने पर फिर दोबारा जाने को मन में उत्साह न हो, तो समझना चाहिये कि वहाँ जाना लाभदायक न होगा। ऐसी जगह जाना कुसंग का फल देने वाला होता है। यदि अच्छा संग न मिले, तो घर में ही बैठे रहना ठीक है। मन को किसी काम में लगाये रखना चाहिये, खाली न रहे। मन को क़ाबू में रखना परम धर्म है। यही भजन का फल है, इसीमें कल्याण है। जिसका मन अपने काबू में

नहीं रहता, वह जीतेजी दुःखी रहता है। यह मन बड़ा शैतान है, इसके अधीन कभी न होना चाहिये। हमेशा विचार करके सब काम करना चाहिये, जिससे पीछे पछताना न पड़े। तुमको मन-वचन-कर्म से सदा उनको प्रसन्न रखना चाहिये।

१६९—पत्र

नाम, धन की उपाधि, और धनी के कष्ट। जीवन शांत और सुखी कैसे हो सकता है। शांति का पथ।

ॐ ३०—५—२६

अलमोड़ा

श्रीमती......जी, तुम्हारा पत्र आज प्राप्त हुआ, हाल जाना गया। जो कुछ हो रहा है, कल्याण की दृष्टि से सब ठीक ही हो रहा है। इस जीव में नाम की बड़ी प्रबल इच्छा रहती है, उसके लिये नाना प्रकार की चिंताओं में पड़ता है, और सब प्रकार के दुःख सहारता है, और अन्त में लाभ कुछ नहीं निकलता। नाम के लिये धन भी सहायक होता है, क्योंकि बहुत से नाम वाले काम धन के द्वारा होते हैं। सो जिसके पास धन है, उस धन को सब खसोरना चाहते हैं, उससे छीनना चाहते हैं। खुशामद से दे, उधार दे, धर्मार्थ दे, वर्ना जबरदस्ती, धमकी वगैरह देकर, या धोखा देकर, लेना चाहते हैं। इस वजह से धनी को नाना प्रकार के कष्टों को अनुभव करना पड़ता है। नाम तथा ऐश्वर्य के लिये तुमने धन को पकड़ रक्खा है, उसका

स्वाद अवश्य लेना पड़ेगा। यदि नाम तथा मान से बेपरवाह हो जाओ, तो बहुत सी आफ़तों से बच जाओ, परन्तु यह बात बहुत कठिन है। हाँ, जो कर डालता है, अर्थात् नाम तथा मान से बे-परवाह हो जाता है, उसके लिये कल्याण-पद निकट हो जाता है। बहुत धन से धर्म भी तो होता है; परन्तु चाहे उसको संसारी कामों में लगाओ, चाहे धार्मिक कामों में लगाओ, झगड़ा हर हालत में है, उपाधि से खाली नहीं है। बीच में खाने वाले कूद पड़ते हैं, न दिया जाये, तो वे ही शत्रु बन जाते हैं। अभी पाठशाला जैसे चल रहा है चलने दो। जब कभी काफ़ी रुपया जमा होजाय, तो कमेटी के सुपुर्द कर देना। यदि रुपया न भी जमा हुआ, तो कुछ परवाह नहीं। तुम्हारे होते हुए जब तक चल सके चलने दो। यदि किसी कारण से तुम्हारे जीते जी भी न चल सके, तो उसको भी सहारने को तैयार रहना चाहिये। सब काम प्रभु के ऊपर छोड़ देने ही में सुख है। उनका काम है उनकी जैसी इच्छा होगी वैसा होगा; तुम उस पर संतुष्ट रहो। तुमको शेप जीवन झगड़ों से बचाकर, कल्याण के मार्ग में लगा देना ही ठीक प्रतीत होता है; परन्तु यदि, अभी तुमको कुछ संसारी धंधे पूरा करने की इच्छा हो, तो उसको करके देख लो, शायद उससे तुम्हारा कुछ बन जाये, पीछे जब उसमें कोई शान्ति-दायक लाभ न दीखे, तब छोड़कर इधर लग जाना। तुमको यह अवश्य हर वक़्त ध्यान में रखना चाहिये, कि जीव को कल्याण के लिये बहुत सी बातें करनी पड़ती हैं, जो स्थूल तथा सूक्ष्म भेद से दो प्रकार की हैं, और सबके समझने में नहीं आतीं। ज्यों-ज्यों अनुभव बढ़ता जाता है, सत्संग होता रहता है, त्यों-त्यों समझ में आती जाती हैं, करना वे जरूरी हैं, चाहे इस जन्म में करो चाहे आगे जन्मों में। उनके किये बिना जीव का कल्याण

कभी नहीं होना, चाहे और तरह से हजारों बातें करता रहे। उलटा तङ्ग ही होता रहेगा और धोखे ही में फँसा रहेगा।

१६०—पत्र

सन्तोष में लाभ, अभ्यास के नियम, अभ्यास के विषय में देश-काल-शरीर आदि का विचार। ईश्वर-समर्पण में हित है। जप-ध्यान-अभ्यास की साधना। सत्संग करते रहो। शहद की मक्खी की नाईं गुण-ग्राही होना चाहिये।

* ॐ * २—६—२६
अलमोड़ा

प्रिय ....

विना संतोष न काम नशाहीं। काम अछत सुख सुपने हूँ नाहीं।

सन्तोषः परम् लाभः, ऐसा वेद शास्त्र तथा सन्त महात्माओं का कथन है। भगवान के मिलने के अनेक मार्ग हैं, किसीमें चल पड़े और चलता रहे. अपनी शक्ति भर कोशिश करता रहे। प्रभु घट-घट के जानने वाले हैं। वे आप ही जीव की श्रद्धा तथा भक्ति और निष्कपटता को देखकर अपने निकट बुला लेते हैं। अभी तक तो तुमको कुछ करने का सुवकाश ही नहीं मिला और न अभी है। इस वक्त, शरीर नीरोग न होने से पढ़ाई बन्द है, तब अभ्यास ही सही। अभ्यास भी शरीर को देखकर ही करना चाहिए। अधिक दबाव डालने से शारीरिक दोष बढ़ जाने

की भी सम्भावना होती है; इसलिए जैसा कुछ करते हो यथा शक्ति करते जाओ। उसका असर देखने पर, आगे कुछ कहा जा सकता है। औषधी जो दी जाती है, तब उसका असर देखा जाता है, उसका प्रभाव देखकर, आगे की औषधी दी जाती है। यदि पहिले ही औषधी अनुपान सहित न सेवन की गई हो, तो वह अपना पूरा प्रभाव नही दिखला सकती। ऐसी हालत में आगे की औषधी वैद्य नही दे सकता। कभी-कभी लगातार दीर्घकाल तक पहिली ही औषधी सेवन करते-करते दूसरी औषधियों का लाभ हो जाता है। यह सब प्रभु की माया है, उनके निकट सब कुछ आसान है। मनुष्य अल्पज्ञ है, उसको जो कुछ पता है वह तुच्छ है, और अधूरा है। परन्तु जब ईश्वर पर भार डाल कर उनके भरोसे कुछ किया जाता है, तब वे आप ही सफलता प्रदान करते हैं। इसलिए संतोष रखते हुए चले चलो। जो माला स्वामी सत्यानंदजी ने प्रेम से, दया करके दी है, उसको वापस क्यों करना। अब ले आये, सो ले आये। कभी चित्त करे तो उसी से गायत्री का जाप भी कर लिया करो। क्योंकि कभी-कभी मन ध्यान में या मानसिक जाप में नहीं लगता, तब माला से, हठ से तादाद मुकर्रर करके जाप में रखना अच्छा रहता है। हाँ, यदि कभी भेंट हुई, और स्वामीजी पूछ बैठे, तब कह देना, कि तुमको गायत्री के जपने का अभ्यास था, इसलिए मैं वही करता रहा। कभी-कभी उस माला के साथ भी कर लेता हूँ, जब बिना माला के नहीं लगता। सन्तों के दर्शन करना अच्छा है, और उनके उपदेशों पर अमल व्यवहार में करना चाहिए। केवल भजन से कुछ नहीं होगा। जैसे कि बिना अनुपान के औषधी गुण नहीं करती, इस तरह भजन का हाल है। व्यवहार में मन को ऐसा ही हर समय रखना चाहिए,

वैसा कि सन्त लोगों ने भजन करने वालों को कहा हुआ है। और स्वयं वे अपने मन को व्यवहार में कैसा रखते थे, वैसा रखना चाहिए। सब महात्माओं से संबन्ध रक्खो, और सबसे आशीर्वाद की इच्छा रक्खो, सबकी यथा शक्ति सेवा करो, संबंध क्यों तोड़ना। बड़े भाग्य से किसी संत से मेल होता है, जब जब मौक़ा मिले, अच्छे संतों का सत्संग करना चाहिए। यदि तुम्हारे चित्त में उनके पास जाने का उत्साह न हो, और तुम समझते हो कि किसी संत के पास जाने से कुछ हानि पहुँचने का अन्देशा है, तब उस संत में भी कुछ कमी है, इसलिए तुमको नहीं जाना चाहिए। शहद की मक्खी की तरह होना चाहिए। रसकन्द फूलों से लेकर अपने छत्ते में रख कर सेवन करती है। मैं तो एक तुच्छ जीव हूँ, निरक्षर भट्टाचार्य हूँ, मेरे में कोई शक्ति नहीं है, इसलिये मैं तो सबको यही सलाह देता हूँ कि यदि तुम मेरे में कोई अपने लिये लाभदायक बात देखो, तो ग्रहण करो। बाकी छोड़ दो, और और बातों के लिए दूसरों से फ़ायदा उठाओ। प्रत्येक बात बुद्धि से विचार कर करनी चाहिए। २१ दिन फलाहार तथा दूध पर रहकर सवालाख गायत्री मन्त्र का जाप कर लो, तो प्रायश्चित्त के तौर पर लाभ होगा। जाप एक ही पवित्र स्थान पर सुबह-शाम स्वच्छ होकर करना चाहिये। जगह भीतर बाहिर कहीं रक्खो, चाहे दोनों जगह रक्खो।

१६१—पत्र

भोग बलवान है।

ॐ २—६—२६

अलमोड़ा

प्रिय पण्डित... जी, आपका कृपा-पत्र मिला। भोग बल-

वान् है, सबको भोगना ही पड़ता है। आप स्वयम् बुद्धिमान् हैं, और विद्वान् हैं, सब कुछ जानते ही हैं। हाँ कभी-कभी मनुष्य precautionary measures (दूरन्देशी की तदबीरें) लेने में कोताही कर देता है। जब बीमारी बढ़ जाती है तब लाचार होकर काम-काज छोड़ कर इलाज करता है। यदि पहिले ही से शारीरिक अवस्था को देखकर उससे काम ले, अधिक न ले, तो शायद कठिन समस्या बहुत कम आने पाये। ख़ैर जब भोग उदय होता है, तब वह बुद्धि को भी फेर देता है। बड़े-बड़े वैद्य कुपथ्य कर बैठते हैं, और पीछे पछताते हैं। यह प्रारब्ध की प्रबलता है, सबको भोगना ही पड़ता है, वरना आप जैसे सज्जन पुरुषों को दुःख क्यों होना चाहिये, प्रभु रक्षा करेंगे, उन्हींका सहारा है।

१६२-पत्र

ईश्वरार्पण उत्तम है-ईश्वरार्पण उपदेश-ईश्वरार्पण उदाहरण-ईश्वरार्पण व्याख्या-समर्पण-ईश्वर में अटल विश्वास-कुसंग से बचो-सुखी कौन है?

❀ ॐ ❀ ८—६—२६

अलमोड़ा

प्यारी…जी—तुम्हारा पत्र आया पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। तुमने तो अपनी तरफ़ से आशा छोड़ दी थी, परन्तु मुझे पूरी आशा थी। क्योंकि तुम्हारा जो आत्म समर्पण है यानी अपनी

शक्ति अनुसार कोशिश करके फल का भार पूरा ईश्वर पर छोड़ कर उनकी जो इच्छा हो, उस पर संतुष्ट रहना, यह सब काम ठीक रखता है। भोग भी अपना असर करता है, परन्तु जब प्रभु की कृपा है, तव वह इतना असर नहीं रखता। अब भी आगे को सब तरह से जैसा उनको मंजूर हो उस पर सन्तुष्ट रहना चाहिये। बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ आने पर भी यह हालत न बदले, तब बहादुरी है, तभी इस जीव का कल्याण है जो परीक्षा के समय ठीक रहे। यदि तुम उन पर पूरा भरोसा रखती रहोगी, तब वे आप ही तुम्हारी रक्षा करते रहेंगे।

"जेहो विधि राखैं राम, तेहि विधि रहिये।"

जो लोग वचन से तो अपने आपको प्रभु के समर्पण करते हैं, परन्तु जब किसी बात में असफलता हुई या कठिनाई आ गई या कोई और आपत्ति आ गई, तब प्रभु की शिकायत करते हैं, प्रभु पर उनका विश्वास हिल जाता है। वे लोग आत्म समर्पण से बहुत दूर हैं, और उनका आत्म समर्पण दिखलावा है, अर्थात् झूठा है। जो लोग सोलह आना आत्म समर्पण कर देते हैं, उनको प्रभु भी कड़ी परीक्षा लेते हैं, और यदि उस वक्त उनका धैर्य्य न डिगे, तब प्रभु उनकी रक्षा करते हुये अपना लेते हैं। जैसे प्रह्लादजी, मीराबाईजी आदि। प्यारी पुत्री, जब तुमने कोई चीज किसीको बिल्कुल दे दी तब उस पर तुम्हारा कुछ भी अधिकार नहीं रहा, लेने वाला उस चीज को जैसे चाहे बरते, चाहे कुछ करे, या फाड़-फाड़ कर और काम में लाये। तुम यह सब देखते हुये बे-परवाह रहो 'तब तुम्हारा देना ठीक है' और पूरी तौर से देना है। यदि तुम्हारी दी हुई चीज की दुर्दशा को देखकर तुम्हारा मन शिकायत करता है, तब तुमने बिल्कुल नहीं दिया, कुछ अपना भी अधिकार रक्खा है। इसलिए यह दान

ठीक नहीं है, जब किसी के समर्पण कर दिया तब अपना अधिकार बिल्कुल जाता रहना चाहिये। इसलिए पुत्री जो बात कहो, सोच लो कि हर हालत में उस पर चलने को तैयार हो वा नहीं। यदि अभी तुम काम निकालने के लिये कोई चीज़ किसीके अर्पण कर दो, और यदि काम न निकला या काम निकलने के पीछे फिर तुमने उस पर अपना कब्ज़ा कर लिया, तब यह समर्पण नहीं है, दिखावा है, धोखा है, यह माया का भुलावा है। इससे जीव धोखा खाकर अन्त में पछताता है, क्योंकि इन बातों से जीव का कल्याण नहीं होता। यदि कभी सोच-समझ कर हिम्मत करके तुमने कोई बात करने का या किसी हालत में रहने का, जिससे इस जीव का कल्याण निश्चय है, मन में दृढ़ संकल्प कर लिया और प्रभु को साक्षी देख कर चलने पर कटिबद्ध हो गई, तो फिर पैर पीछे न पड़ना चाहिये, पैर आगे ही को पड़े। कठिन से कठिन विघ्न उपस्थित होने पर भी हिम्मत न छोड़ना चाहिये; प्राण जायें तो जायें परन्तु कल्याण के मार्ग से मन न हटे। प्रभु पर पूरा भरोसा रहे, कुसंग से सदा अलग रहे, कभी कार्य्य वश संग हो जाने पर उसके असर से बचा रहे, अपने मनको कुसंग का असर-प्रूफ़ बनाले सत्संग में हमेशा रुचि रहे। गिरी हुई आत्माओं को देख कर अभिमान न आये, अपने से ऊँचों पर, दृष्टि रखते हुये उनको आदर्श बनाये रक्खे, जैसे प्रह्लाद, मीराबाई आदि। यदि किसी जगह का संग अनुकूल हो और आर्थिक लाभ अधिक हो, दुनियाँ लोभ में फँस कर कुसंग की परवाह नहीं करती। इसलिए धनी होते हुए भी, न इस जन्म में सुख से जीवन व्यतीत करते हैं, न परलोक में आशा कर सकते हैं। तुमको संसार में दृष्टि को फैलाना चाहिये, और सब संसारी लोगों को गुरू बनाना चाहिये, उनसे उपदेश लेते रहना

चाहिए कि इतने धनी ऐश्वर्य्य-शाली, विद्वान् आदि होते हुये भी संसार में आसक्त रहने से दुःखी ही देखे जाते हैं। सुखी वे ही होते हैं, जिन्होंने अपने आपको प्रभु के अर्पण कर दिया है, संसार में निरासक्त हैं, शरीर-यात्रा के लिये ईश्वरीय नियमानुसार कार्य्य करते हैं, सब के हित में रत हैं।

१६३—पत्र

जाप आदि सम्बन्धी बातें।

* ॐ * १३-६-२६
अलमोड़ा

प्रिय......मैंने तुमको बहुत स्पष्ट रूप से लिखा था, परन्तु तुम ठीक नहीं समझ सके, इससे यह सिद्ध होता है कि पत्र-व्यवहार में कहीं न कहीं सन्देह रह जाता है, इसलिये जब कभी मिलना होगा, तब सन्देह निवारण कर लेना। तुमको पता है, कि मानसिक जाप सबसे श्रेष्ठ है, दूसरे दर्जे में धीरे-धीरे का जाप होता है, तीन दफ़ा कर सको तो और अच्छा है, शुद्धता के साथ होना चाहिये। भीतर बाहिर स्थान से मतलब यह कि गरमी के दिन होने की वजह से सम्भव है शाम को या किसी समय भीतर न बैठ सको, बाहिर बैठने में सुभीता हो तो दोनों जगह बन्दोबस्त कर सकते हो। तुम्हारे बहुत से प्रश्न ऐसे होते हैं जो बी० ए० क्लास के विद्यार्थी से expect (आशा) नहीं किये जा सकते। पहले खूब विचार कर लो, तब लिखा करो। यदि तुम स्वयं स्वच्छ बुद्धि से विचार करो, तो बहुत सी बातों का जवाब अपने आप हल कर सकोगे। खैर तुमको यह भी

ध्यान में रखना चाहिये कि मैं पत्र-व्यवहार में सुस्त हूँ। जब तक मैं जरूरी नहीं समझता तब तक पत्र लिखने को चित्त नहीं होता। तुमको आगे यदि जवाब न मिले, तो समझ लेना कि जवाब देना जरूरी न समझा गया होगा। उस वक्त तुम अपनी बुद्धि से आप ही जैसा उचित समझना वैसा कर लिया करना।

१६४—पत्र

महाराजजी का अंतिम पत्र।

असल विरक्तता ग्रंथों से नहीं मिलती। धैर्य्य की आवश्यकता। अन्तिम यात्रा-विचार और शरीर-त्याग। सब नाटक है, फ़ज़ूल है। भोग बलवान है, जानते हुये भी यात्रा का निश्चय दृढ़ है।

* ॐ * १६—६—२६

अलमोड़ा

प्रिय ... जी, तुम्हारा पत्र पढ़ कर चित्त प्रसन्न हुआ। प्यारे, लड़ाई बड़ी सख्त है, एक महात्मा चकवाल से आये हुये हैं, वे सात वर्ष से अभ्यास कर रहे थे, उनके अभ्यास की रीति भी विचित्र है। उनके रास्ते में शारीरिक विघ्न ऐसा उपस्थित हो गया, कि उनको अभ्यास बिलकुल बन्द करना पड़ा, हरिद्वार आकर कुछ महात्माओं की राय से कुछ करते रहे, परन्तु दुःख निवृत्ति की आशा न देखकर, पता लेकर यहाँ पर आगये। विघ्न मेरे तजुर्बे में पहले कभी नहीं आया था, परन्तु ईश्वर भरोसे पर

उनकी अवस्था के मुताबिक कुछ साधन में जो कि सरल हैं, लगा दिया जिससे आशा है कि यदि ठीक तौर पर काम चलता रहा, तो विघ्न दूर हो जायेगा। वे बड़े प्रसिद्ध हैं और बड़े विरक्त हैं, परन्तु ठीक-ठीक विरक्तता का लोगों को पता ही नहीं। यदि किसीको कम से कम इतना पता हो जाये, कि असल विरक्तता ऐसी है, और वह लक्ष्य को पकड़ कर वहाँ पर पहुँचने के लिये अपनी शक्ति अनुसार चल पड़े और बिना पीछे क़दम रक्खे हुये आगे को ही चलता रहे, तो उस पर ईश्वर की बड़ी कृपा समझनी चाहिये। ग्रन्थों का पढ़ लेना तो कोई कठिन बात नहीं, परन्तु वे ग्रन्थ अपने बना लेना किसी शूरवीर का काम है। आम तौर पर लोग जीवन का उद्देश कुछ और ही समझ बैठते हैं, इसलिये धोखा खाते रहते हैं। असल उद्देश ईश्वर अनुग्रह से ही प्राप्त होता है। प्रायः लोग नाम के लिये सब कुछ करते हैं, इस बला से मुक्त होना बड़ा कठिन है, बड़े धैर्य्य का काम है। जो अधैर्य्य हैं, और विचार-शून्य हैं, वह इस मार्ग का अधिकारी नहीं है। जो मार खाने से घबरायेगा नहीं, वही शीघ्र सफलता प्राप्त करेगा। यह तो रही आम बात, अब ख़ास बात सुनो। इस साल जो जो विघ्न हो रहे हैं, वे विचित्र ही हैं। सारांश यदि एक उपाधि को दूर करने के लिये कुछ उपाय करते हैं, तब उसकी जगह दूसरी आ जाती है, इससे शरीर बहुत कमजोर हो गया है, केवल मन दृढ़ है। और सबसे कमजोर भी मेरा ही शरीर है, परन्तु यदि मैं कैलाश न जाऊँ, तो कोई भी न जाय। और कई लोग मुश्कल से छुट्टी प्राप्त करके तैयारी करके सब सम्बन्धियों से मिल कर आ गये हैं, दो और छुट्टी लेकर आने वाले हैं, इसलिये मैंने सोचा जब कि सबका जाना मेरे ही आधार पर है, तब जाना ही ठीक है। शरीर रहे या जाये, जैसा भोग होगा होता रहेगा। आगे के

लिये प्रबन्ध भी ईश्वर-कृपा से अच्छा होता जाता है। यह सब आप लोगों के शुभ इच्छा और ईश्वर-कृपा का फल प्रतीत होता है। आज मैं दाल का पानी पीने वाला हूँ, शायद दो-तीन ग्रास चावल भी लूँ। शारीरिक कमजोरी का इससे तुम अन्दाजा लगा सकते हो। इससे दो दिन पेश्तर से उपवास था। परन्तु यह सब ईश्वर कृपा से नाटक सा प्रतीत हो रहा है। यह शरीर-यात्रा ही नाटक है, मन की लहरें भी नाटक हैं, और कहाँ तक कहूँ, इस वक्त सब कुछ नाटक प्रतीत हो रहा है, और यह भी साथ ही प्रतीत हो रहा है कि यह नाटक फ़जूल है, दुःखदायी है, उसमें सुख का अभाव है, सुख इससे परे है, परन्तु फिर भी भोग-वश नाटक देखना ही है। पता नहीं यह सिलसिला कब तक जारी रहेगा। यदि आगे को प्रभु इससे बिलकुल मुक्ति दे देंगे, तो ठीक है, वरना ऐसे ही क़ैद फिर भोगना पड़ेगा। ख़ैर यह बात अपने वस की नहीं है, ईश्वराधीन है। इसलिये उन्हीं की मरजी पर छोड़ कर विचरना ठीक है। जो पहाड़ी लोग कभी कैलाश की यात्रा को जाते हैं, वे सब सम्बन्धियों से मिल कर जाते हैं, कि पता नहीं कि जिन्दा लौटें या न लौटें। ऐसा यहाँ आम रिवाज है। इससे तुम यात्रा के रास्तों की कठिनाइयों का अन्दाजा लगा सकते हो, परन्तु मैंने जब से इरादा पक्का कर लिया है, तबसे सब कठिनाइयों को जिनको सुनता रहता हूँ भूला रहता हूँ, केवल यात्रा करना ही केवल एक मात्र संकल्प रहता है। Come, what may, we have launched our vessel on the waves (जो होना है सो होता रहे, हमने अपनी नाव मँझधार में डाल दी है।)

१६५—पत्र

पिता का बालिग़ पुत्र के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिये—पिता का अपनी सन्तान की ओर कर्त्तव्य—प्रभु से ही कर्म के फल की आशा करो।

ॐ तिथि के बिना पत्र

प्रिय ... जी, तुम्हारा पत्र मिला, हाल जाना गया। निवेदन है, कि जब बच्चा छोटा होता है, तब माता-पिता का अधिकार है, कि उस पर सख़्ती करके भी जैसा वह समझते हैं वैसा चलाने की कोशिश करें, मगर जब वह बालग़ हो जाता है, तब यह उम्मीद की जाती है कि वह अब नफा-नुक़सान को समझ सकता है, इसलिये उसके साथ मित्र-भाव से वर्ताव करे, उसको उचित उपदेश करके, उस पर अमल करना उसकी मरजी पर छोड़ दे। क्योंकि मुमकिन है, माता-पिता की रुचि किसी ख़ास काम में हो और बच्चे की रुचि इस काम में न हो, बल्कि किसी और काम में हो, तो जिस काम में उनकी रुचि नहीं है, वह काम करने के लिये अगर मजबूर किया गया, तो वह बेमन करेगा, और मुमकिन है ऐसी हालत में उसको कामयाबी भी न हो। जिस काम में उसकी रुचि है, उसको वह तन-देही से करेगा, इसलिये उसमें अच्छी तरक़्क़ी कर जाने की सम्भावना हो सकती है। इस लिए...से यह कहना तो ठीक होगा कि वह घर की परवरिश का भार अपने ऊपर लेकर

तुमको सुबक दोष कर दें, मगर यह कहना कि वह अमुक पेशा करके तुम्हारी इच्छा पूरी करे जिस पेशे के लिए उसका हृदय बिल्कुल तैयार नहीं हो, तो बेजा होगा ; और न तो वह .खुशी से उस काम ही को करेगा, और न सफलता की आशा ही हो सकती है ; बल्कि वह तो जन्म भर तुमको कोसता रहेगा, कि उसके पिता जी ने .ज़ुल्म किया कि जो उससे वह काम कराया जिसके योग उसका हृदय नहीं था। ऐसी हालत में जो कुछ नतीजा होगा तुम आप ही समझ सकते हो। गृहस्थ के निर्वाह के लिये रुपिया कमाना जरूरी है, चाहे जिस तरह से कमावें वह अपनी रुचि के मुताबिक़ काम आप ही चुन लेगा, और तब तुमको दोष भी नहीं दे सकता। यह जरूरी तो नहीं है, कि जो काम तुम कर सकते हो, वह तुम्हारे बच्चे भी कर सकें। हर एक की तबीयत निराली होती है एक बात का ध्यान तुमको हमेशा रखना चाहिये, कि संसार की गति को अच्छी तरह मद्दे-नजर रखकर काम करना चाहिये। अकसर तो ऐसा ही देखने मे आता है कि संसार में नाशुकरगुज़ारी बहुत है, अहसान-मन्दी तो कहीं कहीं है। इस लिये गीता में भगवान् ने कहा है:— कि पुरुष को चाहिये कि बाल बच्चों को परवरिश करना अपना फ़र्ज़ समझकर करता जाय, उनसे बदले की आशा न रक्खें। बदले की आशा केवल भगवान् से रक्खे, जिनकी आज्ञा का वह पालन कर रहा है। प्रभु जिस तरह उसका कल्याण समझेंगे, आपही करेंगे। जो विचारवान पुरुष इस तरह ख़याल रखते हुए, फ़रज़ अदाई करते हैं वे ईश्वर के प्यारे बनते हैं, और अन्त में शान्ति को प्राप्त होते हैं। मगर जो बच्चों से बदले की आशा लगाकर उनकी परवरिश करते हैं वे अक्सर दुःखी होते हैं। क्योंकि उन्होंने ग़लती की, कि काम तो मालिक का किया और

बदला ग़ैर से चाहते हैं ? फिर वह क्यों देने लगा। दूसरे, ऐसे पुरुष का विश्वास भी ईश्वर में नहीं सिद्ध होता, क्योंकि, अगर वह यह समझकर काम करता कि वह ईश्वर की आज्ञा पालन कर रहा है, तो ईश्वर को मालिक समझता हुआ वह ईश्वर ही से उजरत की उम्मेद रखता, मगर वह ईश्वर को छोड़कर दूसरों से उजरत चाहता है, इसलिये धोखे में पड़कर दुःख पाता है। क्योंकि सोचने की बात है, जिस औलाद की परवरिश करता हुआ वह उससे उजरत की उम्मेद रखता है, अगर वह कमाने के वक्त मर जावे, तो उजरत किससे लेगा और फिर क्या उसका सब करा-कराया पानी में मिल जावेगा ? नहीं, उसको तो ईश्वर ही जैसा चाहेंगे वैसा देंगे, जब चाहेंगे तब देंगे। इसलिये सीधे ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिये। वह अगर चाहेंगे तो तुम्हारी उम्मीद बरारी जिस तरह से उचित समझेंगे पूरी करेंगे। यह जो संसार में इच्छा का पूरी न होना है, इससे प्रभू बड़ा सबक देते हैं कि संसार में आशा ही लोगों को बहुत दुःख देती है, जो लोग सब आशाओं को ईश्वर पर छोड़कर सब्र करते हैं, और अपना फ़रज़ अदा करते रहते हैं, वे ही सुखी हैं।

१६६—पत्र

दृढ़ प्रत्यक्ष होना चाहिये।

❀ ॐ ❀ तिथि के बिना पत्र

प्रिय सरदार जी,

"ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। यह सब ताड़न के अधिकारी।"

इतना ख्याल जरूर रक्खें कि किसीको जो धमकी सजा करने को दें उसको अवश्य पूरा करें, वरना दूसरा डरता नहीं

है और फिर सर पर चढ़ता है, और तंग करता है। मन अगर कभी कष्ट को देखकर अपने इरादे को पूरा करने से रुक गया, तो कमज़ोर पड़ जाता है। इसलिए जो कुछ कहें वह पहिले ख़ूब सोच विचार कर कहें, पीछे उसको अमल में लाने के लिए पूरा यत्न करें।

१६७-पत्र

ब्रह्मचर्य्य, साधारण उपयोगी उपदेश।

❀ ॐ ❀ (तिथि के बिना पत्र)

वीरवार कटरा

प्रिय ..... जी, तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ, साथ ही तुम्हारे पिताजी का भी पत्र मिला, वृत्त ज्ञात हुये। शाम को दूध पीकर रह लो, और कम से कम ४५ मिनट पीछे, सोओ, और बायाँ पासा ऊपर करके सोओ, और आख़ीर तक इसी तरह सोओ। जाग आ जाने पर उठ बैठो, और पेशाब करके कुल्ला करके, बैठ जाओ। फिर न सोओ, दिन को मत सोओ, रात को सोते समय कोई धर्म-पुस्तक अवश्य पढ़ो, और उसका मनन करते हुये सो जाओ। एकान्त सेवन अच्छा है; उसमें ख़्यालात शुद्ध रहें। स्त्री यदि सामने आ जाये, तो उसके चेहरे की तरफ़ मत देखो, बल्कि मातृ-भाव रखते हुये उसके चरणों की तरफ़ देख कर मन से मत्था टेक दो। छोटी लड़की को देवी समझते हुये ऐसा ही करो। प्रह्लाद की कथा हर वक़्त सामने रखना चाहिये। ईश्वर के भरोसे पर कोशिश करते जाओ। जो सच्चे दिल से उनकी शरण में जाता है उसको वे ज़रूर अपनाते हैं।

१६८—पत्र

ईश्वरपरायण रहो। शारीरिक परिश्रम। चर्खा आदि कातना।

ॐ (तिथि के विना पत्र)

तुम्हारे हृदय में जो प्रभु की भक्ति है, वह प्रशंसनीय है और कल्याणकारी है। जिस दिल (हृदय) में प्रभु विराजमान हैं, वह दिल उससे शून्य न होने पावे। हर वक्त, उन्हींका ध्यान, उन्हीं की आशा, उन्हीं पर विश्वास बना रहे, तो उन्हीं के पास गती होना है। यदि प्रभुजी तुम्हारे हृदय में विराजमान हैं, तो समझो कि तुम्हारे पास हैं। तुम्हारी माता तथा भ्राता धन्य हैं जो तुम्हारे को भक्ति के मार्ग में सहायक हैं, वे भी पुण्य के भागी होंगे। आगे को यदि मैं कभी तुम्हारे प्रश्न का उत्तर न दिया, तो तुझे आप ही तेरे हृदय में उनके जवाब की फुरना होगी, तुम अपनी बुद्धि से आप ही समझ लिया करना। शरीर का पूरा ध्यान रखना। यदि शरीर गड़बड़ हो गया, तो भजन में विघ्न होगा। शारीरिक परिश्रम भी करना जरूरी है, जितना शरीर सहार सके। खाली समय में चरखा कातना चाहिये।

१६९—पत्र

भजन ही एक मात्र शुद्ध कर्म है—माया से बचना ईश्वर के अधीन है। ईश्वर-विश्वास

ही परम कारण है—परलोक सुधार—मृत्यु की तैयारी—ईश्वरार्पण का स्वभाव।

ॐ

प्रिय ……जी। तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ, वृत्त ज्ञात हुये। तुमने जो लिखा है कि हम बहुत रंज रहती हैं, सो ठीक है। दुनिया के जितने काम हैं, चाहे वे धर्म के हों, चाहे कैसे हों सब में रंज है। बिना रंजिश का काम केवल प्रभु का भजन ही है, परन्तु यह किसी बड़े भाग्यवान् पुण्यात्मा से ही हो सकता है। क्योंकि हकूमत, और मान और नाम और संसारी पदार्थ की इच्छा छोड़कर भगवत-भजन में लग जाना बड़े शूरवीर का काम है। जब यह जीव प्रभु की शरण लेता है, तभी इसको चैन आती है, नहीं तो चिन्ता ही में पड़ा रहता है। दुनिया के काम कभी खतम होने वाले नहीं हैं। नित्य नये खड़े हो जाते हैं, आज एक काम हो रहा है, कल जब वह खतम हो जाता है तब दूसरा सामने आ जाता है। मैंने जिस तरह से तुमको रहने, करने के लिये कहा था, वैसी दृष्टि रख कर तुम नहीं करते। नहीं तो तुमको रंजश कोई न होती। पहले तो तू शिकायत करती रहती थी, कि हमको झगड़े में पड़े रहना बुरा लगता है, बहुत ही दिक्कत मालूम होती है, परन्तु अभी तक तू उसी झगड़े में पड़ी है जिसकी तू शिकायत करती थी। इससे मालूम होता है ऊपर मन से शिकायत करती थी, दिल से तू झगड़े को छोड़ने के लिये तैयार नहीं थी। जब जीव को सब झगड़े छोड़ देने का मौका मिलता है, तब माया किसी न किसी बहाने से फांसे रहने की तरकीब करती है, उसके फंदे से वे ही निकलते हैं, जिनकी लग्न

प्रभु की तरफ़ सच्ची है। और जिनकी लग्न माया में है, और प्रभु की तरफ़ कोरी बातों की है, वे माया को कभी नहीं छोड़ सकते। अब इस अवस्था में भी यदि तुझे ईश्वर पर विश्वास न हुआ और प्रभु के चरणों में प्रेम न हुआ, तो फिर न तुझे जीते जी सुख है, न परलोक में। क्योंकि तू तो हुकूमत, मान बड़ाई, और नाम में फँसी हुई है, सो तुझे मिल रही है, आगे के लिये कुछ नहीं। जो पुरुष मान, बड़ाई, नाम के लिये कर्म करता है, उसको वह मिल जाते हैं, परलोक में कुछ नहीं। जो परलोक के लिये करते हैं, यहाँ पर लोगों से कुछ नहीं चाहते, वे परलोक में सुख भोगते हैं। उनको यहाँ धर्म कार्य्य करने में कोई रंजिश नहीं होती; क्योंकि वे फल की परवाह नहीं करते। जैसा अपने से बना वैसा कर दिया, दुनियाँ कुछ कहे, परवाह नहीं करते। धर्म-कर्म को ईश्वर की आज्ञा समझ कर करते हैं, लोगों को दिखाव के लिये नहीं। तू इस बात को सोच कि यदि तू इस बीमारी में चल देती, तो तेरा क्या बनता। अपने हृदय को देख, तेरा मन किधर लगा हुआ है। मरते समय तेरा ध्यान दुनियां और दुनियां के काम की तरफ़ होता या ईश्वर के प्रेम में मग्न होता। अन्त समय वैसा ही ख्याल होता है जैसा कि यह जीव पहले से अभ्यास करता है। मृत्यु के पहिले जिधर प्राणी का मन लगा होता है, उधर ही मृत्यु के समय लगा रहता है और मर कर फिर उसीमें पड़ता है। यदि मृत्यु से पहिले वह ईश्वर के प्रेम में मग्न होता है, तो अन्तकाल में भी ईश्वर के प्रेम में मग्न होता है, और मर कर प्रभु की शरण में, उनके निकट पहुँच जाता है, और सम्पूर्ण दुःखों से छूट जाता है। मरने-जीने के दुःख से छुटकारा ले लेता है। प्रभु के प्रेम के मुक़ाबले में दुनियां के जितने काम हैं वे सब मिल कर बहुत तुच्छ हैं। फिर जो प्राणी हीरा को छोड़

कर कौड़ियां बटोरता है, वह महामूर्ख और नीच समझा जाता है। बुद्धिमान् और हिम्मतवाला आदमी बुद्धिमानी का काम करता है, जिसमें लाभ अधिक हो। और मूर्ख और कम हिम्मत वाला वे काम करते हैं जिनका फल थोड़ा है, उन्हींमें रात दिन लग कर जीवन नष्ट कर देता है।

१७०—पत्र

कर्म का फल ईश्वराधीन है।

❀ ॐ ❀

····जी तेरे दोनों पत्र प्राप्त हुये, हाल जाना गया। जो कर्म किया जाता है, वह समय पाकर अपना भोग जरूर भुगाता है, यह ईश्वरीय नियम है। उसको धैर्य्य के साथ सहारना चाहिये, और ईश्वर का चिंतन रखना चाहिये, वे ही हर समय अपने भक्तों की रक्षा करनेवाले हैं।

१७१—पत्र

संसार दुःख रूप है।

❀ ॐ ❀

मुलतान

श्रीमानजी, पत्र आपका मिला, हाल जाना गया।······ अभ्यास की हालत आने पर शायद दर्द बढ़ जावे, इसलिये संसार की गती को देखते रहिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान सांसारिक तरक्की के पीछे लगे रहने से और विषयों में फँसे रहने से कैसी-कैसी आफ़तें आती हैं। इनका चिन्तन करते रहना चाहिये। सन्तों, महात्माओं के जीवन का चिन्तन करना

चाहिये। प्रभु कैसे अपने भक्तों को संसार में ठोकर खिलाकर अकल देकर, सीधा कर देते हैं, और संसार से उनके चित्त को हटा देते हैं; संसार का असली नजारा उनके सामने रख देते हैं, जिससे उनको पता चल जाता है कि संसार दुखों से भरा हुआ है। इन सब बातों का विचार करना चाहिये। गीता और सुखमनी साहिब का पाठ, ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये। शरीर का दण्ड सबको भोगना पड़ता है, समझदार विचार से भोगता है, मूर्ख रो कर भोगता है।

१७२—पत्र

दो प्रकार के शास्त्र-वाक्य।

❀ ॐ ❀

मुलतान
१४ दिसम्बर

प्रिय...जी, तुमने जो मनुस्मृति पढ़ी, तब तुमको भ्रम हो गया, उसमें दो प्रकार की बातें हैं। एक तो वेद के आधार पर धर्म उपदेश जोकि सब मनुष्यों के लिये आश्रमों के मुताबिक जरूरी हैं; दूसरा समय के मुताबिक रिवाज जो कि जमाना के बदलने पर बदल जाते हैं।

अन्तिम आदेश

"जिनकी सच्ची चाह है, वे जान भिड़ाकर कोशिश करेंगे, और सफलता को प्राप्त होंगे; परन्तु जिनके मन में विषयों की लालसा है, उनके लिये कठिन है।"

सियाराम